श्री सद्गुरवे नमः

महर्षि मेँहीँ सूक्ति-सुधा-सागर



मैँहीँ परमहंस जी महाराज

श्री सद्गुरवे नमः

पूज्यपाद बाबा श्री शाही स्वामी जी महाराज का आशीर्वचन

आदरणीय स्वामी श्री सत्यानन्दजी,

आप परमाराध्य श्री सद्गुरु महाराज के नाम पर **"महर्षि मेँहीँ सूक्ति-सुधा-सागर"** नाम की पुस्तक प्रकाशन करा रहे हैं। इस पुस्तक में परमाराध्य श्री सद्गुरु महाराज के विचारों का सार-संग्रह होगा। परमाराध्य श्री सद्गुरु महाराज के विचारों का जितना अधिक प्रचार-प्रसार हो, मेरे लिए उतनी ही प्रसन्नता की बात होगी।

मैं आपके इस कार्य के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मेरा विश्वास है—यह पुस्तक लोगों के बहुत बड़े कल्याण के लिए होगी। इसे लोग बड़े ही आदर से स्वीकार करेंगे। इति ।

आपका ही—

शाही स्वामी

महर्षि मेँहीँ धाम, मनियारपुर

१५.०३.२००४

प्रस्तावना

जगत् है, जीवन है, अस्तित्व है, लेकिन सबके होते हुए भी जीवन का सत्य ज्ञात नहीं, अपितु अज्ञात है। जैसे पदार्थ जगत् व स्थूल जीवन का अनुसन्धान विज्ञान ने किया है, उसी प्रकार अस्तित्त्वगत अन्तरात्म जगत् व अन्तश्चेतना की खोज आत्मद्रष्टा ऋषियों ने की है। यही खोज व्यक्ति के पूर्ण अस्तित्त्व में परम आनन्द के फूल खिलाते हैं। शाश्वत शान्ति में प्रतिष्ठित कराते हैं।

संसार के अध्यात्म–धर्मग्रन्थ इतिहास में संत के समान दूसरा कोई नहीं। संत यथार्थवादी होते हैं, अन्दर बाहर एक जैसे। तभी तो अवधूत शिरोमणि महर्षि जड़ भरत जी महाराज ने सम्राट रहूगण को यथार्थ कहने से किञ्चित भी न हिचकिचाए। यथा–

''रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्नि सूर्यैर्बिना महत्पादरजोऽभिषेकम्।।''

—श्रीमद्भागवत

अर्थात्–हे रहूगण! केवल तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि दान, अतिथि-सेवा, दीनसेवा आदि गृहस्थोचित्त-धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि, सूर्यादि देवता की उपासना से यह परमात्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। यह तो सन्त महापुरुष की चरणधूलि से संभव है।

यही संत महारुष की महिमा है।

त्रैलोक वंद्य हैं वे, जो जगत् के तमसाच्छन्न रजनी में अध्यात्म-पथ के पथिकों के पथ को अपनी करुणा-भरी दिव्य-वाणी से आलोकित करते रहें हैं। ऐसे ही परमाराध्य की दिव्य अमृत-वाणी को विषय-वद्ध संग्रह करने की मेरी वर्षों से सद्इच्छा रही थी। जब-जब परमाराध्य सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज की लोक पावन-वाणी का पाठ करने का सुअवसर मिला, तब-तब उनकी विशेष दिव्य-वाणी, विषय विशेष पर मेरे हृदय को स्पर्श करती गयी। जैसे–'सन्तमत' के सम्बन्ध में आराध्यदेव की वाणी है– 'जो सन्तपथ पर चलते हैं, वे आवागमन से छूटते हैं और जो संसार के पथ

पर चलते हैं, वे आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं। मेरी उम्र 92 वर्ष की हुई है, लेकिन शान्ति का स्थान कहीं नहीं देखा, देखा तो सन्तमत में। इसलिए सन्तमत में आ गया।''

''शान्ति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं, शान्ति को जो प्राप्त कर लेते हैं, वे सन्त कहलाते हैं। सन्तों के मत वा धर्म को सन्तमत कहते हैं।''

''सन्तमत कोई ऐसी संस्था नहीं है, जो किसी एक खास व्यक्ति के नाम पर हो। जो सब संतों का सिद्धांत और विचार है, वही सन्तमत का सिद्धांत और विचार है।''

इसी तरह अन्य बहुत सारे विषयों पर परमाराध्य की सूक्ति-सुधा प्रवचनों एवं साहित्यों में थी। मन में सोचा क्यों न आराध्यदेव के सूक्ति-सुधा (वचन) को भगवान् बुद्ध एवं श्री रामकृष्ण परमहंस के वचनों की तरह मैं भी पुस्तक का रूप दूँ ? यह इसलिए कि इससे एक विशाल सत्संगी समाज को अमित लाभ होगा; उनलोगों को यह पुनीत कार्य देखकर बड़ी प्रसन्नता होगी और मेरे लिए भी एक पुण्य का कार्य होगा।

इस सद्विचार को एक दिन सुलतानगंज निवासी–पूज्य श्री रघुनन्दन बाबा के समक्ष रखा। मेरे विचार को जानते ही पूज्य बाबा ने लगे हाथ कहा– 'यह सर्वोत्तम बात है। आप इस सत्कार्य को अवश्य पूरा करें।' पूज्य बाबा का प्रोत्साहन एवं उनकी प्रेरणा का ही यह फल है कि मेरे लघु प्रयास से आराध्यदेव की वाणी **'महर्षि मेँहीँ सूक्ति-सुधा-सागर'** ग्रन्थ के रूप में व्यक्त हुई है।

'महर्षि मेँहीँ सूक्ति-सुधा-सागर' नाम ही क्यों? इसलिए कि प्रस्तुत ग्रन्थ परमाराध्य के उन प्रामाणिक प्रवचनों एवं साहित्यों में का (विषय विशेष पर कहा गया) दिव्य उपदेश (सूक्ति) है, जो समास रूप में संग्रह किया गया है। सन्तों की वाणी सुधा–यानी अमृत तो है ही। संग्रह वृहत् हो जाने के कारण सागर शब्द को लिया गया है और यह अतिशयोक्ति नहीं है कि संतों की वाणी अमृत का सागर है। मैं आशा करता हूँ कि इस ग्रन्थ को लोग अपनाकर परम शाश्वत-सुख-शान्ति की ओर उन्मुख होंगे और प्रबुद्ध जनों को किसी खास विषय वस्तु पर परमाराध्य के विचार व मत को जानने में यह एक सहज सरल साधन होगा।

अब मैं उन महापुरुषों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने आराध्यदेव के साहित्य को इस अवनीतल पर अक्षयवट की तरह रखने का स्तुत्य सत्कार्य किया है।

अपने वक्तव्य के अन्त में प्रातः स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित आराध्यदेव के लोक-पावन पाद-पद्मों में सदा सदा वन्दन करता हूँ, जिनकी महती कृपा से यह पावन कार्य सुसम्पन्न हुआ। साथ-साथ मैं **पूज्य श्री वीरेन्द्र बाबा, पूज्य श्री शरणानन्द बाबा, आदरणीय श्री चेतन बाबा, प्रिय अनुज गुरु भाई आदरणीय श्री गुरुनन्दन बाबा, प्रिय सेवक–स्वामी मुक्तानन्द** एवं उन सभी सदात्माओं को हृदय से साधुवाद एवं धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस पुनीत कार्य में तन, मन, धन एवं वचन से अकथनीय श्रम व सहायता की है। इस परमार्थ के लिए मैं आप सभी का अत्यधिक ऋणी हूँ। इति ।

सन्त सदगुरु-चरणाश्रित

–सत्यानन्द

21.03.2004

फिर यदि कोई कहे कि महर्षि मँहीँ परमहंस जी ने अन्य सन्तों की वाणी लेकर अपने मत का प्रचार किया, तो लोकदृष्टि में ऐसे विज्ञजन भी आध्यात्मिकता में महान अज्ञ और निराबालक मात्र हैं, इसलिए वे क्षमा के पात्र हैं।

परमाराध्य सद्गुरु महाराज जिस समय अपने सगुण-साकार विग्रह में प्रकट थे, उस समय उनके चतुर्दिक सभी नर-नारी धर्मशील, ज्ञानी, गुणवन्त, शुचि और सुभग भक्त थे। किन्तु जब उनके स्थूल-देहयष्टि का विसर्जन हो गया तो अधिकांश सत्संगी-प्रेमी उनके दिव्य उपदेश को भूलने लगे और उसमें विकृति आने लगी।

कोई कहने लगे सन्तमत निर्गुणियाँ मत है, तो कोई कहने लगे सन्तमत राम-कृष्ण को नहीं मानने वाला नास्तिक मत है। कोई कहने लगे सन्तमत की साधना पद्धति बिल्कुल निराधार और मनगढ़न्त मात्र है, जो ईश्वर दर्शन नहीं करा सकती ; तो कोई कहने लगे सन्तमत मानव को अकर्मण्य और पुरुषार्थ-हीन बनाकर देश को महान क्षति पहुँचा रहे हैं।

इस प्रकार निरा कपोल-कल्पित उहापोह में पड़कर मानव समुदाय परमार्थ-भ्रष्ट होने लगे।

इस विषम परिस्थिति में परमाराध्य सद्गुरु महाराज की ही विषय-बद्ध ऐसी दिव्य वाणियों के संग्रह की आवश्यकता हुई जो मुमुक्षु जनों के संशय का सर्वतोभावेन संहार कर सके। इसी लक्ष्य को अक्ष के समक्ष रखते हुए आप सुधी पाठकवृन्द के कर-सरोज में प्रस्तुत पावन ग्रंथ **"महर्षि मँहीँ सूक्ति-सुधा-सागर"** का प्रकाशन किया गया हैं। इसमें परमाराध्य सद्गुरु महाराज के प्रवचन-संग्रह और लेख आदि से ऐसी अनेक सूक्तियों का विषयानुवर्ती अनुपम संचयन किया गया है, जो मुमुक्षु-साधक के हृदय-वाटिका में आध्यात्मिकता का सौरभित बहार ला सके, जैसे—संत और उनका चरित्र, संतमत और इसका इतिहास, ईश्वर और उनका स्वरूप, चेतन-आत्मा की स्थिति और उसकी खोज, ईश्वर-दर्शन और उसका फल, अन्तर्ज्योति और उसकी प्रत्यक्षता, शब्द की महिमा और अन्तर्नाद, स्वर्ग-नरक और उसका दर्शन, ब्रह्मनिर्वाण अथवा परमधाम की यात्रा, विप्र-महिमा और वर्ण-विचार, कर्म और उसका फल, आदि अनेक विषयों का आद्यांत संतोषजनक एवं

सम्पूर्ण सम्पुष्टि हुई है।

अतः इस पुस्तक का प्रकाशन करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि परमाराध्य सद्गुरु महाराज जी के इस वाङ्मय-स्वरूप का अध्ययन करने वाले अनन्यचित, श्रद्धालु भक्तों का अवश्यमेव कल्याण होगा।

परम पूज्य स्वामी श्री सत्यानंद जी महाराज परमाराध्य सद्गुरु महाराज की सूक्तियों को पावन ग्रन्थ–**'महर्षि मेँहीँ सूक्ति-सुधा-सागर'** के रूप में प्रस्तुत कर लोकोपकारी महान कार्य किये हैं। यद्यपि संतमत में अनेक कर्मठ और अत्युत्साही युवा संन्यासी हैं, तथापि सद्गुरु महाराज जी ने इस पवित्र और महत् कार्य के लिए पूज्य स्वामी जी का ही चयन कर इन्हें बड़ भागी बना दिये हैं। अतः इनके पावन चरणों में शत-शत नमन करता हूँ और परमाराध्य सद्गुरु महाराज से प्रार्थना करता हूँ कि इनके द्वारा ऐसे ही सर्वहितकारी कार्य होते रहे, जो संतमत के अनुकूल है। इति शुभम् ।

गुरुचरणाश्रित

–गुरुनन्दन

17.03.2004

महर्षि मेँहीँ लीलामृत
(संक्षिप्त)

परमाराध्य प्रातःस्मरणीय संत सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज संतों की अविच्छिन्न-परम्परा की एक अपूर्व और सर्वोत्कृष्ट कड़ी हैं। इस जगतीतल पर आपका अवतरण विक्रमीसंवत् 1942 के वैशाख शुक्ल चतुर्दशी तदनुसार 28 अप्रैल, सन् 1885 ई० को बिहार प्रान्त के मधेपुरा जिला के खोखशी श्याम ग्राम में अपने मातामह के यहाँ हुआ था। शैशव काल से ही आपके सिर पर सात जटायें थीं, जो प्रतिदिन कंघी से सुलझा देने पर भी पूर्ववत् रूपांतरित हो जाती थीं। ये आश्चर्यमयी घटना मानो आपके नर-रूप में नारायण होने की पूर्व सूचना दे रही थी।

चार वर्ष की अति अल्पावस्था में ही आपकी जगत् वन्दनीया माता जी (श्रीमती जनकवती जी) का देहावसान हो गया। पूज्य पिता श्री बबुजन लाल दास जी (कायस्थ कुलभूषण) और अग्रजा झूलन देवी जी ने अपने स्नेह और सुविधापूर्ण वातावरण में आपका पालन-पोषण किया। जन्म-राशि के अनुसार आपका नाम श्री रामानुग्रह लाल दास जी रखा गया।

आपने गाँव के ही पाठशाला में कैथीलिपि के साथ-साथ अपनी दिव्य प्रतिभा के कारण अल्पकाल में ही नागरी लिपि भी सीख ली। और ग्यारह वर्ष की अवस्था में पूर्णियाँ जिला स्कूल में विद्याध्ययन के लिए भर्ती कराये गये। वहाँ पर उर्दू, फारसी और अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई के साथ-साथ आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन और भगवान शिव को इष्ट मानकर उनके प्रति जल चढ़ाया करते थे।

सन् 1904 ई0 की तीन जुलाई से शुरू हो रही एन्ट्रेन्स (प्रवेशिका) के फर्स्ट क्लास (आधुनिक मैट्रिक) की परीक्षा में आप सम्मिलित हुए। दूसरे दिन अंग्रेजी की परीक्षा थी। प्रश्न पत्र का प्रथम प्रश्न था–

'Quote from memory the poem 'Builders' & Explain it in your own English ?"

अर्थात् 'निर्माणकर्त्ता' शीर्षक पद को अपने संस्मरण से लिखकर उसकी व्याख्या करो ?

आपने 'निर्माणकर्त्ता' शीर्षक कविता का प्रथम छन्द लिखकर उसकी विशद् व्याख्या की। उसका अंशरूप निम्नलिखित है –

'For the Structure that we raise;
Time is with materials field.
our todays and yesterdays,
are the blocks with which we build."

"हमलोगों का जीवन-मन्दिर अपने प्रतिदिन के सुकर्म वा कुकर्म रूप ईंटों से बनता वा बिगड़ता है। जो जैसा कर्म करता है, उसका वैसा ही जीवन बनता है। इसलिए हमलोगों को भगवद-भजन रूपी सर्वश्रेष्ठ ईंटों से अपने जीवन-मन्दिर की दीवाल का निर्माण करते जाना चाहिये। जीवन रूपी जिस ईमारत को हमलोग तैयार करते हैं, वह हमलोगों के आज और कल के शुभाशुभ, अच्छे-बुरे, नेकी-बदी, धर्म-अधर्म एवं पाप-पुण्य रूपी उपादानों से ही बनी है। हमलोगों के जीवन का वर्त्तमान स्वरूप आज और कल रूपी समय में किये गये कर्मों की ही संहति है या एकत्र संचयों से ही निर्मित हुआ है। इन बहुत से आज और कल का सदुपयोग करने से ही हमारा जीवन सुन्दर, सुदृढ़ और अमर होगा। जिस भाँति सुन्दर सामान को व्यवस्थित और सुष्ठतापूर्ण शृंखला में सजाकर सदुपयोग कर हम सुन्दर, कलापूर्ण, सुदृढ़ स्थायी महल बना लेते हैं, उसी भाँति अपने आज और कल रूपी सामानों का सदुपयोग करेंगे अर्थात् सदा सर्वदा हम उसे पवित्र और पुण्य कर्मों में ही लगायेंगे, तो निस्सन्देह हमारा जीवन सार्थक, सफल और सुन्दर बन जायेगा। समय की सदुपयोगिता सत्संग में है और ईश्वर भक्ति या भजन से श्रेष्ठतर और कोई भी सत्कर्म नहीं है।"

इस भाँति अनुभूति की अनन्तता, प्रज्ञा की प्रगाढ़ता, माधुर्य की अपूर्व मादकता, प्रेम की पराकाष्ठा और शौर्य तथा सौन्दर्य की सीमा हीन सरिता जनित हृदयोद्‌गारों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ आपने अपनी उत्तर-पुस्तिका में मानस की यह पंक्ति –

"देह धरे कर यहि फल भाई ।
भजिये राम सब काम बिहाई ।।"

उद्धृत कर दी और परीक्षक महोदय से कहा–'May I go out sir ?' (महाशय! क्या मैं बाहर जा सकता हूँ ?) परीक्षक महोदय ने आपको अनुमति दे दी। बस फिर क्या था ? जैसे शिवजटा से गंगा की धारा भूदेवी और उनकी कोटि-कोटि सन्तानों को पावन करती हुई आगे अग्रसर हुई थी, उसी भाँति सर्वभूत-हृदय, सत्-चिद्-आनन्द के पूँजीभूत स्वरूप परमाराध्य देव श्रीरामानुग्रह जी अनन्त जीवों का त्राण और कल्याण करने हेतु निकल पड़े।

सर्वभूत हितेष्णा की इस पावन-परिधि में आपने सम्पूर्ण सृष्टि को समाविष्ट कर लिया। यद्यपि आपके इस महत् जीवन में भीष्म का ब्रह्मचर्य, अर्जुन का पराक्रम, रन्तिदेव की उदारता, भगीरथ की साधना, कपिल का सांख्यज्ञान, भरत की भक्ति, नारद की अबाध गति, व्यास का पाण्डित्य, कबीर और नानक का संतत्त्व, श्री राम की मर्यादा और श्रीकृष्ण के योग सामर्थ्य तथा गीता-ज्ञान का सम्पूर्ण संचयन था, तथापि आपने लोकादर्श की स्थापना हेतु एक अपूर्व विरही वैरागी का रूप धारण किया।

आपको ज्ञान-योग-युक्त भक्ति का वह रहस्य प्रकट करना था जो भगवान् श्री राम, भगवान् श्री कृष्ण, भगवान् शिव, सन्त कबीर, गुरु नानक, सूरदास, तुलसीदास, दादूदयालजी, दरिया साहब आदि के पश्चात प्रच्छन्न और मलिन हो चुका था।

अस्तु! आपने कईक धर्मगुरुओं का सान्निध्य ग्रहण किया और सन्तों तथा भगवन्तों के इस परम प्राचीन सनातनी भक्ति-भेद को भेष-भर्म से पटा पाया। किन्तु शब्दजा श्री भूदेवी की गोद ऐसे सन्त सद्गुरुओं से कभी खाली नहीं रहती है।

अतः कालान्तर में आपको मुरादाबाद निवासी परम सन्त बाबा देवी साहब का अपूर्व दर्शन भागलपुर नगर में हुआ। सम्पूर्ण आध्यात्मिक खजाना से भरपूर सद्गुरु अपने योग्यतम सत्पात्र शिष्य को देखकर अपलक हो गये। गुरु शिष्य का वह मधुर मिलन भक्ति का भूरि-भाव, वैराग्य का वृहत् संवेग, प्रेम का प्रबल प्रवाह और चित-चिद् का विलय करने वाला था। जैसे गोविन्द पादाचार्य ने शंकराचार्य को, देवर्षि नारद ने व्यासवेद जी को, विश्वामित्र और वशिष्ठ ने श्री राम को और श्री सांदीपनि मुनि तथा गर्गाचार्य ने श्री कृष्ण को निहारा था, वैसे ही परम सन्त बाबा देवी साहब ने मानव मात्र के परम

आराध्य, अद्भुत तेजयुक्त उस परम तपस्वी को देखा तथा अपने आध्यात्मिक खजाना का द्वार खोल दिया । आपके सन्त सद्गुरु की खोज-यात्रा बाबा साहब सुदीर्घ गुरु-गरिमा में विलीन हो गई। सनातन-वैदिक और कलिकालिक-सार्वधार्मिक साधना-पद्धति-मानसजप, मानस-ध्यान, दृष्टियोग और सुरत-शब्द-योग की दीक्षा प्राप्तकर आप प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गये।

गुरु चरणारविन्द के प्रेमामृत से पूर्ण और यम, नियम, शम, दमादि व्रतों से युक्त होकर सम्पूर्ण दुख, संताप, दारिद्य और पाखण्ड आदि दोषों का आपने अपने उत्तम यश के द्वारा हरण कर लिया। चराचर-सर्वगत-स्थित परम तत्त्व—सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व का बे-पर्द आत्मानुभव किया। तभी तो आपके संतसद्गुरु ने आपका नाम रामानुग्रह से बदलकर 'मेँहीँ' रखने की कृपा की। 'मेँहीँ' शब्द का अर्थ साहित्यिक महानुभाव चाहे कुछ भी करे, किन्तु इसका एक सर्वमान्य अर्थ सूक्ष्म भी है।

अतः इस **'मेँहीँ'** शब्द का अर्थ-अण्ड इतना विशाल महिमा-मंडित है कि अनन्त असीमित पारब्रह्म परमात्मा भी इसके बाहर नहीं रह पाते। आपकी अप्रतिम ब्राह्मी स्थिति ओर गीतोक्त स्थितप्रज्ञता तथा गुणातीत लक्षणावली का अपूर्व सामंजस्य देखकर भक्तवृन्द आपके अघ-पुञ्ज हारी नाम **'मेँहीँ'** के साथ महर्षि और परमहंस लगाकर अहर्निश स्मरण करते हुए तन-मन से पावन होने लगे और आप **'महर्षि मेँहीँ परमहंस जी'** के नाम से चतुर्दिक चारु-चर्चित हुए।

समय के अन्तराल से लाखों-लाखों मानव समुदाय आपके ब्रह्मानन्द प्रवाहिनी, सुधा-सिक्त वाणी के कायल हो गये। आपके व्यक्तित्त्व से गीता की अमर-वाणी 'सर्वभूत हितेरताः' की प्रखर किरण वैसे ही प्रस्फुटित होने लगी जैसे चन्द्र से चन्द्र-किरण।

कभी तो घनघोर देहात से अनपढ़-पढ़ुआ श्रान्त-क्लान्त दौड़े-दौड़े परम दयालु बाबा के पास आकर आत्म-तृप्ति का लाभ पाते थे और कभी श्री धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, श्री विद्यानन्द ब्रह्मचारी (योगदामठ राँची) बालानन्द ब्रह्मचारी (स्वरोदय योग सम्राट, देवघर) और राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल डॉ0 श्री सम्पूर्णानन्द जी आदि तत्कालिन प्रकाण्ड विद्वान आपके समक्ष श्रद्धा से नत् हो अपने को धन्य-धन्य समझ रहे थे ।

कभी वैदेही शरण दूबे, महर्षि महेश योगी और बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री दारोगा प्रसाद राय आदि अद्वितीय विद्वान् और बड़े—बड़े पदस्थ महानुभाव अपना-अपना मद-मुकुट आपके श्री चरणों में अर्पित कर शिष्यत्त्व ग्रहण करते थे। कभी बौद्ध जगत् के भिक्षु डॉ० जगदीश काश्यप आपका दुर्लभ दर्शन और दीक्षा प्राप्तकर 'भगवान् बुद्ध ही हमे मिल गये' की घोषणा करते हुए नजर आते ; तो कभी भूदान-यज्ञ के प्रवर्त्तक सन्त विनोवाभावे आपसे आध्यात्मिक चर्चाकर अपूर्व आह्लादित और परितृप्त होते दीखते थे।

इतना ही नहीं आपकी अभय छत्र-छाया में कुत्ता, बिल्ली, बंदर, तोता आदि अबुद्ध और मूक प्राणी भी अपना सहज वैर-भाव छोड़ अलौकिक प्रेम-पाश में बंधकर एक ही पात्र में भोजन और एक ही स्थान पर शयन-विश्राम करते नजर आ रहे थे। कभी वार्ष्णेय श्री कृष्ण की सेव्या धेनु का बछड़ा अपनी पूँछ खड़ी किये शरणागत की मुद्रा में दौड़ते हुये आकर आपके दिव्य-शांति और ब्रह्मरस से पूर्ण परिवेश में अपनी चंचलता को छोड़ शांत-स्तब्ध किसी योगभ्रष्ट-सा दीखते थे ; तो कभी बिल्ली के बच्चे को कुत्ता उनकी ही माता सदृश अपने जबड़े में पकड़कर व्यवस्थित स्थान पर रखते और अपने को आपका एक तुच्छ सेवक समझने की मुद्रा में परिलक्षित होते थे।

सुतरां, हम कह सकते है कि मानव-मात्र के रामराज्य की चिर परिकल्पना आपके ब्राह्मी परिवेश में पूर्णतः साकार हो चुकी थी।

यह जीव तो मन्द बुद्धि और मोह के वशीभूत अज्ञान हृदय है। हरि ने जग में जन्म देकर इसे कुटुम्ब-जाल में ममता की रज्जु से कसकर बांध रखा है। कर्म-भर्म, रोग-भोग आदि अनेक बेड़ियों में जकड़ हुआ यह जीव अपने आत्म-स्वरूप को भूलकर आवागमन के महान दुःखों को भुगत रहा है। अज्ञान-हृदय जीवों के इस मर्माहत् पीड़ा को परमचैतन्य स्वरूप नवनीत-हृदय संत सद्गुरु सहन नहीं कर पाते। कोई भी प्राणी यदि एक बार भी पूरे और सच्चे सद्गुरु को सहृदय सर्वस्व समर्पण कर देता है, तो जीव-पीव मिलन-पर्यन्त वे (संत सद्गुरु) कृपा और करुणा की छाया करते हुए सदैव अपने शरणागत की खबर लेते रहते हैं।

आहा! कैसा सौभाग्य की घड़ी रही होगी उस परमभक्तिन यूक्यूको

फ्यूजिता की। भारत वर्ष से हजारों मील की दूरी पर सिन्धु-पार स्थित जापान के टोकियो शहर में रह रही नारियों के आदर्श स्वरूपीणि यूक्यूको फ्यूजिता को मेरे परम आराध्य प्रभु प्रत्यक्ष की नाईं स्वप्न में अजीबोगरीब तरीके से दर्शन देते हैं। भले ही भारत से जापान सुदूर स्थित है, किन्तु मेरे प्रभु गुरुदेव के रोम-रोम में कोटी-कोटी ब्रह्माण्ड वटवृक्ष में उसके फल की तरह लटक रहे हैं और उसके निवासी जीव-मात्र का वे परम चैतन्य उपद्रष्टा हैं। स्वप्न में सद्गुरु महाराज के उस दिव्यातिदिव्य स्वरूप को देखकर उनका अन्तर-प्रदेश झंकृत हो उठा, उनके जीवन-बीणा पर एक नया राग छिड़ गया। उनकी वही दशा हुई जो एक आजात पक्षा खग की दूर-दराज चारा-हेतु गई उसकी माता की प्रतीक्षा में होती है। उसकी वही दशा हुई जो गोधूलि–वेला होने पर गोशाला में बँधे क्षुधार्थ गोवत्स की और प्रवास-काल समाप्त होने पर किसी प्रेमी के लिए उसकी प्रेयसी की दशा होती है।

समग्र सौन्दर्य के उस मूल-श्रोत का अवलोकन करने के लिए उसका मृग-नयन बरसने लगा। तभी आत्मालाप की एक मधुरगुंज सुनाई पड़ा–भद्रे! संतों और भगवन्तों की धरित्री एक मात्र भारत-भूमि है, तुम सीधा वहीं जाओ, वहीं उनका पावन दर्शन होगा। बस फिर क्या था? वह दक्षिण कुमारी अन्तरीप से उत्तर हिमालय तक तथा जगन्नाथपुरी और द्वारिका–पूरब से पश्चिम तक यथा सभी प्रदेश छान डाली। इस अन्तराल में उसे अनेकानेक महापुरुषों का दर्शन हुआ; किन्तु स्वप्न-दर्शित उस आनन्दाकार स्परूप का दर्शन कहीं नहीं हुआ। येनकेन प्रकारेण भूरि-भटकन के बाद भागलपुर कुप्पाघाट स्थित **"महर्षि मेँहीँ आश्रम"** में पहुँचकर सामने ही टंगी हुई गुरुदेव की भव्य तस्वीर देखती है। प्रेमोद्रेक से रोम-रोम प्रकंपित हो गया। लकुटिवत् धरती पर गिर गई। सांगोपांग चरणों में समर्पित कर दिया। पश्चात् जब प्रत्यक्ष रूप से अपने इष्टदेव–मेरे गुरुदेव का दर्शन की होगी, तो उसके लिए वह क्षण और वह दृश्य कैसा होगा! उस लोकातीत अद्भुत भाव-भूमि का वर्णन मेरी लेखनी से दूरात्सुदूर है। हे मेरे प्रिय आत्मन् पाठक! है आपमें ताकत तो बढ़ाइये अपनी भावना की परिधि और छू लीजिये मेरे परमाराध्य के करुणा-प्रांत को।

सारांश चराचर प्राणीमात्र की अलौकिक स्नेह-सरिता की अजस्र धारा

परमाराध्य श्री गुरुदेव की कृपारूपी सिन्धु में समाहित होती रहती थी।

इसके अलावे और भी आपने प्राणीमात्र के कल्याणार्थ गाँव, प्रखंड, प्रान्त और राष्ट्र-स्तर पर सत्संग-प्रवचन का समायोजन करते-करवाते रहते थे। आपने अपने सद्गुरुदेव के सदृश ही मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टियोग और सुरत-शब्द-योग की साधना-पद्धति बताकर ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर-भक्ति के प्रचार-प्रसार के द्वारा संतमत को उन्मुख और उन्मुक्त किया। आपने इस दुर्लभ-सुखद-शुकमार्ग (बिहंगममार्ग या राजयोग) की साधना करने का अधिकार सामान्य रुप से चतुष्वर्णों को देते हुए–

"जितने मुनष्य तन धारि हैं, प्रभु भक्ति कर सकते सभी।"

की जोरदार पुकार लगाई।

आपने ईश्वर की सत्ता को बड़ी दृढ़ता से स्वीकार किया और जन समुदाय को बताया कि आप उसी ईश्वर का अभिन्न अंश है। अपने स्वरूप को भूलकर दुखरूप संसार में युगों-युगों से यम-यातना झेल रहे हैं। इसलिए सद्गुरु का चरण-शरण ग्रहणकर सगुण-निर्गुण भक्ति का भेदज्ञान जानकार अपना कल्याण कर लें। केवल सगुण-भक्ति के द्वारा किन्हीं का पूर्ण कल्याण नहीं हो सकता और न सगुण-भक्ति को छोड़कर कोई निर्गुण-भक्ति में सफ़ल हो सकता है। प्रथम किसी सगुण-साकार रूप को अपना इष्ट मानकर सन्त सद्गुरु से उनके नाम का मानस-जप और उसके स्थूल-रूप का मानस-ध्यान करना चाहिये। आपने मानस-जप और मानस-ध्यान के लिए क्रमशः गुरु-मंत्र और गुरु-रूप को संत कबीर, गुरु नानक और दादू दयाल जी महाराज की तरह उत्तम बतलाया। इसके बाद परमात्मा के अणोरणियान् अर्थात् विन्दु-रूप–सूक्ष्म विभूति का ध्यान–विन्दु-ध्यान बतलाया। इस विन्दु-ध्यान की साधना को ही दृष्टियोग की साधना कहते हैं, क्योंकि युगत दृष्टिधारों के मिलन के द्वारा ही कोई परमात्मा की सूक्ष्म तेजोमय विभूतिरूप, मनोविकार-नाशक, शांतिप्रद और विशेष आकृष्टकारी उस विन्दु का दर्शन कर सकता है। यह ज्यातिर्मय विन्दु ही सूक्ष्म जगत्–प्रकाश पूर्ण संसार का द्वार है। इसी विन्दु के द्वारा साधक अपने अन्दर में परमात्मा के विविध ज्योतियों का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करता है और वहीं संत सद्गुरु के निर्देशानुसार परमात्मा से उत्थित् नाद–सार-शब्द की अनुभूति करता हुआ

परमात्मा में मिलकर एकमेक हो जाता है। सारांश मानस-जप और मानस-ध्यान स्थूल-सगुण-रूप उपासना है। एक विन्दुता वा अणु से भी अणुरूप प्राप्त करने का अभ्यास--सूक्ष्म-सगुण-रूप उपासना है। सारशब्द के अतिरिक्त दूसरे सब अनहद नादों का ध्यान सूक्ष्म, कारण और महाकारण सगुण-अरुप उपासना है और सारशब्द का ध्यान निर्गुण-निराकार उपासना है। उपासनाओं की यंहाँ समाप्ति है। उपासनाओं को संपूर्णतः समाप्त किये बिना शब्दातीत पद (अनाम) तक अर्थात् परम प्रभु परमेश्वर तक की पहुँच प्राप्तकर परम मोक्ष का प्राप्त करना अर्थात् अपना परम कल्याण बनाना पूर्ण अंसभव है।

इस प्रकार आपने सौवर्ष-पर्यन्त अनेकों प्रकार से प्राणीमात्र का कल्याण करते रहे। इसी प्रयास के तहत आपने--सत्संग-योग (चारो भाग), रामचरित मानस सार सटीक, विनय पत्रिका सार सटीक, महर्षि मँहीँ-पदावली, संतवाणी सटीक आदि अनेक पुस्तकों की रचना की।

ये सारी पुस्तकें आपके वाङ्मय-स्वरूप को प्रस्तूत कर आये दिन भगवद्-भक्तों के कल्याण-पथ को प्रशस्त करती ही रहती हैं।

जैसे पंचभौतिक जगत में उत्तल, अवतल, समतल आदि अनेक प्रकार के लेंस होते हैं। उन लेंसों में कुछ तो ऐसे होते हैं जो सूर्य के सम्मुख होने पर उनकी सारी किरणों को उपेक्षापूर्वक परावर्तित कर देता है, कुछ लेंस किरणों को अपने में ही अन्तर्लीन कर लेती है और कुछ लेंस ऐसे होते हैं, जो सूर्य की किरणों को पूर्णरूपेण उदरस्थ कर उसे दाहक-शक्ति प्रदान कर पूरी ताकत से प्रतिबिम्बित करता है, जो सामने के तृण-कपास को जलाकर भस्म कर देता है। वैसे ही आध्यात्म गगन के प्रचण्ड मार्तण्ड परमाराध्य सद्गुरुदेव के सम्मुख लाखों मानव समुदाय आये। उसमें से कुछ तो ऐसे थे जो आपके परम कारुणिक और कल्याणप्रद अति उदार भाव तथा ज्ञान रुप किरण को नहीं समझने के कारण उपेक्षापूर्वक परित्यक्त कर दिया, कुछ ऐसे थे जो उसे ललकपूर्वक आत्मसात करते हुए निज को ही परिपुष्ट किये तथा कुछ ऐसे थे जो सिद्क और सबूरी से पूर्णरूपेण हृदयंगम कर परिव्रज्यापूर्वक उसका परिमार्जन (निदिध्यासन) किया और उसे संपूर्ण संसार के सामने प्रकाशित कर दिया, जो अनेकानेक प्राणी के पाप-पुञ्ज का परिहार का परानन्द सन्दोह का सैर कराया। आपके इन्हीं उत्तम कृपापात्र शिष्यों में से

दो शिष्य का नाम बड़े आदर और श्रद्धापूर्वक लिया जाता है, जिनमें प्रथम स्वनामधन्य, शुचिता और सत्यता के प्रतीक, अद्वितीय महान सैद्धान्तिक, बुद्धिमतां वरिष्ठम् आपके मस्तिष्क-स्वरूप, पूज्यपाद स्वामी श्री संतसेवी जी महाराज हैं और दूसरे पाप-ताप से पीड़ित समग्र मानव समुदाय को गुरु-भक्ति रूपी सुधा का पान कराने हेतु सदैव अपने विशाल हृदय का द्वार खोले हुए आपके हृदयस्वरूप, शील-शौर्य से सम्पन्न, महान कारुणिक तथा मानद पूज्यपाद श्री शाही स्वामी जी महाराज हैं। ये दोनों एक ऐसे आरसी भी है जिनमें झाँकने से भक्तों को आपके ही सौष्ठव-स्वरूप का मधुर-दर्शन होता है।

कभी आपने अपने एक प्रिय सेवक की तरफ संकेत करते हुए भविष्यवाणी करने की कृपा की थी कि मैं तो विदेश नहीं गया, किन्तु मेरा बेटा जायेगा। संतों की कथनी और करनी माया-मोहित प्राणी के लिए अगम्य और दुर्विज्ञेय होती है। आपकी उपर्युक्त भविष्यवाणी का लक्ष्य कोई भी या और कुछ हो, किन्तु उसकी पुष्टि का एक निर्विवाद उद्धरण महर्षि 'मँहीँ' आश्रम भागीरथी नगर (हरिद्वार) के परमाध्यक्ष स्वामी श्री सत्यानन्द जी महाराज हैं। ये आप और आपके अखिल भारतीय संतमत सत्संग के श्रद्धा-सलिल से अभिसिंचित फौलादी मन-बुद्धि के एक मात्र युवा संन्यासी हैं, जिन्होंने अब तक प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र सीमाबद्ध संतमत की परिधि को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने का महान स्तुत्य कार्य कर रहे हैं।

हे प्रणतपाल पाल गुरुदेव ! ये सब और कुछ नहीं, एक मात्र आपकी ही अदृश्य करुणा-करण का स्थूल प्रकटीकरण मात्र है।

प्रभु! आपने ही सुर, असुर, नाग, नर आदि समस्त प्राणी मात्र को प्रबल करम की डोरी से बाँध रखा है। आपकी ही माया के वशीभूत होकर विरंचि–शिव आदि देवगण भी आपका पार न पा सका। आपका नाम लेकर ही योग, वैराग्य, ध्यान, जप, तप आदि क्रियाओं के द्वारा यतीवृन्द संसार के जन्म-मरण रूप महान दुःख से छूट जाते हैं। लोकपाल, यम, काल, पवन, रवि, शशि, वरूण, कुबेर आदि–ये सभी आपके अज्ञानुवर्ती अनुचर मात्र हैं। आप अजन्मा होकर भी भक्तों की एक ही प्रेम-पुकार से प्रकट हो जाते हैं और अपने लीला-विस्तार के द्वारा उनके मोह-पाश का प्रभंजन कर अपना

नित्य-शाश्वत धाम प्रदान करते हैं और फिर स्वेच्छापूर्वक अपनी पावन लीला का संवरण कर लेते हैं। उसी की एक तिथि 8 जून 1986 ई0 (ज्येष्ठशुक्ल प्रतिपदा) है।

ये तिथि भक्तों को आपकी इस निम्नांकित वाणी का मधुर-गुञ्ज सुनाकर उनके हृदय-प्रदेश को प्रेमा-भक्ति से परिपूरित करती रहती है–

"बारम्बार आऊँगा और जाऊँगा तो बहुतों को संग लिये जाऊँगा ।"

गुरुचरणाश्रित

–गुरुनन्दन

22.03.2004

विषय-अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय का नाम	पृष्ठ संख्या
1	संत और उनका चरित्र	1–7
2	संतमत और इसका इतिहास	8–18
3	सत्संग और इसकी आवश्यकता	19–29
4	गुरु की महिमा और उनकी पहचान	30–45
5	ईश्वर और उनका स्वरूप	46–68
6	सगुण–निर्गुण–विवेचन	69–78
7	विश्वरूप–दर्शन तथा उसकी यर्थाथता	79–84
8	त्रिगुणमयी माया और उसकी असत्यता	85–92
9	चेतन–आत्मा की स्थिति और उसकी खोज	93–103
10	जीवों के प्रति ईश्वर का उपकार	104–109
11	मनोविकार और उससे छूटने का उपाय	110–119
12	अन्तःकरण–शुद्धि	120–124
13	ईश्वर–भक्ति और इससे लाभ	125–145
14	ईश्वर–दर्शन और उसका फल	146–171
15	ईश्वर–उपासना और इसका प्रकार	172–174
16	मानस–जप और उसकी विधि	175–179
17	मूर्तिपूजन और मानस–ध्यान	180–184
18	दृष्टियोग और उसकी दीक्षा	185–194
19	ज्योतिर्विन्दु और उसका दर्शन	195–202
20	अन्तर्ज्योति और उसकी प्रत्यक्षता	203–210
21	सुरत–शब्द–योग और उसकी विधि	211–220
22	शब्द की महिमा और अन्तर्नाद	221–231
23	विन्दु और नाद की उपासना	232–236
24	प्रकाश और शब्द की महिमा	237–242

25 राजयोग अथवा ध्यानयोग 243–257

26 नासाग्र 258–265

27 समाधि और उसके प्रकार 266–270

28 इन्द्रियों का स्वामी मन और उसका प्रारूप 271–276

29 दम (इन्द्रियों के साथ मन का साधन) 277–279

30 शम (केवल मन का साधन) 280–281

31 स्वर्ग–नरक और उसका दर्शन 282–286

32 ब्रह्मनिर्वाण अथवा परमधाम की यात्रा 287–294

33 मुक्ति अथवा जीवन–मुक्त–दशा की प्राप्ति 295–305

34 अद्वैत और सिद्धावस्था 306–310

35 शरणागति अथवा आत्मसमर्पण 311–313

36 तुरीय और तुरीयातीतावस्था तथा वहाँ की अनुभूति 314–317

37 ईश्वर–प्राप्ति या मोक्ष का मार्ग 318–326

38 आध्यात्मिक जागरण 327–331

39 अन्तर्गमन 332–335

40 सृष्टी–क्रम और उसका विस्तार 336–339

41 मानव–तन और इसकी विशेषता 340–350

42 विप्र–महिमा और वर्ण–विचार 351–360

43 कर्म और उसका फल 361–373

44 जग में जीने की कला 374–379

45 स्वावलम्बन और साधक का कर्त्तव्य 380–390

46 गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता और उसका कर्त्तव्य 391–394

47 आहार–भेद और उसकी तासीर 395–401

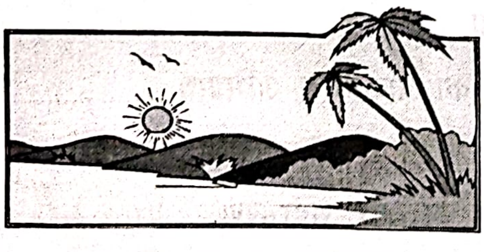
48 अन्नब्रह्म 402–403

49 अहिंसा का वास्तविक अभिप्राय 404–407

50 धर्म की परिभाषा और उसकी गुह्यता 408–412

51 सुसंस्कारिता और सदाचरण 413–424

52	स्त्री और पातिव्रत्य-धर्म	425–431
53	पुनर्जन्म और आवागमन तथा उससे छूटने का उपाय	432–438
54	विषय-विवेचन और उसका त्याग	439–443
55	सुखदुःख-समीक्षा और वास्तविक सुख की प्राप्ति	444–452
56	संध्या-वंदन	453–455
57	मेल से लाभ और अनमेल से हानि	456–463
58	प्रेम और प्रेम-प्राप्ति का साधन	464–466
59	विश्वास	467–468
60	अभ्यास और उसकी जाँच	469–474
61	धैर्य	475–477
62	अनासक्ति और आत्म-संलग्नता	478–483
63	ब्रह्मचर्य-व्रत और इससे लाभ	484–485
64	संतोष और इससे संतुष्टि की प्राप्ति	486–491
65	समत्व की प्राप्ति और उसका साधन	492–494
66	यथार्थ ज्ञान-प्राप्ति की विधि और उसका प्रकार	495–502
67	अनुभवज्ञान और उसमें ईश्वर का साक्षात्कार	503–505
68	प्रचारक वा सुधारक और उसका कर्त्तव्य	506–510
69	भारत भूमि की महिमा और स्वदेश प्रेम	511–523
70	हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान	524–527
71	गौमाता की महिमा और इनसे लाभ	528–530
72	विज्ञान और वैज्ञानिक	531–533
73	नश्वरता	534–537
74	मृत्यु और उसका रहस्य	538–546





पूज्यपाद महर्षि मैँ हीँ परमहंस जी महाराज

श्री सद्गुरवे नमः

श्रीमद्भागवत

"मधुरयागिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती -
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्वनः।।"

हे कमलनयन! आपकी वाणी कितनी मधुर है! उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं। उस पर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। आपकी उसी वाणी का रसास्वादन करके आपका आज्ञाकारी दास मोहित हो रहे हैं। दानवीर! अब आप अपना दिव्य अमृत से भी मधुर अधार-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो, छका दो।



संत और उनका चरित्र



❀ जो शांति प्राप्त किये हुए होते हैं, वे संत होते हैं। संत दूसरे का उपकार ही करते हैं। उनसे किसी का अपकार नहीं होता। मैं अपने को संत नहीं मानता। क्योंकि मुझसे, मेरे नहीं चाहते हुए भी अपकार हो जाता है। इसलिए कि मैं पूरा संत नहीं हूँ। पूरे संत से एक चींटी को भी दुख नहीं होता।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।"

महोपनिषद्, 4/82

हृदय की ग्रन्थि टूटने पर जड़-चेतन का अलग-अलग ज्ञान हो जायेगा, उसके सारे कर्म क्षय हो जायेंगे। कर्म बन्धन उसको नहीं है, उसके सब ग्रन्थियाँ छूट गई हैं, कैवल्य दशा प्राप्त है। अकेले हो जाने पर वह अपने को पहचानता है। ऐसे पुरुष संत कहलाते हैं। उनको कुछ जानना बाकी नहीं रहता है। उनको किसी से कुछ पूछकर जानना नहीं रह जाता। लोग सिद्धान्त कहेंगे और वे प्रत्यक्ष देखेंगे। रामकृष्ण परमहंस जी ने कहा था–तुम लोगों का हृदय आईने की आलमारी है; इस तरह देखने वाले कुत्ते, गधे–सबके अन्दर उस ब्रह्म को देखते हैं।

❀ संत को कितना बोध है, इसका ठिकाना नहीं। वे इच्छा-रहित, स्वल्प-भोगी, सत्य के सार-रूप, सत्य से कभी टलने वाले नहीं, कवि, पण्डित और योगी होते हैं। बिना योगी हुए कोई पूर्ण हो नहीं सकता–यह है संत की परिभाषा।

भक्त को एवं भगवन्त को क्या बूझते हैं ? **"राम ते अधिक राम कर दासा।"** ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं होते, लेकिन ईश्वर से भी बढ़कर संत होते हैं।

"सातवँ सम मोहिमय जग देखा।
मोतें अधिक संत करि लेखा।।"

संत को कौन पहचानता है ? अच्छे चाल-चलन वाले को हमलोग संत कहते हैं। वे अकपट होते हैं, सीधे चाल-चलन के होते हैं। जिसको सत्य से प्रेम है, सत्य परमात्मा है, परमात्मा अडोल है, सर्वज्ञान-सम्पन्न है। उसको जो पाये हैं, संत हैं। उसका भेद जो खोलते हैं, उसके पाने का सीधा-सरल रास्ता जो बताते हैं, वे संत हैं। संत ही सर्वाधार का ज्ञान बताते हैं और इसीलिए वे संत कहलाते हैं।

राम समुद्र रूप हैं, धैर्यवान्-सज्जन मेघ-रूप, (फिर) राम चन्दन-वृक्ष-रूप हैं और संत पवन-रूप हैं। संतलोग धैर्यवान होते हैं। मेघ जमीन को दूर-दूर तक फसल की उपज से सरसब्ज करता है और समुद्र जहाँ का तहाँ रहता है। संतलोग हवा हैं, ईश्वर चन्दन-वृक्ष हैं, सुगन्ध हवा के द्वारा दूर-दूर तक फैलती है। मतलब यह कि संत ईश्वर के ज्ञान का वर्णन करते हैं।

मैं नहीं कहता हूँ कि मैं संत हूँ और न मैं पहचानता हूँ कि यहाँ जो एकत्र हैं, कौन संत हैं। इसलिए संतों के संग से सत्संग में संशय रह जाता है। सन्त का गृहत्यागी और वैरागी-वेश में रहना ऐसा समझना भूल है। संत गृहस्थ-वेश में और वैरागी-वेश में भी रहते हैं। मैंने पढ़ा था–

"मत कोई करे गुमान, संत एक से एक हैं।
जानत हैं भगवान्, कोई गुप्त कोई प्रगट हैं।।"

सिद्ध महात्मा दो तरह के होते हैं। एक सदाचार में संलग्न रहते हैं, अपनी पहुँच वे आप जानते हैं, ईश्वर की ओर रहते हैं, वे सिद्ध पुरुष हैं। रामकृष्ण परमहंस देव जी ने कहा है कि सिद्ध पुरुष आलू और बैगन की तरह मुलायम होते हैं। दूसरे वे होते हैं, जो चमत्कार दिखाते फिरते हैं। वे ईश्वर की तरफ नहीं हैं। संतों के दरवार में उनका आदर नहीं होता।

"सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।"

–गो0 तुलसीदास जी

सारे ब्रह्मांड को अपने अन्दर ढुका ले, ऐसी भक्ति हो। भक्ति में सारा ब्रह्मांड अपने अन्दर मालूम होता है और ऐसा करने वाला योगी (संत) होते हैं। अर्थात् भक्ति को योग से सरोकार है। वह योगी (संत) संसार से ऐसा बेखबर हो जाता है कि जैसे नींद में कोई सोया हो। लेकिन हमलोगों के

जैसे साधारण नींद में वह नहीं है। वह नींद छोड़कर सो जाता है। गहरी नींद, स्वप्न और जाग्रत; तीनों को छोड़कर संसार से ऊपर उठा रहता है। वही सारे ब्रह्मांड को अपने अन्दर देखता है। यह बात भक्ति में होती है। बिना इस भक्ति के कोई आगे नहीं बढ़ सकते।

मैं नहीं जानता हूँ कि लोग मुझको महर्षि क्यों कहते हैं ? मैं अपने में ऐसी योग्यता नहीं देखता। महर्षि मैंहीँ हम कभी नहीं। महर्षि नाम से हम बहुत डरते हैं। अगर मुझे कोई महर्षि कह देते हैं, तो मैं अपने को बहुत लज्जा मानता हूँ।

"संत संत सब एक हैं, जस पोस्ते की खेत।
कोई कुदरती लाल हैं, कोई सेत का सेत।।"

केवल वस्त्र से संत कहलाने वाले बहुत हैं। **"कुदरती लाल"** कोई-कोई खास होते हैं, जो लाल बनकर ही आये हैं। बनते-बनते बनते हैं, यह और बात है; लेकिन बने हुए भी आते हैं। देश में बहुत ऐसे संत हैं।

संतजन संसार में रहते हैं मितभोगी होकर। संसार में रहकर स्वाभाविक ही संसार का कुछ-न-कुछ लेना ही होगा। इसलिए वे मितभोगी होते हैं। सत्य के वे सार होते हैं, सत्य के बिना धर्म नहीं होता, ज्ञान नहीं होता। वचन रचना में वे दक्ष होते हैं, चाहे गद्य हो वा पद्य। वे पण्डित और योगी भी होते हैं। योगी हों, पंडित हों, अमित बोध रखते हों, आदि ये सब गुण जिनमें हों, उनका जीवन जीवन्मुक्त पुरुष का है–दिव्य जीवन का है।

सुदामा गरीब ब्राह्मण थे। भगवान् कृष्ण के मित्र थे। किन्तु पहले सुदामा ने कृष्ण से चोरी की थी। वे गुरुपत्नी का दिया हुआ चना खाते थे और जब कृष्ण ने पूछा, तो कहा–'पानी में भींगने के कारण ठंढ से दाँत कटर-कटर करता है।' हमारे गुरु महाराज कहते थे–

"गुरु से कपट मित्र से चोरी। कि होय निर्धन कि होय कोढ़ी।।"

खैर! इन बातों से मुझे कुछ विशेष भाव दिखलाना नहीं है। हाँ! यह कह सकता हूँ–सुदामा और कृष्ण के ऐसे मित्र हों तथा राम और गुह निषाद, इन दोनों के ऐसे मित्र हों। सुदामा तो ब्राह्मण थे और गुह तो निषाद था बेचारा, उनसे भगवान् राम की मित्रता थी। हमलोग जब संत-स्तुति का पाठ करते हैं, तो सुदामा और निषाद का नाम तो नहीं लेते हैं; लेकिन श्वपच और

रविदास का नाम लेते हैं।

श्वपच कहते हैं डोम को, वे काशी के रहने वाले थे। उनका नाम था–सुदर्शन। महाराजा युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ हुआ। उस यज्ञ में भगवान् कृष्ण ने एक घंटा टँगवा दिया और कहा कि जब आपका यज्ञ पूर्ण होगा तो यह अपने ही तीन बार बजेगा। यज्ञ पूर्ण हो गया; किन्तु घंटा बजा नहीं। घंटा क्यों नही बजा ? भगवान् कृष्ण ने कहा–"यहाँ किसी भक्त का भोजन नहीं हुआ।" कितने बड़े-बड़े पंडित, मुनिगण भोजन कर गये। लेकिन भक्ति और ही बात है। भगवान् कृष्ण से पूछा गया कि "भक्त कहाँ मिलेंगे ?" उन्होंने कहा–"वे काशी में मिलेंगे। उनका नाम सुदर्शन है। उनको ले आइये।" उनके यहाँ भीम जाने से इन्कार करते थे, लेकिन युधिष्ठिर के कहने पर गये। श्वपच जी से कहा कि "आप राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में चलिये और वहाँ भोजन कीजिये।" श्वपच जी ने कहा–"राजा के यहाँ बहुत प्रकार के अन्न जमा होते हैं, हम वहाँ नहीं जायेंगे।" यह सुनते ही भीम को तो ऐसा क्रोध आया कि हाथ पकड़कर पटक दें। वह लौट गया और भगवान् कृष्ण को कहने लगा कि "आप मुझे जहाँ-तहाँ भेजते हैं।" भगवान् ने कहा कि "उनको वीर रस में वचन मत कहो। वीर रस से भक्ति का काम हो सकता है ?" भगवान् ने युधिष्ठिर जी से कहा कि "आप अपने किसी भाई को मत भेजिये। आप स्वयं जाइये। दो रथ लेते जाइये। एक रथ खाली जाये और दूसरे रथ पर आप जाइये।" युधिष्ठिर जी भगवान् के कहने के अनुसार श्वपच के यहाँ गये। ये तो बड़े नम्र और शीलवान थे। इन्होंने श्वपच जी से कहा–"मैं राजा युधिष्ठिर हूँ। आप मेरे यहाँ चलकर भोजन कीजिये।" श्वपच जी ने कहा–"देखिये राजन्! आपके यहाँ बहुत प्रकार के अन्न आते हैं।" युधिष्ठिर जी ने कहा–"अगर मेरे बहुत प्रकार के अन्न अपवित्र हैं तो उनको पवित्र कौन करेंगे ? आप ही की तरह महात्मा पवित्र कर सकते हैं। इसलिए आप कृपाकर मेरे यहाँ चलिये। आपके लिए रथ मौजूद है।" युधिष्ठिर जी के नम्र वचन पर श्वपच जी राजी हो गये और उनके यहाँ चले गये। महारानी द्रौपदी ने बहुत प्रकार के भोजन बनवाये थे कि आज भक्त का भोजन होगा। श्वपचजी भोजन करने के लिए जब बैठे, तो द्रौपदी ने बहुत प्रकार के व्यंजन परोस कर उनके भोजन के लिए थाल

सामने रखा। एक कौर खाया, तो एक बार घंटा बज गया। दूसरा कौर खा ही रहे थे, भोजन करना छोड़ दिया। महाराज युधिष्ठिर ने कहा–"और भोजन कीजिये।" श्वपच ने कहा–"पहले भक्त का भोजन था, अब डोम का भोजन होगा।" युधिष्ठिर जी ने पूछा–"क्यों महाराज! ऐसा क्यों कहते हैं ?" श्वपच जी ने कहा–"पूछो रानी से।" द्रौपदी के मन में यह हुआ कि इन्होंने सब व्यंजन मिला-जुला लिये, इनको स्वाद क्या लगेगा, ये तो डोम हैं। द्रौपदी से जब पूछा तो कहा–"ठीक मैंने अपने मन मे ऐसी कल्पना की है।" तो एकबार घंटा बज गया। उनको फिर रथ से काशी पहुँचवा दिया।

हरिश्चन्द्र जो डोम बने थे, वे सतयुग में थे और श्वपच जी जो डोम थे द्वापर युग में, जिनके भोजन करने से युधिष्ठिर के यज्ञ में एक मर्तबा घंटा बजा। इसीलिए डोमो को गौरव है। उनलोगों को जब निमंत्रण देकर भोजन कराना चाहेंगे तो शीघ्र तैयार नहीं होंगे। जो भक्त हो गये हैं उन सबकी वन्दना करते हैं, चाहे वे किसी जाति-पाँति के हों। भक्त सबके वन्दनीय हैं।

❀ रविदास थे चमार, लेकिन थे कबीर साहब के गुरु भाई। कबीर कौन थे ? कबीर थे मुसलमान जुलाहा। ये दोनों रामानन्द स्वामी के शिष्य थे। लेकिन इतिहासकार ने कबीर का नाम लिया है। इतिहासकार ने लिखा है–"रामानन्द स्वामी के शिष्यों में प्रसिद्ध कबीर थे, जो जाति के जुलाहे थे।" ये थे या नहीं थे, तो मगहर में जाकर देख लो। मगहर गोरखपुर के पास एक स्टेशन है। वहाँ उनका मकबरा है। उसे देखकर विश्वास होता है कि कबीर साहब थे अवश्य। मैं सुना हुआ नहीं कहता हूँ, देखा हुआ कहता हूँ। सुना कि मगहर में कबीर साहब ने शरीर छोड़ा था तो मैंने वहाँ जाकर देखा। मगहर स्टेशन पर दो समाधियों के नक्शे बने हुए हैं। कबीर साहब प्रकट हुए थे काशी में। वहाँ कबीर-चौरा नामक एक महल्ला हो गया। वहाँ पर कबीर पंथी महंत रहते हैं, और लोग भी रहते हैं।

❀ कपिलवस्तु में सुद्दोधन राजा हुए। उनके पुत्र भगवान् बुद्ध हुए। उन्होंने झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से बचने का अच्छा पाठ पढ़ाया। इनके बहुत से स्थान हैं। लोग दर्शन करने के लिए जाते हैं। जापानी लोग मंदिर बनाये हैं सारनाथ में। उसमें चित्र बनाया हुआ है कि किस तरह वे गर्भ में आये, किस तरह जन्म हुआ, कैसे बालपन बीता, किस

तरह उन्हें वैराग्य हुआ, उन्होंने तपस्या कैसे की आदि-आदि। भगवान् बुद्ध कबीर-नानक के पहले हुए। जब मोहम्मद साहब नहीं हुए थे, तब वे मौजूद थे। सबको चाहिये कि बड़े आदमी के जीवन को याद करे। उनके जीवन का अनुकरण करे।

❀ संतगण बड़े पवित्र होते हैं। उनका ज्ञान अगम होता है। संत की स्तुति में, उनकी प्रशंसा में लोग इतना अधिक कहते हैं कि, जिससे ज्ञात होता है कि उनसे बढ़कर कोई नहीं है। 'उनसे बढ़कर कोई नहीं' का अर्थ उनसे अधिक पवित्र ज्ञानवान, विचारवान, शीलवान और कोई नहीं होता। संतों के लिए बहुत तारीफ है। उपनिषदों को पढ़ने से पता चलता है कि संत उस परम पदार्थ को प्राप्त किये होते हैं जो परे-से-परे का पदार्थ (ईश्वर) है।

❀ परा प्रकृति को अक्षर पुरुष तथा अपरा प्रकृति को क्षर पुरुष तथा इन दोनों से परे को पुरुषोत्तम कहते हैं। भगवान् कहते हैं कि पुरुषोत्तम सबसे परे हैं।

उपनिषद् में आया है कि–

"भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।"

महोपनिषद् 4/82

संत किनको कहते हैं, इसपर मैंने कहा। उस परे-से-परे अर्थात जड़ से ऊपर चेतन, उससे भी परे परमात्मा। जिसको इनका दर्शन हो, उसके हृदय की ग्रन्थि छूट जाती है। जैसे दूध और घीउ का मिलाप रहता है, मथने से दोनों अलग-अलग हो जाते हैं, उसी तरह जड़ और चेतन अलग-अलग होकर पहचान में आ जाता है। जिसके सारे संशय नाश हो गये, कर्म बंधन नाश हो गये, ऐसे जो होते हैं, वे ही संत होते हैं। जिसको परमात्मा का दर्शन हुआ उसके कर्मबंधन छूट गये, उसने परममोक्ष प्राप्त कर लिया। जड़-चेतन की गांठ खुल गई, संशय दूर हो गया, यह दशा जिनकी होती है उनको संत कहते हैं।

❀ शांति को प्राप्त कर जो स्थिर-बुद्धि हो गये, उनको संत कहते हैं। स्थिर-बुद्धि केवल बोलने के लिए नहीं है, बल्कि जो सुन ले, उसको स्मरण में सदा ही रखे रहे और साधना करके ईश्वर को प्राप्त कर ले, ऐसे महापुरुष

संतजन होते हैं। यानी वे पूर्ण रूपेण मेधावी होते हैं। मेधा उस बुद्धि को कहते हैं कि जो ग्रहण किया, उसे अपने हृदय में रख लिया। जो मेधावी हैं–स्थिर बुद्धि के हैं, उनको संत कहते हैं।

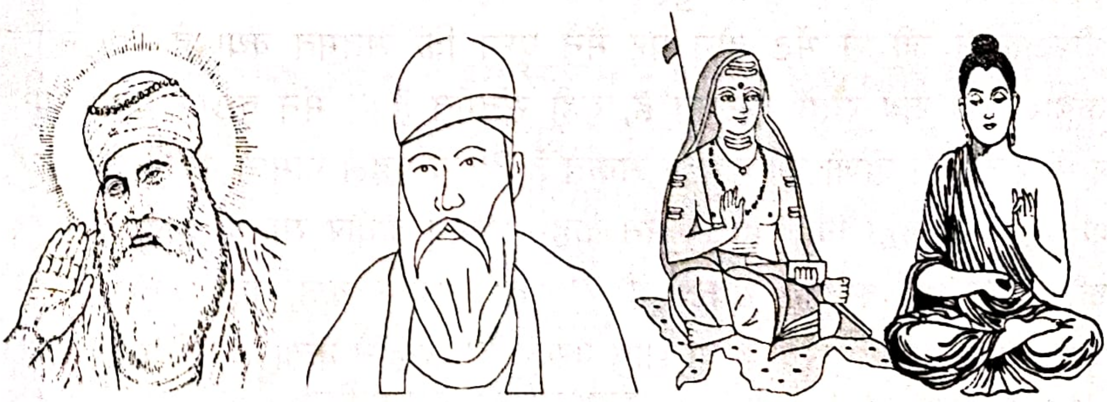
''सरदातप निसि ससि अपहरई।
सन्त दरस जिमि पातक टरई।।''

–रामचरितमानस

शरद्-ऋतु के ताप को रात में चन्द्रमा इस तरह हर लेता है, जैसे सन्त के दर्शन से पाप दूर हो जाता है।

सन्त के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि उनके शरीर का पवित्र सार (गर्मी–Vitality) उनके दर्शन करने वालों की देह में स्वभावतः आप-से-आप समाकर शुभ और निर्मल प्रभाव पहुँचाता है। उसी तरह उनके (सन्तों के) पवित्र उपदेशों के असर भी उनके समीप में जाकर सुननेवालों को निष्पाप कर देते हैं।

सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी।
उनकी स्तुति केहि विधि कीजै, मोरी मति अति नीच अनाड़ी ।।सब0।।1।।
दुख-भंजन भव-फंदन-गंजन, ज्ञान-ध्यान-निधि जग उपकारी।
विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि, सरल-सरल जग में परचारी ।।सब0।।2।।
धनि ऋषि सन्तन्ह धन्य बुद्ध जी, शंकर रामानन्द धन्य अघारी।
धन्य हैं साहब सन्त कबीर जी, धनि नानक गुरु महिमा भारी ।।सब0।।3।।
गोस्वामी श्री तुलसि दास जी, तुलसी साहब अति उपकारी।
दादू सुन्दर सूर श्वपच रवि, जगजीवन पलटू भयहारी।।सब0।।4।।
सतगुरु देवि अरु जे भये, है, होंगे सब चरणन शिरधारी।
भजत है 'मेँही' धन्यधन्य कहि, गही सन्त पद आशा सारी ।।सब0।।5।।



श्री सद्गुरवे नमः



संतमत और इसका इतिहास

मैं पहले शाक्त-धर्म के गुरु का शिष्य था। परंतु मैं अध्यात्म-ज्ञान कुछ नहीं रखता था। अपने कुल के मुताबिक उनसे उपदेश लिया था। जब कुछ समझ-बूझ हुई तो मैंने एक संत जो दरिया साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं, जो कि बिहार के आरे जिले के रहने वाले थे, उन्हीं के एक अच्छे साधु से भजन-भेद लिया था। फिर भी समझ-बूझ बहुत कम थी। फिर बाबा देवी साहब के सत्संग संतमत का प्रचार हुआ। मैं नहीं जानता था कि संतमत क्या है उसका विरोध भी करता था, अपने गुरु के पास रहकर।

मैं संतमत का अनुयायी इसीलिए हुआ कि मैं संतमत के अनुकूल पहले से ही था। बाबा देवी साहब मेरे कुल गुरु नहीं थे। वे सभी संतों के विचारों को मानने वाले साधु थे। वे संतों के विचारों को संतमत कहते थे। लोग अलग-अलग मत बनाकर एक-एक कोठरी बना लिये हैं। जैसे—कबीर मत, नानक मत, दादू मत आदि। पुरैनियाँ जिले में बाबा देवी साहब के प्रचार का आरम्भ ग्राम जोतराम राय से हुआ था। उस समय उस जिले के प्रधान प्रचारक धीरज लाल जी थे। स्कूल में पढ़ाने के कारण वे गुरु जी भी कहलाते थे। भजन करते थे। वे बड़े बुद्धिमान थे। मैंने सुना था कि ये लोग गुरु नहीं मानते हैं। यह सुनकर मुझको बड़ा बुरा लगा। जो गुरु नहीं माने, वह ठीक नहीं। चाहे वह कोई मत का हो। किसी-न-किसी तरह गुरु मानना होगा। मेरे मन में घृणा हुई। जाँच-पड़ताल भी ठीक नहीं थी। श्री धीरजलाल जी से भेंट होने पर मैंने पूछा कि संतमत क्या है ? उन्होंने कहा—"जो सब संतों का मत है, वही संतमत है।" मैंने पूछा—"क्या आप सभी संतों की वाणी को समझा सकते हैं ?" वे पहले जमाने के मिड्ल पास थे। उन्होंने कहा कि "हाँ"। मैंने कहा—"आप कबीर साहब, दरिया साहब की वाणी को समझा सकते हैं ?" तो उन्होंने कहा कि "हाँ"। मैंने पूछा—"वह भक्ति परक है वा ज्ञान परक ?" उन्होंने कहा—"भक्ति परक है, ज्ञान परक है और योग परक भी है।" मैंने कहा—"क्या यह सब संतों के

विचार के अनुकूल है ?'' उन्होंने कहा–''हाँ''।

सब संतों का जो विचार है, वही संतमत है। यह सुनकर मुझे बहुत पसन्द आया। मैंने उनसे कहा–''कोई पुस्तक दीजिये, मैं समझना चाहता हूँ। बाबा साहब द्वारा अर्थ की हुई एक पुस्तक **''बाल का आदि और उत्तर का अन्त''** उन्होंने मुझको दिया। पढ़ने पर अर्थ समझ में नहीं आया। मैंने उनसे कहा–''मुझे संतों की वाणी को समझने के लिए आप समय दीजिये।'' उन्होंने कहा–''आप मेरे पास जब आइये।'' मैंने कहा–''आपके पास आने के लिए दिन में फुर्सत नहीं। 2 बजे रात तक मुझे फुर्सत नहीं।'' वे बोले–''आप जब चाहिये तब आइये।''

एक गृहस्थ आदमी 12 बजे रात के बाद भी जगने का दावा करे, मामूली बात नहीं। तीन महीने तक न तो वे पूरा-पूरा सो सके और न मैं। पहले जो मेरे गुरु थे, वे देखते थे कि रात को कहीं जाता है और फिर चला आता है। पर वे कुछ बोलते नहीं थे। जानते-जानते वे जान गये कि मैं सत्संग के लिए जाता हूँ। मैंने कोशिश करके संतमत को जाना, समझा।

❀ मैं समझते-समझते समझ गया कि इससे उत्तम और कुछ नहीं। ऋषि-मुनि के वाक्यों के अनुकूल, संतों के अनुकूल यह बात है। वेद में इस ज्ञान का पता लगा, उसके लिए मैंने ''वेद-दर्शन-योग'' पुस्तक लिखी। उपनिषद् में पता लगा, उसकी ''सत्संग-योग'' के नाम से लिखित पुस्तक है। मौका पाया श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ी, उसमें भी मुझे वही ठीक-ठीक विचार मिला। यह विचार मुझे बड़ा अच्छा लगा। जिसको मैंने श्री ''गीता-योग-प्रकाश'' नामक पुस्तक में व्यक्त किया है। मैं इस विचार में इतना दृढ़ हूँ कि कोई मुझे डोला नहीं सकता। जो मेरी रची पुस्तक को पढ़ेंगे वे भी दृढ़ होंगे, ऐसा मेरा विचार है।

❀ सन् 1909 ई० में मैं इस सत्संग में शामिल हुआ। तब मालूम हुआ कि सब संतों का एक ही ज्ञान है। पहले मैं दरियापंथ में था। मेरे गुरु बाबा देवी साहब ने कहा, ''पहले तुम दरियापंथी थे अब समुद्रपंथी हो गये।'' हमलोग किसी एक संत के पक्ष के नहीं हैं, सभी संतों के पक्ष के हैं। सन् 1904 ई० में मैंने स्कूल छोड़ दिया। बचपन से ही मेरी रुचि इस ओर हो गई थी। कतिपय साधुओं का संग करने से मालूम हुआ कि ''संतों का ज्ञान

इतना ऊँचा है कि वह वेद-ज्ञान से भी ऊँचा है।" और जो वेदपक्षीय थे, चाहे वे वेद थोड़े ही पढ़े थे अथवा वेद से भेंट भी नहीं थी, केवल उसमें श्रद्धा रखनेवाले थे, वे कहते थे कि "संतों का ज्ञान वेद-वाह्य है और श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है।" मैं संतों के ज्ञान को अपना चुका था, उससे हटनेवाला नहीं था। विचार हुआ कि दोनों पक्षों में यथार्थ कहना किस पक्ष का है, इसकी खोज करनी चाहिये। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी के 'गीता-रहस्य' में पढ़ा कि 'सारे मोक्षधर्म के मूलभूत अध्यात्म-ज्ञान की परम्परा हमारे यहाँ उपनिषदों से लगाकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, कबीर दास, सूरदास, तुलसी दास इत्यादि आधुनिक साधु-पुरुषों तक अव्याहत चली आ रही है।"

स्वामी आत्माराम जी एक संन्यासी हैं, पहले उनका नाम पंडित वैदेहीशरण दूबे था। उन्होंने 'वैदिक विहंगमयोग' लिखा, उसको मैंने पढ़ा। फिर पंडित जयदेव शर्मा विद्यालंकार महोदय द्वारा चारो वेद संहिताओं का भारती भाषा में अनुवाद पढ़ा। संतों का ज्ञान वेदवाह्य या वेद से ऊँचा, ये दोनों बातें झूठी हैं। बिना खोज-ढूंढ़ के लोग इस तरह की बातें कहते हैं। बिना तलाश के ही किसी निश्चय पर आना गलत है। जिसको विश्वास नहीं हो वह अपने से वेद और संतवाणी पढ़े और मेरे 'वेद-दर्शन-योग' को भी पढ़े। उसमें संतों की वाणी से वेदार्थ का मेल मिलाकर दिखलाया गया है।

❁ यह संतमत परम आस्तिकमत है। इसमें सगुण रूप का ध्यान भी है और निर्गुण स्वरूप की भक्ति भी है। अभ्यासी गुरु के बिना लोग गड़बड़ में पड़े रहते हैं। अभ्यासी गुरु हो, अपने अभ्यास करे तब सन्तमत ठीक-ठीक समझ में आता है। इसमें परहेज है पंच पापों (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार) से बचो। इन पंच पापों से अपने को बचाने के लिए कोशिश करो। ईश्वर से प्रार्थना करो और अभ्यास करो। सन्तलोग यही कहते हैं कि तुम्हारा कल्याण हो। साथ ही जो सन्त बताते हैं वह करो। यही संतमत है।

❁ यहाँ किसी सम्प्रदाय वाले को ध्यानयोग करने में बाधा नहीं। इस ज्ञान के मानने से कोई अपने सम्प्रदाय से हट जायेंगे, ऐसी बात नहीं। संतमत कोई एक अलग सम्प्रदाय नहीं। सब संतों की जो राय है वही सन्तमत है। यह सभी संत महापुरुषों का विचार है। इसी विचार को संतमत

कहते हैं। सत्संगी महाशयगण संतमत के सिद्धान्त और उसकी परिभाषा को नित्य पढ़ें। नित्यपाठ से वे समझेंगे कि यह एक पक्षीय मत नहीं है। सभी सन्तों की वाणी और विचार संतमत है।

❀ हमलोग ऐसा नहीं कि एक नया धर्म बनावें और प्रचार करें। हमारे गुरु महाराज कहते थे कि जो सन्तों ने बताया है, वही हमारा मत है। घट-रामायण के प्रणेता तुलसी साहब माने जाते हैं। उसमें तुलसी साहब ने कहा नहीं है कि यह मेरा मत है। बल्कि उन्होंनं कहा कि–

"सतगुरु और पंथ ना जाना। संत पंथ याही मन माना।।
जो कोई संत अगम गति गाई। चरण टेक पुनि महूँ सुनाई।।"

जितने संत हुए हैं, सबका एक मत है।

❀ संतमत किसी एक संत का पंथ नहीं है। सब संतों की जो राय है, वही संतमत है। आज पंचायती राज्य है और सब कोई राय मिलाकर काम करते हैं। उसी तरह सब सन्तों के ज्ञान, कार्य और राय, एक मिले हुए जाने जायें, उसी को संतमत कहते हैं।

❀ मै संतों के विचार में रंगा हुआ हूँ। संतों का विचार मेरा प्राणाधार है। संतों के विचार के आधार पर मेरा सत्संग चलता है। गुरु महाराज की कृपा और आज्ञा पर मैं हूँ। किसी सम्प्रदाय के पक्ष में वा विपक्ष में नहीं हूँ। कोई संत-महात्मा, अवतारी-पुरुष, नबी, पैगम्बर आदि के नाम पर जो सम्प्रदाय है, उसके अंदर जो साम्प्रदायिकता का ज्ञान लिये हुए अर्थात् साम्प्रदायिकता के कारण जो अपने को विशेष और दूसरे को हीन मानते हैं, उस ज्ञान से मैं अपने को तृप्त और प्रभावित नहीं मानता। मैं उस ज्ञान से अलग-थलग रहता हूँ। गुरु महाराज के उपदेश से, संतों के ज्ञान से मैंने सीखा है कि इहलोक में भी सुखी रहोगे और परलोक भी बनेगा।

❀ जो केवल मानस जप, मानस ध्यान और दृष्टिसाधन जानता है, किन्तु नादानुसन्धान नहीं जानता है तो वह अपने संतमत को सही-सही नहीं जानता है। संतमत में शब्द का भी ध्यान है। शब्द-ध्यान के सहित मानस जप, मानस ध्यान और दृष्टिसाधन भी है, वह पूरा संतमत है।

❀ हमलोग संतमत के आदमी हैं। संतमत के कोई एक आदमी को कह दो कि तुम ऐसे बुरे हो, अथवा हमारे संतमत को बुरा कह दो तो सभी

नाराज हो जायेंगे। हमारे स्वीडेन तक लोग हैं सभी दुःखी हो जायेंगे। संतमत बुरा है, ऐसा मत कहो। संतमत को लतियाते हैं, ऐसा मत कहो। संतमत बुरा होता तो इतने लोग यहाँ बैठे हैं, क्यों आते ? संतमत को बुरा मत कहो।

हमारे एक सत्संगी हैं। एक तो जमालपुर में हैं, दूसरे गोगरी जमालपुर में हैं। उसमें एक क्षत्रीय हैं–भागवत बाबू। वे कहते हैं–संतमत नगद सौदा है। भजन करो, भजन में जो मिलता है, वह नगद है।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव, इन चारो ज्ञान में जो पूर्ण हो गये हैं, उनको संत कहते हैं। जैसे अच्छा सवार अपने घोड़े को काबू में रखता है, उसी तरह हमलोगों की इन्द्रियाँ जो विषयों में दौड़ती रहती हैं, इनको जो काबू में करके रखते हैं, वे संत होते हैं। ऐसे जो संत हैं, उनके मत को संतमत कहते हैं। इसमें झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार का त्याग और ग्रहण के लिए–एक ईश्वर में पूर्णरूपेण विश्वास, उनकी प्राप्ति अपने अन्दर होगी, इसका दृढ़ निश्चय। केवल निश्चय नहीं, वे अपने अन्दर किस तरह मिलते हैं, वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ यह प्रश्न नहीं रहता कि ईश्वर कैसे हैं अर्थात् जिनको ईश्वर सदा प्रत्यक्ष रहते हैं, उनको संत कहते हैं। ऐसे संत के मत को संतमत कहते हैं।

जितने मत-मतांतर संसार में हैं, सब की जड़ में कोई-न-कोई एक महापुरुष हैं। जैसे रामानन्दी साधु की जड़ में रामानन्द स्वामी जी और रामानुजीय पंथ में रामानुज, कबीर पंथ में कबीर साहब आदि। परंतु जिन-जिन संतों के नाम पर आज जो मत प्रचलित है वे सब संत जिस समय थे, उस समय क्या उनलोगों ने कहा कि इस पंथ का नाम कबीर पंथ या अमुक पंथ रखो ? भक्ति-भाव में भक्तों ने अपने आचार्य का नाम रख दिया है। यह गलत तो नहीं है, लेकिन ऐसा हो गया है कि लोग आपस में शास्त्रार्थ करते हैं और लड़ भी जाते हैं। यहाँ गुरु नानकदेव जी का भी मत है। गुरुग्रंथ साहब में दसों गुरुओं का नाम तो है, लेकिन हमारे नाम पर हमारा मत कहो, ऐसा उसमें कहीं लिखा हुआ है, ऐसा मुझे मालूम नहीं। हालाकि गुरुमुखी अक्षर जिसको पंचम् गुरु ने अपने ज्ञान से बनाया, वह नहीं जानता हूँ, लेकिन नागरी लिपि में गुरुग्रंथ साहब मेरे पास मौजूद हैं।

जैसे दूध में सार घृत है, मेहँदी में सार लाली है, ईख में सार उसका रस है, उसी तरह से इस संतमत ने सब संतों की वाणियों को मिलाकर सबका सार निकालकर दिखा दिया है। इसी सार में ईश्वर की भक्ति, गुरु की सेवा, सत्संग, अंदर में दृष्टियोग और सुरत-शब्द-योग (नादानुसंधान)। इसका अभ्यास अगर ज्यादा हो तो संत बना देता है।

सन्तमत नाम से ही प्रकट होता है कि यह शान्तिदायक है। शान्तिस्वरुप परमात्मा स्वयं हैं। जो उनसे मिलते हैं, वे भी शान्तिमय हो जाते हैं। ऐसे सन्तों के मत को सन्तमत कहते हैं। सन्तमत का सिद्धान्त बहुत छोटा है–**गुरु, ध्यान और सत्संग।**

सन्तमत किसी एक के खास नाम पर नहीं है। सब सन्तों के विचार का है। इसलिए हमलोग सभी संतों को मानते हैं। मैंने खोज की है, वेद-वेदान्त से खोजकर निकाला है। भगवान् बुद्ध, कबीर साहब, गो० तुलसीदास जी आदि के वचन का समन्वय जहाँ हमको मिलता है, हम उसी को संतमत कहते हैं। संतमत किसी खास आचार्य के नाम पर नहीं है। कोई कहे कि यह कबीर-मत है, तो मैं कहूँगा–हाँ, ऐसा ही है। इसी तरह नानक-पंथ, दादू-पंथ, दरिया-पंथ आदि के सम्बन्ध में भी कोई पूछे, तो मैं उन सबमें भी हाँ कहूँगा।

ऐसा ख्याल नहीं करके अपने धर्म में संकीर्ण-भाव रखना ठीक नहीं। कूप-मण्डूक जैसा हमलोगों को नहीं होना चाहिये, हमलोगों को उदार होना चाहिये।

यह संतमत-असल में संतमत एक ही है, परन्तु यह संतमत कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इसको किसी दूसरे संत के मत से फुटा देते हैं। जैसे कबीर साहब का मत, नानक साहब का मत, तुलसी साहब का मत, राधा स्वामी साहब का मत आदि सब एक ही है। यह संतमत कहने का मतलब–हमारे गुरु महाराज जो प्रचार कर गये थे सो। उन्होंने कोई नयी बात नहीं कही। उन्होंने वही बात कही जो संतों ने कही। ऐसा कुछ प्रचार हो गया है कि लोग समझते हैं कि यह वैरागियों का मत है, सो तो कभी नहीं। बाबा नानक ने कहा–राज्य करता हुआ राज्य में राजा, तप करता हुआ तप में श्रेष्ठ-तपी और गृहस्थ-आश्रमी बनकर गृहस्थ-भोग में भोगी

बनते हुए उस भोग में योगी, सब-के-सब ध्यान करते थे, यही मूलबात है।

❀ जो ज्ञान विचार होता है, उसमें जब सगुण-ब्रह्म का विचार होता है तो वह गंगा की धारा है। ब्रह्मज्ञान का विचार सरस्वती की धारा है। और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य की जो बात होती है, वह यमुना की धारा है। इस तरह यहाँ त्रिवेणी-धारा बहती है। इसमें अपने कर्म का निर्णय होता है। उसके अनुकूल दीक्षा लेता है। और साधन करते-करते पूर्ण होता है। इन्हीं बातों में संतमत का ज्ञान पूर्ण होता है।

❀ मुझको लड़कपन से तुलसीकृत रामायण पढ़ने में प्रेम लगा। तो उसकी बातों की सहायता पर और संतों की वाणियों पर मेरे सत्संग का आधार है। किसी पवित्र-व्यक्ति के नाम पर जो सम्प्रदाय प्रचलित है, उन किसी सम्प्रदाय के विपक्ष में नहीं बोलता और न मैं पक्ष करता हूँ। किसी नामधारी सम्प्रदाय का मैं नहीं हूँ।

❀ संतमत के सत्संग से ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता रहता है। यही एक विषय इस सत्संग का है। यह इतने बड़े कोष का भंडार है, जिसमें अध्यात्म-सम्बन्धी, योग-सम्बन्धी सारी बातें आ जाती हैं। इतना ही नहीं, इस ज्ञान से संसार में भी लोग अपना जीवन-यापन अच्छी तरह से कर सकते हैं।

❀ गुरु, ध्यान, सत्संग और सदाचार; ये चार चीजें मिलकर संतमत है। संतमत सत्य के साथ है, असत्य के खिलाफ है। यह पुरानी से भी पुरानी बात है। असल में यही सनातन-धर्म है। कोई कहे कि सनातन-धर्म में विन्दु-उपासना, नाद-उपासना नहीं है, मूर्त्तिध्यान नहीं है, जप नहीं है, कहे। जो नहीं जानते हैं, वे विन्दु-ध्यान और नाद-ध्यान का नाम सुनकर नया समझते हैं। यह भजन नित्य करो। मनुष्य के अतिरिक्त नीच-योनि में नहीं जाने देगा। यह भक्ति का बीज है। यदि ऐसा नहीं होता, तो नाभादास, रविदास आदि कैसे सन्त होते ?

❀ **"सन्तमता बिनु गति नहीं, सुनो सकल दे कान।**
जौं चाहो उद्धार को, बनो संत संतान।।"

संतान शिष्य को भी कहते हैं और जो अपने रक्त से उत्पन्न होते हैं, उनको भी कहते हैं। जो संतों के ज्ञान को ग्रहण करके रहते हैं, उनको भी सन्त-संतान कहते हैं। संतमत के बिना कभी मोक्ष नहीं मिल सकता।

इसलिए अपने कल्याण के लिए सन्तों का शिष्य होना चाहिये।

❀ आप लोग जानते हैं, आपको जनाया भी गया है कि केवल संतमत कहकर जो सम्प्रदाय चल पड़ा, कैसे और क्यों ? इसके संस्थापन करने वाले यानी संतमत-सत्संग के संस्थापन करने वाले, मैं समझता हूँ, तुलसी साहब थे, जिनका चिरकाल तक रहना हाथरस, जिला अलीगढ़ में हुआ। वहाँ मैंने देखा, एक संत के नाम पर जो पंथ माना गया है, वह ऐसा कुछ बन गया है, जो संतमत के नाम वाले सम्प्रदाय में रख लिया गया है। इसमें हानि क्या हुई ? हानि हुई कि लोग समझने लगे, हमारे गुरु और हमारे मत के समान कोई दूसरा नहीं। यह एक कोठरी में रहने के समान है। परन्तु केवल संतमत कहो तो एक कोठरी नहीं। अपने को कोठरी में रखने वाले का विचार संकुचित होता है, जो आपस के मेल को अनमेल कर देता है।

❀ हमारे गुरु बाबा देवी साहब ने कहा था कि तुम एक पंथ–दरिया-पंथ के अंदर थे। अब दरियापंथी नहीं समुद्रपंथी हो गये। अब तुम अपने को समुद्र पंथी समझो। यहाँ और अन्य कई जगहों पर संतमत का जो स्थान है, वह संतमत-सत्संग का स्थान है। हाथरस से जो खास तरह से इसका प्रचार हुआ, यहाँ भागलपुर (बिहार) में आकर अपना विशाल रूप धारण किया। हमलोग अपने को संतमत का सत्संगी कहते हैं और यह दावा रखते हैं कि हम सभी संतों को मानते हैं।

❀ पहले कुछ लोगों का ऐसा ख्याल था कि यह संतमत केवल कलिकाल के संतों का मत है, किन्तु खोज करने पर यह संतमत अत्यन्त प्राचीन काल से आया हुआ सिद्ध हुआ; क्योंकि यह वैदिक काल के ऋषियों के अनुरूप, वेदों के अनुकूल है।

❀ ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि संसार में कल्याण के लिए एक मात्र संतमत का अधिकाधिक प्रचार हो। जहाँ-जहाँ सत्संग हो, इसके विचार को संसार के लोग जानें। खास करके यह बात कि बाहरी बातों से–बाहरी उपासनाओं से जीवों का उद्धार होगा वा जीव को मोक्ष होगा, यह संतमत नहीं बतलाता है। यह अन्तरस्साधना से होगा, यह संतमत करके दिखलाता है। संतमत ऋषि, मुनि और संतों को हटाकर नहीं कहा गया है।

❀ मैंने अपने ऊपर बड़ा बोझ लिया है। यह बहुत बड़ी सभा हो रही

है, इसीलिए नहीं। अपने होश के जीवन के आरम्भ से ही मैंने अपने ऊपर यह बोझ ले लिया है। मेरे गुरु महाराज ने कहा कि सम्प्रदाय के फेर में मत पड़ो। संतों के नाम पर जो सम्प्रदाय या पंथ विदित है, उनके सार को देखो। जिन संतों के नाम पर लोग गौरव करते हैं, उन संतों के सार को ग्रहण कर रहो और संसार में उसका प्रचार करो। यह बात मुझे बड़ी अच्छी लगी। पक्षपात की कोई बात नहीं। संतों के सार वचनों का प्रचार करो। साम्प्रदायिकता के कारण जो लोग अपने को विशेष और दूसरे को न्यून मानते हैं, इसमें ईर्ष्या-देष भरे रहते हैं। संसार में शान्ति हो। धर्म-ज्ञान में आकर भी द्वेष के तवे-भाँड़े में पड़े रहे, दुःख पाते रहे, तो क्या लाभ ? घर के प्रबंध में तंग रहते हो, भाई-भाई में मेल नहीं तो घर में जलते रहो। घर के सब लोगों में मेल नहीं तो भी जलते रहो। राजनैतिकता में जाओ तो वहाँ भी एक दूसरे की निन्दा करते हैं, धर्म में जाओ तो वहाँ भी साम्प्रदायिकता लेकर जलो, तो शान्ति कहाँ मिलेगी?

❁ तुलसी साहब के नाम से 'घटरामायण' लिखी गई है। तुलसी साहब की गद्दी पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह पुस्तिका लिखी हुई रखी है। उसमें एक जिज्ञासु ने तुलसी साहब से पूछा है कि आपका क्या पंथ है? उन्होंने कहा–

"संत गुरु और पंथ न जाना, याही संत पंथ मन माना।"

मुझे यह बहुत पसन्द आया। हम जो संतमत कहते हैं, सो यही है। फिर भी लोगों के मन में होता है कि ये नया मत चला रहे हैं। मैं कहता हूँ कि भाई! कहो क्या कहूँ ? सनातन धर्म कहने से वहाँ शैव, शाक्त आदि और कौन-कौन मत हैं! संत बहुत प्रिय शब्द है, यह सबको मान्य है। हमारे यहाँ संत, तो यूरोप में Saint (सेण्ट)। बात रही आर्य-अनार्य की तो और देश में भी आर्य और अपने देश में भी आर्य। लेकिन विचार कर देख लो–ज्ञान और कला से हीन को अनार्य कहते हैं और आर्य शब्द का अर्थ है–ज्ञान-कला से युक्त। सभी देशों में आर्य हैं। अब रहा संत, तो बहुत ऊँचे दर्जे के लोग संत होते हैं। संतलोग कैसे होते हैं ? वे लोग बहुत संयत होते हैं, उनको अपने पर बहुत काबू रहता है। अपने पर काबू उसी को होता है, जिसका मन काबू में हो। मन काबू में उसी का है जो विषयलोलुप नहीं है। जो अपने मन को

काबू में रख सकता है, वह अपने को संयत बनाकर रख सकता है। संत सभी देशों में होते हैं।

संत कबीर साहब काशी में रहते थे और एक सूफी संत ईरान में रहते थे। दोनों का मिलन सूरत में हुआ। ये दोनों आपस में एक दूसरे के हाथ पर हाथ रखकर चुपचाप बैठ गये और इसी तरह सारी रात बीत गई। सवेरा होने पर दोनों ने अपनी-अपनी राहें ली। उन दोनों संतों के शिष्यों ने अपने-अपने महात्मा से पूछा की आपलोग चुपचाप रातभर बैठे रहे—कुछ बोले तक नहीं, यह कैसा मिलन हुआ ? दोनों संतों ने अपने-अपने शिष्यों को एक ही उत्तर दिया कि "खूब बातचीत हुई, दिल खोलकर बातचीत हुई और ऐसा आनन्द आया जैसा कभी नहीं हुआ।"

इसी तरह के संत होते हैं, इनमें भेद भाव नहीं रहता। हमलोग उस संत के अनुयायी होकर मतभेद रखें, ठीक नहीं। आपस में हम एक हों-मिल कर रहें, यह संतमत है।

राधास्वामी मत आगरा से चला है। उसमें लिखा है कि राधास्वामी मत अथवा संतमत। इसके प्रथम आचार्य जो हुए, वे गृहस्थ थे, परन्तु बड़े भारी त्यागी थे। दूसरे आचार्य भी बड़े त्यागी थे। भारत में सबसे प्रथम भारतीय पोस्ट मास्टर जनरल वही हुए। और इतने बड़े कि मैं कह सकता हूँ कि वे भी अपने गुरु से कम़ नहीं। प्रथम आचार्य ने कहा कि मेरा तो संतमत और अनामी मत है। परन्तु शालिग्राम का चलाया हुआ राधास्वामी मत है। उसको भी चलने देना। कबीर साहब ने नहीं कहा कि मेरा कबीर पंथ है, परन्तु उनके श्रद्धालु शिष्यों ने उनके नाम पर कबीर पंथ रखा। सब संतों की वाणियों और वेदों को पढ़ने पर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि सब संतों का एक ही विचार है।

मेरी उम्र 92 वर्ष की है, लेकिन शांति का स्थान कहीं नहीं देखा, देखा तो संतमत में। इसलिए संतमत में आ गया। पहले मैं बहुत साधु-महात्माओं के पास जा-जाकर इसकी खोज कर रहा था। इस खोज में मेरी दुर्दशा भी बहुत हुई। केवल एक लंगोटी रह गई। अंत में मैंने संतमत को समझा और इसी का आश्रय लिया।

संतमत की विलक्षणता का क्या कहना है। संतमत ईश्वर के स्वरूप

का ठीक-ठीक ज्ञान देता है। संतमत बतलाता है कि ईश्वर को कहाँ पाओगे। संतमत बतला देता है कि ईश्वर को पाने के लिए क्या अवलम्ब चाहिये। वह अवलम्ब बाहर से ढूँढ़ लाना है, सो नहीं। संतमत उस अवलम्ब को बतला देता है जो तुम्हारे अन्दर है। संतमत उस आचरण को बतला देता है, जिस आचरण में चलकर उस अवलम्ब को पा सको, जिससे तुम परम मोक्ष वा परम कल्याण को पा लो। संतमत यह ज्ञान देता है कि इन्द्रियों से जो कुछ जानने में आवे, वह माया है। इन्द्रियों के ज्ञान में जो नहीं आता, जो इसके ज्ञान से बहुत दूर ऊँचा है, वह ईश्वर है। ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आता। परन्तु आप के निजी ज्ञान में आ सकता है।

संत तुलसी साहब की वाणी

जग बेहोश बुझै नहीं, सन्तमते की बात।।
सन्तमते की बात, लात जम तातैं मारै।
चोटी धरि–धरि काल, पकड़ि चौरासी डारै।।
मद माया के माहिं, बात चित्त नेक न लावै।
ऐसा बड़ा अयान, जानकर ज्ञान न भावै।।
तुलसी बूझ विचार ले, अंत किया नहीं साथ।
जग बेहोश बूझै नहीं, सन्तमते की बात।।

सत्संग और इसकी आवश्यकता



❀ **"प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।**
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु-भक्ति दृढ़ होय।।"

—कबीर साहब

जब ईश्वर-प्रेमी एक जगह मिलते हैं, तो एक के भाव से दूसरे के भाव में वृद्धि होती है, आपस में धर्म-उत्साह बढ़ाते हैं, और धर्म-कर्म में लगने का उत्साह उत्पन्न करते हैं। फिर घर में भी सत्संग करते हैं, जिला वार्षिक में भी जाते हैं। कहीं साप्ताहिक-सत्संग, कहीं मासिक-सत्संग और कहीं भ्रमण-सत्संग होता है। मैं कहुँगा जहाँ-जहाँ सत्संगी रहते हैं, नित्य सत्संग करते हैं। इस तरह बराबर सत्संग होता रहता है और इस तरह के सत्संग से सब मिल-जुलकर धर्म-उत्साह बढ़ाते हैं। जो अपने उद्धार के लिए बहुत उत्सुक हैं, वे सत्संग करते हैं। हम धर्म में अग्रसर हों और साधन-अभ्यास नित्य-प्रति बढ़े; सभी सत्संगियों के हृदय में यही भाव रहे।

❀ जैसे खेत को जोतकर फसल बोते हैं और जबतक फसल न कटे, देख-रेख करते रहते हैं। इसी तरह शरीर-रूपी खेत में सत्संग-रूपी फसल लगाते रहें, ऐसा करना चाहिये। सत्संग नहीं छोड़ना चाहिये। सत्संग और ध्यान करते रहो, कभी-न-कभी अपरोक्ष ज्ञान भी होगा।

सत्संग क्या है ? जब तक पूर्णता नहीं हो, संत नहीं; जो पूर्ण हैं, वे संत हैं और उनका संग सत्संग है।

❀ सत्संग में गंगा, यमुना और सरस्वती की धारा बहती है।

"राम कथा जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नंदिनि वरनी।।"

—श्रीरामचरितमानस

राम-कथा यानी सगुण-अवतारी-ब्रह्म; जैसे शिव, विष्णु आदि ईश्वर-कोटि के देवता या राम, कृष्ण; सब सगुण ब्रह्म हैं। जहाँ इनकी कथा होती है, वह गंगा की धारा। जहाँ ब्रह्म, माया, नित्य, अनित्य आदि का ज्ञान हो, वह सरस्वती की धारा है और जहाँ कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य का ज्ञान हो वह यमुना की

धारा है। सरस्वती-धारा के बिना अर्थात् ब्रह्म-विचार के बिना गहराई नहीं आवेगी। केवल सत्संग कहने से तीनों में से किसी को ले लो, सत्संग है। लेकिन संतमत-सत्संग कहो तो तीनों को लेना होगा।

‘सन्तमत-सत्संग’ का अध्यात्म से बड़ा सम्बन्ध है। किन्तु केवल ‘सत्संग’ कहो तो उसमें अध्यात्म रहे वा नहीं भी रहे। केवल सत्संग कहो तो उसमें केवल गंगा की धारा होगी, सरस्वती की गहराई नहीं। ‘सन्तमत-सत्संग’ और केवल ‘सत्संग’ में यह अन्तर है। जब तक लोग जीवन धारण करें तब तक यदि सत्संग किया करें तो अवश्य ही मरने के बाद अगर कोई शरीर पावेंगे तो मनुष्य का शरीर पावेंगे, दूसरा शरीर नहीं होगा।

अभी यहाँ केवल हमलोग ही सत्संग करते हैं ऐसी बात नहीं है; परन्तु वे भी हैं, जो चले गये हैं और हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है–

“विश्व उपकार हित व्यग्रचित सर्वदा,
त्यक्त मदमन्यु कृत पुण्य राशी।
यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज सर्व हरि,
सहित गच्छन्ति क्षीराब्धि वासी ।।”

हमलोग अपने शरीर को लेकर यहाँ सत्संग करते हैं और वे लोग विश्व ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर देखते हैं तथा विश्व-ब्रह्माण्ड में अपने को देखते हैं। जो लोग बहुत दिनों से सत्संग करते आ रहे हैं, अभी कर रहे हैं और आगे भी करेंगे, वे सभी महासुख के भागी होंगे। भक्ति पूरी किये बिना जब वे मर जायेंगे, यानी उनका शरीर छूट जायेगा तब उनके साथ ऐसा होगा जैसा कि देह में रहने के समय में अच्छा या बुरा-कर्म किया है। वैसा फल भोगने के बाद फिर मनुष्य-शरीर मिलेगा। इस सत्संग में सम्मिलित होने का सभी को अधिकार है, चाहे वे ईसाई हों, मुसलमान हों या वैदिक हों (वैदिक तो हमलोग हैं ही)। सत्संग करनेवाले का संसार में यश बढ़ता है। मरने के पीछे भी उनका नाम रह जाता है। लोग कहते हैं--फलाने ऐसे थे, फलाने वैसे थे।

मैं भी सत्संग करता हूँ और आप लोगों को भी सत्संग करने की सलाह देता हूँ। सत्संग कभी नहीं छोड़ेंगे तो होते-होते एक दिन जरूर परम

मोक्ष मिलेगा। संसार रहेगा और ईश्वर को कौन हटावेगा ? ईश्वर भी रहेंगे इसके लिए कोई अन्देशा नहीं कि परममोक्ष होते-होते सब कोई मुक्त हो जायेंगे तो संसार नहीं रहेगा। यदि संसार नहीं रहेगा तो आपको अन्देशा किस बात का ? पहले सृष्टि नहीं थी तो उन्होंने सृष्टि की और जब संसार नहीं रहेगा तो क्या वे फिर संसार नहीं बना सकते हैं ? ईश्वर सब कुछ कर सकते हैं। सब कुछ बनाते हैं और सब कुछ को बिगाड़ भी सकते हैं। उनकी जो इच्छा होगी वे करेंगे, आपको चिन्ता किस बात की ? इन बातों को जानकर सत्संग कीजिये। मैं भी करता हूँ। सब लोगों के परममोक्ष हो जाने के बाद भी संसार रहेगा, है और होगा। संसार का होना, रहना या समाप्त करना ईश्वर की लीला है–खेल है। हमलोगों को सत्संग करते रहना चाहिये। जब तक संसार में हमलोग रहें और बहुत-से लोग भी रहें, तो उनमें सत्संग का प्रचार होता रहे, यह बहुत अच्छी बात है।

❀ सत्संग की बड़ी महिमा है। जैसे भूमि से सब प्रकार के अन्न उपजते हैं, फल उपजते हैं, उसी प्रकार सब प्रकार के ज्ञान सत्संग से उपजते हैं। जो विषय-ज्ञान है, वह सही ज्ञान नहीं है। निर्विषय-ज्ञान ही यथार्थ है। वह इस सत्संग से जाना जाता है। साधु-सन्तों के संग को सत्संग कहते हैं।

❀ **"वेद पय सिन्धु सुविचार मन्दर महा,**
अखिल मुनि वृन्द निर्मथन कर्त्ता।
सार सत्संग मुद्धृत्य इति निश्चितं,
वदत श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्त्ता।।"

–गो० तुलसीदास

यह बात कौन कहते हैं ? रुक्मिणी जी के स्वामी श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं। ज्ञान क्षीरसमुद्र है या वेद क्षीरसमुद्र है और उत्तम-विचार मन्दराचल पहाड़ है। सभी मुनिलोग इसका मन्थन करते हैं। मन्थन करके क्या निकाल लेते हैं ? सार-सत्संग। एक ही चीज सत्संग को निकाल लेते हैं।

❀ सत्संग से सत्य का ज्ञान होता है। सत्संग से सदाचरण का ज्ञान होता है। सत्संग से सद्गति का ज्ञान होता है। सत्य, सद्गति और सदाचरण, इन तीनों को लोग ग्रहण कर सकें तो बहुत अच्छी बात है।

❀ जिसमें परिवर्त्तन नहीं हो, जिसका विनाश कभी नहीं हो, वह ईश्वर

है। जो मायिक-पदार्थ है, उस सब में परिवर्त्तन होता है और सबका विनाश भी होता है। परमात्मा का विनाश नहीं होता, परिवर्त्तन नहीं होता, वह अजर-अमर, अविनाशी है। उसका संग हो जाये, मेल हो जाये तो जानिये पूरा सत्संग हो गया।

जहाँ ईश्वर का भाव नहीं रखना चाहिए, सत्संग नहीं करने वाले वहाँ ईश्वर का भाव रखते हैं। जिस सत्संग में ईश्वर की चर्चा नहीं, वह सत्संग नहीं। साधना करके ईश्वर से मेल हो जाये तो यह ऊँचे-दर्जे का सत्संग है। उपासना में प्रथम ही ईश्वर-दर्शन तो नहीं होता: लेकिन ईश्वर के ज्ञान में वह मजबूत होता है। आन्तरिक-उपासना को आन्तरिक-सत्संग कहते हैं।

"देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग
भवभंग कारन सरन सोक हारी।।"

-गो0 तुलसीदास

हे भगवन् ! हमको सत्संग दीजिये। संसार वाला दुःख जो जीवों को है, वह सत्संग से नाश हो जाता है। जो सत्संग की शरण में जाता है; वह अपने को दुःख से निवृत्त हुआ पाता है। यह सत्संग वाह्य-सत्संग है। यह भी ईश्वर की भक्ति है।

आपलोग अपने-अपने घरों में नित्य सत्संग करते होंगे। हो सकता है कोई भूल भी करते होंगे। जो भूल करते हैं, वे अपनी हानि करते हैं। भूल नहीं करनी चाहिये। जिस गाँव में कुछ सत्संगी अधिक हुए हैं, गुरु महाराज ने जैसा कहा था कि जहाँ सात सत्संगी हों, वहाँ सत्संग-घर बना देना। उसमें नित्य-सत्संग करो। उन्हीं की आज्ञा पालन के लिए कितने सत्संग-घर हो गये। जहाँ कम-से-कम सात सत्संगी हों, वहाँ सत्संग-मंदिर बनाकर सत्संग करो, बड़ा पुण्य होगा।

जो लोग भगवान् में श्रद्धा रखते हैं, वे ठाकुरबाड़ी, शिवालय बनाते हैं। ये ठाकुरबाड़ी और शिवालय केवल पूजा के लिए नहीं, सत्संग के लिए भी ये स्थान हैं। सत्संग नहीं हो तो होते-होते पूजा भी छूट जाये। और सत्संग होते रहने से सत्संग प्रेरण करेगा पूजा करने के लिए। इसी तरह सत्संग मन्दिर सत्संग करने के लिए प्रेरण करेगा। और सत्संग ध्यान करने

के लिए प्रेरण करेगा।

❁ जिस बात को बारबार सुनो, उस काम को करने की प्रेरणा मिलती है। बारम्बार काशी की महिमा सुनाते-सुनाते युधिष्ठिर का मन काशी की ओर जाने के लिए फेरा गया। इसी तरह बारम्बार सत्संग सुनो, ईश्वर की ओर मन होगा। जितने ईश्वर की ओर हुए हैं, सत्संग से ही।

"बिनु सत्संग भगति नहिं होई।
ते तब मिलहिं द्रवहिं जब सोई ।।"

गोसाईं तुलसीदास जी ने कहा है। इसलिए सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। सत्संग करो, करते-करते ध्यान में मन लगेगा। तुम आलस्य में पड़कर सत्संग-ध्यान नहीं करते हो। सत्संग करो तो ईश्वर-भजन करने का प्रेरण मिलेगा।

❁ एक नवयुवक ने कहा कि आप सत्संग करते हैं, सत्संग से क्या लाभ होता है, कहिये ? मैं रेलगाड़ी पर चढ़ने वाला था। मैंने कहा कि तुलसीदास जी ने कहा है—

"मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ।
लोकउ वेद न आन उपाऊ।।"

इन पाँचो को प्राप्त करना सत्संग के प्रभाव से होता है। इसलिए सत्संग करो। ये पाँचो चीज ऐसी हैं कि जिनकी बड़ी महिमा है। ये पाँचो पदार्थ मिल जायें तो और क्या चाहिये ? ये पाँचो पदार्थ बड़े भाग्य से मिलते हैं। जिनको ये मिले हैं, सत्संग-प्रभाव से ही। इसलिए सत्संग अवश्य कीजिये।

❁ हमलोग बचपन से जो कुछ सीखे, लिखे और पढ़े हैं, उसका तरीका यह था कि प्रथम एक ही पाठ को हम बारम्बार दुहराते थे। जब उसे कण्ठस्थ कर लेते थे, तब दूसरे पाठ में फँसते थे, ऐसा होता था। शनिवार को सब पाठ दुहराये जाते थे, उस दिन नया पाठ नहीं मिलता था; पुराने पाठों को दुहराया जाता था। पुराना पाठ नहीं दुहराने से भूल जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने कहा—

है। जो मायिक-पदार्थ है, उस सब में परिवर्त्तन होता है और सबका विनाश भी होता है। परमात्मा का विनाश नहीं होता, परिवर्त्तन नहीं होता, वह अजर-अमर, अविनाशी है। उसका संग हो जाये, मेल हो जाये तो जानिये पूरा सत्संग हो गया।

❀ जहाँ ईश्वर का भाव नहीं रखना चाहिए, सत्संग नहीं करने वाले वहाँ ईश्वर का भाव रखते हैं। जिस सत्संग में ईश्वर की चर्चा नहीं, वह सत्संग नहीं। साधना करके ईश्वर से मेल हो जाये तो यह ऊँचे-दर्जे का सत्संग है। उपासना में प्रथम ही ईश्वर-दर्शन तो नहीं होताः लेकिन ईश्वर के ज्ञान में वह मजबूत होता है। आन्तरिक-उपासना को आन्तरिक-सत्संग कहते हैं।

❀ **"देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग**
भवभंग कारन सरन सोक हारी।।"

–गो0 तुलसीदास

हे भगवन् ! हमको सत्संग दीजिये। संसार वाला दुःख जो जीवों को है, वह सत्संग से नाश हो जाता है। जो सत्संग की शरण में जाता है; वह अपने को दुःख से निवृत्त हुआ पाता है। यह सत्संग वाह्य-सत्संग है। यह भी ईश्वर की भक्ति है।

❀ आपलोग अपने-अपने घरों में नित्य सत्संग करते होंगे। हो सकता है कोई भूल भी करते होंगे। जो भूल करते हैं, वे अपनी हानि करते हैं। भूल नहीं करनी चाहिये। जिस गाँव में कुछ सत्संगी अधिक हुए हैं, गुरु महाराज ने जैसा कहा था कि जहाँ सात सत्संगी हों, वहाँ सत्संग-घर बना देना। उसमें नित्य-सत्संग करो। उन्हीं की आज्ञा पालन के लिए कितने सत्संग-घर हो गये। जहाँ कम-से-कम सात सत्संगी हों, वहाँ सत्संग-मंदिर बनाकर सत्संग करो, बड़ा पुण्य होगा।

❀ जो लोग भगवान् में श्रद्धा रखते हैं, वे ठाकुरबाड़ी, शिवालय बनाते हैं। ये ठाकुरबाड़ी और शिवालय केवल पूजा के लिए नहीं, सत्संग के लिए भी ये स्थान हैं। सत्संग नहीं हो तो होते-होते पूजा भी छूट जाये। और सत्संग होते रहने से सत्संग प्रेरण करेगा पूजा करने के लिए। इसी तरह सत्संग मन्दिर सत्संग करने के लिए प्रेरण करेगा। और सत्संग ध्यान करने

के लिए प्रेरण करेगा।

❀ जिस बात को बारबार सुनो, उस काम को करने की प्रेरणा मिलती है। बारम्बार काशी की महिमा सुनाते-सुनाते युधिष्ठिर का मन काशी की ओर जाने के लिए फेरा गया। इसी तरह बारम्बार सत्संग सुनो, ईश्वर की ओर मन होगा। जितने ईश्वर की ओर हुए हैं, सत्संग से ही।

"बिनु सत्संग भगति नहिं होई।
ते तब मिलहिं द्रवहिं जब सोई ।।"

गोसाईं तुलसीदास जी ने कहा है। इसलिए सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। सत्संग करो, करते-करते ध्यान में मन लगेगा। तुम आलस्य में पड़कर सत्संग-ध्यान नहीं करते हो। सत्संग करो तो ईश्वर-भजन करने का प्रेरण मिलेगा।

❀ एक नवयुवक ने कहा कि आप सत्संग करते हैं, सत्संग से क्या लाभ होता है, कहिये? मैं रेलगाड़ी पर चढ़ने वाला था। मैंने कहा कि तुलसीदास जी ने कहा है–

"मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ।
लोकउ वेद न आन उपाऊ।।"

इन पाँचो को प्राप्त करना सत्संग के प्रभाव से होता है। इसलिए सत्संग करो। ये पाँचो चीज ऐसी हैं कि जिनकी बड़ी महिमा है। ये पाँचो पदार्थ मिल जायें तो और क्या चाहिये? ये पाँचो पदार्थ बड़े भाग्य से मिलते हैं। जिनको ये मिले हैं, सत्संग-प्रभाव से ही। इसलिए सत्संग अवश्य कीजिये।

❀ हमलोग बचपन से जो कुछ सीखे, लिखे और पढ़े हैं, उसका तरीका यह था कि प्रथम एक ही पाठ को हम बारम्बार दुहराते थे। जब उसे कण्ठस्थ कर लेते थे, तब दूसरे पाठ में फँसते थे, ऐसा होता था। शनिवार को सब पाठ दुहराये जाते थे, उस दिन नया पाठ नहीं मिलता था; पुराने पाठों को दुहराया जाता था। पुराना पाठ नहीं दुहराने से भूल जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने कहा–

"असज्झाय मला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं।।"

अर्थ--पाठ का न करना मंत्र का मैल है, अर्थात् मंत्र-स्मरण के लिए न दुहराना धब्बा है। झाड़बुहार न करना घर का मैल है, आलस्य सौन्दर्य का मैल है, असावधानी पहरेदार का मैल है।

जिन पाठों को हमने बारम्बार दुहराया है, उनको नहीं भूले हैं। और जिन पाठों को बारम्बार नहीं दुहराया है, भूल गये हैं। सत्संग में यही होता है। यानी पाठों को दुहराया जाता है।

❁ घर में रहना, पवित्रता से रहना, सद्व्यवहार से रहना है। स्त्रियाँ बच्चों की सेवा करें, पति की सेवा करें, आपस में मेल रखें, झंझट नहीं करें। जहाँ तक हो सके अपने को सत्य पर रखना। अपने को सत्य पर रखे बिना सत्संग नहीं। सत्य पर अपने को रखिये तो अकेले में भी सत्संग होता है।

सामूहिक सत्संग आप के घर में रोज हो सो नहीं हो सकता। जो कोई निजी उद्धेश्य से सत्संग करते हैं यानी अपने उद्यम के लिए सत्संग करते हैं, तो वह सत्संग सत्संग नहीं है। स्त्रियाँ सत्संग करें, पुरुष सत्संग करें। किसी भी मजहब के लोगों को यहाँ मनाहीं नहीं है। सब कोई सत्संग में आइये।

❁ सन्त कबीर साहब ने कहा–

"कबीर संगति साधु की, ज्यों गन्धी का वास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं, तौ भी वास सुवास।।"

इसी प्रकार कोई गुप्त सन्त रहते हैं तो उनकी आभा आती है। वे अपनी आभा को रोक नहीं सकते हैं। हम सबलोग एकत्र हुए हैं कि सत्संग हो, तो सत्संग का एक और जरिया है, उसी के सहारे हमलोग सत्संग करते हैं। लोग जानते हैं कि चिट्ठी आधी मुलाकात होती है। दूर-दूर में रहकर पत्र द्वारा एक-दूसरे के ख्यालों को जानते हैं। उससे प्रभावित भी होते हैं। इसी तरह यह जरिया है कि सन्तलोग जो हो चुके हैं या अभी जिनपर लोगों का विश्वास है, वे यहाँ वर्त्तमान नहीं हों, फिर भी उनकी पुस्तक हो या कोई उसे जबानी गावे, तो उनके वचन से हम प्रभावित होते हैं: किस दिशा में चलना चाहिये–मालूम होता है। इसलिए सन्त-वचन अवश्य पढ़ना चाहिये। संतों के वचन से उन सन्तों की आधी मुलाकात होती है। किन्तु मैं तो कहता

हूँ कि यदि सन्तों का रत्ती-रवा भी संग हो, तो अहोभाग्य है।

❀ जिस भूमि पर महल बनता है, महल से जमीन का दाम बहुत कम होता है। किन्तु महल का आधार जमीन है। बिना जमीन के कितनाहू विशेष कीमत का महल बन नहीं सकता, उसी तरह बिना सत्संगरूपी जमीन के भजन-रूपी महल बन नहीं सकता। इसलिए सत्संग की बड़ी जरूरत है ।

❀ संसार में रहने पर प्रत्येक सन्त को देश के लिए, संसार के प्रति कोई-न-कोई काम अवश्य रहता है। इसीलिए सत्संग में यदि वे पहुँचे हुए महान् सन्त रहें तो लोगों को बहुत लाभ हो। यदि सन्त न रहें तो सन्तवाणी से लाभ हो सकता है। किन्तु जितना लाभ पहुँचे हुए सन्त से होगा, उतना केवल साधारण जन के सत्संग से नहीं। ईश्वर-भजन में सत्संग, स्तुति, प्रार्थना, जप और ध्यान–ये पाँच चाहिये।

❀ भेड़ियाधँसान में किसी को नहीं पड़ना चाहिये। भेड़ियाधँसान की तरह किसी में बिना समझे-बूझे मत कूद पड़ो। हमलोगों के यहाँ तो कहावत है कि **"गुरु कीजिये जान, पानी पीजिये छान।"**

सत्संग से सिद्धान्त का निर्णय होता है। क्या करें, इसका भी निर्णय होता है। चरित्र के लिए निर्णय होता है कि चरित्र सुधार करके रखो। सत्संग को पकड़े रहो तो भेड़ियाधँसानपन छूट जायेगा ।

❀ शबरी का पहला जन्म खिखिरनी का था। ऋषि-मुनि की कृपा से वह दूसरे जन्म में रानी हो गई। राजा के राजमहल में उसको साधु-सन्तों का सत्संग नहीं मिलता था। राजा ने राजमहल में सत्संग-मन्दिर बनवा दिया। संयोग से एक पहुँचे हुए सन्त उनके यहाँ पहुँच गये। रानी ने बहुत आदरपूर्वक उनकी सेवा की। महात्मा जी ने प्रसन्न होकर कहा–"माँगो, तुम क्या वरदान माँगती हो ?" रानी ने कहा–"मैं शीघ्र मर जाऊँ। दूसरे जन्म में मैं कुरूपा होऊँ और साधारण कुल में मेरा जन्म हो।" महात्मा जी के आशीर्वाद से वैसा ही हुआ। उसका जन्म भील के घर में हुआ, देखने में भी कुरूपा थी। जब उसकी शादी हुई, उसका पति साथ लेकर जब जाने लगा तो रास्ते में उसने सोचा– यदि इसको मैं अपने साथ घर ले जाता हूँ तो बच्चे डरेंगे और लोग कहेंगे कि कहाँ से चुड़ैल ले आया है। ऐसा सोचते हुए वह शबरी को छोड़कर तेजी से निकल भागा। शबरी भी यही चाहती

थी। उन्होंने भी सोचा–भले हुआ संसार के बंधन से मैं बच गई। वह मातंग ऋषि के आश्रम में रहने लगी। जब मातंग ऋषि संसार से प्रयाण करने लगे तो शबरी से उन्होंने कहा–"तुम धैर्य धारण करके यहाँ रहो। भगवान् श्रीराम का दर्शन तुमको यहीं मिलेगा।" गुरु-वचन पर विश्वास करके भजन-साधन करती रही। एक दिन ऐसा समय आया कि भगवान् राम शबरी के आश्रम पधारे और नवधा भक्ति का उपदेश किया।

साधुओं का संग करना चाहिये। नित-प्रति साधु का संग नहीं हो सकता। जिनको विशेष प्रेम है, उनको कभी-न-कभी साधु अवश्य मिलते हैं। चिट्ठी आधी मुलाकात है। साधु-सन्तों के वचन उनके ग्रंथों में हैं। उन ग्रंथों को पढ़ना चाहिये। इसमें साधु का आधा दर्शन होता है। सद्ग्रन्थों को नित्य पढ़ो। बिना सत्संग के कोई ज्ञानी, योगी, भक्त नहीं हो सकता।

❀ जिस विषय को विशेष सुनिये उस ओर आकर्षण होगा। कौरव लोगों ने चाहा कि पाँचो भाई पाण्डव को किसी तरह अपने राज्य से बाहर करना चाहिये। कौरवों ने विचारा कि उनलोगों को काशी भेजा जाये। किन्तु स्पष्ट रूप में उनलोगों से यह बात कहने में सभी सकुचाते थे। अन्त में कौरवों ने अपने में परामर्श किया कि पाण्डव जब सभा में आवें तब उनके सामने काशी की विशेषताओं का वर्णन करना चाहिये। सुनते-सुनते उनलोगों की इच्छा उस ओर झुकेगी और तब वे लोग स्वयं काशी चले जायेंगे। बात ऐसी ही हुई। वे पाँचो भाई जब-जब सभा में आते, कौरवगण तब-तब काशी की ही चर्चा करने लगते। फलतः काशी की विशेष चर्चा सुनते-सुनते अन्त में युधिष्ठिर का मन उस ओर झुका और वे पाँचो भाई काशी चले गये। जिस विषय को आप बहुत सुनिये उधर मन फिर जायेगा। इसलिए हमारे बाबा साहब सत्संग करने के लिए बहुत प्रेरण देते थे।

❀ संतों का संग कीजिये तो जो बातें हों उसमें रत हो जाइये और गो० तुलसी दास जी की यह बात भी याद रखिये–

"नित प्रति दरशन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी कौन वियोगतें, नहिं लागा हरि रंग ।।"

क्योंकि कबीर साहब कहते हैं–

"कबीर संगति साध की, ज्यों गंधी का वास ।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौभी बास सुवास ।।"

इसी में गो0 तुलसी दास जी कहते हैं–नित प्रति दरशन साध के, फिर हरि रंग क्यों नहिं लगा ? उस दुकान पर गंधी की गंध ही नहीं लगी। तो गो0 तुलसी दास जी उत्तर देते हैं–

"मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग ते, नहिं लागा हरि रंग।।"

❀ साधु के संग में चुपचाप बैठो। साधु की ओर ख्याल लगाकर रखो तो साधु का प्रभाव पड़ेगा। रामकृष्ण परमहंस गीत गाते थे और रानी रासमणि मन-ही-मन मुकदमा का ख्याल करने लगी। परमहंस जी ने उसको एक थप्पर लगाया, बोले–मुझे गीत गाने कहती है और तुम मुकदमा की बात सोचती है। नानक साहब को मुसलमानों ने कहा कि तुम नमाज नहीं पढ़ते हो, नमाज पढ़ने चलो। गुरु नानक जी मस्जिद में गये। सब कोई नमाज पढ़ने लगे और ये बैठे रहे। कोई उलटकर देखता था, कोई मन-ही-मन कहता था–वह नमाज नहीं पढ़ता है, काफिर है। और जो नवाब था वह मन -ही-मन काबुल में घोड़े का मोल करता था। नमाज समाप्त होने पर उन लोगो ने कहा–"तुमने नमाज नहीं पढ़ा ?" तो गुरु नानक ने कहा–"तुम लोगों ने नमाज नहीं पढ़ा तो मैंने भी नहीं पढ़ा।" उनलोगों ने कहा–"हम लोगों ने तो नमाज पढ़ा तुम कैसे कहते हो कि हमलोगों ने नमाज नहीं पढ़ा।" गुरु नानक ने कहा–"तुमने नमाज कहाँ पढ़ा ? तुम तो मन-ही-मन कहते थे कि वह काफिर बैठा है, नमाज नहीं पढ़ता है। और तुम्हारा नवाब काबुल में घोड़ा खरीद रहा था। पूछो मैं सच कहता हूँ या झूठ ?" यह सुनकर उनलोगों ने कहा–"छोड़ दो इनको। यह रोशन जमीर है।" हाँ! तो साधु के संग में जाकर ख्यालों को छोड़िये। कथा-प्रसंग में डूब जाइये।

❀ हमलोग सत्संग करते हैं। जानना चाहिये कि 'सत्संग' कहते हैं किसको ? 'सत्' जो बदलता नहीं हो, जिसकी स्थिति का कभी लोप नहीं हो। अत्यन्त निश्चल-ध्रुव को 'सत्' कहते हैं। सिवा परमात्मा के ऐसा कुछ नहीं हो सकता। उसमें परिवर्त्तन नहीं होता और उसकी स्थिति का अभाव कभी नहीं होता। इसका संग हो, तब सत्संग। यह ऐसी बात है, जिसमें

लोगों को जिज्ञासा होती है कि हमलोग जो इस तरह बैठकर सत्संग करते हैं, यह सत्संग कैसे हुआ ? ईश्वर से भेंट ही नहीं, तो उसका संग कहाँ हुआ ? इसलिए इस तरह के सत्संग को सत्संग कैसे कहें ?

यह जिज्ञासा उचित ही है। दूसरी बात यह है कि संतों के संग को सत्संग कहते हैं। संत वे होते हैं, जो 'सत्' को प्राप्त किये होते हैं। अभी जिस 'सत्' अर्थात् परमात्मा का वर्णन किया गया, उसको जो प्राप्त करते हैं, 'संत' है। गुरु महाराज कहते थे कि संतों का संग करोगे तो वे कुछ कहेंगे, उससे तुमको लाभ होगा। उनकी दूसरी बात है कि जो संत अभी नहीं हैं, उनकी वाणियाँ हैं। उनको पढ़ो, सुनो, समझो यह भी सत्संग है। लोग दूर-दूर रहते हैं, चिट्ठियों के द्वारा काम करते हैं। संतों की वाणी का संग उनकी आधी मुलाकात है, क्योंकि चिट्ठी को आधी मुलाकात कहते हैं। यह बाहरी सत्संग है। और एकान्त ध्यान, जिसमें ठीक-ठीक सत् से मिला जाता है, को अंतरी सत्संग कहते हैं।

❀ कष्टों को सहकर भी सत्संग लोग करते हैं।

"कबीर संगति साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय।।"

मतलब जो धर्म में रूचि नहीं रखते वे साकट हैं। उनका संग दुखदाई होता है। कबीर साहब कहते हैं–"जौ की भूसी खाने को मिले और साधु का संग मिले तो साधु का संग करो।" जिनको धर्म में रूचि नहीं, ईश्वर-भक्ति में मन नहीं, वे साकट कहलाते हैं।

❀ समय लगाना पड़े कष्ट सहना पड़े, तो भी अवश्य सत्संग करना चाहिये। सत्संग अकेले में भी हो सकता है। अकेले बैठे-बैठे ईश्वर का भजन करो या गुणगान करो तो भी सत्संग होगा। क्योंकि ईश्वर की चर्चा है। उनके गुणगान में मन लगाया, यह सत्संग हुआ।

❀ सत्संग से ज्ञान का साधन होता है। यह थोड़ी देर सबको करना चाहिये। जैसे भांग पीने से नशा होता है, उस नशे में जब तक कोई रहता है–नशे में रहने से जो करना चाहिये, वही वह करता है। उसी प्रकार सत्संग-वचन मन में रहने से सत्संग में जो काम होना चाहिये–वह काम होगा। इस सत्संग-वचन का नशा छुटने से वह अपकर्म भी करने लगता है,

किन्तु जो सत्संग-वचन के नशे में रहता है उससे अपकर्म नहीं होता।

जिसका मन किसी और तरफ है और साधु का संग करता है, तो उस पर उसका रंग नहीं चढ़ता है। इसकी एक कहानी है कि लोहे के बक्से में किसी ने पारस रखा था, किन्तु वह बक्सा सोना नहीं हुआ। सुनकर आश्चर्य होगा कि भला लोहे के बक्से में पारस रहे, तो सोना कैसे नहीं हुआ ? इसलिए कि पारस को कपड़े में लपेटकर रखा था। पारस से लोहे को सटाने से ही लोहा सोना हो सकता है, कुछ अंतर रहने से नहीं। सत्संग-वार्ता को मन लगाकर सुनिये।

कोई कहे कि सत्संग कर लिया, समझ लिया, बारम्बार सत्संग करने से क्या लाभ ? तो जानिये कि बारम्बार के सत्संग से ध्यान करने में प्रेरण मिलता रहता है। भगवान् बुद्ध ने कहा है—स्मरण के लिए न दुहराना धब्बा है।

❁ कोई भी जल वाह्य संसार में नहीं है जो हृदय को शुद्ध कर सके। इसके लिए सत्य का व्यवहार होना चाहिये। सत्य के तट पर रहना चाहिये। सत्य का तट क्या है ? सत्संग और ध्यान।

❁ सत्संग करने में बादशाही ठाटबाट की जरूरत नहीं है। वृक्ष के नीचे घास बिछाकर सत्संग करने के लिए सदा तैयार रहना चाहिये, चाहे किसी आश्रम, वेश या सम्प्रदाय में क्यों न हो।

❁ जो सत्संगी लोग सत्संग में कुछ वचन कहकर सत्संग का प्रचार करने में उत्साह रखते हैं और ऐसा करते हुए वह पवित्र जीवन बिताने की कोशिश करते हैं, उनकी मैं तारीफ करता हूँ। उनको जानना चाहिये कि पवित्र जीवन बिताना उसी तरह है जैसे किसी मंदिर को बनाने में उसकी नीवँ मजबूत होती है। कमजोर नीवँ मत दो।

श्री सद्गुरवे नमः

गुरु की महिमा और उनकी पहचान

❀ ईश्वर को लोग बचपन से जानते हैं। लेकिन दर्शन नहीं होता है। अवलम्ब लें तो क्या इसका पता लगता नहीं है ? इसका पता गुरु बताते हैं। यह बिना गुरु के नहीं हो सकता। संसार में जितने लोग शिक्षित हैं, उनकी शिक्षा गुरु से हुई है। इसी तरह मुक्ति की शिक्षा सद्गुरु द्वारा प्राप्त होती है। यह आध्यात्मिक विद्या है। जैसे विज्ञान और साईन्स आप सुनते हैं, यह आधिभौतिक विद्या है।

"गुरु पद पंकज सेवा, तीसरी भगति अमान।"

—रामचरितमानस

जैसे छत्रपति शिवाजी समर्थ रामदास जी की सेवा करते थे। जैसे राय शालिग्राम बहादुर अपने गुरु की सेवा करते थे। ये यमुना जी से नंगे पैर पानी लाते थे। रास्ते में कोई कह दिया कि मेरे घर में पानी नहीं है, तो कहते ले लो। उसे वह पानी देकर फिर यमुना जी से पानी लेकर गुरु महाराज के पास आते थे। इसी प्रकार मान-प्रतिष्ठा छोड़कर गुरु की सेवा करो। बेमन सेवा करेगा, तो जो सच्चा गुरु होगा, वह सेवा स्वीकार नहीं करेगा। इस तरह यहाँ भी मन लगाना है। किन्तु गुरु के बारे में भी सचेत रहिये। बहुत लोग गुरु-भक्ति के विषय में बहुत बात कहते हैं। वे कहते हैं—गुरु सेवा के कारण बहुत बड़े-बड़े अनर्थ हुए हैं। तो जानना चाहिये कि—

"तन मन ताको दीजिये, जाके विषया नाहिं।
आपा सबही डारि के, राखे साहिब माहिं।।"

—कबीर साहब

राधास्वामी ने कहा—

"सुरत शब्द बिन जो गुरु होई। वाको छोड़ो पाप कटा।।"

❀ सद्गुरु वह है, जो सद्ज्ञान में बरते, जो दूसरों को ज्ञान देता हो, सत्स्वरूप-परमेश्वर का भजन करता हो और दूसरों को भजन करने का प्रेरण देता हो।

मुक्ती मारग जानते, साधन करते नित्त।।
साधन करते नित्त, सत्त चित जग में रहते।
दिन-दिन अधिक विराग, प्रेम सत्संग सों करते।।
दृढ़ ज्ञान समुझाय, बोध दे कुबुधि को हरते।
संशय दूर बहाय, सन्तमत स्थिर करते।।
'मेँहीँ' ये गुण धर जोई, गुरु सोई सतचित्त।
मुक्ती मारग जानते, साधन करते नित्त।।

❁ सन् 1964 ई0 में एक बार आप **(महर्षि मेँहीँ परमहंस जी)** सत्संग प्रचार करते हुए धरहरा से 5 मील पश्चिम बेलाबदन ग्राम आये। वहाँ सत्संग-समाप्ति के बाद सबने **'सद्‌गुरु महाराज की जय'** की ध्वनि की। आपके पास ही बैठे हनुमान जी के भक्त एक वयोवृद्ध व्यक्ति श्री मधुसिंह जी, जो पहले शिक्षक थे, ने **'महावीर स्वामी की जय'** की ध्वनि की। आपने (महर्षि मँहीँ परमहंस जी) तुरत यह चौपाई कही–

"जय-जय-जय हनुमान गुसाईं। कृपा करो गुरुदेव की नाईं।।"

सबलोग हँसने लग गये और श्री मधुसिंह जी विचार करने लग गये कि वास्तव में गुरु की कृपा हनुमान जी की कृपा से विशेष महत्त्व की है, इसीलिए तो यह कहा गया है–

"जय-जय-जय हनुमान गुसाईं। कृपा करो गुरुदेव की नाईं।।"

❁ गुरु की पहचान भी कठिन है। फिर भी बहुत दिनों तक सत्संग करने पर अच्छे-बुरे का ज्ञान हो जाता है।

"उघरे अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू।।"

–रामचरितमानस

पंच विषयों में लवलीनता है कि नहीं, संग करने पर मालूम होगा। जब संग करने पर मालूम हो कि मितभोगी हैं, इतना भोजन, इतना शयन आदि करते हैं, चरित्रवान् हैं, तो उनको अच्छा मानना योग्य है। इन बातों में योग्य गुरु की पहचान हो जावे, तब गुरु धारण करे। गुरु भी शिष्य को जाने और शिष्य भी गुरु को जाने।

❁ सद्‌गुरु से मिलो, जो सच्चा सद्‌गुरु हो, जिनसे सद्‌युक्ति मिले उनसे मिलो। सद्युक्ति लो तो दौड़-धूप की परेशानी छूट जाती है। गुरु की

युक्ति ऐसी होती है कि अंदर में ज्योति की वर्षा होती है, ऐसा मालूम होता है और स्वाभाविक ध्वनि में उसकी वृत्ति लग जाती है।

❀ गुरु, शिष्य और शिक्षा। कोई देश हो, सिखलाने वाला, सिखने वाला, सिखने का विषय होता है। चाहे यह देश हो, विदेश हो, इंगलैण्ड हो या और कोई देश हो। हल चलाओगे तो उसको भी सिखना होगा। कुदाल चलाओगे तो वह भी किसी से सिखना होगा, नहीं तो अपना पैर काट लोगे।

❀ परमात्मा अमूर्त्त हैं। किसी भी रूप में मानो, सभी में वे अमूर्त्त परमात्मा हैं। जो सबसे श्रेष्ठ हैं, उसमें मानो। मेरे ख्याल में गुरु से श्रेष्ठ और कोई नहीं। इसलिए श्री राम को गुरु, श्री कृष्ण को गुरु; बिना गुरु के कोई नहीं।

❀ जिस रूप में आपकी श्रद्धा हो, उसको पकड़ो। किस रूप में विशेष श्रद्धा हो ? मेरा जैसा विश्वास है, उनके रूप में विशेष श्रद्धा होनी चाहिये, जो गुरु सबसे विशेष ज्ञान देते हैं। उनसे बढ़कर और किनमें श्रद्धा होनी चाहिये! कहीं तो गुरु और ईश्वर बराबर हैं, ऐसा है। कहीं ऐसा है कि ईश्वर से बढ़कर गुरु हैं। वाल्मीकि जी ने भगवान् राम से कहा था–

"तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जियँ जानी।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।"

–रामचरितमानस

ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं हो सकते। लेकिन गुरु सिखाते हैं, बताते हैं। ईश्वर सिखाते, बताते नहीं। इसलिए ईश्वर से बढ़कर गुरु हैं। जिनसे बहुत उपकार हुआ है, वे ही गुरु श्रद्धास्पद हैं। उन्हीं में मन को एकाग्र करने के लिए ध्यान करो। इसमें मन एकाग्र हो जाये तो एक विन्दु का ध्यान करो। इसको भी गुरु ही मान लो।

❀ ऐसा देखो कि गुरु जो कहते हैं, करते भी हैं। जो कहे और करे नहीं, वह गुरु नहीं। चाहिये कि योग्य गुरु से सीखें, उनकी सेवा और उनके बताये मार्ग पर चलें। गुरु की सेवा, सत्संग और ध्यान तीनों करें। इन तीनों से सदाचार बनता है, कदाचार छूटता है। ध्यान में विषयों से छूटना होता है, एकाग्रता होती है। लेकिन बिना गुरु के यह सीखा नहीं जा सकता। गुरु का आदर करो, सेवा करो। अर्जुन अपने गुरु द्रोण का बहुत आदर करते थे।

सेवा भी करते थे। इसलिए धनुर्विद्या में सबसे बड़े हुए। नहीं तो कहावत है–

"लोभी गुरु लालची चेला। दोनों नरक में ठेलमठेला।।"

दोनों नरक में जाते हैं।

❀ **"जे सउ चंदा उगवहिं, सूरज चड़हिं हजार।**
एतै चानण होदिया, गुर बिनु घोर अंधार।।"

–गुरुनानक देवजी

अर्थात् सैकड़ों चन्द्रमा उग जायें, हजारों सूर्य उग जायें, इतना प्रकाश होने पर भी गुरु नहीं मिले, तो अंधकार का अंधकार ही रहेगा। बिना सिखलाये कोई सिखता नहीं है। माता सिखलाती है। वह सिखलाती है कि वह तेरा पिता है। हमारे यहाँ राम-राम, कृष्ण-कृष्ण का जो रिवाज है, वह भी माता सिखलाती है। लोग घर में सुग्गे को पढ़ाते हैं, उससे भी राम-राम कहलाते हैं। वह सुग्गा भी राम-राम कहता है। बिना सिखलाये कोई भी नहीं सिखता।

❀ **"सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।**
संजम यह न विषय कै आसा।।"

–रामचरितमानस

बिना गुरु के बतलाये न कोई इन्द्रियों को जीत सकता है, न मन को जीत सकता है। इसलिए कोई कितना भी कह जाओ, सुन जाओ, जबतक गुरु का ज्ञान नहीं हो, गुरु में श्रद्धा नहीं हो, काम नहीं चलेगा। श्रद्धा कहते हैं–गुरु और सद्ग्रंथ में अडिग विश्वास को।

❀ जितने स्कूल-कॉलेज हैं, सबमें लिखी हुई किताबे हैं। मास्टर, प्रोफेसर, प्रिंसिपल कोई नहीं रहे, पुस्तक खोलकर रख दो, देखो क्या होता है ? इसलिए सिखलाने वाले की बड़ी आवश्यकता है। जो गुरु को, माता-पिता को आदर नहीं देता है उसको कभी ज्ञान नहीं होता; क्योंकि ये ही ज्ञान देने वाले हैं। संत कबीर साहब ने कहा है–

"गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर मारै चोट।।"

गुरु को कुम्हार की संज्ञा देते हैं और शिष्य को वर्त्तन या कुंभ की संज्ञा देते हैं। कुम्हार कुंभ पर ऊपर से चोट देते हैं और भीतर से हाथ देते हैं। जो

खोट रहता है, उसे निकाल देते हैं, तब हुंडी बनती है। इसी तरह गुरु के यहाँ शिष्य डाँटे जाते हैं, फटकारे जाते हैं, पीटे जाते हैं, तब कहीं वह असली शिष्य बनते हैं।

एक बादशाह ने अपने बेटे को पढ़ने के लिए मकतब में भेजा। मास्टर उसपर बहुत ख्याल रखते थे। जब उसकी शिक्षा पूरी हो गई, तब मास्टर ने उसे पाँच बेंत मारा। यह खबर बादशाह को मालूम हुई। बादशाह ने बहुत बुद्धिमानी से जाना कि हमारे बेटे के साथ इन्होंने कोई बेरहमी नहीं की है। गुरु की सख्ती–बेरहमी बेहतर है, पिता की मेहरबानी से।

बादशाह के पूछने पर गुरु ने बताया कि "आपका लड़का बादशाह बनेगा। इसके मुँह से एक झूठ निकलेगा, तो संसार में हो जायेगा कि बादशाह झूठ बोला है। एक गरीब झूठ बोलता है, तो कम लोग जान पाते हैं।" गुरु बेरहमी नहीं, वह कुम्हार है। मार-पीटकर शिष्य को बढ़िया बना देता है। बिना गुरु के संसार का काम नहीं चल सकता है। साथ ही श्रद्धा चाहिये। गुरु ने कहा–'अ' कहो । शिष्य ने कोई तर्क नहीं किया कि इसको 'अ' क्यों कहें। गुरु ने जो पढ़ाया, पढ़ लिया। इसी तरह गुरु चाहिये और गुरु में श्रद्धा चाहिये।

❀ गुरु के बिना अंतःप्रकाश नहीं होगा, अंधकार का अंधकार रहेगा। हमको जो बताया जाये कि ऐसे साधन करो, हम पूछने लगें कि अंधकार में ध्यान करने से क्या होगा ? उत्तर में कहें कि प्रकाश मिलेगा। फिर हम पूछें कि प्रकाश कैसे मिलेगा ? तो इसमें श्रद्धा नहीं रहती। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा–"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।"

❀ जो सीखता है, वह गुरु की सेवा करता है। अपने समय में भगवान् श्री राम जी, श्री लक्ष्मण जी गुरु के पाँव दबाये थे। भगवान् श्री कृष्ण जी ने भी गुरु की सेवा की थी। कहते हैं, सेवा से मेवा मिलता है। बिना सेवा के मेवा नहीं पा सकता। मेवा का फल 'उत्तम फल' है। गुरु से दीक्षा लेकर साधन करे तो शांति-स्वरूप ईश्वर को पायेगा। शांति-स्वरूप ईश्वर को पा लेने पर फिर संसार में कभी दुःख उठाने के लिए नहीं आयेगा।

❀ गुरु की मेहरबानी है। मेहरबानी कब होती है ? जब उनकी खिदमत होती है। खिदमत क्या ? केवल गुरु के पैर-हाथ धोने को खिदमत

नहीं कहते हैं। जब कोई उनकी आज्ञा में चलता है, तब उनकी खास तरह से खिदमत होती है। गुरु की खिदमत करके वह रास्ता पाता है, जो रास्ता ईश्वर तक पहुँचाकर इस दुनिया से सदा के लिए बाहर कर देता है। जब तक पक्के गुरु नहीं मिलते हैं, तब तक लाख सिर पटकते रहो, अन्दर का वह असली रास्ता नहीं मिलता है।

❀ जो लोग गुरु में अटूट श्रद्धा नहीं रखते हैं, उनका कुशल मेरे जानते होने योग्य नहीं है। जो गुरु में अटूट श्रद्धा रखते हैं, उनके लिए मोक्ष-मार्ग का खुल जाना और अंत तक पहुँच जाना पूर्ण संभव है।

❀ जहाँ देखो वहाँ गुरु की महिमा है और शिष्य का सेवा-भाव भी बहुत है। शिष्य का सेवा-भाव कहाँ होना चाहिये ? जहाँ पूरा गुरु हो। शिष्य का सेवा-भाव हो और गुरु पूरा नहीं है, तो जो गुरु से पाना चाहिये, नहीं पा सकता है। घटरामायण का पाठ करने कहा मैंने। घट रामायण में है–

"तुलसी बिना करम किसी मुर्शद रसीदा के।
राहे निजात दूर है, उस पार देखना।।"

जब तक गुरु का दया-दान नहीं होता है– (गुरु हो गोरू नहीं) पूरा पहुँचा हुआ गुरु का दया-दान जब तक नहीं होता है, तब तक मोक्ष का रास्ता दूर है। और उस पार का देखना दूर है। गुरु पूरा हो और शिष्य धीरा हो, तो वह हीरा पावेगा। कबीर साहब ने कहा है–

"हीरा झलकै द्वार पर निरखै कोइ सूरा हो।।"

जो गुरु की सेवा करेगा वह सनाथ हो जायेगा। न तो उसे खाने, पीने, पहनने और ओढ़ने की कमी रहेगी और न परमार्थ से वह हीन रहेगा।

❀ एक अन्धकारमय स्थान और दूसरा प्रकाशमय स्थान–इन दोनों के बीच में देखो। लेकिन इतना कहने पर भी भेद बाकी बच जाता है। इसकी पूरी जानकारी तभी होगी, जब कोई सद्‌गुरु के आश्रित होते हैं। सभा में यह कहने की बात नहीं है, एकान्त में कहने की है। एकान्त में कहने की जगह कुछलोग अब कान फूँकने लग गये हैं और कान में क्या कहना है, इसको वे भूल गये हैं। ऐसे भी महात्मा हैं, जो कान फूँकते हैं और दक्षिणा लेते हैं।

❀ हे गुरु, हे गुरु का गाना हम जानते हैं। सब कोई हे गुरु, हे गुरु कहो। राम को गुरु, कृष्ण को गुरु, देवता लोगों को गुरु, जो रावण-कुंभकर्ण

थे, जिनको लोग खराब कहते हैं, वे लोग भी गुरु किये थे। गुरु से यत्न लो, भजन करो।

❀ बाबा नानक साहब ने कहा–

"जौं पाषाण नाव चढ़ि तरै। तौं प्राणी गुरु चरण लगि तरै।।"

जिस तरह पाषाण–पत्थर नाव पर चढ़कर पानी में चलकर पार हो जाता है, उसी प्रकार प्राणी–मनुष्य गुरु-चरण में लगकर संसार-सागर से पार होता है।

❀ गोस्वामी तुलसी दास जी ने कहा है–

"रामनाम कलि काम तरु, राम भगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूल जग, गुरु पद पंकज रेनु।।"

अर्थात् रामनाम कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे चले जाओ, तो जो इच्छा करो, सो पाओ। ईश्वर की भक्ति सुरधेनु है। सुरधेनु–वह गौ, जिससे सभी प्रकार के भोजन मिलते हैं। यह तो कल्पवृक्ष और कामधेनु की महिमा गायी है। इनसे बिल्कुल लाभ-ही-लाभ नहीं होता। लेकिन सब प्रकार के कुशल की जड़ है, गुरु के चरण-कमल की धूल।

❀ **"गुरु हैं बड़े गोबिन्द तें, मन में देखु विचार।**
हरि सुमरै तो वार है, गुरु सुमरै तो पार।।"

ऐसा संत कबीर साहब कहते हैं। इस प्रकार सब गुरु की ही बड़ाई करते हैं। लेकिन गुरु ज्ञान-दाता को कहना चाहिये। गुरु, गोरू–गाय या बैल नहीं होना चाहिये। यह कैसे होगा ? गुरु का संग किया जाये, तो हो जायेगा। वे मोक्ष-मार्ग को जानते हैं, नित्यप्रति साधना भी करते हैं, ज्ञान को समझाते हैं। कुबुद्धि को दूरकर संतमत को स्थिर करते हैं। कुछ दिनों तक उनका संग करने पर मालूम होगा। लोगों को मालूम हुआ है और होगा भी।

❀ गुरु कहाँ तक पहुँचे हैं, इतना नहीं जान सकते। यह हम जान सकते हैं कि वे मोक्ष-मार्ग को जानते हैं और नित्य कुछ साधना करते हैं। सच्चाई से संसार में रहते हैं या झुठाई से, यह भी जान सकते हैं। सच्चाई से रहते हैं, तो गुरु हैं। झुठाई से रहते हैं तो गुरु नहीं हैं। गुरु सच्चाई को अच्छी तरह सिद्ध करके दिखला देते हैं।

❀ 'गुरु' शब्द बहुत उत्तम है, जिसका अर्थ लोग बहुत तरह से करते

हैं और एक वह है, जो लोग गाँव-गाँव में जानते हैं। गुरु कहते हैं– ज्ञान देने वाले को, सिखलाने वाले को।

"गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सिख ले सोय।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु शिष्य न कोय।।"

–संतकबीर साहब

असल में गुरु ज्ञान स्वरूप हैं। शिष्य वह है, जो ज्ञान को धारण करे। जो गुरु ज्ञान नहीं दे सकता और जो शिष्य ज्ञान नहीं धारण कर सकता, तो न तो कोई गुरु और न कोई शिष्य ही है। आदिगुरु कोई हैं ? परमात्मा हैं। उनमें अपरिमित ज्ञान है। वेद का ज्ञान उन्हीं से आया है।

"ज्ञान कहे अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकाश।
निर्गुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।"

यह गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की दोहावली में है। मतलब यह कि गुरु वे होते हैं, जो अज्ञान पद से ऊपर उठकर ज्ञान कहने वाले हों। अज्ञान पद अंधकार है। उससे ऊपर यानी प्रकाश में जाकर ज्ञान का कथन करे। अंधकार के बाद प्रकाश में जाने के लिए सिवा दृष्टियोग के कोई यत्न नहीं है। निर्गुण का कथन करे तो ऐसा करे कि वहाँ सगुण नहीं हो अर्थात् सगुण से ऊपर उठकर निर्गुण का वर्णन करे। संसार में निर्गुण और सगुण दोनों मिले-जुले हैं। त्रयगुण–सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन तीनों गुणों से परे के पदार्थ का ध्यान करे और उनकी वहाँ की पहुँच रहे। ऐसे गुरु की पहचान वे ही कर सकते हैं, जो स्वयं ऐसे हों वा वैसे होने के पथ पर चलते हों। ऐसे ही गुरु का सत्संग और उनकी सेवा करें। जब गुरु का गुण जाना जाये, तब उनसे दीक्षा लेकर अपने कुछ साधना करे।

ऐसे गुरु जो सत्मार्ग पर चलने के लिए और आवरणों से पार होने के लिए बतावें, वे ही गुरु हैं। जो नहीं बता सके केवल कान फूँक दें वा एक शब्द बता दें, इसी में वे गुरु नहीं हो सकते। सेवा में सभी राजी रहते हैं। गुरु की सेवा करनी चाहिये।

"बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।"

–रामचरितमानस

जिनका वचन सूर्य-किरण के समान मोहरूपी अन्धकार को दूर करे, ऐसे कृपालु गुरु नररूप में हरि होते हैं। ऐसा ही गुरु चाहिये और सत्संग भी चाहिये। गुरु से सीखना चाहिये कि क्या करें– क्या साधना करें ? परमात्मा–ईश्वर सर्वसमर्थ हैं। वे कहाँ नहीं हैं ? हमारे, आपके–सबके अंदर हैं। लेकिन ज्ञान नहीं देते कि आवागमन के चक्र से कैसे छूटोगे ? जानकार गुरु के द्वारा वे सिखलाते हैं। उनका यही नियम है।

❁ जबतक गुरु नहीं तबतक तुम्हारे अंदर प्रकाश नहीं, और भवसागर से उद्धार नहीं। जितने विद्यालय हैं, सबमें किताबें रख दीजिये, कोई अध्यापक नहीं रहे तो छात्रों को क्या ज्ञान होगा ? गुरु की महिमा बहुत है। बाहर में शरीरधारी गुरु की बड़ी महिमा है। लेकिन गुरु गुरु हो, गोरू नहीं। जिस विद्या को जो सिखलावे, उसमें भी वे विशेष ज्ञानवान् हों। यह संतों की विद्या ईश्वर की प्राप्ति–साक्षात्कार कराने वाली है। ईश्वर की प्राप्ति कैसे होगी इसके लिए गुरु-ज्ञान की जरूरत है।

❁ गुरु की ऐसी भक्ति करो कि जिसका अंदाजा नहीं। सदा गुरु के साथ में कोई रहे, यह भी संभव नहीं। इसलिए कबीर साहब ने कहा है–

"जौं गुरु बसै बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक विछुड़ै नहीं, जौं गुन होय शरीर।।"

हमेशह गुरु की याद करो। द्वापर-युग में द्रोणाचार्य एक गुरु हुए थे। कौरव-पाण्डव को वे धनुर्विद्या सिखलाते थे। एक भील-पुत्र भी गया उनसे सीखने के लिए, तो आचार्य द्रोण ने कहा–"मैं राजकुमारों को सिखलाता हूँ, दूसरों को नहीं।" वह भील-पुत्र था एकलव्य। उसने द्रोण की मूर्त्ति बनाई और उसका ध्यान करते हुए धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। होते-होते वह उस विद्या में इतना प्रवीण हुआ, जितना अर्जुन भी नहीं था। एक दिन ये लोग जंगल में घूमते थे। एक कुत्ता भी उनके साथ में था। वह कुत्ता एकलव्य को देखकर भूँका। तो एकलव्य ने उस कुत्ते के मुँह में इतने तीर मारे कि उसका मुँह तीरों से भर गया, लेकिन एक बूँद भी खून नहीं गिरा। कुत्ता जब इन लोगों के पास वापस आया तो इनलोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस कुत्ते के पीछे-पीछे ये लोग चले। वह कुत्ता एकलव्य की कुटिया के पास खड़ा हो गया। द्रोणाचार्य ने पूछा–"यह विद्या तुमने किससे

सीखी ?'' एकलव्य ने कहा—''आपसे। आपकी मूर्त्ति बनाकर और उसका ध्यान करके मैं3ने इस विद्या को हासिल किया।'' कहने का तात्पर्य यह है कि जिसको गुरु में ज्यादा निष्ठा होती है, वह किसी-न-किसी तरह विद्या पाता है। गुरु के ख्याल से, गुरु के संग से लोग विद्या पाते हैं।

❀ जबतक अभ्यासी गुरु नहीं मिलेंगे, कैसे खोज करोगे, पता नहीं मिलेगा। बात-बात में गुरु की आवश्यकता होती है। बिना गुरु के एक अक्षर नहीं सिखते, माता-पिता भी नहीं सिखला सकते। ऐसे गुरु जो बता दें कि अन्धकार में कहाँ हो, वहाँ से कैसे चलना होगा ? ऐसे गुरु कहाँ से मिलते हैं ? सत्संग में मिलते हैं।

❀ गुरु में ज्ञान होना चाहिये और आचरण की पवित्रता होनी चाहिये। ऐसे गुरु के संग से शिष्य ज्ञान में आगे बढ़ता हुआ पूर्ण हो जाता है। ज्ञान में बढ़ते जाने का मतलब शरीर-ज्ञान में नहीं, आत्म-ज्ञान में बढ़ता है। आत्म-ज्ञान में रहने के कारण उनमें बहुत पवित्रता आती है। काम, क्रोध आदि विकार कमते जाते हैं और जब ज्ञान में पूर्ण हो जाता है, तो वह वैसे ही निर्विकार हो जाता है, जैसे परमात्मा निर्विकार है। इस तरह की पवित्रता पाकर वह साधक–शिष्य उस परम प्रभु परमात्मा में जा मिलता है।

❀ दो बातें हैं—एक तो गुरु अच्छा हो और दूसरा करने वाला शिष्य भी सच्चा होना चाहिये। गुरु ने काम किया अपने गुरु से जानकर और शिष्य ने काम किया अपने गुरु से जानकर। सब की जड़ है सत्संग। बराबर सत्संग करते रहने से गुरु के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। गुरु से सुनकर, उनसे भेद लेकर मनोयोग-पूर्वक साधना करता है, वह कृत-कृत्य हो जाता है। फिर वह संसार में नही आता है। गुरु की सेवा करते हुए सत्संग करते रहना चाहिये। और साधना करते हुए अंत में मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये।

❀ **''अकेला मत जाना वह राह।**
गुरु बिन नहीं होगा निर्वाह।।''

—राधास्वामी साहब

अपने को अपना गुरु मानकर चलना बुद्ध भगवान् की तरह हो तो हो सकता है। लेकिन उनके समान और दूसरे कोई नहीं हुए। गुरु से ज्ञान लेना उनका शिष्य होना है। गुरु से शिक्षा प्राप्त कर दीक्षा लेना, गुरु के

अधीनस्थ रहना है और इसी तरह रहकर साधन करना है। जैसे वृक्ष में आम लगा। कच्चा आम खट्टा होता है। होते-होते पक जाता है तो वही आम मीठा होता है। मेरे पिताजी कहते थे बुरबक का आम खट्टा होता है। मैं मन में कहता था कि ये क्या कहते हैं। आदमी बुरबक हो वा भला हो आम सबको एक समान लगता है। मैंने आम का एक पेड़ लगाया। वह फला तो आम खट्टा हुआ। उसी आम को पाल पर रखा तो मीठा हो गया। जब तक ठीक-ठीक साधनं पूर्ण नहीं हुआ तो आम खट्टा होता है। जबतक परिपक्व नहीं हुआ तबतक जो गुरु का संग छोड़ता है, गुरु का आदेश नहीं मानता है, तो उसमें ज्ञान पूर्ण नहीं होता है। इसलिए गुरु महाराज जी का कहना था कि संतमत का अधिक सिद्धांत नहीं है। केवल गुरु, ध्यान और सत्संग–ये तीन हैं। गुरु से शिक्षा लो, दीक्षा लो। जहाँ रहो उनकी आज्ञा के अनुकूल साधन-भजन करते रहो। तब बनते-बनते बन जाओगे।

❀ जैसे एक अक्षर जानने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है, उसी तरह इस अध्यात्म-ज्ञान के सिखलाने वाले गुरु के लिए आवश्यकता होती है। और इनकी बड़ी महिमा है। कहीं-कहीं इनको ईश्वर के तुल्य कहा गया है और कहीं-कहीं ईश्वर से बढ़कर। ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं हो सकता; लेकिन ईश्वर स्वयं प्रकट नहीं होते, संतलोग प्रकट होकर ईश्वर का ज्ञान बताते हैं। इसलिए ईश्वर से बड़े कहे जाते हैं।

❀ यह शरीर नाव है। जैसे नाव को ठीक-ठीक चलाने के लिए मल्लाह होता है, उसी तरह शरीर को ठीक से चलाने वाला, कुमार्ग से रोकने वाला सच्चा गुरु होते हैं। सच्चा गुरु वह है, जो सत्य-ज्ञान जानता है, उसमें बरतता है और दूसरे को कुमार्ग से बचाकर सत्-मार्ग पर लगाता है।

❀ गुरु को ठीक-ठीक समझिये। यह बात तो भूल जाओ कि बिना गुरु का तुमको इसका ज्ञान होगा। A,B,C,D, अलिफ, बे और क, ख, ग के लिए गुरु की जरूरत है और अध्यात्म-ज्ञान के लिए गुरु नहीं चाहिये ? ऐसे ज्ञान वाले हमारे यहाँ बड़े-बड़े लोग हैं। ये लोग हमारे देश के धर्म के मर्यादा को तोड़ते हैं। सद्गुरु चाहिये, अंतर-मार्ग चाहिये। योग-हृदय से रास्ता खुलता है। गुरु के बताने से चलो। गुरु के शरण में जाओ।

❀ भजन करने की युक्ति से विहीन को कितनाहू वैराग्य हो तो भी उसका काम पूर्ण रूप से बनने को नहीं है। इसलिए जानकार गुरु से युक्ति जान लेना चाहिये।

❀ प्रश्न–हुजूर! कबीर साहब का एक पद है–

"सतगुरु सबकुछ दीन्ह, देत कछु ना रहे।
हमही अभागिनी नारि, सुःख तजि दुःख लहै।।"

यह कैसी बात है। जब सब कुछ दे ही दिया फिर दुखी क्यों ?

उत्तर–पूज्य गुरुदेव (महर्षि मँहीँ परमहंस जी) ने कहने की कृपा की–"देखो जी, अगर राजा किसी को अपने खजाने की चाबी दे दे, तो कुछ देने को बाकी रहा ? लेकिन वह खजाना खोले ही नहीं, तो दुःखी रहेगा कि नहीं ? उसी तरह गुरु ने शिष्य को परमात्मा-रूपी खजाना की चाबी दे दिया है। यानी युक्ति बता दिया है। अगर वह करे नहीं तो दुःखी रहेगा ही रहेगा।"

❀ गुरु के समान और ऐसा कोई शक्तिमान दाता नहीं, जो हमें मोक्ष रूपी दान दे सके।

सर्व क्षण गुरु मन, जौं मँहीँ रहे हो।
निश्चय निर्वाण होय, संत सब कहैं हो।।
जौं गुरु कृपा तनिहुँ विचारैं, मिटय कल्पना सोग हे।
गुरु सम दाता साहिब नाहीं, गुरु गुरु जपिये लोग हे।।

❀ जब कभी पूरे और सच्चे सद्गुरु मिलेंगे तबही उनके सहारे अपना परम कल्याण बनाने का काम समाप्त होगा।

करि सत्संग गुरु खोज करिय, चुनिये गुरु सच्चा।
बिनु सद्गुरु का ज्ञान-पंथ, सब कच्चहि कच्चा।।
अभ्यासी गुरु सेवी हंसा, मुक्ति डगर चलि जाई।
चलत-चलत सतगुरु को पावत, भव दुःख सकल मिटाई।।

❀ सद्गुरु की आज्ञा पालन रूपी सेवा करते रहने से आप सुषुम्ना के वज्र कपाट को खोलकर उसमें प्रवेश कर सकेंगे।

गुरु मंत्र जप गुरु ध्यान कर गुरु सेव कर अति प्रीत कर।
गुरु की आज्ञा मान प्यारे कर सदा गुरु की कही।।

उस नाल का झीना दुआरा गुरु तुझे देंगे बता।
दोउ नैन नासा मध्य सन्मुख सूई अग्रदर ले लही।।

❀ मनुष्य को चाहिये कि वह सच्चे सद्गुरु का सहारा ले। और संसार रूपी समुद्र को पार कर जाये। बिना सद्गुरु के सहारा लिए संसार सागर को पार करना असंभव ही है।

❀ गुरु की उपासना से बढ़कर दूसरी और कोई उपासना नहीं है, क्योंकि मनुष्य को परमार्थ का पाठ पढ़ाने वाले, अध्यात्म की ओर ले जाने वाले जो होते हैं, वे गुरु ही होते हैं।

गुरु हितु हैं गुरु पितु हैं, गुरु ही जीव के मितु हैं।
गुरु सम कोई नहिं दूजा, जो जीवों को उधारा है।।
गुरु बिनु ज्ञान नाहीं, गुरु बिनु ध्यान नाहीं।
मेँहीँ न गुरु बिनु आने, उपकारी हो भाई।।

❀ सच्चाई और संतोष के बिना गुरु के पास जाने पर गुरु का ज्ञान नहीं पाता है। जो गुरु के पास सच्चाई और संतोष लेकर जाते हैं, वे ही प्रसाद लेकर जाते हैं, जिससे वे गुरु का ज्ञान पाते हैं।

❀ गुरु की सेवा करने से, उनकी आज्ञा में बरतने से गुरु और हरि दोनों की कृपा होती है।

सत्गुरु सेवत गुरु को सेवत मिट्त सकल दुःख झेला रे।

❀ पूरे और सच्चे गुरु की पहचान अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी जो शुद्धाचरण रखते हैं, जो नादानुसंधान का अभ्यास करते हैं और जो संतमत को अच्छी तरह से समझा सकते हैं, उनमें श्रद्धा रखनी और उनको गुरु धारण करना अनुचित नहीं। दूसरे-दूसरे गुण कितने भी हो, परन्तु आचरण में यदि शुद्धता नहीं पाई जाये तो वह गुरु नहीं है।

❀ सत्संग, सदाचार, गुरु की सेवा और ध्यानाभ्यास—साधकों को इन चारो चीज की अत्यंत आवश्यकता है। इन चारो में मुख्यता गुरु-सेवा की ही है।

पाखंड अरुऽहंकार तजि, निष्कपट हो अरु दीन हो।
सबकुछ समर्पण कर, गुरु की सेव करनी चाहिये।।
सत्संग नित अरु ध्यान नित, रहिये करत संलग्न हो।

व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा, झूठ तजना चाहिये।।

❀ गुरु भक्ति के विरोध में कुछ कहना फजूल है। गुरु की भक्ति में उनकी आज्ञाओं को मानना मुख्य बात है।

गुरु की भक्ति साधु की सेवा,बिनु नहिं कछुहू पाई हो।
याते भजो गुरु गुरु नित ही, रहो चरण लौलाई हो।।
दुख दर्द भव के सब मिटैं सतगुरु चरण नित सेइये।
गुरु भक्ति बिन कछु ना बने, मेँहीँ सकल संतन कही।।

❀ जीवन काल में जिनकी सुरत सारे आवरणों को पारकर शब्दातीत पद में समाधि-समय लीन होती है और पिण्ड में बरतने के समय उन्मुनी रहनी में रहकर सार-शब्द में लगी रहती है, ऐसे जीवन-मुक्त परमसंत पुरुष पूरे और सच्चे सद्गुरु कहे जाते हैं।

❀ ईश्वर-भक्ति के लिए गुरु की बहुत जरूरत है। बिना सद्गुरु के कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई शिव के सामान हो तो भी अपने अंदर की शक्ति को–ईश्वर को ठीक-ठीक नहीं समझ सकता।

❀ जो कुछ गुरु देंगे, वही राम दे सकेंगे और जो कुछ गुरु नहीं देंगे सो राम कभी नहीं दे सकते हैं।

ईश्वर देव पितर परिजन सों, होत न यह उपकार।
यह मेँहीँ होवत गुरु से ही, गुरु की अमित बलिहार।।
देवी देव समस्त पूरण ब्रह्म परम प्रभु।
गुरु में करैं निवास कहत हैं संत सभू।।
प्रभुहू से गुरु अधिक जगत विख्यात अहैं।
बिनु गुरु प्रभु नहिं मिलैं यदपि घट माँहि रहैं।।
उर माहीं प्रभु गुप्त अँधेरा छाइ रहै।
गुरु गुर करत प्रकाश प्रभु को प्रत्यक्ष लहै।।
हरदम प्रभु रहैं संग कबहुँ भव दुख न टरै।
भब दुख गुरु दें टारि सकल जय जयति करैं।।
तन मन धान को अरपि गुरु पद सेव करो।
मेँहीँ आज्ञा पालि दुस्तर भव सुख से तरो।।

❀ जिसने सद्गुरु से सद्युक्ति प्राप्त कर अपनी फैली हुई चेतन-वृत्ति

को अंधकार से समेटकर प्रकाश में पहुँचा दिया है। वही ''सगुरा'' है। उसे ही अंतर के ''नामामृत'' की प्राप्ति होती है।

❁ जो गुरुदत्त युक्ति का पालन करने में असमर्थ होकर अंधकार में ही अपनी चेतन-वृत्ति को उलझाये हुए हैं। वह भजन भेद लेने पर भी ''निगुरा'' ही है।

योग हृदय में वास ना, तन वास है तो क्या।
सत सरल युक्ति पास ना, और पास है तो क्या।।
सद्गुरु कृपा की आस ना, और आस है तो क्या।
करता जो नित अभ्यास ना, विश्वास है तो क्या।।
अन्तर में हो प्रकाश ना, बाहर प्रकाश क्या।
अन्तर्नाद का उपास्य ना, दीगर उपास्य क्या।।
पालन हो सदाचार ना, आचार मेँहीँ क्या।
गुरु-हरि-चरण में प्रीति ना, रूखा विचार क्या।।

❁ संतमत में गुरु को बड़ा महत्त्व दिया गया है। इसलिए गुरु कहलाकर यदि गुरुआई ठीक नहीं जानते, केवल लेन-देन के हिसाब में गुरु हैं, तो वे यर्थाथ में गुरु नहीं हैं। गुरु को अध्यात्म-ज्ञान होना चाहिये।

❁ बिना गुरु के कुछ सीखा नहीं जाता है। कोई कहे कि बिना गुरु के सीखा है, माना नहीं जा सकता है। जितने मखतब हैं, विद्यालय हैं, महाविद्यालय हैं उनमें से गुरु को निकाल दिया जाये, तो वे किसी काम के नहीं रहेंगे। माता-पिता भी गुरु होते हैं। बचपन में वे सिखलाते हैं। फिर विद्यालय में जाते हैं, वहाँ सिखते हैं। फिर विद्वान् होते हैं। बिना गुरु के कुछ नहीं होता, इसलिए अभी पहले गुरु कीर्त्तन का गान होगा और साथ-साथ ताली बजेगी, कोई बाजा नहीं बजेगा–

भजु मन सतगुरु सतगुरु सतगुरु जी ।।1।।
जीव चेतावन हंस उबारन, भव भय टारन सतगुरु जी। भजु० ।।2।।
भ्रम तम नाशन ज्ञान प्रकाशन, हृदय विगासन सतगुरु जी। भजु० ।।3।।
आत्म अनात्म विचार बुझावन, परम सुहावन सतगुरु जी। भजु० ।।4।।
सगुण अगुणहिं अनात्म बतावन, पार आत्म कहैं सतगुरु जी। भजु० ।।5।।
मल अनात्म ते सुरत छोड़ावन, द्वैत मिटावन सतगुरु जी। भजु० ।।6।।
पिंड ब्रह्मांड के भेद बतावन, सुरत छोड़ावन सतगुरु जी। भजु० ।।7।।
गुरु-सेवा सत्संग दृढ़ावन, पाप निषेधन सतगुरु जी। भजु० ।।8।।

सुरत-शब्द-मारग दरसावन, संकट टारन सतगुरु जी। भजु० ।।9।।
ज्ञान विराग विवेक के दाता, अनहद राता सतगुरु जी। भजु० ।।10।।
अविरल भक्ति विशुद्ध के दानी, परम विज्ञानी सतगुरु जी। भजु० ।।11।।
प्रेम दान दो प्रेम के दाता, पद राता रहें सतगुरु जी। भजु० ।।12।।
निर्मल युग कर जोड़ि के विनवौं, घट-पट खोलिये सतगुरु जी। भजु० ।।13।।

श्रीरामकृष्ण परमहंस जी की वाणी :-

वैद्य तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य केवल नाड़ी देखकर "यह लो दवा, खा लेना" कहकर चला जाता है, वह अधम श्रेणी का होता है। जो मीठी बातों द्वारा रोगी को समझाता है कि "औषधि-सेवन से लाभ ही होगा" वह मध्यम श्रेणी का होता है। और जो रोगी को किसी प्रकार से भी औषधि-सेवन करता न देख उसके सीने पर सवार हो मुँह खोलकर उसे दवा पिला देता है, वह उत्तम श्रेणी का होता है। इसी प्रकार जो गुरु या आचार्य धर्म शिक्षा देकर शिष्य की कोई खबर नहीं रखते, वे अधम गुरु हैं। जो शिष्य के मंगल के निमित्त बारम्बार प्यार से समझाते रहते हैं जिससे शिष्य उनके उपदेश धारण करे, वे मध्यम प्रकार के होते हैं। और जो यह देखकर कि शिष्य ठीक-ठीक उनके उपदेशों का पालन नहीं करता, उसके ऊपर जबर्दस्ती तक करते हैं, उनकी गणना उत्तम गुरुओं में होती है।







ईश्वर और उनका स्वरूप



꧁ संतमत वैदिक-धर्म का वह अंग है, जो ईश्वर-प्राप्ति का ज्ञान देता है। अन्य धर्म के लोग कहते हैं कि आप तो बहुत ईश्वरों को मानते हैं। मैं कहता हूँ, हम तो एक ही ईश्वर मानते हैं। फिर वे कहते हैं–''आप तो राम को, शिव को, देवी आदि कितने को ईश्वर कहते है।'' मैंने कहा कि सब रूपों में वह एक-ही-एक है। अच्छा कहिये, यह आपका जिस्म है ? ''आप यह क्या पूछ रहें हैं!'' उन्होंने कहा। मैंने कहा–''आप कहिये तो सही।'' उन्होंने कहा–''हाँ, यह मेरा जिस्म है।'' मैंने कहा–''यह आपका जिस्म क्यों है ?'' वे चुप रहे। मैंने कहा–''इसलिए न, कि इस जिस्म में आप रहते हैं ?'' उन्होंने कहा–''हाँ।'' मैंने कहा–''एक जिस्म में आप रहते हैं, तो वह जिस्म आपका है और जो सब जिस्मों–रूपों में रहता है, तो इस न्याय से सब जिस्म, सब रूप उसके क्यों नहीं होंगे।''

꧁ शरीर में जो सार है और ब्रह्माण्ड में जो सार है, इन दोनों में कुछ अंतर है कि नहीं ? कोई कहता है, अंतर नहीं, एक ही है। यह शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत है। दूसरा वह है, जो कहता है कि पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्यापक एक ही ईश्वर है, परन्तु पिण्ड में ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा और भी है, जिसे जीव कहते हैं। हमारे यहाँ ऐसे विचार के ज्ञान को ही वेदान्त-दर्शन कहते हैं। इसके छह आचार्यों नें छह प्रकार के सिद्धांत बताये हैं–अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैती और त्रैत।

यह छहो विचार आज तक आपस में लड़ते हैं; परन्तु ये सब मिल-जुल कर एक सिद्धान्त पर नहीं आये हैं। इनमें से एक-एक के दूसरे-दूसरे पर ऐसे-ऐसे प्रश्न हैं, जिनका पूर्ण समाधान कर देने के उत्तर नहीं मिलते हैं। एक कहता है कि माया देश काल के ज्ञान से अनादि है, किन्तु उपज ज्ञान से सादि है; क्योंकि यह ब्रह्म से उपजी हुई है। जहाँ देश होगा वहाँ समय जरूर होगा। माया कब से है, बता नहीं सकते हैं, किन्तु उसका अन्त है इसलिए उसे अनादि-शांत कहते हैं। माया को भ्रम कहे, चाहे इसकी स्थिति माने, किन्तु दोनों माया के पार होने कहते हैं।

"प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।
ब्रह्म निरीह विरज अविनासी।"
—रामचरितमानस

अद्वैतवादी के ऊपर यह प्रश्न होता है कि यदि एक-ही-एक है, दूसरा कुछ नहीं है, तो भ्रम किसको हुआ ? सर्प और रस्सी दोनों को देखता है, तब उसको धुँधली रोशनी में भ्रम होता है; किन्तु जिसने कभी साँप को देखा नहीं है, उसको भ्रम क्यों होगा ? यहाँ अद्वैत सिद्धांत भी ठंडा पड़ जाता है। द्वैत वाले से प्रश्न होता है कि आप ब्रह्म को स्वरूप से अनादि मानते हैं कि देश-काल-ज्ञान से अनादि मानते हैं ? तो कहेंगे कि वह सब तरह से अनादि है। तत्त्व रूप से अनादि-अनंत है, तो फिर प्रश्न होगा कि अनादि-अनंत एक ही हो सकता है या दो ? तो कहना पड़ेगा कि अनंत एक ही हो सकता है। तत्त्व-रूप में अनंत एक ही हो सकता है, जिसकी सीमा नहीं हो। असीम या अनंत तत्त्व एक ही हो सकता है, दो नहीं। यदि दो मानो, तो दोनों की सीमा जहाँ होगी, दोनों ससीम हो जायेंगे। दो पदार्थ तब मालूम होंगे जब सीमा मालूम हो। असीम या अनंत एक ही होगा। तत्त्व में उससे दूसरा तत्त्व उसके अन्दर मानो तो वह दूसरी चीज जो उसके अन्दर होगी, उस पदार्थ से उसको फुटाने के लिए कुछ सीमा बतानी होगी। जहाँ सीमा होगी, वहीं दो हो जायेंगे। यदि कहो कि अनंत उसके परमाणु-परमाणु में व्यापक है, तो परमाणु वह वस्तु है, जिसमें पोल (रिक्त स्थान) नहीं होता, जो उसमें दूसरा कुछ घुसेगा। तब यह कहा जायेगा कि जो उसके परमाणु में भी व्यापक है, तब वह परमाणु भी उसी से बना हुआ है। मैं कहता हूँ, इन सब झगड़ों से अलग रहो। द्वैत मत वाले अपने मत को जबर्दस्त और अद्वैत मत वाले अपने मत को जबर्दस्त बताते हैं। दोनों अपने-अपने मत पर अड़े हैं। किन्तु नम्रता से कहो कि एक परमात्मा हीं सब तरह से अनादि-अनंत है, तो इसको सब मानते हैं। इसकी खोज में चलो। खोज कर निर्णय हो जायेगा कि क्या है ? उसको प्राप्त करने से जिस सुख के लिए अभी ललचते हो उसको प्राप्तकर लोगे, नित्य सुख मिलेगा।

❀ ईख का रस सार है, दूध का सार घृत है, मेहँदी की लाली उसका सार है। जिस मेहँदी में लाली नहीं हो, जिस दूध में घृत नहीं हो, जिस ईख

में रस नहीं हो, वह किस काम का ! जुन्हरी में भी रस होता है, लेकिन उसमें मिठास नहीं होती। उसी तरह जिस मत में ईश्वर-स्वरूप का सही ज्ञान नहीं, वह मत सार से बिल्कुल खाली है।

❁ इन्द्रियगोचर पदार्थ परमात्मा नहीं हो सकता। इन्द्रियों के ज्ञान में वह आ नहीं सकता।

श्वेतकेतु एक मुनिपुत्र था। उन्होंने अपने पिता से ब्रह्म-स्वरूप की जिज्ञासा की। मुनी ने श्वेतकेतु से कहा कि तुम वटवृक्ष से एक फल ले आओ। आज्ञा पाकर मुनी-पुत्र ने तुरंत एक फल ले आया। पिता ने कहा कि इस फल को टुकड़ा करो। श्वेतकेतु ने उसका टुकड़ा किया। पिता ने पूछा–"इसमें क्या है ?" पुत्र ने कहा–"इसमें छोटे-छोटे कई दानें हैं।" पिता ने कहा–"एक दानें को लेकर उसे भी तोड़ डालो और देखो कि क्या है ?" श्वेतकेतु ने उसे तोड़ा और कहा कि "इसमें दो दालें हैं।" पिता ने पुनः पूछा–"उन दोनों दालों के बीच में क्या है ?" पुत्र ने कहा–"दोनों दालों के बीच में कुछ नहीं है।" पिता ने कहा–"यदि दोनों दालों के बीच में कुछ नहीं है तो वृक्ष कैसे हुआ ? बीच में कुछ अवश्य है, वह अव्यक्त है। जिससे वृक्ष हुआ वह इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं है। (वैसे ही परमात्मा है)।"

❁ अंधकार, प्रकाश और शब्द–इन तीनों शून्यों के पार में जो है, उसको निर्गुण वा सगुण कुछ भी नहीं कह सकते। यहाँ गुण का अर्थ त्रयगुण से है और गुण का अर्थ, विशेषता और प्रशंसा भी होता है। गुण सहित नहीं, त्रयगुण नहीं–निर्गुण। परन्तु जब निर्गुण भी नहीं, तब वह क्या है ? यह बोध में आना बहुत कठिन होता है। परा प्रकृति चेतन् और अपरा प्रकृति जड़ है। ये ही श्रीमद्भगवद्गीता के अक्षर-पुरुष और क्षर-पुरुष हैं। परन्तु पुरुषोत्तम को इन दोनों से श्रेष्ठ बतलाया गया है। विचारने पर गीतोक्त ज्ञानानुकूल ही सन्तों की वाणियों में भी सगुण-निर्गुण, क्षर-अक्षर के परे परमात्म-स्वरूप का ज्ञान जानने में आता है।

❁ सूर्य इतना बड़ा है कि वह धरती से कई हजार गुणा बड़ा है। आकाश में जो बादल है, वह सूर्य को ढ़ँक लिया; ऐसा कहना अज्ञानता है। वह बादल आपकी दृष्टि को ढ़ँक लिया है, न कि सूर्य को ढ़ँक लिया है। जिस तरह बादल सम्पूर्ण सूर्य को नहीं ढ़ँक सकता, वैसे ही माया परमात्मा

को ढँक नहीं सकती। परमात्मा सब जगह है, सब में है; जिसको आप पवित्र-से-पवित्र और घृणित-से-घृणित मानते हैं। आकाश में कहीं धुआँ, कहीं धूलि उड़ रही है और कहीं अंधकार-ही-अंधकार है। किन्तु सब में होते हुए आकाश धुआँ, धूलि और अंधकार से परे भी हैं। आकाश का वह रूप, जो उसका निज रूप है; अंधकार, धुआँ और धूलि को पार करो फिर देखोगे। आकाश पर अंधकार, धुआँ और धूलि कुछ सट (चिपक) नहीं सकती। तीनों रहने पर भी वह निर्मल-ही-निर्मल रहता है। इसी तरह परमात्मा सब में रहने पर भी पवित्र और निर्लेप रहता है। सब में रहते हुए एक मण्डल में अंश-रूप से रहता है। अंश का अर्थ टुकड़ा नहीं, अभिन्न अंश। इस तरह से ईश्वर सब में रहता हुआ सबसे न्यारा, सबसे निर्लेप है। आत्मगम्य है, इन्द्रिय-गम्य नहीं।

ईश्वर को तुम क्या जानते हो ? सोचो, संसार में इसके दो भाग हो सकते हैं—एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त। व्यक्त में विश्वास होता है, अव्यक्त में नहीं। अव्यक्त में विश्वास होना असाधारण है। सर्वसाधारण व्यक्त-अव्यक्त नहीं जानते हैं, तो जानना चाहिये कि जो इन्द्रियों को व्यक्त है—गोचर है, वह व्यक्त और जो इन्द्रिय-गम्य नहीं है, वह अव्यक्त है। तुम अपने को सोचो कि तुम अव्यक्त हो या व्यक्त ? तुम स्वयं अव्यक्त हो। यदि तुम कहो कि मैं भी नहीं हूँ, मेरा रहना भी नहीं है, तो सोचो कि जाग्रत् से स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में जाते हो, क्या हालत होती है ? जाग्रत् से स्वप्न में जाने के पहले तन्द्रा होती है। किसी को अल्पकालिक, किसी को दीर्घकालिक। तन्दुरूस्त को तन्द्रा और स्वप्न अधिक नहीं होते हैं। पहले तन्द्रा आती है, फिर स्वप्न और पीछे सुषुप्ति। तन्द्रा में ऐसा मालूम होता है कि मैं कुछ बाहर का जानता हूँ और भूलता भी जाता हूँ। होते-होते ऐसा होता है कि बाहर का जानना बिल्कुल बंद हो जाता है। और मानसिक भावनाएँ स्वप्न में दीखने लगती हैं। तन्द्रा को अधनिनियाँ भी कहते हैं। उसमें देखते हैं कि हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। होते-होते स्वप्न में चले जाते हैं। किसी के मुँह में मिश्री का टुकड़ा हो और वह सपनावे कि मैं नीम खाता हूँ, तो उसको मिश्री का नहीं, नीम का स्वाद मालूम होने लगेगा। जब आप सोने लगते हैं, तब अन्दर-ही-अन्दर एक चाल होती है—बाहर से भीतर

की ओर। अन्दर में चलने के लिए एक स्वाभाविक चाल होती है। अब विचारो कि अन्दर-अन्दर चलने वाला तुम हो कि तुम शरीर हो ? स्वाभाविक चाल जो अन्दर-अन्दर होती है–जाग्रत् से स्वप्न में जाने की, वह व्यक्त है या अव्यक्त ? फूल आँख के लिए व्यक्त है, गन्ध अव्यक्त है, वह केवल नाक के लिए व्यक्त है। कान न देख सकता है, आँख न सुन सकती है। एक इन्द्री के लिए एक ही विषय व्यक्त है। इस तरह जिस इन्द्री के लिए जो विषय अव्यक्त है, वह इन्द्री यदि उस अव्यक्त विषय की स्थिति नहीं माने तो यह उसकी भूल और अयुक्त बात है। अपनी अवस्थाओं पर विचार करने पर यही मालूम होता है कि मैं भी अव्यक्त हूँ। कोई पूछे कि आपको अपने अन्दर-अन्दर चाल हुई, इसको अपनी चाल कहकर आपने क्यों माना ? यह साफ है कि वह चाल जो हुई, यदि नहीं होती तो मैं अपने को नहीं जानता। वह मैं हूँ, जिसके लिए कहा जाता है कि तन्द्रा के आने पर वह बाहर से अन्दर की ओर होता है, उसको "मैं हूँ, मैं हूँ" कहता हूँ; लेकिन वह है अव्यक्त। इस तरह जब मैं ही अव्यक्त भाव में रहता हुआ हूँ, तब ईश्वर को अव्यक्त कोई कहता है, तो क्या आश्चर्य और अयुक्त बात है।

❁ सबसे विशेष व्यापक ईश्वर वा परमात्मा ही है और एक-ही-एक है। व्यापकता में क्या गुण होता है। देखो, एक सेर बर्फ जितनी दूर में व्यापक होगा, उसका पानी बना लेने पर वह उससे अधिक व्यापक होगा। फिर उस पानी का वाष्प बना लिया जाये तो वह और भी उससे विशेष व्यापक होगा। अर्थ यह हुआ कि सूक्ष्मता में व्यापकता अधिक होती है। जो सबसे अधिक व्यापक होता है, वह सबसे अधिक सूक्ष्म भी होता है। बुद्धिमान को इसके मानने में कोई कसर नहीं होनी चाहिये।

❁ सूर्य को देखकर कोई नहीं कह सकता कि सूर्य नहीं है। यहाँ भारत में सूर्य देखो और दूसरे देश में जाकर देखो, एक ही तरह का सूर्य है। यहाँ का दूसरा और वहाँ का दूसरा सूर्य, ऐसा नहीं है। यहाँ जो गुण है, वहाँ वही गुण है। यहाँ सूर्य को पहचानने वाला इंग्लैंड में भी वैसा ही पहचानता है। इसी तरह दूसरे-दूसरे देशों में इसी तरह ईश्वर है। वह एक-ही-एक है। यहाँ देखो जैसा, दूसरे देश में जाकर देखो तो वैसा ही है। अगर देख सको, तो अपने अन्दर जैसा, दूसरे के अन्दर भी वैसा ही। यही ईश्वर है और सब

ईश्वर की माया है। बाहर में राम के दर्शन करो, कहो कि ईश्वर है। कृष्ण के दर्शन करो, कहो कि ईश्वर है; परन्तु सब संसार में ऐसा नहीं कि राम ईश्वर है और कृष्ण ईश्वर है। अपने भारत में राम और कृष्ण का बहुत आदर है, फिर भी तमाम लोगों का एक ही विचार नहीं है कि राम और कृष्ण ईश्वर हैं। अपना देश धर्म का मिलाप देश है। अपने देश में वैदिक-धर्म मूल है। इसके अन्दर बहुत-से सम्प्रदाय और पन्थ हैं। सब कोई मिलकर कहो कि राम और कृष्ण ईश्वर हैं, मानने को तैयार नहीं। वेद को सनातन धर्म के लोग और आर्य समाज वाले भी मानते हैं; फिर भी, सनातनी राम-कृष्ण को ईश्वर मानते हैं और आर्यसमाजी नहीं मानते। इसी तरह काली और दुर्गा को सभी कोई ईश्वर नहीं मानते। जबकि अपने देश की ही यह बात है, तो फिर अन्य देशों की क्या बात है!

जबकि सूर्य को संसार में सभी लोग सूर्य मानते हैं। इसी तरह एक ईश्वर का ज्ञान होना चाहिये, इसी में सबको आना है, नहीं तो ईश्वर का ज्ञान नहीं है। ईश्वर एक ही हैं।

❁ जितने पदार्थ संसार में हैं, चाहे इस देश के वा दूसरे देश के, सभी पदार्थों की बदली होती है। श्रीराम और श्रीकृष्ण का शरीर बच्चा था और फिर बढ़ते-बढ़ते वे सयाने हुए। यह बदली है। इसी तरह जहाँ-जहाँ बदली है, आप इन्द्रियों से जानते हैं। जहाँ बदली नहीं है, वहाँ इन्द्रियों का ज्ञान नहीं होता। आप कहेंगे कि काली माई, शिवजी का रूप तो नहीं बदला। मैं कहूँगा कि विविध प्रकार की कहानियाँ पुराणों में हैं।

रावण मारा गया। लंका से राम अयोध्या आये। बातचीत हुई कि लंका में सबसे बड़ा वीर कौन था ? किसी ने रावण को, किसी ने कुंभकर्ण को और किसी ने मेघनाद को बताया। पीछे निर्णय हुआ कि मेघनाद सबसे बड़ा वीर था। रावण का कुछ देवताओं से भी युद्ध हुआ। रावण से जो काम नहीं हुआ, मेघनाद से वह काम हुआ। देवताओं से युद्ध करने में रावण इन्द्र को नहीं पकड़ सका और मेघनाद ने पकड़ लिया। मेघनाद को लक्ष्मण ने मारा। लक्ष्मण जी की वीरता अद्‌भुत ठहरी। सीता जी बोली कि न तो राम ईश्वर हैं, न लक्ष्मण। वीरता में शक्ति की प्रधानता है और वह शक्ति मैं हूँ। सीता जी बोली कि शक्ति से रावण वा कुंभकर्ण वा मेघनाद पछड़ा। इसलिए सबसे

बढ़कर शक्ति है। वह शक्ति तो मैं ही हूँ। यहाँ शक्ति की बड़ी प्रधानता है। विचारो तो शक्ति स्त्री है वा पुरुष है वा सजीव प्राणी है ? शक्ति न स्त्री है, न पुरुष है और न सजीव प्राणी है। जब यह बात निकली, तो सीता जी बोली कि एक और रावण है, उसको देखें कौन मारते हैं। एक कल्पीय रामायण है, उसमें मैंने पढ़ा। उस रावण के यहाँ सीता-राम-लक्ष्मण तीनों गये। युद्ध हुआ, वह ऐसा था कि एक के अनेक रूप हो जाते हैं। वह अपने बैठा रहता, उसके अनेक रूपों से राम-लक्ष्मण लड़ते-लड़ते थक गये। उनके खून की बूँद से रावण बन जाता था। श्रीराम और लक्ष्मण अघात खाकर गिर पड़े। तब सीता जी ने काली का रूप धारण कर क्रोध करके उसपर प्रहार किया। इतना बड़ा रूप किया कि उसका भार कौन संभाले। शिवजी शव का रूप धारण कर उसके पैर के नीचे चले गये। जबतक युद्ध हुआ, शिवजी पर दृष्टि नहीं पड़ी। युद्ध समाप्त होने पर पड़ी। देखा कि शिवजी शव के रूप में हैं। कभी काली का रूप, कभी सीता का रूप; क्या इसमें बदली नहीं है ?

नानक पंथ के दूसरे गुरु अंगद साहब थे। उनके समधी अमरदास जी तीसरे गुरु थे। एक बार अमरदास जी महाराज हिंगुला देवी की पूजा करने जा रहे थे। उस यात्रा काल में उन्होंने गुरु अंगद देव जी के यहाँ रात्रि-निवास किया। गुरु अंगद देव जी ने अमरदास जी महाराज का बहुत आदर-सत्कार किया। रात्रि-विश्राम के बाद ब्राह्ममुहूर्त्त में जब अमरदास जी महाराज की नींद टूटी, तो वे देखते हैं कि एक महासुन्दरी देवी गुरु अंगद देव जी के दरवाजे पर झाड़ू लगा रही है। अमरदास जी महाराज ने उन देवी से पूछा कि आप कौन हैं ? आप यहाँ झाड़ू क्यों लगा रही हैं ? उत्तर में देवी ने कहा–तुम कहाँ जा रहे हो ? अमरदास जी ने कहा कि मैं हिंगुला देवी की पूजा करने जा रहा हूँ। देवी ने कहा कि वह हिंगुला देवी मैं ही हूँ। अमरदास जी महाराज ने कहा कि माता जी! आप यहाँ झाड़ू लगा रही हैं ? देवी ने कहा–"अरे! ये तो संत हैं। इनके यहाँ लक्ष्मी और सरस्वती जी भी झाड़ू लगाकर अपने सौभाग्य को सराहती हैं।" यह कहकर देवी जी अन्तर्धान हो गई।

यहाँ भी देवी रूप बदलती है। आजकल वाजितपुर का नाम पड़ गया है विद्यापति नगर। विद्यापति जी शिवजी के भक्त थे। वे भजन गाते थे,

शिवजी सुनते थे। शिवजी नौकर रूप से विद्यापति के पास रहने लगे; 'उगना' रूप से रहते थे। इस तरह से शिवजी का रूप बदलता है। भस्मासुर को शिवजी ने वरदान दिया कि जिसके सिर पर तुम हाथ रखोगे, वह भस्म हो जायेगा। जब भस्मासुर को यह वरदान मिला, तो भस्मासुर के मन में यह आया कि यदि शिवजी के माथे पर अपना हाथ रखूँगा तो यह भस्म हो जायेंगे और पार्वती जी मेरी हो जायेगी। भस्मासुर ने जैसे शिवजी की ओर हाथ बढ़ाया, तो शिवजी भागते जाते थे और भस्मासुर पीछा करता जाता था।

इस प्रसंग से यह भी ज्ञात होता है कि शिवजी का शरीर भी भस्म हो सकता था। इसीलिए तो वे भागते-फिरते थे। शिवजी की रक्षा के लिए विष्णु भगवान् पार्वती के रूप में भस्मासुर के सामने प्रकट हुए। भस्मासुर से कहा कि यदि तुम मुझे अपनाना चाहते हो, तो जिस तरह भगवान् शंकर एक हाथ कमर पर और एक हाथ माथे पर रखकर नाचते थे, उसी तरह तुम भी अपने हाथ को कमर और माथे पर रखकर नाच दिखाओ। भस्मासुर जैसे ही अपनी कमर और अपने माथे पर हाथ रखा, वह स्वयं ही जलकर भस्म हो गया। इस तरह विष्णु भगवान् के रूप में भी बदली होती है। इस तरह विष्णु, शिव, शक्ति—सबके रूपों में बदली होती है। भले ही उन बड़े-बड़े देवों के रूपों का नाश अधिक-से-अधिक दिनों में हो, लेकिन कभी-न-कभी बिना नष्ट हुए बच नहीं सकते; लेकिन ईश्वर का नाश कभी नहीं होता। इस तरह जो बदले और नष्ट हो, उसको माया समझो; ईश्वर वह नहीं है।

❀ नास्तिक को भी ईश्वर मानना पड़ता है। जब उससे पूछो कि "सबसे प्रथम क्या था ?" यदि कहे कि कुछ नहीं था, तो उसी नहीं कुछ को ईश्वर कहते हैं। कुछ नहीं इसलिए कहते हैं कि वह मन-इन्द्रिय के ज्ञान में नहीं है। जो मन-इन्द्रिय के ज्ञान में नहीं आवे वही ईश्वर है।

❀ क्षर—पुरुष नाशवान है, इसमें अदल-बदल होता रहता है। संसार में सभी पदार्थ नाशवान हैं। नाशवान पदार्थ को ही क्षर-पुरुष कहते हैं। शरीररूपी क्षर में अनाश तत्त्व है—जीवात्मा, वही अक्षर है । एकरस रहता है, उसमें अदल-बदल नहीं होता है। वह निर्गुण है। क्षर नाशवान है और सगुण है। पुरुषोत्तम क्षर पुरुष सगुण और अक्षर पुरुष निर्गुण से भी परे है। इतना

केवल वचन से समझने के लिए कहा। यदि सही-सही जानना चाहते हो, तो अपने अन्दर चलो।

❁ वेदान्त वही है जो बताता है कि जीवात्मा क्या है ? प्रकृति या माया क्या है ? ब्रह्म क्या है ? अर्थात् ब्रह्म, जगत् और जीव क्या है ? अवश्य ही वेदान्त शास्त्र कुछ छोटा शास्त्र नहीं है। इसी में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, त्रैत आदि हैं। इन "वाद" वाले आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं, लेकिन ईश्वर-विषय में सभी एक हैं। प्रकृति और जीव के विषय में भिन्न हैं।

❁"ईश्वर" शब्द को लोग बहुत जगह प्रयोग करते हैं। जैसे नर +ईश्वर कहने से राजा का ज्ञान होता है। देवेश और देवेश्वर में भी ईश, ईश्वर लगा हुआ है। यहाँ ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं है। जैसे नरेश्वर से बढ़कर देवेश्वर है, तो देवेश्वर के ऊपर देव ब्रह्मा हैं। उनसे भी बढ़कर विष्णु हैं। देवियों के लिए भी ईश्वर शब्द प्रयोग हुआ है। किन्तु यहाँ जिस ईश्वर के लिए कहा जाता है, उससे बढ़कर कोई नहीं।

❁ परमात्मा के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग है। यहाँ एक ईश्वर की मान्यता है। अनेक शरीरों के अनेक जीवात्माओं को अनेक मानने से अनीश्वरवाद होता है, न कि ईश्वरवाद। ईश्वर-ज्ञान के लिए क्या वेद, उपनिषद्, संतवाणी सबमें है कि जो इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है, जो आदि-अन्त रहित है, जिसकी सीमा कहीं नहीं है, जो अनन्त-अनादि-असीम है, जिसकी शक्ति अपरिमित है, जो इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं, आत्मा के ज्ञान में आने योग्य है, वह परमात्मा है। यह बात कहते-कहते मुझे 20 वर्ष हो गये, किन्तु अफसोस है कि कुछ लोग ही इसे समझ पाये हैं।

❁ एक असीम-पदार्थ को नहीं मानो, तो प्रश्न होगा कि सब ससीम-पदार्थों के बाद में क्या होगा ? बिना असीम कहे प्रश्न सिर पर से नहीं उतर सकता। इसलिए एक असीम-तत्त्व को मानना ही पड़ेगा। यदि कहो कि यह कल्पित है, तो अकल्पित क्या है ? ईश्वर को कल्पित कहने वाले का ज्ञान मिथ्या है। कल्पित तो वह है, जिसकी स्थिति नहीं हो और मन से कुछ गढ़ लिया गया हो; किन्तु एक अनादि-तत्त्व अवश्य है। उसकी स्थिति अवश्य है, वह कल्पित कैसा ? जो असीम है, जिसकी शक्ति

अपरिमित है, उसको तुम अपनी परिमित बुद्धि से कैसे नाप सकते हो ? कोई यह नहीं कह सकता कि बुद्धि अपरिमित है।

❀ एक अनादि-अनन्त-स्वरूपी ईश्वर को नहीं मानकर जो एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर को मानता है, वह ईश्वर कैसा ? जरा सोचो—यदि एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर है, तो एक ईश्वर दूसरे ईश्वर को थप्पड़ लगाता है, गाली देता है, मारपीट करता है। एक ईश्वर दूसरे ईश्वर पर मामला-मुकदमा करता है, तीसरा झूठा वकील-ईश्वर झूठा फैसला करता है। क्या यही ईश्वर है ? ये सब ईश्वर नहीं हैं। वास्तव में परम प्रभु परमात्मा एक है, वह स्वरूपतः अनन्त है।

❀ लोग संशय करते हैं कि ईश्वर है या नहीं ? मैं कहता हूँ कि मेरे विचार में ईश्वर अवश्य है। सोचो, परम-पुरातन, परम-सनातन तत्त्व है कि नहीं ? परम-सनातन, परम-पुरातन तत्त्व नहीं मानना बुद्धि-विपरीत है। सारे अवकाशों को भरकर जो अवकाशहीन है, जिससे कोई जगह खाली नहीं है, वही सबसे पहले का है। वही ब्रह्म है, जो अपने तई आप-ही-आप है। यही अध्यात्म-विज्ञान बतलाता है। यहाँ का वैज्ञानिक संसार के भंडार से कुछ लेकर कुछ बनाते हैं। ईश्वर ऐसे वैज्ञानिक हैं कि वे बिना कुछ-के-कुछ बनाते हैं। ये बिना उपादान के सब कुछ बनाते हैं। यदि ईश्वर भी कहीं से कुछ लेकर कुछ बनाते हैं तो मनुष्य से बढ़कर उनमें कोई विशेषता नहीं। सारी सृष्टि ईश्वर के नियन्त्रण में है। ईश्वर वे हैं, जो सबके प्रभु हैं अर्थात् वे शासक हैं। उनके शासन में सारी-सृष्टि है।

❀ वेद के अन्दर ईश्वर की मान्यता—ईश्वर में आस्था का बहुत जोरों के साथ विश्वास दिलाया गया है। वेद केवल यही बता देता है कि—है ईश्वर, है ईश्वर, है ईश्वर सो नहीं; वेद बता देता है कि ईश्वर है, तुम प्रत्यक्ष में पा भी सकते हो। है, परन्तु अव्यक्त है। व्यक्त-पदार्थ ईश्वर नहीं है। व्यक्त-पदार्थ माया है।

❀ संसार में देखते हैं कि घर में भी एक मालिक होता है, प्रान्त में एक मालिक होता है, देश का एक मालिक है; उसी तरह विश्व का एक मालिक है, इसी को ईश्वर कहते हैं। कोई ईश्वर को मानते हैं, कोई नहीं मानते हैं। नहीं मानने वाले काफिर वा नास्तिक कहलाते हैं। हमलोग ईश्वर को मानते

हैं । पहले सोचो कि सबसे पहले का कुछ है वा नहीं ? अपनी-अपनी पुस्तक को छोड़ दो अथवा पुस्तक में देखो कि सबसे पहले का कुछ माना है कि नहीं ? सृष्टि को देखो, तो पाँच तत्त्व हैं। पाँचो तत्त्व में सबसे पहले आकाश है । बिना आकाश के वायु, अग्नि ,जल और पृथ्वी कहाँ रहे ? तारा मण्डल कहाँ रहे ? इसमें सिलसिला है, जैसे सबसे पहले आकाश को मानते हैं तो उसके बाद वायु को मानना पड़ता है। क्योंकि आकाश से स्थूलता हवा में है और उससे विशेष स्थूलता आई तो अग्नि, फिर उससे अधिक स्थूल जल, अन्त में मिट्टी कहते हैं। इसलिए हमारे यहाँ कहा जाता है कि पाँच भौतिक-जगत् के आरम्भ में आकाश था, फिर हवा, अग्नि, जल और पृथ्वी हुई। यह संसार सौर-जगत् है। इसमें पहले सूर्य हुआ। सूर्य से पहले वाष्प था, ऐसा वैज्ञानिक कहते हैं। इस तरह भी सृष्टि में क्रम मालूम होता है। इसी तरह वाष्प और आकाश से आगे बढ़ें तो वहाँ पर होता है कि समष्टि-अहंकार है। प्रत्येक जीव के अन्दर व्यष्टि-अहंकार है। इस के पूर्व बुद्धि और बुद्धि के पूर्व प्रकृति अर्थात् त्रैगुणमयी-चीज वा मसाला। रचना के अन्दर तीन गुण देखते हैं। चाहे किसी का शरीर हो या वृक्ष हो; सेन्द्रिय -निरिन्द्रिय, सभी चीजों में तीन गुण देखते हैं। तीनों गुणों का वर्णन, तमोगुण—विनाशक-शक्ति है। रजोगुण—उत्पादक-शक्ति, सतोगुण—पालक-शक्ति एवं इन्हीं तीनों गुण का तमाम पसार है। इसका एकीभाव होना चाहिये। इसी को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से सेन्द्रिय एवं निरिन्द्रिय दो प्रकार की सृष्टि हुई । निरिन्द्रिय-सृष्टि में पहले आकाश और सेन्द्रिय-सृष्टि में पहले मन हुआ। इन सब बातों को देखकर पता चलता है कि सृष्टि-क्रम में पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा इस तरह हुआ। सबसे पहले का कुछ होना भी आवश्यक है। सबसे पूर्व का एक पदार्थ है, जो शक्ति और ज्ञान का पुंज है। यदि ऐसा नहीं हो तो संसार में जो ज्ञान और शक्ति देखते हैं, यह कहाँ से आई ? इसलिए स्वर्ग (Heaven – हैवन) और बहिश्त में शक्ति-ज्ञान को देखते हैं। इसलिए इन सबका जो खजाना है, वह ऐसा होगा जो बिना अवकाश छोड़े होगा (वही ईश्वर है)। उसके अतिरिक्त अवकाश बाकि नहीं रहेगा; क्योंकि जिसके अतिरिक्त अवकाश बचेगा, तो अवकाश ही पहले का होगा।

जो सबसे पूर्व का है, वह अपना आधार आप है—निराधार है। उसके अतिरिक्त कोई खाली जगह नहीं बचती। यदि इसको नहीं मानें तो दूसरी तरह का पदार्थ कुछ मिले, सम्भव नहीं। जहाँ से सारी सृष्टि में ज्ञान और शक्ति है उसका खजाना अवश्य मानना होगा। इसके होने का कोई समय माना नहीं जायेगा। किसी समय में इसका आरम्भ नहीं है और न कहीं इसका अंत होता है। इसलिए इसको आदि-अन्त-रहित ज्ञान और शक्ति का पुंज है, अवश्य कहा जायेगा। इससे अधिक व्यापक कुछ नहीं हो सकता। सभी इसके अन्दर हैं, सभी इसके शासन में हैं। जिसके शासन में सभी रहे, वही ईश्वर हैं, परमात्मा हैं।

❁ फारसी के जानने वाले कहते हैं—खुदा कादिरे मुतलक है। अर्थात् सर्व शक्तिमान है। और All mighty (ऑल माइटी) अंग्रेजी में कहते हैं।

❁ आप सोचकर देखिये कि जो अत्यन्त व्यापक है—उस समस्त का एक-ही-एक दृश्यमान पिण्ड हो सकता है? आप बहुत घरों को—बड़े-बड़े घरों को बनाये हैं, लेकिन ऐसा कभी हो सकता है कि समस्त आकाश का कोई एक घर बना ले ? हमारे यहाँ ईश्वर के सगुण-रूप का बहुत वर्णन है, उसमें विराट्-रूप की बड़ी विशेषता है। राजा बलि से राज्य लेकर इन्द्र को देने के लिए जब विष्णु भगवान् ने विराट्-रूप धारण किया था, उस समय उनका स्वरूप था—

"पद पाताल शीश अज धामा ।"

यहाँ भी आदि-अन्त कर ही दिया। क्योंकि ब्रह्मा के धाम से भी और ऊपर धाम है। जामवन्त जवान थे, उन्होंने दो घड़ी में उन विराट्-रूप की सात बार प्रदक्षिणा की थी। श्री कृष्ण के समय में भी जामवन्त थे। उनकी पुत्री जाम्बवती थी। वानरी सारी सेना समुद्र के किनारे थी, लंका जाकर सीताजी की खोज करने के लिए। तब कहा था—

"उभय घड़ी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाई ।।"

मेरा कहने का मतलब कि यह विराट्-रूप भी आदि-अन्त-रहित नहीं हुआ। अर्जुन को विराट्-रूप दिखाने के लिए श्री कृष्ण ने विराट्-रूप धारण किया। उस विराट्-रूप में कितने मुँह थे, जिसका ठिकाना नहीं, असंख्य हाथ, असंख्य पैर, असंख्य मुख, असंख्य आँख आदि सभी अवयव असंख्य

थे। भयंकर और सुन्दर; दोनों भाँति के रूप उस विराट्-रूप में थे। कौरव-पाण्डव; दोनों दलों के रथी-महारथी उस विराट्-रूप के मुँह में प्रवेश कर रहे थे। अर्जुन अलग खड़े होकर स्तुति कर रहा था। योद्धा लोग जो उनके मुँह में प्रवेश करते थे, तो खाली जगह थी तब तो उनके मुँह में जाते थे। हाथ, पैर, कान आदि का ज्ञान भी बिना अवकाश के नहीं हो सकता। सब ओर से योद्धा लोग आते थे, तो वह सब ओर भी खाली थी। इस तरह वह विराट्-रूप अनन्त नहीं हो सकता।

जिससे बचा हुआ अवकाश नहीं रहे, वह अनन्त होगा। बड़ा-से-बड़ा घर बना लीजिये, लेकिन सम्पूर्ण आकाश को किसी एक घर में अँटा नहीं सकते। विराट्-रूप व्यक्त है, इन्द्रियगम्य है। लेकिन अनन्त-रूप अव्यक्त और इन्द्रिय-गम्य रहित है। नजदीक के चीज को 'इस' और दूर की चीज को 'उस' कहते हैं । परमात्मा 'इस' श्रेणी के नहीं हैं। जो कोई 'इस' पदार्थ की उपासना करते हैं, वह ब्रह्म की उपासना नहीं। हाँ सबमें व्यापक ब्रह्म है। इस प्रकार मानने में उपनिषद् और सन्तवाणी में कोई हर्ज नहीं। रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श—ये ब्रह्म-स्वरूप नहीं हैं। यह उपनिषदों ने बताया है और सन्तों की वाणियों में भी यही बात है।

❁ गो० तुलसीदास जी ने कहा है—

"अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा,
वसत इति वासना धूप दीजै।"

अचर माने वृक्ष, पहाड़ आदि, जो अपने से कहीं आ-जा नहीं सके। जो अपने से चल फिर सकता है, वह चर है। जैसे आपके शरीर का स्वरूप आपका रूप है, किन्तु आप वह नहीं हैं। जैसे जो वस्त्र आप धारण करते हैं, वह वस्त्र आपका है, न कि आप वस्त्र हैं। परमात्मा अचर-चर-रूप सब धारण किये हैं, इसलिए सब रूप परमात्मा के हैं; किन्तु वे रूप परमात्मा नहीं हैं। बल्कि उन रूपों को परमात्मा ने धारण किया है। जैसे किसी धातु का जेवर बनाया जाता है, उसी तरह यह शरीर एक नक्शा है। परमात्मा चर-अचर रूप में व्यापक हैं। उपनिषद् के वर्णन में आपने सुना कि—

"वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।"

अर्थात्–वायु प्रत्येक-वस्तु में रहते हुए उसी आकार का है, किन्तु वह वही नहीं हो जाता। जैसे गिलास में वायु रहने से गिलास के आकार का मालूम होता है; किन्तु वायु वस्तुतः वैसा नहीं है। वह तो गिलास में भी है और उसके बाहर भी है। उसी तरह परमात्मा अचर-चर में रहते हुए सबसे बाहर भी है। कहीं हटने वाले नहीं, सदा रहते ही हैं। सन्तों की वाणी में जैसा बताया गया है, उसी को परमात्म-स्वरूप के विषय में जानना चाहिये।

❁ जितने जीव-जन्तु हैं, सब खुलासा-स्थान पसन्द करते हैं। सबसे खुलासा क्या होगा ? सबसे खुलासा आकाश है। आकाश में सूर्य है। सूर्य के ऊपर भी आकाश है, जिसका ओर-छोर; आदि-अन्त नहीं है। चाहे विचार में, चाहे दृष्टि में ऐसा हो, तो वह क्या होगा ? जो सारी सृष्टि को धारण करके रखता है। जितने जीव हैं, जिनको जितना मिलना चाहिये, वे देते हैं। लोग कहते हैं–मैंने पुरुषार्थ किया था, यह पुरुषार्थ जगने और स्वप्न में कुछ मालूम पड़ता है, परन्तु गहरी-नींद में सब चला जाता है। इसलिए जो परमाकाश है, वही परमात्मा है।

हम ईश्वर को आकाश कहकर नहीं बताते हैं। बल्कि जो अवकाश है, उसके अन्दर यह आकाश है। वह कितना बड़ा अवकाश है ?

"प्रभु पूरन ब्रह्म अखण्डा, जाके रोम रोम ब्रह्मण्डा।"

❁ एक राजा शिकार खेलने के लिए जंगल गया। वहाँ एक सुन्दर बालक को देखा। वह बालक मुनि का पुत्र था। राजा ने उस मुनि बालक से कहा–"तुम मेरे साथ चलो।" मुनि बालक ने कहा–"तुम मुझे अपने साथ ले जाकर क्या करोगे ?" राजा ने कहा–"मैं जो खाऊँगा, तुमको भी वही खिलाऊँगा। जो उत्तम वस्त्र मैं पहनुँगा, तुमको भी पहनाऊँगा और जो पहरेदार हमारी रक्षा में पहरा करता है, वह तुम्हारा भी रात में जगकर पहरा करेगा।" मुनि बालक ने कहा–"नहीं। तुम मत खाओ, मुझे खिलाओ। तुम मत पहनो, मुझे पहनाओ और जब मैं सो जाऊँ, तो तुम जगकर पहरा करो।" राजा ने कहा–"ऐसा नहीं होगा।" मुनि बालक ने कहा–"तब तुम्हारे साथ मैं नहीं जाऊँगा। मेरे राजा ऐसे हैं, जो स्वयं नहीं खाते, मुझे खिलाते हैं। अपने स्वयं कुछ नहीं पहनते, मुझे पहनाते हैं। और मैं सो जाता हूँ। तो वे जगकर मेरा पहरा करते हैं। मुझको ऐसे राजा हैं।"

ऐसे राजा कौन हैं ? ये ही हैं ईश्वर-परमात्मा। जो सबको खिलाते हैं, पिलाते हैं, सुलाते हैं, लेकिन वे अपने स्वयं कुछ नहीं खाते। कुछ नहीं पहनते और वे सबका पहरा करते हैं । उनको रहने का घर नहीं है। वे ही सबकुछ करते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं।

❁ जैसे घर के बाहर के आकाश का भेद जानने के लिए घटाकाश और महदाकाश कहते हैं। उसी प्रकार शरीरस्थ-आत्मा के लिए जीवात्मा शब्द का व्यवहार होता है और ब्रह्माण्ड में व्यापक ब्रह्म के लिए परमात्मा शब्द का व्यवहार होता है। जहाँ प्रकृति का फैलाव है, वह ब्रह्म और जहाँ प्रकृति का फैलाव नहीं है, वहाँ उसको परमात्मा कहते हैं।

❁ ईश्वर एक है, उससे बाहर कोई जा नहीं सकता। क्योंकि अनन्त का कहीं अन्त ही नहीं है। अनन्त के बाहर कौन जा सकता है ? परमात्मा अवर्णनीय है। बुद्धि वर्णन नहीं कर सकती है; क्योंकि बुद्धि बहुत पीछे हुई है। जीवात्मा का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान परमेश्वर का ज्ञान है। यदि कहा जाये कि ''एक ईश्वर नहीं अनेक ईश्वर हैं'' तो यह युक्ति-संगत नहीं।

❁ आज तक संसार में जितने आचार्य हुए, किसी के वचन से 'वेदान्त-सिद्धान्त' का मेल नहीं है ।

यहाँ के लोग यदि समझना चाहे तो यहाँ आकर बहुत दिनों तक सत्संग करे। 'वेदान्त-सिद्धान्त' में अनेक आत्मा मानता है। यह नास्तिक है, आस्तिक हरगिज नहीं। इस पुस्तक में दो ही शरीर माना है। उपनिषदों में तीन शरीर माना है और सन्तवाणी में पाँच शरीर माना है। ये पाँचो शरीर उन तीनों में ही समा जाते हैं; इसलिए तीन मानो या पाँच। एक कोई भी ऐसा स्थूल-पदार्थ नहीं, जिसमें सूक्ष्म का प्रवेश नहीं। सूक्ष्म ऐसा पदार्थ नहीं; जिसमें कारण न प्रवेश कर सके। 'वेदान्त-सिद्धान्त' में है कि ''ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है, तो जीव में ईश्वर व्यापक है, तब वह सर्वज्ञ क्यों नहीं हो जाता है ?'' मैं कहता हूँ कि एक ही इन्द्रिय में सब ज्ञान क्यों नहीं होता ? हाथ से देखते क्यों नहीं, आँख से सुनते क्यों नहीं ? यह तो यन्त्र के अनुकूल है। सर्वव्यापी ईश्वर सबमें रहते हुए जीव अज्ञान में है। अल्पज्ञ और सर्वज्ञ एक साथ नहीं रह सकते, ऐसा उनका सिद्धात है।

किसी विषय को तुम विशेष जानते हो, किसी विषय को कम जानते हो,

तो तुममें ही कम ज्ञान और विशेष ज्ञान दोनों हैं, तो इन दोनों को एक साथ रखते हुए कैसे रहते हो ? इसका निर्णय कर लो। यदि तुम दोनों को एक साथ रख सकते हो, तब अल्पज्ञ और सर्वज्ञ एक साथ है तो क्या आश्चर्य है।

❀ व्यक्ति का सर्वज्ञ होना सिद्ध नहीं हो सकता । भगवान् बुद्ध ने कहा–"मैं सर्वज्ञ हूँ।" कितने प्रश्न उन पर हुए। कितने में वे चुप हो गये। मलिन्द शाह ने नागसेन से पूछा कि, "तुम्हारे भगवान् सर्वज्ञ थे, तब उन्होंने कितने का उत्तर क्यों नहीं दिया ?" नागसेन ने कहा–"राजन! कितने ऐसे प्रश्न हैं, जिनका चुप होना ही उत्तर है।" कितनी चीजें बुद्धि में आती हैं, किन्तु वचन में नहीं आती। नमक का स्वाद कैसा होता है ? इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अलग-अलग आम के स्वाद को खाते हो, आम के स्वाद को जानते हो, किन्तु उसको फुट-फुटाकर लिखना असंभव है। योगवाशिष्ठ नामक ग्रन्थ में वशिष्ठ मुनि और भगवान् राम का संवाद है। वशिष्ठ जी ने कहा–"जितने हमलोग हैं, सब एक ही हैं।" श्रीराम ने कहा–"तब आप कहते किसको हैं ?" वशिष्ठ जी चुप हो गये। श्री राम ने कहा–"गुरुदेव आप रूष्ट तो नहीं हो गये ?" उन्होंने कहा–"नहीं बेटा! मैं उत्तर दे रहा हूँ। इसका उत्तर चुप है।" वाह्व और वास्कल मुनि का शंका-समाधान होते-होते अन्त में वाह्व मुनि चुप हो गये। इसका उत्तर ही चुप है।

❀ इस संसार का आधार भी कुछ होना चाहिए। हम देखते हैं कि पृथ्वी पर जो कुछ है, सबका आधार है। बिना पृथ्वी के गाछ, जंगल, पहाड़ कुछ नहीं रह सकता। पृथ्वी के बिना उसका आधार कुछ रह नहीं सकता। पृथ्वी का भी आधार है। जैसे आप बहुत-से तारों को निराधार देखते हैं। सभी तारे निराधार नहीं हैं। यह पृथ्वी भी एक तारा है। यह शून्य में है। पृथ्वी, चन्द्र, तारे का आधार सूर्य है। बिना सूर्य के ये नहीं रह सकते। सूर्य का भी आधार है। जो सबका आधार है, वह परमात्मा है।

❀ कुछ लोग ईश्वर को और इस प्रकृति को भी अनादि कहते हैं। प्रकृति वा माया देश-काल ज्ञान से अनादि अवश्य है, परन्तु उपज-ज्ञान से नहीं। उपज-ज्ञान से यह अनादि हो नहीं सकती। सृष्टि में एक के बाद दूसरे के होने का क्रम है, तो वह कैसा होगा, जो सबसे पहले का होगा ? वह

देश-काल-ज्ञान और उपज-ज्ञान से भी अनादि होगा तथा स्वरूपतः अनन्त भी होगा। तो यह समझो कि यदि वह चलायमान होगा, तो वह ससीम होगा। ससीम पहले से है और उसके पहले वा परे कुछ नहीं है, कहना नहीं चाहिये। सारे सान्तों के पहंले का ही जो कुछ है, वह असीम वा अनन्त है। दो असीम कभी हो नहीं सकते। असीम का बनना और उसके बाहर अवकाश का होना असम्भव है। अतएव उसमें गतिशीलता वा किसी प्रकार का कम्पन नहीं। गति-विहीन अनादि-अनन्त परमतत्त्व को ही अपरिमित शक्ति-स्वरूप ईश्वर–परमात्मा मानना चाहिये। प्रकृति का निर्माण परम प्रभु परमात्मा ने ही किया है।

❀ ईश्वर व्यक्त-अव्यक्त यह ख्याल और ईश्वर केवल अव्यक्त, यह ख्याल और केवल व्यक्त–ये तीन ख्याल हैं। जिस तत्त्व को अव्यक्त कहते हैं, वह परमात्मा का स्वरूप है। वह सर्वव्यापी है, सबमें रहता है। सबके अन्दर वही है। सगुण-निर्गुण भाववाले, दोनों को मान्य है कि वह सर्वव्यापी है। सन्तलोग कहते हैं कि जब वह तमाम रहता है तो सब और सबमें रहनेवाले–ये दो पदार्थ हुए। 'सब' व्यक्त-पदार्थ हुआ और 'सबमें रहनेवाला' अव्यक्त-पदार्थ हुआ। अव्यक्त-पदार्थ है ईश्वर का स्वरूप। व्यक्त रूप के दर्शन से किसी का पूर्ण कल्याण हुआ, ऐसा आजतक किसी इतिहास में नहीं है। इसके लिए अठारह पुराण है, रामायण है, महाभारत है, भागवत है आदि।

❀ लोग राम, शिव, हरि आदि को ईश्वर समझते हैं, परन्तु उनसे स्वरूप पूछिये तो चुप हो जायेंगे। कोई सगुण मानते हैं, कोई निर्गुण मानते हैं। दूसरा दल कहता है कि क्या ईश्वर है ? एक नास्तिक विद्वान् ने मुझसे पूछा कि "आपका क्या प्रचार है ?" मैंने कहा–"ईश्वर-भक्ति"। उन्हेंने पूछा–"क्या ईश्वर है ?" मैने कहा–"हाँ"। उन्होंने कहा कि "मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ।" मैंने कहा–"नहीं मानिये।" उन्होंने पुनः मुझसे पूछा कि "तब मेरे लिए आपका क्या प्रचार हैं ?" मैंने कहा कि–"आप तो पढ़े–लिखे हैं, विद्वान् हैं समेटकर बोलिये कि आप क्या चाहते हैं ?" वे चुप हो गये। तब मैंने कहा–"यदि आपको ज्ञान और सुख मिल जाये तो कोई इच्छा रहेगी ?" उन्होंने कहा–"नहीं।" मैंने कहा–"आपके लिए मेरा यही प्रचार

है कि ज्ञान और सुख होता है ध्यान से। आप ध्यान करेंगे तो ज्ञान होगा, सुख होगा और ध्यान के अन्त में ईश्वर की प्राप्ति होगी।''

पहले एक अनन्त-तत्त्व पर विचार करो कि है कि नहीं। यदि कहो कि ''कोई भी अनन्त नहीं होगा, सब सान्त-ही-सान्त है।'' प्रश्न होगा कि ''सब सान्तों के बाद में क्या है ?'' सब खेतों की सीमा है, सब खेतों को जोड़कर भूमंडल होता है। भूमंडल सान्त हो गया। सारे सान्तों के पार में क्या है ? जब तक एक अनन्त नहीं कह दो, तब तक यह प्रश्न सिर से उतर नहीं सकता। इसलिए एक अनन्त का मानना अनिवार्य है। अनन्त दो नहीं हो सकता। यदि कहो कि, ''एक दूसरे में समाते हुए अनन्त है।'' तब प्रश्न होगा कि दोनों तत्त्वरूप में एक है कि दो ? यदि एक दूसरे में घुसता है तो जब उसमें घुसता है तो उसमें पोल है, उसका खंड हो सकता है, उसके अणुअणु में वह है, तब वह परमाणु भी उसी से बना होगा, इस तरह अनन्त एक ही होगा, दो नहीं। एक एम.ए.बी.एल. ने प्रश्न किया कि ''यदि वह अनन्त है तो फिर उसको ईश्वर क्यों मानूँ ? तो उत्तर होगा–''अनन्त से बाहर कोई नहीं हो सकता। ज़ब सब उसके अन्दर में है, तो वह ईश्वर न हुआ तो क्या, जिसके अधीन सब हो ?''

जो जितना अपना विस्तार विशेष रखता है, वह उतना सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म का अर्थ छोटा टुकड़ा नहीं, बल्कि आकाशवत्-सूक्ष्म। एक सेर बर्फ लो। उससे एक सेर जल का विस्तार ज्यादा होगा। यदि उसको वाष्प में परिणत किया जाये, तो उसका विस्तार और विशेष होगा। जो जितना सूक्ष्म होगा, वह उतना विशेष पतला होगा। जो जितना विशेष महीन होगा, वह अपने से स्थूल में स्वाभाविक ही समाया हुआ होगा। जैसे पृथ्वी में जल, जल में अग्नि, अग्नि में हवा और हवा में आकाश। जो सबसे विशेष सूक्ष्म है, वह सबसे व्यापक होगा। इसीलिए अति सूक्ष्म होने के कारण परमात्मा सर्वव्यापक है। इसीलिए कहा–''**प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।**''

त्रयगुणों के सम्मिश्रण-रूप को प्रकृति कहते हैं। बराबर-बराबर शक्तियों के मिलाप को प्रकृति कहते हैं। इसकी जड़ में तीन गुण हैं। इसीलिए अपरा-प्रकृति इसको कहते हैं। कार्य-रूप का जितना फैलाव है, उससे कारणरूप का विशेष फैलाव होता है। जहाँ से कुछ बनने का आरंभ

होता है, वह कारण है। उसके बाद जब कुछ बनता है, तब सूक्ष्म कहलाता है। अद्वैतवादी को पहले से दूसरा तत्त्व नहीं जँचता है। परमात्मा से प्रकृति उपजी हुई है। प्रकृति को अनाद्या भी कहते हैं, इसीलिए कि प्रकृति के होने से समय होता है। प्रकृति नहीं होने के पहले देशकाल बने, नहीं हो सकता। जब देश और काल नहीं था, तब प्रकृति हुई। इसीलिए इसको अनाद्या कहते हैं। प्रकृति देश-काल ज्ञान से अनादि और उपज-ज्ञान से सादि है। परमात्मा अनादि के भी आदि हैं। **"अनादिर आदि परम कारण।"**

❁ परमात्मा के लिए लोगों में साधारणतः दो प्रकार के ख्याल हैं। एक ख्याल है कि परमात्मा व्यक्ति-रूप में शरीरधारी, चाहे मनुष्य-शरीरधारी, चाहे देवरूपधारी रूप में है अथवा इन दोनों से परे विराट् रूपवाला है। दूसरे का ख्याल है कि परमात्मा व्यक्त में नहीं है। वह किसी तरह किसी आधार पर अवलम्बित नहीं है। विराट् रूप लो, नरसिंहरूप लो या विष्णुरूप को लो–ये धरती पर खड़े हैं। किसी स्थान का अवलम्ब लेकर रहने वाला ईश्वर नहीं है। कोई कहे कि आकाश में है, तो आकाश में वायु ही उसका अवलम्ब है। यदि सूक्ष्म रूप मण्डल का रहनेवाला माना जाये, तो वह मण्डल उससे बड़ा हो जाता है, वह मण्डल ही उसका आधार हो जाता है। किन्तु वह परमात्मा आकाश या मूल-प्रकृति के आधार पर नहीं रहता। मतलब यह कि उसमें स्थान और स्थानीय इन दोनों का भेद नहीं है। जो किसी आधार का आधेय नहीं, जो सबके आदि का है, वह ईश्वर–परमात्मा है।

❁ बड़े-बडे विद्वानों, महात्माओं ने कहा कि ईश्वर तर्क-सिद्ध नहीं, श्रद्धा सिद्ध है। किन्तु सन्तों ने बहुत दृढ़ता के साथ कहा–परमात्मा का वर्णन करते-करते इति कहने की शक्ति किसी में नहीं। जहाँ तक मैंने संतों की वाणी में, उपनिषदों में, वेदों के अर्थ को भी देखा, किन्तु इस बात से खाली नहीं कि परमात्मा आदि-अन्त रहित है, वह हई है। कुछ फाँक छोड़कर यहाँ-वहाँ, ऐसा नहीं। अति सघनता से जो सर्वव्यापक अनादि-अनन्त है, वह परमात्मा है।

❁ दार्शनिक विचार भिन्न-भिन्न है, ऐसा क्यों? एक जगह चार अंधे थे। उन लोगों के मन में हुआ कि हाथी देखा जाये। उनके सामने हाथी लाया गया। चारो ने हाथी के अंगों का अलग-अलग स्पर्श किया। जब हाथी

चला गया, तब आपस में पूछने लगे कि हाथी कैसा है? जिसने हाथी के पाँव छुआ था, उसने कहा–हाथी स्तम्भ के समान होता है। जिसने कान छुआ था, उसने कहा–हाथी सूप के समान होता है। जिसने सूँड छुआ था, उसने कहा–हाथी मूसल के समान होता है। जिसने पेट-पीठ छुए थे, उसने कहा–हाथी कोठी के समान होता है। जिस तरह उन अंधों को नयन-हीनता के कारण हाथी का सही ज्ञान नहीं हुआ, उसी तरह केवल दार्शनिक विचार में यह अंधापन नहीं छूटता। कोई बड़ा दार्शनिक है; किन्तु उसकी आँखें खुलती नहीं। यह आँखें कैसे खुलेगी ? योग के द्वारा। योग के द्वारा जो परमात्मा से जाकर मिलता है, वही ठीक-ठीक जानता है। इसलिए योग और ज्ञान–दोनों की बड़ी आवश्यकता है ।

❀ रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में लिखा है–

"राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति–नेति नित निगम कह।।"
"चिदानन्द मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।
नरतनु धरेहु सन्त सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।"

राम का स्वरूप अर्थात् आत्मभाव-रूप (पारमार्थिक सत्ता), उनका चिदानन्दमय रूप (व्यवहारिक सत्ता) और उनका नर-रूप (प्रातिभासिक सत्ता), इन तीनों प्रकारों में राम को जानना चाहिये। मेरे बोध में स्वरूप वा आत्मभाव में वह अनादि, अनन्त, असीम, अपरिमित, ध्रुव और अव्यक्त है। उनका चिदानन्द रूप वा सच्चिदानन्द रूप, आत्मभाव से भरा हुआ, गतिशील, इन्द्रियातीत वा अव्यक्त, विकारहीन तथा उसके दर्शन की योग्यता रखनेवाले अधिकारी भक्त से जानने योग्य है। तथा उनका नर-रूप उसका आत्म-भाव से पूर्ण चिदानन्दमय रूप से व्याप्त इन्द्रिगोचर वा व्यक्त है। सच्चिदानन्द रूप पराप्रकृतिमय है और नररूप अपराप्रकृतिमय है। ये दोनों रूप अप्राकृत नहीं है। अवश्य ही पराप्रकृतिमय रूप का पद अपरा प्रकृतिमय रूप से उच्च है और आत्म-भाव में ही राम अप्राकृत भाव में है।

चिदानन्दमय देह कभी नर शरीर नहीं हो सकता। लोहा अग्नि में तपते-तपते अग्नि-रूप हो जाये, उसका काम भी आग का हो, किन्तु कुछ देर के बाद ठंढा होने पर लोहा ही कहा जायेगा। इसी प्रकार चिदानन्द-रूप

नर-रूप में होने के कारण वह जो कुछ भी हो किन्तु फिर नर-रूप ही है—जैसे लोहा लोहा ही है। त्रिशुल और फाल के लोहे को अग्नि में देने से दोनों के दो आकार होते हैं, दोनों लाल हो जाते हैं, अग्नि के समान हो जाते है, किन्तु वे लोहा हैं। परन्तु अग्नि (गर्मी) का उस प्रकार का कोई रूप नहीं। इसी तरह नर-रूप में चिदानन्द-रूप नराकृतिवत् परन्तु उसका भी निराकार-सा आकार नहीं। लोग कहते हैं कि सूर्य अग्नि का गोला है और वह ठंढा होते-होते ठंढा हो जायेगा। हवा और अग्नि जिस-जिस रूप में होती है, वह उस-उस रूप में कहलाती है और उनसे बाहर भी है। उसी तरह परमात्मा का चिदानन्दमय रूप सब के बाहर और सबके भीतर भी है।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।"

—महोपनिषद् 4/82

अर्थात् उस परे-से-परे (ब्रह्म) को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। कितना ही कोई चमत्कार दिखावे, कितना ही कोई वाक्य-जाल रच दे, किन्तु मैं नहीं मान सकता कि कोई भी इन्द्रियगम्य रूप चिदानन्दमय हो सकता है। सुग्रीव और श्री रामजी ने अग्नि की साक्षी देकर आपस में मित्रता की, श्री सीता जी की खोज करने के लिए। सुग्रीव राजमद में डूब गया और लक्ष्मण जी जब वहाँ डराने-धमकाने के लिए गये तो सुग्रीव आकर कहने लगा—

"माया बस सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पामर पशु कपि अति कामी।।"

तुलसीदास जी ने इतना ही लिखा और बाल्मीकि रामायण के शब्दों में इसका चित्र खींचा हुआ है। चिदानन्द-रूप का दर्शन हो गया और अतिकामी बना ही रहा! यदि कहो कि उसका हृदय दुरूस्त नहीं था, तो दर्शन कैसे हुआ ? यदि हृदय दुरूस्त नहीं था तो चिदानन्दमय रूप के दर्शन से ठीक हो जाना चाहिये था। कबीर साहब की ही भाँति सत्य कहना पसन्द करता हूँ। जिस सत्य के लिए कबीर साहब ने कहा कि, **"साँच कहूँ तो कोई न मानै झूठ कहा नहिं जाई हो"** परमात्म-स्वरूप को लोग तीन सत्ताओं में विभक्त करके वर्णन करते हैं—पारमार्थिक, व्यवहारिक और

प्रातिभासिक। पारमार्थिक सत्ता सबसे उच्च है। यह न जड़ है, न चेतन है, जड़-चेतन से परे है, यह सच्चिदानन्द से भी परे है। व्यवहारिक सत्ता सच्चिदानन्द पद है, उसको सतलोक कहते हैं। प्रातिभासिक सता को भ्रम कहा गया है। यथा–

"रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि।
यदपि मृषा तिहुँ काल सो, भ्रम न सकइ कोउ टारि।।
ऐसेहि जग हरि आश्रित रहई।
यदपि असत्य देत दुख अहई।।"

–रामचरितमानस

पारमार्थिक सत्ता का सन्तवाणी में ऐसा भी वर्णन किया गया है–

तापर अकह लोक है भाई। पुरुष अनामी तहाँ रहाई।।"

–कबीर शब्दावली

"जो पहुँचे जानेगा वही। कहन सुनन से न्यारा है।।"

–कबीर साहब

यहाँ तक आप को पहुँचना चाहिये।

❀ इन्द्रियों के ज्ञान से जो ऊँचा ज्ञान है, मन-बुद्धि से भी जो ऊँचा ज्ञान है, मूल प्रकृति का जो ज्ञान है, उससे भी ऊँचा ज्ञान हो। इन्द्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे प्रकृति, प्रकृति से परे पुरुषोत्तम है। इन्द्रिय-ज्ञान से परे, मन-बुद्धि के परे, जड़ प्रकृति और सच्चिदानन्द पद से भी ऊँचा है, यह परमात्मस्वरूप है। उसका कोई मिशाल नहीं है। वह देश-कालातीत है। देश-कालातीत ही माया से परे है।

प्रकृति के अन्दर ही विस्तृतत्त्व है। लेकिन जो देश-कालातीत है, वह विस्तृतत्त्व-रहित है। देशकाल विस्तृतत्त्व है। इसलिए देशकाल में व्यापक रहने के कारण वह विस्तृतत्त्व-सा मालूम होता है। लेकिन वह विस्तृतत्त्व नहीं है। जैसे हवा ग्लास में रहने से ग्लास जैसी है। ग्लास टूट गया तो वह उसका रूप नहीं रहता। जो मन-बुद्धि से नहीं जाना जाये, वह है ईश्वर।

❀ हमारे जो दोस्त हैं–परमात्मा, वे सबसे बड़े हैं। वे हमारे संग में ही रहते हैं। हमको इंतजार करना-राह देखना कि कब मिलेंगे, यह नहीं रह जाता। जो ईश्वर से बिछुड़े हैं, सत्संग से बिछुड़े हैं, वे दरवाजे-दरवाजे

भटकते हैं यानी अनेक स्थान देखते हैं। मथुरा जाओ, द्वारिका जाओ, वृन्दावन जाओ, इसमें बाहर-ही-बाहर भटकते रहते हैं। लेकिन यह नहीं समझते कि परमहितकारी परम दोस्त परमप्रभु परमेश्वर उसके अंदर हैं।

यजुर्वेद-संहिता

।।ओ३म्।। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिँ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।।

भा0–हजारों–असंख्य शिरोंवाला, हजारों–अनन्त आँखोंवाला, हजारों–अनन्त पैरों वाला 'पुरुष' सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है। वह सबको उत्पन्न करने वाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को सर्वप्रकार व्यापकर और भी दश अंगुल अर्थात् दश अंग विकार महत् आदि या पृथ्वी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का अतिक्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर उनसे भी अधिक शक्तिमान अध्यक्ष होकर विराजता है।





सगुण-निर्गुण-विवेचन



"हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट सम्पुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।"

—गो० तुलसीदास

अर्थात् आँख में सगुण है। सगुण का अर्थ है—गुण-सहित। गुण का अर्थ है—स्वभाव। स्वभाव तीन प्रकार के हैं। इसी से संसार है। उत्पन्न होना, पोषण होना और विनाश होना। विनाश में दो भाव है—एक परिवर्त्तन होना, दूसरा कुछ रहे नहीं। जो उत्पादक है, उसको रजोगुण, पोषक को सतोगुण और विनाश करने वाले को तमोगुण कहते हैं। जो उत्पन्न करता है, उसका देवता ब्रह्मा, पोषण करने वाले का देवता विष्णु और संहार करनेवाले का देवता शिव है। संसार में ये ही तीन स्वभाव हैं, आप देख लीजिये। इन तीनों के साथ जो है, वह है सगुण। इन तीनों गुण को हम नहीं देखते। लेकिन उनके कार्यों को देखते हैं।

जो दीखते नहीं—ज्ञान में है, वह हृदय में है। निर्गुण को हम देख नहीं सकते हैं। सगुण में निर्गुण है। सगुण सोने का डिब्बा है और निर्गुण ललित-ललाम है। ईश्वर के दोनों रूपों को जानो।

सोने के डिब्बे में मूल्यवान रत्न है। सोना भी मूल्यवान है; लेकिन उसमें जो सुन्दर रत्न है, उसका मूल्य सोने के डिब्बे से बहुत विशेष है। इसलिए न तो निर्गुण को छोड़ना चाहिये और न सगुण को। साधना की पहली अवस्था में सगुण से ही काम चलेगा; लेकिन मूल में बिना निर्गुण से काम नहीं चलेगा। सगुण में दृश्य है, दृश्य के साथ-साथ शब्द है। जिस रूप को श्रीराम, श्रीकृष्ण कहा उस रूप के साथ शब्द है। वह शब्द रूप को विदित करता है। शब्द और रूप—दोनों संग-संग हैं। सगुण-निर्गुण के सम्बन्ध में कबीर साहब ने कहा—

"सर्गुण की सेवा करौं, निर्गुण का करूँ ज्ञान।
निर्गुण सर्गुण के परे, तहाँ हमारा ध्यान।।"

उन्होंने सगुण रूप में गुरु को लिया है, इसलिए उन्होंने कहा–

"मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सत भाव।।"

ईश्वर की सगुण वा निर्गुण उपासना में गुरु की बहुत आवश्यकता है।

❀ प्रश्न होता है–

"जो गुण रहित सगुन सोइ कैसे ?"

तो शिवजी उत्तर देते हैं–

"जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।।"

जल, हिम, उपल तत्त्व रूप में अलग-अलग पदार्थ नहीं, सब एक-ही-है। किन्तु आजतक यहाँ किसी ने नहीं जाना है कि संसार का सम्पूर्ण जल पाला है या उपल ? जो आकाश से गिरता है पानी है। किन्तु पानी से पाला और ओला रूपान्तर दशा में है। पानी से खेती सींची जाती है, किन्तु ओला और पाला से खेती का नाश होता है। सम्पूर्ण जल कभी हिम या उपल नहीं होता। उसी तरह सम्पूर्ण अगुण, अखण्ड, अलख, अज कभी सगुण नहीं हो सकता है। इतना बड़ा कभी कोई मंदिर नहीं हो सकता, जिसमें सम्पूर्ण आकाश अँट जाये। मंदिर में आकाश व्यापक है अवश्य, किन्तु सम्पूर्ण आकाश उसमें अँट नहीं सकता। उसी प्रकार जो स्वरूपतः अपार है, वह परिमित हो जाये, यह बुद्धि में अँटने की काबिल बात नहीं है। श्रद्धा से मान ले तो उसको कौन रोक सकता है।

❀ यदि कहो कि सगुण से ही काम चल जायेगा, निर्गुण की क्या आवश्यकता है, तो गो0 तुलसीदास जी कहते हैं–

"भगत हेतु भगवान् प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करई नट कोई।
सोइ सोइ भाव देखावई, आपुन होइ न सोइ।।"

और निर्गुण स्वरूप के लिए कहते हैं–

"प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी।
ब्रह्म निरीह विरज अविनासी।।

यहाँ मोह कर कारन नाहीं।

रवि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।"

रामचरित का वर्णन करते हैं, तो कहते हैं–कथा रूप जल है, जल में स्वच्छता और मिठास सगुण का वर्णन है। गम्भीरता चाहिये तो कहते हैं–

"रघुपति महिमा अगुन अबाधा।

वरनव सोइ वर वारि अगाधा।।"

यह निर्गुण महिमा है। जहाँ तक कहना चाहिये कह देते हैं।

❀ गो0 तुलसीदास जी जिस तरह श्रीराम के उपासक थे, उसी तरह सूरदास जी श्रीकृष्ण के उपासक थे। इन्होंने भी सगुण का वर्णन करते हुए निर्गुण का वर्णन किया। निर्गुण के लिए तो सूरदास जी कहते हैं–

"रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु,

निरालम्ब मन चक्रित धावै।

सब विधि अगम विचारहिं तातें,

'सूर' सगुण लीला पद गावै।।"

निर्गुण को सब तरह से अगम विचार कर सगुण का वर्णन किया है। हमलोगों को यह नहीं समझना चाहिये कि हम निर्गुण स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

❀ जहाँ शबरी गई वहाँ दशरथ नहीं गये थे। गिद्ध भी वहाँ नहीं जा सका था। वही भक्ति कीजिये। सगुण और निर्गुण दोनों भक्ति हो जायेगी। पहले निर्गुण भक्ति नहीं हो सकती है। पहले सगुण-भक्ति है फिर निर्गुण। मानस जप, मानस ध्यान स्थूल-सगुण-रूप उपासना है। विन्दु ध्यान सूक्ष्म-सगुण-रूप उपासना है। सारशब्द के अतिरिक्त और शब्दों का ध्यान सूक्ष्म-सगुण-अरूप उपासना है। और सारशब्द का ध्यान निर्गुण-निराकार उपासना है। उपासना की यहाँ समाप्ति है।

❀ गो0 तुलसीदास जी ने कहा है–

"निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिँ कोय।

सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय।।"

इस दोहे में निर्गुण को सुगम बताया है। इसलिए कि इसमें भ्रम नहीं होता। सगुण में भ्रम होता है। भगवान् श्रीराम ने रावण से युद्ध किया। उस

युद्ध में वे नाग-फाँस में बाँधे गये। गरुड़ ने नाग-फाँस से छुड़ाया। इसीलिए उसको मोह हो गया कि ये भगवान् हैं और छोटे राक्षस ने इनको नाग-फाँस में बाँध लिया जिसे ये काट नहीं सके। मैने छुड़ाया तो ये नाग-फाँस से छूटे। इनका भ्रम कागभुशुण्डि ने दूर किया।

भगवान् श्रीकृष्ण थे, वे लीला करते थे। एक दिन ब्रह्मा जी ने सभी ग्वाल-बालों और गौओं को खोह में बँदकर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने योगबल से दूसरे ग्वाल-बालों और गौओं का निर्माण कर लिया। यह देखकर ब्रह्मा का मोह टूट गया। दूसरा फंदा यह रचा गया था कि इन्द्र ने इतनी वर्षा बरसायी की ब्रज डूब जाये। भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पहाड़ उठा लिया और ग्वाल-बाल को कहा कि सभी कोई गौओं के साथ इस गुफा के अन्दर आ जाओ। भगवान् के कथनानुसार सात दिन तक उसमें रह गये। खाना-पीना ठीक-ठीक होता था। तो इन्द्र का भ्रम इस तरह दूर हुआ। इसीलिए गो0 तुलसीदास जी ने कहा–

"निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण जान नहिं कोय।"

समझ में आ जाता है, तो निर्गुण में भ्रम नहीं होता है। लेकिन सगुण में शंका होती है। संतलोग ईश्वर स्वरूप का वर्णन करते हैं, जो कि मैंने कहा है।

❀ मैं संतों के ज्ञान के अनुकूल ईश्वर-भक्ति का प्रचार करता हूँ। किस ओर, सगुण की ओर या निर्गुण की ओर ? किसी एक ओर जोर नहीं देता। संतों की वाणी में ऐसा नहीं है। हाँ! ऐसा कहा है कि पहले सगुण-उपासना, फिर निर्गुण-उपासना।

सगुण पर बहुत जोर दे दो सो ठीक नहीं और सगुण को छोड़कर केवल निर्गुण पर चलो, ऐसा रास्ता नहीं है। दोनों को क्रम-क्रम से पकड़ो। गुरु जो रास्ता बतावे उस पर चलो। स्थूल-सगुण के लिए भी तो गुरु आदेश देते हैं। फिर निर्गुण के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं, यह बात नहीं। रामकृष्ण परमहंस देव जी काली माई के सगुणउपासक थे। उनसे जो सिद्धि मिलनी चाहिये, सो भी मिली थी। एक पंजाबी साधु तोतापुरी उनके पास आये। उन्होंने देखा कि यह पुरुष बड़ा पवित्र है। उन्होंने कहा कि तुम बड़े पवित्र हो, ब्रह्म-दीक्षा लो। तुममें यह कमी है। परमहंस जी ने कहा–"माई

कहेगी तब।'' फिर भेंट होने पर पूछा कि माई ने क्या कहा ? उन्होंने कहा–''दीक्षा लेने बोली।'' फिर उन्होंने उनसे दीक्षा ले ली। इस तरह सगुण से निर्गुण की ओर चलते हैं। यह पुरानी परिपाटी है। सगुण के बाद निर्गुण की ओर चलते हैं।

❀ सगुण परमात्म-भक्ति में जो दर्शन होता है, वह इन्द्रियगम्य है। वह दर्शन मायामय है। परन्तु सगुण अथवा मायामण्डल के अन्दर उससे बहुत लाभ होता है। अष्ट सिद्धियाँ, नव निधियाँ उससे प्राप्त होती हैं। किन्तु ये ऐसे हैं कि इनको पाकर साधक को पूर्ण संतोष नहीं होता। ईच्छा बिल्कुल चली नहीं जाती। ये लोग यदि यहीं तक रह गये, तो इस लोक में और परलोक में बहुत सुख पाते रहते हैं और कभी-न-कभी ये सब सुख छूट भी जाते हैं।

❀ भक्त जहाँ सगुण-भक्ति करता है, वहाँ उसको इन्द्रियगम्य दर्शन होता है। उस दर्शन के लिए कहीं जाना पड़े सो नहीं। लेकिन निर्गुण-दर्शन वाले भक्त को जाना पड़ता है। अगर यह संदेह हो कि वह निर्गुण परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण सर्वत्र हई है, फिर जाना कहाँ है ? तो इसके उत्तर में संतों ने बताया है कि इसमें कोई शक नहीं कि निर्गुण-स्वरूप सर्वव्यापक है। लेकिन वह पहचान में नहीं आता। इसलिए सर्वत्र दर्शन नहीं होता। वहाँ जाना होता है, जहाँ जाकर दर्शन हो–जहाँ निर्गुण पहचान में आवे। एक बार दर्शन हो जाने पर सर्वत्र दर्शन ही रहता है। कभी दर्शन होता है, कभी नहीं, ऐसा नहीं। जब वह मायामय से ऊपर उठकर समाधि में रहता है, तब जो दर्शन होता है, समाधि से उतरने पर भी वही दर्शन होता है। इसकी मिशाल नहीं। थोड़ा-सा कहता हूँ। जैसे आपने स्वादिष्ट भोजन किया है, वह याद है, वह बहुत याद रहता है। और स्वादों के साथ उसकी भी याद रहती है। यह तो नमूना है। लेकिन वह दर्शन ऐसा है कि माया और निर्माया दोनों में एक ही को जानता है। दो भेद रहते हुए भी वही दर्शन पाता है। श्री राम वाल्मीकि जी के सामने उपस्थित थे। लेकिन वाल्मीकि जी कहते हैं–

''राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।''

यह दर्शन भी और श्रीराम के सगुण-रूप का भी दर्शन होता था।

❁ अपने को इन्द्रियगम्य–प्रत्यक्ष ज्ञान में रखना माया में रखना है। जब मायामंडल को पारकर दर्शन पाता है, तब निर्गुण दर्शन है। जो सगुण-ही-सगुण चाहते हैं, उनको माया में ही रहना और मायिक ही दर्शन होता है।

❁ गो0 तुलसीदास जी केवल मोटी ही भक्ति में नहीं थे। विनय-पत्रिका में है–

"एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय–कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।"

सूरदास जी ने भी कहा–

"अपुनपौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।"

अब बताइये कि नानक बाबा और कबीर बाबा, इनसे आगे की बात कहे हैं क्या ? इतना फरक जरूर है कि सगुण-भक्ति के बारे में गो0 तुलसीदास जी तथा सूरदास जी ने विशेष जरूर कहा और निर्गुण के बारे में कम। सब संत बराबर हैं। कोई कोई कबीर साहब को निर्गुण वाले मानते हैं। क्या वे गुरु को मानते थे कि नहीं ? गुरु का रूप सगुण ही हुआ। ईसाई बनो, तब भी गुरु है। ईस्लामी बनो, तब भी गुरु है। जितने सम्प्रदाय हैं, सबमें गुरु हैं। ईश्वर को नहीं मानने वाले नास्तिक को भी गुरु है। जबसे लोगों ने गुरु को मानने की प्रतिष्ठा में कम स्थान दिया है, तब से लोग भूले। गुरु सगुण ही है। कबीर साहब कहते हैं–

"मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।"

गुरुनानक साहब ने कहा–**"गुरु की मूरति मन महिं धिआनु।"**

ये सब कैसे बिल्कुल निर्गुण वाले हो गये ? जप, प्रार्थना सगुण-उपासना है। जितने संत हुए, किसी-न-किसी तरह से सगुण-उपासना करके ही निर्गुण तत्त्व को प्राप्त किए हैं। तमाम संसार के विश्व-विद्यालयों का पाठ समाप्त करके आवे, निर्गुण बोल नहीं सकते। निर्गुण शब्द जिभ्या पर नहीं आ सकता।

❁ कबीर साहब जी, गुरुनानक देव जी, दादू दयाल जी महाराज गुरु

को अवश्य मानते हैं। पर गुरु से भिन्न कोई दूसरा इष्ट सगुण रूप में नहीं लेते। ऐसे ही गुरु बिना इनके चलते नहीं, गुरु अवश्य मानते हैं। तुलसीदास जी भी गुरु मानते हैं, और एक इष्टदेव भी श्रीराम को मानते हैं। इसी तरह से सूरदास जी ऐसे और कितने महात्मा लोग। और गुरुनानक और कबीर साहब के अनुकूल भी कितने महात्मा लोग केवल गुरु। वहाँ सगुण-रूप में श्रीराम, श्रीकृष्ण या भगवान् शिव या देवी माइयाँ। और इनको सगुण रूप में–**"गुरु साहब तो एक हैं,"** सगुण रूप में गुरु-ही-गुरु, गुरु-ही-गुरु। तो यह सगुण रूप से निर्गुण रूप तक कबीर साहब भी जाते हैं, तुलसीदास जी भी जाते हैं, सूरदास जी भी जाते हैं।

❀ निर्गुण का अर्थ है, जिसमें गुण नहीं है। गुण कहते हैं–विशेषण को या तारीफ को। यह एक अर्थ है। किसी में किसी तरह की खूबी होती है, भलपन होता है, तो उसी खूबी और भलपन को उसका गुण कहते हैं। इसी को विशेषण भी कहते हैं। यह ऐसी चीज है कि इसके बिना कोई रह नहीं सकता। किसी की स्थिति नहीं रह सकती। कुछ-न-कुछ विशेषण सब में होता है। चाहे वह और कुछ न जाने। कुछ कहकर जिस नाम से जिसको पुकारें, वह उसका विशेषण है। बहुत दिन हुए, मैं पश्चिम में घूम रहा था। हाजीपुर पहुँचा। मेरा पहरावा ऐसा था कि कुछ लोग मुझको मुसलमान फकीर समझते थे। एक मुसलमान ने मुझको आदर से बुलाकर पूछा–आपकी तारीफ क्या है ? मुसलमानों में, उनकी भाषा में उनके नाम के बदले तारीफ पूछते हैं। मुझसे उन्होंने कहा–आपकी तारीफ क्या है ? मैं चकित हो गया। मैं नहीं जानता था। मैं समझ न सका। फिर उन्होंने मेरा नाम पूछा तो मैंने बता दिया। बिना नाम के संसार में किसी की स्थिति नहीं है। जितने लोग संसार में हुए हैं, होंगे सभी सगुण हुए हैं, निर्गुण कोई नहीं। ईश्वर कहिये, ईश्वर कहने से ही गुण हो गया। इसलिए ईश्वर भी सगुण है। और पदार्थों में भेद है। स्थूल, सूक्ष्मादि का भेद भी तारीफ है। सब सगुण है। क्या जड़ पदार्थ, क्या प्राणयुक्त-पदार्थ, बिल्कुल-के-बिल्कुल सगुण हैं।

❀ ज्ञान के उत्कर्ष में–ज्ञान का थोड़ा भी उत्कर्ष होने से समझ में आता है कि संसार में तीन शक्तियाँ हैं। उत्पादक, पोषक और विनाशक। कोई भी वृक्ष उत्पादक-शक्ति से निकलता है, उसका पोषक-शक्ति से पोषण

होता है। और विनाशक-शक्ति से विनाश भी होता है। और अंकुर रूप में नया पौधा हो गया। अंकुर का नाश हो गया। अब तीसरा नाम पर जाता है। उस रूप का भी नाश हो गया, तब वृक्ष हो गया। तब उस वृक्ष की एक हद तक वृद्धि हुई, फिर कमने लग गया। कमने लग गया तब क्या हुआ ? डाल सूखती जाती है। उसमें विनाश का काम दृष्टिगोचर होने लगा। होते-होते उसका पता नहीं रहा। इस तरह विनाशक-शक्ति का काम भी साथ-साथ होता है। इन तीनों शक्तियों का नाम ज्ञानियों ने अलग-अलग दिया है। उत्पादक का नाम दिया है रजोगुण, पालक का नाम सतोगुण और विनाशक का नाम है तमोगुण। इन तीनों गुणों के सहित जो हो जाये, वह है सगुण। अर्थात् जो इन गुणों के संग नहीं था, वह इन गुणों का संग कर लेने से सगुण हो गया। ईश्वर के मूल-रूप को निर्गुण कहते हैं। जब वे तीन गुणों को संग कर लेते हैं, तब सगुण होते हैं।

❁"**वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।**
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।"

—कठोपनिषद् 2/10

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक-रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक-रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

सृष्टि के तत्त्वों के संग-संग जो हो गया, वह तीन गुणों के संग हुआ। इसलिए स्थूल-सूक्ष्मादि भेद से सृष्टि त्रयगुणमय है। त्रयगुणमय तत्त्वों के साथ सृष्टि में ईश्वर सगुण कहलाते हैं। क्योंकि गुणों को वे धारण कर लेते हैं। लेकिन वे बदल कर त्रयगुण हो गये, सो नहीं। सगुण शब्द ऐसा अर्थ देता है कि किसी ने गुणों का संग कर लिया है। सगुण शब्द एक-ही-एक का ज्ञान नहीं देता। बल्कि कोई गुण के साथ हो गया है, ऐसा ज्ञान देता है। केवल अकेला रहता तो गुण-सहित कैसे कहा जाता ? सृष्टि नहीं है, गुणों का पसार नहीं है, तब ईश्वर त्रयगुण-रहित अर्थात् निर्गुण है।

❁ त्रिदेव–महेश, ब्रह्मा, विष्णु जो हैं, इनके लिए भी कहा जाता है कि ये भी ईश्वर हैं। विचारने पर ये भी ईश्वर के सगुण-रूप हैं। किनकी प्रार्थना से ये सगुण हुए ? सो भी वर्णन नहीं है। परमात्मा की मौज से हुए।

अवतारी-पुरुष जो होते हैं, उन्हीं के लिए खासतौर से है कि **"भगत प्रेम बस सगुण सो होई"**। एक तो भगत-प्रेम बस सगुण, दूसरा ब्रह्मा, विष्णु, महेश का सगुण और तीसरा इन सबमें व्यापक होता हुआ विराट्-सगुण-रूप ये सभी इनकी खास मौज से हैं। तब भी सारे सगुण में व्यापक होते हुए भी सबसे परे अपना स्वरूप रखते ही हैं। वह है–निर्गुण।

❀ प्रथम का जो मूल-तत्त्व है, सर्व-पर जो तत्त्व है, सबसे पूर्व का जो पदार्थ है; वह निर्गुण है। सगुण में स्थूल, सूक्ष्म का भेद है। सगुण में साकार, निराकार का भेद है। और दृश्य-अदृश्य का भेद भी है। साकार-भेदों में भी व्यक्त और अव्यक्त है। जैसे तुरीय-अवस्था में पहुँचो तब जो देखो सो सगुण है। लेकिन तीन अवस्था में रहने वाले के लिए अव्यक्त है। इन बातों की जानकारी चाहिये। केवल निरगुणियाँ और सरगुणियाँ कहकर फिरना और साधना करके जानना नहीं, विद्वानों के लिए यह उचित नहीं जँचता। साधना करके जो ज्ञान होता है, उनमें वे नहीं हैं। और वचस-ज्ञान में बहुत पारंगत हैं, उनकी बड़ी तारीफ भी होती है। लेकिन मैं कहता हूँ–उनको यह ज्ञान भी हो जाये तो सोने में सुंगध है।

❀ लोग समझते हैं कि गो० तुलसीदास जी बाहर-बाहर भक्ति करते थे। हमारे देश के साहित्यिकों ने लिखा है कि गो० तुलसीदास जी और सूरदास जी सगुणियाँ भक्त थे। मैंने कहा इन्होंने खूब समझा है। अरे! कोई केवल सगुणियाँ-भक्त और कोई केवल निर्गुणियाँ-भक्त नहीं होता। संतों के साहित्य को पढ़ो, उनके पारिभाषिक-शब्द को भी जानो।

❀ व्याप्य सगुण है तथा जो व्यापक है, वह निर्गुण है। ईश्वर उपासना में पहले सगुण-भाव चाहिये, बाद में निर्गुण। कितने कहते हैं कि कबीर साहब, गुरु नानक साहब आदि सगुण रूप नहीं मानते थे। उनको जानना चाहिये कि केवल दाशरथि राम को मानना ही सगुण नहीं है। कृष्ण-रूप, देवी-रूप, शिव-रूप, गुरु-रूप–ये सब क्या सगुण नहीं हैं ?

"अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा,
बसत इति वासना धूप दीजै।"

सर्वगत रूप जो है उसका भी ज्ञान होना चाहिये। चाहे कोई भी इष्ट हों, सगुण का भी ज्ञान होना चाहिये और सगुण में जो व्यापक है, उनका

भी ज्ञान होना चाहिये। यही राम के भजन का तरीका है। दोनों को पहचानो।

गो० तुलसीदास जी कहते हैं–**"रघुपति भगति करत कठिनाई।"** यह ठीक है। फुसलाने की बात नहीं है। सगुण-निर्गुण में जो भेद है कितना कहा जाये ? **"सत्संग-योग"** (महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज द्वारा विरचित चार भागों में) के चौथे भाग में लिख ही दिया है। पढ़कर मनन कर रखो। कोई संत केवल सगुण-भक्त, कोई संत केवल निर्गुण-भक्त नहीं होते। कोई संत पर जबर्दस्ती कुछ लादे, हो नहीं सकता। उनको वचस-ज्ञान भले बहुत हो, लेकिन यौगिक-दृष्टि से बहुत दूर हैं।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी का उपदेश

जो साकार है, वही निराकार। साकार रूप से वही भक्तों को दर्शन देता है। जैसे–महासमुद्र में केवल अनन्त जलराशि होती है, उसका कूल-किनारा कुछ नहीं; परन्तु कहीं-कहीं अत्यन्त ठण्डक पड़ने के कारण पानी जमकर बर्फ के रूप में दिखाई देता है; उसी प्रकार भक्तों के भक्ति रूपी हिम से निराकार परमात्मा का भी साकार रूप में दर्शन होता है। फिर सूर्य नारायण के उदय होते ही जैसे बर्फ गल जाती है और पहले की भाँति जल-मात्र ही रह जाता है, वैसे ही ज्ञानरूपी सूर्य भगवान् के प्रकाशित होने पर साकार रूप बर्फ पिघलकर केवल जलरूप निराकार ही विद्यमान रहता है।



श्री सद्गुरवे नमः

विश्वरूप-दर्शन तथा उसकी यर्थाथता

❀ निर्गुण का एक भाव होता है और सगुण का दो। एक तो विश्वरूप, दूसरा एक-एक शरीर में। श्रीराम, श्रीकृष्ण, देवी आदि के शरीर में ब्रह्म मानते हैं।

"अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा
बसत इति वासना धूप दीजै।"

—विनयपत्रिका

यह विश्वरूप है। सर्वगत निर्गुण है और जिसमें है, वह सगुण है। इन दोनों को भरपूर करते हुए जो है, वही परमात्मा है।

माता कौशल्या को भगवान् श्रीराम ने विश्वरूप दिखाया था। राजा बलि से जो पृथ्वी ली थी, वहाँ विश्वरूप दिखाया था। विश्वरूप और विराट्‌रूप एक ही बात है। यह रूप भी देशकालाविच्छिन्न है। यह अनादि-अनन्त नहीं है। जब राजा बलि को छलने के लिए भगवान् गये तो बड़ा रूप बनाकर, तीन डग में सारी पृथ्वी को नाप लिया। जामवन्त उस समय बहुत बलवान थे। उन्होंने कहा कि मैंने दो घड़ी के अन्दर सात बार उनकी परिक्रमा की। यह प्रसंग बताता है कि वह विराट्‌रूप भी ससीम था।

❀ अपनी साधना से वा किसी की दी हुई दिव्य-दृष्टि से भी परमात्मा की वा अपने की पहचान नहीं होती। दिव्य-दृष्टि के अतिरिक्त आत्मदृष्टि होती है, आत्मदृष्टि में आँख नहीं होती। अर्जुन ने मानवरूप, देवरूप और विराट्‌रूप; तीनों का दर्शन पाया था। विराट्‌रूप को दिव्य-दृष्टि से अर्जुन ने देखा। यह भी मायिक रूप ही था। अर्जुन को बोध हो जाये कि कौरव और पाण्डव दल के सभी भगवान् के द्वारा मारे गये हैं। इसलिए भगवान् ने विराट्‌रूप धारण किया था। अर्जुन को हिम्मत देने के लिए वह रूप धारण किया गया था। अर्जुन देखते हैं कि कौरव पाण्डव दल के सभी वीर भगवान् के विकराल मुँह में प्रवेश करते हैं। और कुछ मर-मरकर नीचे भी गिरते हैं। विराट्‌रूप का दर्शन श्री नारदमुनी जी को भी हुआ था। भगवान् ने उनसे

कहा—"तू मेरा जो रूप देख रहा है, यह मेरी उत्पन्न की हुई माया है। मेरे आत्मस्वरूप को देखने के लिए इसके भी परे जाना चाहिये। आत्मदृष्टि में आँख नहीं है, लेकिन सभी ज्ञान उसको है।"

❁ (भगवान् श्रीकृष्ण का) वह रूप आश्चर्यमय था। वह बड़ा प्रकाश मय था। हजारों सूर्य का एक साथ प्रकट प्रकाश पुंज भी उस महान् प्रकाशमय तेज-सदृश कदाचित ही हो। देवादि सर्व प्राणी उस महान रूप में दिखाई पड़ते थे। उस रूप में हाथ, पैर, उदर, मुख और नेत्रादि सभी अवयव अनेकानेक दरसते थे। वह रूप मुकुटधारी, गदाधारी और चक्रधारी था। वह रूप इतना महाविकराल था कि उसका दर्शन करके अर्जुन बहुत विस्मित, भयभीत और व्याकुल था।

परमात्म-स्वरूप निर्मायिक है, त्रयगुणमयी प्रकृति से निर्मित नहीं है। अतः उसको विकराल नहीं कह सकते। उसका दर्शन शरीर-युक्त रहने से नहीं होता है, केवल आत्मा को ही होता है। परमात्मदर्शी आत्मा को उस दर्शन से वैसा डर नहीं होता, जैसा कि अर्जुन को विराट्रूप दर्शन से हुआ था। अतः विराट्रूप का दर्शन मायिक रूप का दर्शन है।

❁ एक बार माता कौशल्या ने श्रीराम जी को स्नान कराके और श्रृंगार कराके झुलावे (हिंडोले) में सुला दिया और आप स्नानकर अपने कुलदेव की पूजाकर नैवेद्य भोग लगाकर पाकगृह (रसोईघर) चली गई। जब वे पुनः लौटकर पूजा-स्थान पर आई तो उन्होंने देखा कि देवता को चढ़ाये गये नैवेद्य शिशु रूप भगवान् राम भोजन कर रहे हैं। पर जाकर जब झुलवे पर देखा, तो वहाँ भी निज पुत्र राम जी को सोते पाया। इस तरह पूजा स्थान और हिंडोले के पास कई बार जाकर देखा। दोनों जगह पर श्रीराम जी को पाया। इस दृश्य को देखकर कौशल्या जी डर गई और काँपने लगीं। माता की यह अवस्था देखकर श्री राम जी हँसे और माता को अपना अद्भुत रुप दिखाया—

"देखरावा मातहिँ निज, अद्भुत रुप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड।।"

—रामचरितमानस

श्रीराम जी ने अपनी माता को अपना आश्चर्यपूर्ण रूप दिखलाया कि

जिसके एक-एक रोएँ में करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए थे।

यह अचरज रूप भी भगवान् का निर्गुण आत्मस्वरूप नहीं है। यह तो उनकी विशाल मायाभर है। महाभारत के शांति-पर्व के नारायणीय प्रकरण में है कि भगवान् ने नारद जी को अपने अद्‌भुत विराट्‌रूप (विश्वरूप) का दर्शन देकर कहा—"तुम जो मेरा रूप देख रहे हो, वह मेरी उत्पन्न की हुई माया है। इससे तुम ऐसा न समझो कि मैं सर्वभूतों के गुणों से युक्त हूँ। मेरा सच्चा स्वरूप सर्वव्यापी, अव्यक्त और नित्य है।" एक रूप से अनेक रूप बनने की माया तो रावण आदि राक्षस भी जानते थे। अपने ऐसे अद्‌भुत विराट्‌रूप का दर्शन् शिवजी ने राम जी को दिया था। जिस प्रकार महाभारत का अंश श्रीमद्‌भगवद्‌गीता परमोच्च ज्ञान का ग्रन्थ है, लोग कहते हैं कि उसी तरह पद्‌म पुराण का अंश शिवगीता परमोच्च ज्ञान का ग्रंथ है। इस शिवगीता में वर्णन है कि जब श्रीसीता जी को रावण हरकर ले गया, तो श्रीराम जी उनके विरह में व्याकुल हुए। श्रीअगस्त्य मुनि ने उन्हें पहले तो कुछ ज्ञान-वैराग्य का उपदेश दिया, फिर शिवजी का दर्शन प्राप्त करने के लिए तप करने को कहा। श्रीरामजी ने वैसा ही किया। कुछ दिनों के बाद श्रीशिवजी देवताओं-सहित श्रीरामजी के सम्मुख प्रकट् हुए और रावण का वध करने के लिए उन्होंने श्रीरामजी को अस्त्र-शस्त्र दिये। इसके बाद दिव्य दृष्टि देकर अपना परम अद्‌भुत विराट्‌रूप दिखाया। श्रीरामजी ने शिवजी के उस विराट्‌रूप के मुख में अनेकों ब्रह्माण्डों और सब रचनाओं को देखा। शिवजी का वह विराट्‌रूप ऐसा तेजोमय और भयदायक था कि एक तो श्रीराम जी अपनी साधारण दृष्टि से उसे न देख सकेंगे, यह विचार कर शिवजी ने उन्हें दिव्यदृष्टि दी और दूसरी बात यह है कि दिव्यदृष्टि से दर्शन पाने पर श्रीरामजी डर से सीधे खड़े न रह सके, जंघाओं के बल पृथ्वी पर बैठ गये। (शिवगीता, अ० 7, श्लोक 9 से 20 तक)। विराट् रूप दिखलाने की माया-विद्या केवल विष्णु भगवान् वा केवल श्रीरामजी को ही है, सो नहीं; योगी और ज्ञानीजन भी अपने अन्तर में सारा ब्रह्माण्ड देखते हैं।

"सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवई निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।"

(गो० तुलसीदास जी की 'विनयपत्रिका')

ज्ञानी पुरुष बाहरी आकाश की भावना उदराकाश में, वायु की चेष्टा स्पर्श में, तेज की जठराग्नि में, आदित्य की नेत्र में, जल की शरीर के चिकनेपन में, पृथ्वी की शरीर में, चन्द्रमा की मन में, दिशाओं की श्रोत्र में, विष्णु की गति में, शिव की बल में, अग्नि की वाणी में, मित्र (मरूद्‌गण देव में से पहला) की गुदा में, प्रजापति की जननेन्द्रिय में भावना करे। इस शरीर में सुमेरु आदि सब पर्वत, समुद्र और नदी आदि समस्त विराट् की रचना विद्यमान है। (जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे) मनुष्य योग का अवलम्बन करे, तो वह अपने अन्तर में समस्त विराट् की रचना देख और दिखा सकता है। इस प्रकार अपने शरीर को विश्वरूपी बनाना यद्यपि आश्चर्य का काम है, तथापि यह भी माया से भिन्न दूसरा कुछ नहीं है और ऐसा काम योगिजन कर सकते हैं।

❀ "निज भ्रम नहिँ समुझहिँ अज्ञानी।
प्रभु पर मोह धरहिँ जड़ प्रानी।।
जथा गगन घन पटल निहारी।
झाँपेउ भानु कहहिँ कुविचारी।।"

—रामचरितमानस

अज्ञानी अपने भ्रम को तो समझते नहीं, पर (वे) जड़ जीव अपने मोह को प्रभु पर धरते हैं। जैसे आकाश में मेघ के परदे को देखकर कुविचारी कहते हैं कि इसने (घन-पटल) सूर्य को ढाँक लिया है।

पृथ्वी से सूर्य पन्द्रह लाख गुणा बड़ा और नौ करोड़ तीस लाख मील ऊपर में है। बहुत से तारे-पुंज और चन्द्रमा, सूर्य के नीचे हैं। बादल, ताराओं और चन्द्रमा से भी नीचे रहता है। भूमण्डल के सब भागों में एक ही ऋतु एक ही समय में नहीं रहने के कारण, समस्त भूमण्डल के निवासी एक हीं समय अपने ऊपर मेघाच्छन्न आकाश नहीं देखते हैं। जिस समय भूमण्डल के किसी भाग पर से सूर्य साफ नजर आता है, उसी समय किसी भाग पर से बादल से ढँका हुआ-सा रहकर वह नजर नहीं आता है। इन्हीं कारणों से मेघ-मण्डल, जो सूर्य-मण्डल से सदैव बहुत छोटा है, सूर्य-मण्डल का पूर्ण ढाँकने वाला नहीं हो सकता है। इसलिए कहना पड़ेगा कि भूमण्डल पर से समस्त मेघ-मण्डलों का यदि एक ही मण्डल बनाकर उसको सूर्य की ओर

सीधे ऊपर की तरफ उठाते हुए सूर्य से बराबरी करने के लिए पहुँचाया जाये, तो वह (समस्त मेघ-मण्डल) जैसे-जैसे ऊपर चढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे भूमण्डल पर रहने वालों को छोटा नजर आता जायेगा। (क्योंकि दूर की वस्तु स्वभाव से ही छोटी मालूम होती है) और सूर्यांश प्रत्यक्ष होता जायेगा। वह सूर्य तक पहुँचने भी न पावेगा कि सम्पूर्ण सूर्य-मण्डल बिना पर्दे का प्रत्यक्ष मालूम होने लगेगा और वह मेघ-मण्डल (सूर्य ताप के कारण नहीं, केवल दूरी ही के कारण मान लीजिये) एक छोटा चिह्न-मात्र मालूम होकर, फिर न मालूम होने लगे तो कुछ आश्चर्य नहीं। फिर सूर्य-ताप तो समस्त मेघ-मण्डल को नाश ही कर देगा, इसमें संशय ही क्या ? इसलिए मेघ-मण्डल से समस्त सूर्य-मण्डल कभी भी छिप नहीं सकता। इन बातों के नहीं जानने वालों को बादल से सूर्य के ढँक जाने का जैसे भ्रम होता है, वैसे ही अगुण और सगुण के विवेक से रहित अज्ञानी मनुष्य को सगुण-रूप बादल से निर्गुण-रूप सूर्य के ढँक जाने का भ्रम होता है।

अज्ञानी मनुष्य यह तो नहीं समझता है कि भ्रम मेरी बुद्धि पर छाया हुआ है, बल्कि वह जड़ प्राणी प्रभु पर ही मोह धरता है कि निर्गुण प्रभु रूप सूर्य पर सगुण बादल पूर्णरूप से चढ़ा होकर वह (निर्गुणरूप सूर्य) सम्पूर्णतः सगुण रूप से ढँक गया है। वह सम्पूर्ण-का-सम्पूर्ण सगुणाकार ही हो गया है। ऐसा विचार कुविचारी ही को होता है।

प्रभु का सहज निर्गुण स्वरूप अपरिमित है। वह बड़े-से-बड़े सगुण रूप से आवृत्त हो नहीं सकता है। निर्गुण स्वरूप परम विशाल, अनगिनत ब्रह्माण्डमय परम **विराट्** सगुण रूप से अच्छादित होने पर भी इसके सगुण **विराट्** के प्रति और बिना ढ़ँके कितना अधिक बच जाता है, उसका अनुमान कोई नहीं कर सकता है। वर्णन् हो चुका है कि बादल का रूप सूर्य के निकट होते-होते सूर्य ताप और दर्शकों से दूर होते जाने के कारण घटते-घटते सम्पूर्णतः लुप्त हो जायेगा। इसी तरह अगुण-सगुण के विवेक से सगुण की निःसारता, असत्यता, भ्रमरूपता और स्वप्न-सदृशता जैसे-जैसे समझ में आती जायेगी और निर्गुण रूप का परमज्ञान ताप जैसे-जैसे विशेष मिलता जायेगा वैसे-वैसे सगुण-ज्ञान दूर और तुच्छ होते जाकर, बिल्कुल नष्ट हो जायेगा। तब सगुण रूप को सामने देखने पर वह निर्गुण ही जानेगा।

बाल्मीकि मुनि ने अपने सामने वर्त्तमान नररूप धारि भगवान् राम से कहा–

"राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।"

❁ ऐन महल पट बन्द कै, चलु सुखमन घाटी हो ।।
दृष्टि डोरि स्थिर रहे, तम बिचहि में फाटी हो ।
खुले राह असमान की, टूटय भ्रम टाटी हो ।।
जोति मण्डल धँसि धाय के, निरखत **वैराटी** हो ।
धुर धुन गहि लहि परम पद, बन्धन लेहु काटी हो ।।
सन्तन की यह राज रही, भेरव भर्म से पाटी हो ।
'मेँहीँ' देवी साहब दया, दीन्हीं भ्रम काटी हो ।।





श्री सद्‌गुरवे नमः

त्रिगुणमयी माया और उसकी असत्यता

❀ आजकल अष्टग्रह का डर हमलोगों के यहाँ बहुत है। इस डर के मारे लोग धर्मानुष्ठान करते हैं, यज्ञ करते हैं, कीर्त्तन करते हैं आदि। डर होना भी अच्छा है। संत कबीर साहब ने कहा है–

"डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार।।"

जो-जो उद्यम करने वाले हैं, सभी यदि डर करना छोड़ दें, आपके जिम्मे जो काम है, उसको छोड़ दें, तो उसका नतीजा बुरा हो जायेगा। अपने ऊपर ही हानि हो जायेगी। ऊपर वाले पद से हटा न दें, नीचा न कर दें, इस डर से लोग नौकरी करते हैं। इस साल लोग यज्ञ बहुत करते हैं, क्यों? डर के मारे। लेकिन यह डर कितने दिनों के लिए ? सुनने में आया है कि पंडित लोग कहते हैं कि ढाई वर्ष तक इसका प्रभाव रहेगा। लेकिन जो माया के प्रभाव जन्म-जन्मान्तर से हमारे ऊपर लगे हैं, उनसे क्यों नहीं डरते हैं ? माया की सेना जो कराना चाहती है, वैसा करा लेती है अपनी इच्छा नहीं रहने पर भी। इसलिए उस बड़े की शरण लेनी चाहिये, जिसके वश में माया है, जिसके इशारे पर माया नाचती है।

❀ ईश्वर माया के सिरजनहार हैं। माया का अदल-बदल होता है। ईश्वर की मौज से माया का नाश भी हो जाता है। माया ईश्वर की मौज से बनती है। इन्द्रियों के ज्ञान में जो कुछ भी आवे, उसे माया जानना चाहिये। गो0 तुलसीदास जी महाराज ने रामायाण में लिखा है–

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई।।"

इन्द्रियों को जो प्रत्यक्ष है और मन जहाँ तक जाता है, सबको माया-ही-माया जानो। अगर कोई इन्द्रिय से जानने योग चीज है उसे यदि ईश्वर मानेंगे तो वह ईश्वर नहीं होगी, माया ही होगी। इन्द्रिय-ग्राह्य पदार्थ को माया कहते हैं।

❀ जो कुछ आँख से देखते हैं, कान से सुन सकते हैं, हाथ से छूते हैं,

जिस वस्तु से किसी प्रकार की गँध मालूम हो, जिभ्या से जो मालूम हो, वह माया है। रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श–ये पाँचो माया-ही-माया हैं। इस तरह हमालोगों को ये ही मालूम होते हैं। उपनिषद् कहती है–जिसे इन्द्रियों से पहचानते हैं, वह ईश्वर नहीं है–माया है।

❁ किसी रूप के दर्शन से माया से छुट्टी नहीं होती। मनु-शतरूपा को जिस रूप का दर्शन हुआ, उस रूप को देखकर उनके ऐसा पुत्र पाने का वरदान माँगा। जब त्रेता-युग में राजा दशरथ के रूप में आये तो साधारण राजा की तरह शिकार का चस्का उनको लग गया। दिन-रात शिकार करते थे, वे थकते नहीं थे। संयोग से एक रात को शिकार में गये कि हाथी को मारेंगे। श्रवण कुमार अपने अंधे माता-पिता को पानी पिलाने के लिए नदी से पानी लाने गये। कमण्डल में पानी भरते समय आवाज हुई। राजा दशरथ जी को हुआ कि हाथी पानी पी रहा है, उन्होंने शब्द-वेधी वाण चला दिया। वाण श्रवण को लगा। वह कराहने लगा। दशरथ जी दौड़कर उनके पास गये। देखा कि हाथी नहीं, यह तो आदमी है। श्रवण ने कहा–"मुझे क्या देखते हैं। मेरे माता-पिता प्यास से व्याकुल हैं, आप उनको पानी पिला दीजिये।" दशरथ जी पानी लेकर श्रवण के माता-पिता के पास पहुँचे और पानी पीने के लिए देने लगे। वे लोग श्रवण की बहुत देर से आशा देख रहे थे। उनलोगों ने पूछा-"बेटा! बहुत देर हो गई पानी लाने में।" दशरथ जी कुछ बोले नहीं। तब उन लोगों ने कहा–"यदि बोलोगे नहीं तो हमलोग पानी नहीं पियेंगे।" लाचार राजा दशरथ को कहना पड़ा कि "मैं आपका पुत्र नहीं हूँ। आपका पुत्र धोखे में मेरे वाण से मारा गया। मैं राजा दशरथ हूँ।" उनलोगों ने कहा–"जाओ, जिस तरह हमलोग अपने पुत्र के विरह में मर रहे हैं, उसी तरह तुम भी पुत्र-वियोग के शोक में मरोगे।" यह कथा प्रसिद्ध है।

लोगों को विचारना चाहिये कि जिस दर्शन से कर्म के बन्धन के अन्दर नहीं आना पड़े और फाजिल चस्का नहीं हो, यह रूप-दर्शन में नहीं होगा। यह होगा परमात्मा के दर्शन से।

❁ इस माया के लोक में, देश-काल में कहीं जाओ, माया में रहोगे। कितना भी पवित्र-स्थान में जाओ, देश-काल में रहोगे। जो संसार देख

सकते हो, जो नहीं देख सकते हो, इन्द्रिय-ज्ञान से माया के संसार को पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हो। अपने अंदर जाओगे तो माया से छूटते जाओगे।

❁ सब-के-सब जो संसार में देखे जाते हैं, सभी भ्रम के फन्दे हैं। भ्रम कहते हैं—जिसकी स्थिति नहीं हो, फिर इस तरह मालूम पड़े; जैसे धुँधली रोशनी में डोरी (रस्सी) देखकर साँप का भ्रम होता है। जैसे ही भ्रम हुआ, वैसे ही भ्रम सम्बन्धी सभी डर वगैरह हो जाते हैं। लोग डरकर भाग जाते हैं। सीपी में सूर्य की रोशनी लगने से वह चाँदी-जैसी लगती है। सूर्य-किरण में जो चमक है, उसमें कभी-कभी बालू पर जल का भास होता है। उसी को मृग-भ्रम-वारि कहते हैं। मृगवारि झूठ है। भला-बुरा होना भ्रम है। ये असल में है ही नहीं। जो कुछ भी प्रपंच दृष्टिगोचर है, स्वर्ग-नरक है—सभी भ्रम-मूलक हैं।

❁ हम मायिक आवरण में हैं। आवरण दूर करने के लिए क्या करना होगा ? कूदना होगा वा आकाश में उड़ना होगा ? शुकदेव जी आकाश में उड़ सकते थे। बुद्ध भगवान् के समय में कितने भिक्षु आकाश में उड़ सकते थे और बुद्ध तो उड़ते ही थे। शुकदेव जी को व्यासदेव जी ने कहा कि—"तुम ज्ञान प्राप्त करने राजा जनक जी के पास जाओ। लेकिन मामूली तरह से पैदल चलकर, आकाश में उड़कर नहीं।" आकाश में उड़कर भी कोई मायिक आवरणों को पार नहीं कर सकता। बाहर को छोड़ो, अपने अन्दर चलकर अपने शरीर को छोड़ो।

❁ इन्द्रिय-ज्ञान में जो कुछ आता है, वह माया है। स्थूल इन्द्रियों के ज्ञान में केवल माया ही पकड़ी जायेगी। वह भी केवल स्थूल माया ही है। इसका सूक्ष्म और कारण रूप भी इतना झीना है कि उसको पकड़ने के लिए स्थूल इन्द्रियाँ कभी शक्य नहीं हैं।

❁ माया उसको कहते हैं, जो जिस तरह मालूम हो उसी तरह नहीं रहे। सुखदाई मालूम पड़े, लेकिन है दुखदाई। उसकी स्थिति मालूम पड़े, लेकिन उसकी स्थिति है नहीं।

सीप में चाँदी का भास होता है, चाँदी है नहीं। इसी तरह ईश्वर की माया भासमान है। लेकिन उसकी स्थिति जान पड़ती है, परन्तु स्थिति है नहीं। केवल भ्रम से ही ऐसा मालूम होता है। धूप की चकमकी में, खासकर

रेगिस्तान में बालू पर बड़ी चकमक होती है। इससे जैसे पानी मालूम पड़ता है, पानी का हिलोर मालूम पड़ता है, लेकिन पानी है नहीं। इसी तरह ईश्वर की माया है—मालूम पड़ती है; लेकिन है नहीं। इसको जानना चाहते हो तो अन्दर घुसो तो पता लगेगा कि स्थिति इसकी नहीं है, स्थिति ईश्वर की है।

❀ माया की भयानक सेना संसार में फैली हुई है। उसके सेनापति काम-क्रोधादि हैं और दम्भ, कपट, पाखण्ड आदि योद्धा हैं। इनके ही दबाव में सभी लोग पड़े हैं। चाहे वह विद्वान् हो, अनपढ़ हो, इस देश के हो, दूसरे देश के हो, वैज्ञानिक हो, वा कोई हो; यहाँ तक कि देवता भी इस दबाव में हैं। इसलिए उनकी शरण लो, जो इनको अपने वश में किये हैं। जैसे नट के आदेशानुसार नटी नाचती है, वैसे ही ईश्वर के इशारे पर माया नाचती है। माया पूर्णरूपेण ईश्वर के वश में है।

❀ व्यक्त पदार्थ जो इन्द्रियों से ग्रहण होता है, वह एक समान सदा नहीं रहता है। वह उपजता है, ठहरता है, बदलते-बदलते नाश की ओर जाता है और बाद में प्रत्यक्ष नहीं रहता है। इनमें से कोई पदार्थ ऐसा नहीं, जो उपजा नहीं हो और जिसका विनाश न हो। ऐसे पदार्थ को कहा गया है—क्षणभंगुर। उपनिषदों में इसे माया कहा गया है। संत वाणियों ने भी इसे माया कहा है।

❀ जड़ प्रकृति को ज्ञान नहीं है। वह मलिन माया है और एक निर्मल माया भी है। विद्या और अविद्या कहकर मानो तो हो सकता है। विद्या माया और अविद्या माया अर्थात् अविद्या माया—अपरा-प्रकृति -और विद्या माया—परा-प्रकृति है। अपरा-प्रकृति त्रयगुण है और परा-प्रकृति निर्गुण है। इन दोनों के परे जो है, वह निर्गुण-सगुण नहीं है। परा-प्रकुति निर्गुण है।

❀ 'मैं' और 'मेरा' दोनों माया है। माया दो हैं—विद्या और अविद्या। अविद्या माया अंधी है, अपने को भी नहीं देखती। यह दुष्ट माया है। इसके बाद विद्या माया है। दान, पुण्य, सत्संग, विद्या-माया है।

❀ **हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या।**
प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या।।

श्री रामचरितमानस

हरि-सेवकों को अविद्या-माया नहीं व्यापती, किन्तु प्रभु (राम) की प्रेरणा

से उनको विद्या माया व्यापती है।

भक्त जबतक अपने अंतर में साधन के द्वारा अपने इष्टदेव का निर्मल, निर्गुण, अज, अनादि, अनन्त आत्मराम, सहज स्वरूप प्राप्त नहीं कर सकता है, तभी तक उसे सेवक-सेव्य का भाव बना रहता है।

''जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।'' तात्पर्य यह है कि जो भक्त वचन-अगोचर, बुद्धि पर, अविगत, अकथ और अपार राम को वा निर्मल, निर्गुण और सहज आत्मरूप राम को जान लेता है, उसका सेवक-सेव्य भेद-भाव मिट जाता है—वह राम ही हो जाता है। ऐसी दशा में उसे विद्या वा अविद्या माया कैसे व्यापे ? वह तो माया-ईश वा माया के दोनों रूपों का प्रेरक ही हो जाता है। और जबतक भक्त इस सर्वोच्च पद तक नहीं पहुँचता है, तबतक ही वह राम-भक्त (राम नहीं) कहलाता है। और उसको प्रेरित विद्या-माया व्यापती है, जिससे वह ऐसे अवसर पर व्याकुल, त्रसित और शोकित आदि होता रहता है। जैसे कागभुशुण्डि, राजा दशरथ और अर्जुन आदि हुए थे। इसलिए जो परम कल्याण चाहे, व्याकुलता, त्रास और शोक आदि दुःखों से बचना चाहे, उसे चाहिये कि प्रथम सेवक—से वे भाव रखकर भक्ति-पथ में आगे बढ़ता जाये। और अन्त में उपर्युक्त सर्वोच्च पद पर सेवक-सेव्य भेद-भाव को छोड़ अविगत, अकथ, अपार रूप राम ही बनकर माया का प्रेरक बने। ना कि विद्या माया के वशवर्त्ती रह समय-समय पर व्याकुलता, त्रास और शोकादि से पीड़ित होवे।

❀ माया अचेतन और असत्य है। जैसे सीपी और सूर्य-किरण की सत्यता के आधार पर तथा मोह (भ्रम) कि सहायता पाकर सीपी में चाँदी और सूर्य-किरण में जल मालूम पड़ता है, वैसे ही राम के अनादि, सहज और निर्गुण रूप की सत्यता के आधार पर मोह (भ्रम) की सहायता पाकर माया भासती (मालूम पड़ती) है। माया कोई स्वतंत्र मूल द्रव्य (तत्त्व) नहीं है। यद्यपि माया असत्य और भ्रम मात्र है, तौभी अज्ञानावस्था में दुःख देती है। जैसे स्वप्न का दुःख जग जाने से मिटता है, तैसे ही राम की कृपा से अज्ञानावस्था-रूप नींद से जागने पर अर्थात् भ्रम के नष्ट होने पर माया मिट जाती है।

❀ **''पुरुष त्याग सक नारी हीं, जो विरक्त मति धीर।**

न तु कामी जो विषय बस, विमुख जो पद रघुवीर।।
सो मुनि ज्ञान निधान, मृग नयनी विधुमुख निरखि।
बिकल होहिँ हरिजान, नारी विवश माया प्रगट।।''

—श्रीरामचरितमानस

वह पुरुष स्त्री को त्याग सकता है, जो वैराग्यवान् और धीर बुद्धि का होता है, परन्तु वह नहीं त्याग सकता है, जो विषय के अधीन और राम के चरणों से विमुख होता है। हे गरूड़ जी! वह ज्ञान के निधान मुनि क्यों न हो मृगलोचनी और चँद्रमुखी स्त्री को देखकर विकल हो जाता है। स्त्री संसार में प्रत्यक्ष माया है।

अधुरे भक्त मृगनयनी-विधुमुखी को देखकर व्याकुल हो जाते हैं, पर जो विरक्त और धीरमति हैं, वे व्याकुल नहीं होते हैं। रघुवीर पद से विमुख कामी और विषय-वश को ही 'ज्ञान-निधान मुनि' कहा गया है, ऐसे ज्ञानी को ''ज्ञान-निधान'' कहना मुनि के लिए व्यंग्य वा ताना मारना है। भला ऐसे लोग भी 'ज्ञान-निधान मुनि' होते हैं?

''वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पर न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्ति नहिं होई।।
षट्रस बहु प्रकार व्यंजन कोउ दिन अरू रैन बखानै।
बिनु बोले सन्तोष जनित सुख खाइ सोई पै जाने।।''

—(विनय—पत्रिका)

ऐसे कथन से कवि का कहना है कि विरक्त और मतिधीर ज्ञानी (अनुभव-प्राप्त ज्ञानी) रघुवर-राम-पद के-सत्स्वरूप के पक्के भक्त होते हैं। वे मृगनयनी विधुमुखी को देखकर व्याकुल नहीं होते हैं। पर विषय-आसक्त अस्थिर बुद्धि वाले, अनुभव-शून्य रघुवर राम के पद से विमुख (केवल वाक्य ज्ञान-निपुण) ज्ञान-निधान मुनि (परम अधूरे ज्ञानी) मृगनयनी विधुमुखी को देखकर व्याकल हो जाते हैं। चाहे अधूरे ज्ञानी हों, चाहे अधूर भक्त हों, वे माया से मोहित अवश्य होंगे। जो पूरा भक्त है, वही पूरा ज्ञानी है और जो पूरा ज्ञानी है, वही पूरा भक्त है। इनमें अन्तर यही है कि भक्त, प्रथम इष्ट को अपने से भिन्न मानकर उनकी उपासना भक्ति-योग की रीति (जो तृतीय सोपान में नवधा-भक्ति के नाम से वर्णित हैं) से करके उपास्य देव के

सत्स्वरूप वा आत्मस्वरूप को प्राप्त करके पूर्ण होता है; पर ज्ञानी वेदान्त द्वारा आत्म-अनात्म विचारकर आत्म-चिन्तन करता हुआ योगाभ्यास करके सत्यस्वरूप आत्म-राम को प्राप्तकर लेता है। दोनों एक ही लड्डू और एक ही स्वाद पाते हैं, पर अधूरेपन में दोनों को माया सताती रहती है।

स्त्री संसार में प्रत्यक्ष माया-रूप है। यह इस हेतु कहा गया है कि स्त्री को देखकर पुरुष का ज्ञान भ्रष्ट हो जाता है और माया को स्त्री-रूप जानने के कारण ही उसे आगे चलकर स्त्री वर्ग बताया जायेगा । इससे यह बात भी निकलती है कि यदि स्त्री को देखकर पुरुष मोहित नहीं होता, तो उसको प्रत्यक्ष माया नहीं कहा जाता और न माया स्त्री वर्ग में गिनी जाती। इसलिए स्त्री प्रत्यक्ष माया-रूप पुरुषों के लिए है, स्त्रियों के लिए नहीं है। स्त्रियों के लिए तो पुरुष ही प्रत्यक्ष माया-रूप है; क्योंकि स्त्री पुरुष को देखकर अति व्याकुल हो जाती है। अतएव स्त्रियों की तरफ से तो माया को पुरुष वर्ग में रखना चाहिये। यथार्थ में स्त्री, पुरुष, नपुंसक, सुन्दर, असुन्दर और इन्द्रिय-गम्य मात्र माया के प्रत्यक्ष रूप हैं। यहाँ पुरुषों के बीच संवाद है, इसी हेतु कवि जी ने माया का वर्णन् उपर्युक्त रीति से किया।

❀ पुनि रघुबीरहि भगति पियारी।
माया खलु नर्तकी बेचारी ।।
श्री रामचरित मानस

फिर राम को भक्ति प्यारी है और माया बेचारी तो निश्चय ही नाचनेवाली नटिन है।

नर्तकी =नटिन =वेश बना-बनाकर मोहित करनेवाली। गो0 तुलसीदासजी ने माया को यह अति उत्तम उपमा दी है। श्री सीता जी महारानी तथा श्री पार्वतीजी को रामचरितमानस में माया कहकर वर्णित किया गया है। सन्त कबीर साहब ने भी माया का कितना खरा और सुन्दर वर्णन किया है। शब्द–

"माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी।
केसब के कमला होई बैठी ,सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ में भई पानी।।

जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू की कौड़ी कानी।।
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो,यह सब अकथ कहानी।।''

भगवान् श्री कृष्ण की वाणीः–

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।

अर्थ–यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; (परन्तु) जो पुरुष मुझको ही भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं ।

भगवान् शिव की वाणी–

सा माया पालिनी शक्तिःसृष्टिसंहारकारिणी।
अविद्या मोहिनी या सा शब्दरूपा यशस्विनी।।

अर्थ–माया सृष्टि, स्थिति और संहारात्मिका शक्ति है और अविद्या, मोहिनी शब्दरूपा तथा यशस्विनी कही जाकर वर्णित होती है।।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी की वाणी–

साँप के दाँतों में विष है; वह जब स्वयं खाता है, तव विष उस पर प्रभाव नहीं करता। परन्तु जब वह दूसरे को काटता है, तब विष उस व्यक्ति पर प्रभाव कर जाता है। इसी प्रकार भगवान् में माया है तो अवश्य, पर वह उनको मग्ध नहीं करती।





श्री सद्गुरवे नमः

चेतन-आत्मा की स्थिति और उसकी खोज

❀ मेरा यह शरीर है, मेरा मन है, मेरी यह बुद्धि है इत्यादि लोग बोलते हैं। यह मेरा कहने वाला कौन है? इसको पहचानना चाहिये। बाहर संसार में तमाम घूमो और पूछते रहो कि मेरे को बता दो, मेरे को बता दो। कोई कहेंगे कि यह पागल है। कोई कहेंगे कि ज्ञान की बात कर रहा है। जो अच्छे लोग हैं, विशेषज्ञ हैं, वे कहेंगे–**"तू अपने में खोज तो अपने को पायेगा।"**

❀ अपने शरीर में खोजोगे तो अपने को पा जाओगे। इस खोज में कोई अपने जानते लाख कोशिश करे, कोशिश में लगावे तो भी इसका पता नहीं पा सकता है। यह पता कोई तभी पाता है, जिसको पता बताने वाले मिले हैं। उनसे जाकर पूछिये। जिनको पता मिल गया है, वे ही अन्तर-साधन करने वाले पूर्ण साधु-सन्त हैं। साधु-सन्त को इसका पता मिलता है। इसलिए कि वे अपने अन्दर खोजते हैं। अपने शरीर के अन्दर खोज कर लीजिये। अपने को समझे कि अंपने शरीर में मैं कहाँ रहता हूँ। शरीर के ऊपर तो कहीं बैठा नहीं है और अपने को विश्वास भी नहीं है कि मैं शरीर हूँ। खोज करे, जहाँ वह बैठा है। बाहर में कहीं बैठा है। अन्दर खोज करे, बाहर का देखना छोड़कर। अन्दर में आँख बन्द करके पूछो कि मैं कहाँ हूँ। उत्तर आवेगा, अन्धकार में हूँ। अन्धकार कहाँ है? आँख में है। यहाँ से खोजना आरम्भ करो।

❀ **"आपुन ही कूँ खोज"** अर्थात् आप अपना निर्णय करो कौन हो? शरीर पाँच तत्त्व से बना है। यह तुम नहीं हो। इन्द्रियों में से कोई नहीं हो। अन्तःकरण में–मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारो में से कोई आप नहीं हो। ये सब इन्द्रियाँ आपकी हैं। जैसे आप शरीर पर कपड़े पहनते हैं। वे कपड़े आपके हैं, लेकिन आप कपड़े नहीं हैं। आप शरीर अथवा बाहरी वा भीतरी कोई भी इन्द्रिय नहीं हैं। मन, बुद्धि के आगे आप स्वयं हैं। आप अपने को जैसा कि कहते हैं, आप जीवात्मा हैं।

❁ जीवत्व-भाव के सहित जो आप हैं, मन-बुद्धि, इन्द्रियों से परे हैं। यहाँ तक कि जिस मूल-पदार्थ से ये इन्द्रियाँ आदि बनी हैं; उस जड़ात्मिका-प्रकृति से भी आप परे स्वरूपतः आप चेतन-आत्मा हैं। अन्तःकरण के साथ से जीवत्व-दशा आयी है। आप को शरीर मिला है। इस तरह समझ सकते हैं, लेकिन आप अपने को पहचान नहीं सकते हैं। मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों तथा मायिक-तत्त्वों को "मैं यह नहीं हूँ, मैं यह नहीं हूँ" कहकर अपने को जान सकते हैं। लेकिन अपने को पहचान नहीं सकते हैं। जबतक पहचान नहीं हो, तबतक का ज्ञान अधूरा है।

❁ पाँच स्थूल तत्त्व (मिट्टी, जल, अग्नि, हवा और आकाश), पाँच सूक्ष्म तत्त्व (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द), अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, दसेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा, लिंग ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन, चैतन्य, संघात (कहे गये का संघ रूप), धृति (धारण करने की शक्ति) और इनके विकार–इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख–इन इकतीस तत्त्वों के समूह को क्षेत्र कहते हैं। इनके अतिरिक्त आप इसमें से अलग हैं। उसी को जीवात्मा कहते हैं।

❁ परमात्मा तो बहुत दूर हैं; पहले आप अपने को ही जानिये। कोई ऐसा नहीं कहता कि 'मैं' नहीं हूँ। 'मैं हूँ'–ऐसा विश्वास सबको है। कहाँ हैं ? तो कहेंगे–शरीर के अन्दर हैं। शरीर के अन्दर मनोवृत्ति के संग-संग हैं। जिस प्रकार दूध के संग-संग घी रहता है, उसी तरह मन के संग-संग जीवात्मा रहता है।

❁ जैसे लोहे को आग में देने से लाल हो जाता है और आग से निकालने से काला रह जाता है। उसी तरह इस शरीर में चेतनमय–ज्ञानमय पदार्थ है। किन्तु शरीर जड़ है। इसमें ज्ञान नहीं होगा। शरीर का अन्त होने पर शरीर सदा के लिए जड़ ही रह जाता है। इसके सड़ने से रोग उत्पन्न होगा, इसके लिए इसको जला देते हैं। शरीर के साथ इन्द्रियाँ हैं। अन्दर की इन्द्रियाँ जलती नहीं हैं। बाहर की सब इन्द्रियाँ शरीर के साथ लगी हैं। ये सभी जल जाती हैं। अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर में रहते हुए जीव के अपने कर्मवश उसके संग जाता है।

❁ भीतर की चार इन्द्रियाँ–मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार भी जड़ हैं।

बाहर स्थूल शरीर से यह सूक्ष्म मन जड़ है। आप निद्वाह नींद में सो गये, तब बुद्धि का विचार सब समाप्त हो गया। 'मैं हूँ' का ज्ञान भी समाप्त हो जाता है। इसमें गति होने का जो चेतन का स्वभाव है, वह बन्द नहीं होता। चेतन का काम बन्द हो गया तो श्वास नहीं लिया जा सकता, चेतन कभी जड़ नहीं होगा।

❀ इन्द्रियाँ-सह शरीर जड़ है। किसी भी मृत शरीर में ज्ञान नहीं रहता है। जीवित शरीर में ज्ञान रहता है। यह ज्ञानमय पदार्थ चेतन-आत्मा है। गो0 तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है–

"ईस्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।।"

आप ईश्वर-अंश हैं, अविनाशी हैं, चेतन हैं। एक शरीर का जीवन बहुत थोड़ा है। आप अजर, अमर, अविनाशी हैं। इस मरणशील शरीर में आपका रहना है, यह रहना कबसे है, ठिकाना नहीं। आपने एक ही शरीर को नहीं, अनेक शरीरों को भोगा है। प्रत्येक शरीर का जीवन-काल कुछ-न-कुछ रहा है। आपने अनेकों शरीरों को भोगा और फिर इस शरीर को भोग रहे हैं। एक शरीर का जीवन सौ, सवा सौ वर्ष का है। और आपका जीवन अनन्त है।

❀ ऐसा सुन्दर रूप कि जिससे सुन्दर कुछ न हो। यदि उसका सब गहना जेवर उतार लो तो वह कैसा लगेगा? वह रूप कैसा जिसमें गहना जेवर देने से चमक-दमक बढ़ जाये, वह पूर्ण रूप कहाँ है। पूर्ण रूप तो वह है जिसका गहना जेवर उतारते जाओ तो और चमक बढ़ता जाये। शरीर को लंगटा करने नहीं कहा। शरीर के ऊपर से शरीर को उतारो, जैसे-जैसे लंगटा होओगे वेसे-ही-वैसे खूब-सूरती बढ़ेगी। चारो जड़ शरीर को उतार दो तो पूर्ण लंगटा हो जाओगे। तब पूर्ण चमक खिल उठेगी।

❀ शरीर को पहचानते हो, लेकिन शरीर में जो तुम हो, उसको तुम नहीं पहचान सकते। इसलिए कि इन्द्रियों में शक्ति नहीं है कि आत्मा को पहचान सके। इन्द्रियाँ बाहर की ओर हैं और तुम अपने अंदर में हो, तब कैसे पहचान सकते हो? एक तो अंदर में हो, दूसरी बात यह कि इन्द्रियों को स्थूल विषयों का ज्ञान होता है। आजकल लोग एक्स-रे (X-Ray) भी लेते हैं, तो उसमें भी मोटी-मोटी चीज का चित्र आता है। आत्मा का नहीं। जब

तुम बाहरी इन्द्रियों से अपने को ही नहीं पहचान सकते हो तो ईश्वर को कैसे पहचानोगे ? ईश्वर की पहचान या ईश्वर-दर्शन तुम स्वयं करोगे, शरीर और इन्द्रियों से छूटकर। जैसे आँख से सबकुछ देखते हो, किन्तु आँखों को आँख से आइने में देखते हो। जैसे आँख को आँख से देखते हो, उसी तरह चेतन-आत्मा से परमात्मा को देखोगे ओर अपने तईं का भी ज्ञान होगा, क्योंकि ईश्वर जिस तरह इन्द्रिय-ज्ञान में आने योग्य नहीं है, उसी तरह तुम भी इन्द्रिय-ज्ञान में आने योग्य नहीं हो। इससे जाना जाता हैं कि जो सूक्ष्मता या लताफत ईश्वर में है, तुममें भी वही है।

❁ जो ईश्वर कोटि के महान् देव हैं, उनमें और हममें–सबमें वे परमात्मा हैं। आत्मतत्त्व रूप में हममें ओर उन महान् देवों में वे एक हैं। लेकिन अन्तःकरण में बहुत फर्क है। हमारा अन्तःकरण संकुचित है, लेकिन महान् देवों का विकसित है। उनकी शक्तियाँ जगी हुई हैं, हमारी सोई हुई हैं। इसीलिए हम जीव कोटि के और वे देव कोटि के कहे जाते हैं।

❁ मैंने संतों के ग्रन्थों, उपनिषद् ग्रन्थों में पढ़कर, गुरु महाराज के चरणों में बैठकर, और भी संतों के चरणों में बैठकर, सुनकर और स्वयं भी विचारकर दृढ़कर जाना है कि जड़ तत्त्व भिन्न है और चेतन तत्त्व भिन्न है। चेतन तत्त्व अव्यक्त है। शरीर जबतक जीवित रहता है, चेतन का कार्य देखते हैं। लेकिन इन्द्रियों से चेतन के स्वरूप को पहचान नहीं सकते हैं। शरीर व्यक्त है। व्यक्त तत्त्व से अव्यक्त तत्त्व ऊँचे दर्जे में है। जिस शरीर में चेतन नहीं है, उससे कोई काम नहीं होता, यह प्रत्यक्ष है। चेतन के अधीन में जड़ तत्त्व है। चेतन जड़ से काम कराता है । मनुष्य ज्ञानवान् प्राणी है, इंजिन अज्ञानमय है, मनुष्य उसको बनाता है और उससे काम लेता है। ज्ञानवान् यदि उस पर काबू नहीं रखे तो उससे कोई लाभदायक काम नहीं हो सकता।

❁ श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने दो प्रकार की प्रकृतियाँ बताई हैं–अपरा और परा। अपरा अर्थात् अष्टधा प्रकृति–मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार–ये आठो अज्ञानमय हैं। इससे ऊँची चेतन प्रकृति है। अपरा जड़ प्रकृति है, इसके अन्दर जो चेतन है वह परा अर्थात ऊँचे दर्जे की प्रकृति है। इन्हीं दोनों से संसार की रचना करता

हूँ—भगवान् श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा। संसार में जड़ और चेतन दोनों है। परा इसलिए कि यह जड़ से उत्कृष्ट है। जड़ से चेतन के निकल जाने पर वह विकृत होकर लापता हो जाता है।

❀ यह शरीर इन्द्रियगम्य है, नाशवान् है। आप नाशवान् नहीं हैं। आप ठीक ईश्वर की तरह ही इन्द्रिय-ज्ञान से परे और अपने से अपने को जानने-योग्य है। बात यही है कि सन्तों ने बताया है कि शरीर में बसनेवाली चेतन-आत्मा ईश्वर का ही अंश है। जैसे एक बूँद पानी और जल-भरी गंगा नदी—दोनों तत्त्वरूप में एक ही हैं। महदाकाश और मठाकाश का स्वरूप एक ही है। इसी तरह ईश्वर और आप हैं।

❀ आप शरीर नहीं, शरीरी हैं। शरीरी उसको कहते हैं, जो शरीर में रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि इस शरीर को क्षेत्र कहते हैं। इसको जो जानता है वह क्षेत्रज्ञ है। आप क्षेत्र नहीं, क्षेत्रज्ञ हैं। शरीर एक ही नहीं है। शरीर के नाश हो जाने पर शरीरी वा क्षेत्रज्ञ का नाश नहीं होता है। क्षेत्रज्ञ वह है जिसको पानी गीला नहीं कर सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पवन सुखा नहीं सकता, जिसको सूर्य भी अपने प्रखर तेज से क्लेशित नहीं कर सकता, शरीरी व क्षेत्रज्ञ वह चीज है।

❀ शरीर-इन्द्रियों के संग रहने के कारण आप अपने स्वरूप को भूल गये हैं। एक कहानी है—एक गड़ेरिया था। वह रोज भेड़-बकरियों को चराने जंगल जाया करता था। एक दिन उसको जंगल में सिंह का एक बच्चा मिल गया। उस बच्चे की आँखें नहीं खुली थीं। गड़ेरी उसे वहाँ से उठाकर ले आया। अपने घर पर पाला-पोसा। जब उसकी आँखें खुलीं, तो वह बकरियों के साथ ही खेलता-कूदता और कलोल करता था। बकरियों के साथ वह अपने को भी बकरी ही समझता था। संयोग से एक दिन दूसरा सिंह आया। उस सिंह को देखकर गड़ेरी और भेड़-बकरियाँ भागने लगे। उनके साथ में सिंह का बच्चा भी भागने लगा। उस जंगली सिंह ने सोचा, मेरे डर से भेड़-बकरियाँ भाग रही हैं, सो तो ठीक है, पर सिंह का बच्चा क्यों भाग रहा है ? वह सिंह उस सिंह के बच्चे को पकड़कर लाया और कुएँ के नजदीक ले जाकर अपने रूप और उस बच्चे के रूप को दिखाया। अपनी परिछाहीं देखकर सिंह का बच्चा हँसने लगा और समझ गया कि जो सिंह है, वही मैं हूँ।

उसी तरह मन गड़ेरी और इन्द्रियाँ भेड़-बकरियाँ हैं। उनके संग रहने से जीव ने अपने को शरीर और इन्द्रिय मान लिया है। जब सच्चे सद्गुरु जीव को अपरोक्ष ज्ञान कराते हैं और उनके बताये मुताबिक योग करने पर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, तब अपने को पहचानता है। अपने की पहचान हो जाने पर ईश्वर की भी पहचान होती है।

❁ आपकी चेतन-आत्मा अकेली नहीं है। मन के खोल में चेतन-आत्मा है। जैसे दूध के खोल में मक्खन। दूध को जहाँ रखो, घी वहीं है। उसी तरह मन जहाँ जायेगा उसके साथ-साथ चेतन-आत्मा चलती है। यदि कहो कि जहाँ तक मन जायेगा, वहाँ तक माया है, तो ठीक है। लेकिन मन का खोल छूट जायेगा और उसके आगे केवल चेतन-आत्मा जायेगी, इसी भक्ति का प्रचार संतलोग करते हैं।

❁ सृष्टि बनी है। इसका पहला रूप सूक्ष्म है। बिना बीज के अंकुर नहीं और बिना अंकुर के वृक्ष नहीं। बीज कारण है, अंकुर सूक्ष्म और वृक्ष स्थूल। कारण भी बिना महाकारण के नहीं बन सकता। कुम्हार मिट्टी से बर्त्तन बनाते हैं। एक बर्त्तन बनाने में जितनी मिट्टी की आवश्यकता होती है, उतनी मिट्टी उस बर्त्तन का कारण है। कारण वा बीज का भण्डार प्रकृति है। प्रकृति को महाकारण कहते हैं। इस तरह स्थूल,सूक्ष्म कारण और महाकारण—ये चार दर्जे होते हैं। ये चारो जड़ हैं। इसलिए इन चारो के परे एक चेतन अवश्य है। पाँच तत्त्व, तीन गुण; ये सब जड़-जड़ हैं। जड़-जड़ के मिलन से चेतन हो जाये, संभव नहीं । इसीलिए चेतन अलग तत्त्व है।

❁ जैसे चार रंगवाले पाँच पहल वाली लालटेन के भीतर एक मोमबत्ती जला दीजिये तो शीशे के रंग के अनुरूप उसकी रोशनी बाहर निकलेगी। किन्तु यदि उस शीशे में से मोमबत्ती को अलग कर देखा जाये, तो मोमबत्ती की रोशनी उन रोशनियों से भिन्न ही होती है। इसी तरह इन्द्रियों की बनावट माया से है। एक माया से सुनते हैं, दूसरी माया से देखते हैं, तीसरी माया से स्पर्श करते हैं, चौथी माया से गंध ग्रहण करते हैं और पाँचवीं माया से रसास्वादन करते हैं। एक रोशनी जो उस लालटेन के अन्दर है, केवल उसका ज्ञान नहीं होता है। शीशे के रंग के साथ की रोशनी को आप जानते हैं। शीशे से मोमबत्ती को निकाल लें तब मोमबत्ती की निजी-रोशनी होगी।

उसी तरह अपने को शरीर-इन्द्रिय से निकाल लीजिये। तब जानने में आवेगा कि मैं कौन हूँ।

❀ इस शरीर को जड़ कहते हैं। इसमें रहनेवाला चेतन है। कोई कहे कि जड़-जड़ मिलकर चेतन हो गया है, तो यह किस तरह विश्वास हो ? जिस वस्तु का स्वाद कड़ुवा हो, उन सब पदार्थों को मिलाओ तो वह कड़ुवा ही रहेगा, दूसरा स्वाद नहीं होगा। यह कभी मानने-योग्य नहीं कि जड़-जड़ के मिलने से चेतन हुआ हो। यह चेतन-पदार्थ भिन्न-भिन्न शरीरों में रहते हुए भिन्न-भिन्न दिखाई देता है, यह व्यष्टिरूप है। इस न्याय से हम सब एक तत्त्व हैं।

❀ जैसे आकाश का अंश घटाकाश, मठाकाश होता है, लेकिन अभिन्न-अंश है। इसी तरह बिना टूटा-फूटा हुआ अंश जीवात्मा, परमात्मा का अंश है। अंश तो आवरण बनाता है। आवरण टूट जाये तो अंश नहीं रहेगा। अंश अंशी में मिल जाता है। वह प्रशान्त-महासागर की तरह स्थिर हो जाता है। जैसे ईश्वर हैं, उस ईश्वर से मिलकर वह भी ईश्वर हो जाता है।

❀ महाभारत में श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को शिक्षा दी है और कहा कि लोग जैसे सींक को खीचकर मूँज देखते हैं, उसी तरह योगी चेतन-आत्मा को देखता है। चेतन-आत्मा के ऊपर पहले महाकारण, फिर कारण और सूक्ष्म, फिर स्थूल—ये चार जड़ावरण हैं। इन आवरणों से अपने को (चेतन-आत्मा को) पृथक् कर लो तो परमात्मा मिलेंगे।

❀ जो लोग गहरी-नींद से उठकर समझते हैं कि बहुत गहरी-नींद में थे, यह कौन जानता था कि हम बहुत गहरी-नींद में थे? यह जो जीवनी-शक्ति है, यह जो चेतन की धारें हैं, यह कभी नहीं सोती है, जागती ही रहती है—यही जानती है। इसी को प्राण-पुरुष कहा गया है।

"प्राण पुरुष आगे चले, सोई करत बखाना हो।।"

—तुलसी साहब

एक गोसाईं तुलसीदास जी हुए हैं; दूसरे तुलसी साहब। उन्होंने कहा कि—

"सहस कमलदल पार में मन बुद्धि हिराना हो।"

सहस कमल के परे–पार में मन और बुद्धि खो जाती है। तो कहता कौन है–

"प्राण-पुरुष आगे चले, सोई करत बखाना हो।"

प्राण-पुरुष आगे चलता है, वही बखान करता है; वही कहता है।

पूर्ण से जो निकलता है, वह भी पूर्ण। बाकी बचता है, वह भी पूर्ण। एक अजीब बात है। पूर्ण से जो निकलता है, वह भी पूर्ण और पूर्ण तो अपना पूर्ण है ही। निकलने से जो बच जाता है, वह भी पूर्ण। वही तुम निकले हुए पूर्ण हो। लेकिन अपने को नहीं पहचानते हो। यही बात है।

❁ हमलोग समझते हैं कि अग्नि-पुंज से एक चिनगारी–एक चिनगारी में अग्नि भी कम, चमक भी कम और दाहक-शक्ति भी कम। लेकिन ईश्वर ऐसा नहीं है, उसकी चिनगारी ऐसी नहीं है। उसमें तो स्वयं ईश्वर में जो गुण है, उसके कण-कण में वही गुण है।

"ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।"

–गो० तुलसीदास

अंश कह करके कुछ दर्जा हो गया, अंश कहके कुछ कम गुण हो गया, सो नहीं है। अगर उस कण को पहचान जाओ अर्थात् अपने तई को पहचान जाओ तो यह अच्छी तरह से समझ जाओगे कि पूर्ण से यह कम गोया जरा-सा जो लिया–सो भी स्वरूपतः वही है। वही गुण है। बाकी बचा हुआ भी पूर्ण ही है और जो पहले से पूर्ण है, सो तो पूर्ण है ही।

❁ अपने अन्दर चलकर ही कोई शरीर छोड़ सकता है। स्थूल शरीर को छोड़ना ही काफी नहीं है। मरने पर तो स्थूल शरीर छूटता ही है। लेकिन जड़ के चारो शरीर को छोड़ना है। जैसे केले का गाछ बाहर से देखने में एक मालूम पड़ता है; लेकिन उसमें अनेक डमखोले होते हैं। जैसे मूँज से सींक निकालते हैं, वैसे ही शरीर रूपी मूँज में से तुम सींकरूप आत्मा निकालोगे। इनका यत्न अपने अन्दर में करने से होगा, बाहर करने से नहीं।

❁ जो मनुष्य बहुत कुछ सोचता-विचारता है, जिसने भौतिक तत्त्वों को उपलब्ध किया है, बहुत लाभ उठाया है, तो इसका मूल कहाँ है ? मनुष्य किसी को इसलिए कहते हैं कि उसकी शकल मनुष्य की तरह होती है। भौतिक विज्ञान के द्वारा लोगों ने यह निश्चय नहीं कर पाया कि इस शरीर

में भौतिक तत्त्व ही केवल है या और कुछ ? वे केवल भौतिक तत्त्व को ही जानते हैं। इसके अतिरिक्त और क्या है, वे नहीं जानते। दूसरी तरह से विचारने पर मालूम होता है कि भौतिक तत्त्वों के मिलाप से ज्ञानमय तत्त्व हो जाता है, सो संभव नहीं। भले ही कुछ पदार्थों को जोड़कर स्पन्दन-युक्त बनाते हैं। स्पन्दन-युक्त होने के कारण वह ज्ञान-क्रिया-युक्त हो, ऐसा नहीं। ज्ञानमय तत्त्व में स्पन्दन है अवश्य, लेकिन आज तक इसका आविष्कार हुआ नहीं कि जड़ तत्त्वों के मिलन से जो स्पन्दन होता है वह ज्ञानमय हो, एक ऐसा तत्त्व है जो सर्वव्यापी और ज्ञानमय है। इस ज्ञानमय तत्त्व को ही चेतन कहते हैं। यही सब उन्नतियों और लाभों का मूल है। इसके अतिरिक्त दूसरा जड़ तत्त्व है, जिससे सर्व पिण्ड और ब्रह्माण्ड बने हुए हैं। यह मनुष्य-शरीर अर्थात् मनुष्य-पिण्ड कतिपय यन्त्रों से युक्त एक ऐसा यंत्र है, जिसमें उस ज्ञानमय तत्त्व का विशेष विकास है। प्रत्यक्ष में देखो कि इस शरीर में कान है, तो उससे शब्द सुन लो। इसके अतिरिक्त इसमें और कुछ ज्ञान नहीं होता। अन्धा शब्द सुनता है, लेकिन दृश्य नहीं देख सकता। आँख से शब्द और कान से रूप का ज्ञान नहीं होता। चेतन-सत्ता जड़-सत्ता से भिन्न है। दोनों के मिलाप तथा यंत्र विशेष से चेतन का कार्य विदित होता है, लेकिन जड़ इन्द्रियों के लिए चेतन अव्यक्त है। इन्द्रियों से अज्ञान-तत्त्व को ग्रहण नहीं कर सकने के कारण भौतिक विज्ञानी को चेतन-सत्ता के होने में संशय होता है, क्योंकि वह उनको प्रत्यक्ष नहीं दीखता। अध्यात्म-विज्ञानी आत्म-अनुभव में चेतन-सत्ता को प्रत्यक्ष देखता है। वह उस सत्ता को प्रत्यक्ष देखता है। वह उस सत्ता को भी देखता है, जिसके कारण चेतन-सत्ता का प्रादुर्भाव हुआ है। शरीर के अंदर चेतन-सत्ता और आत्म-सत्ता नहीं हो तो केवल जड़ शरीर, ज्ञान का काम करे, संभव नहीं। जब तक चेतन-युक्त जड़ शरीर है, तब तक यह शरीर बोलता-चालता है।

❁ अनेक शरीरों में भिन्न-भिन्न नहीं, एक ही आत्मा है। एकात्म-बुद्धि नहीं होनी, अनेकात्मक-बुद्धि होनी भ्रमपूर्ण है। जैसे किसी एक रूपधारी के चारो ओर बहुत-से आईने रक्खे हों, तो उन बहुत-से आईनों में उसी एक की बहुत-सी परछाईं बहुत-से आईनों के कारण दरसती हैं, वैसे ही एक ही आत्मा में अनेक शरीरों के कारण अनेकता का ज्ञान भ्रम-वश होता है। और

जैसे पानी, भाप और बर्फ तत्त्व रूप में एक ही है, वैसे ही परमात्मा और जीवात्मा तत्त्व रूप में एक ही है।

❀ आईने के घर में कुत्ता जिस ओर देखता है, अपने शरीर का प्रतिबिम्ब देखता है। उसको धोखा होता है कि उसके चारो तरफ दूसरे-दूसरे कुत्ते हैं। उनको देख-देखकर वह भूँक-भूँककर मरता है। वह इस बात को भूल जाता है कि सब तरफ मेरा ही प्रतिबिम्ब है। इसी तरह मनुष्य अपने आत्म-स्वरूप को भूलकर आईने-सदृश मायामय संसार में भ्रम से अनेकत्त्व का ज्ञान ग्रहण करता है और यह जानकर कि मुझसे भिन्न–अलग-अलग आत्माएँ हैं, राग-द्वेष तथा काम-क्रोधादिक विकारों में फँसकर मृत्यु का दुःख भोगता है।

सिंह की कथा–एक जंगल में एक सिंह रहता था। उस जंगल के अन्य पशुओं को इच्छानुसार वह मार-मारकर खाता था। उन सब पशुओं ने उससे कहा कि आप अपने भोजन के लिए यह नियम मान लीजिये कि हममें से प्रत्येक दिन पारी-पारी से एक-एक आपके पास स्वयं आवेगा और आप उसे भोजन कीजियेगा। उस सिंह ने इस बात को मान लिया। नियमानुसार बरता जाने लगा। एक दिन एक खरहे की पारी आयी। वह बहुत विलम्ब करके उस दिन सिंह के पास गया। भोजन में विलम्ब हो जाने के कारण सिंह बहुत क्रोधित हो रहा था। उसने उस खरहे से बहुत डाँटकर कहा–"क्यों रे! तूने विलम्ब क्यों किया?" खरहा डरते, गिड़गिड़ाते विनय करके बोला–"महाराज! मैं क्या करूँ! मुझको एक दूसरे सिंह ने, जो यहाँ से कुछ दूर पर बैठा है, रोक रखा था। और मुझको खा जाना चाहता था। परन्तु जब मैंने आपका नाम उसको कहकर विश्वास दिलाया, तब उसने क्रोध करके कहा कि जाओ, उस सिंह को बुलाकर ले आओ। पहले मैं उसी को मार डालूँगा, पीछे तुझे खाऊँगा।" ऐसा सुनकर वह सिंह बहुत क्रोधित हुआ और खरहे से गरजकर कहा–"चल, दिखला उस सिंह को।" खरहा चल पड़ा और उसके मार्ग से सिंह भी चलने लगा। कुछ दूर जाकर उस खरहे ने उस सिंह को एक कुआँ दिखला दिया और उस सिंह से कहा–"महाराज! उसी में मुझको रोकने वाला दूसरा सिंह रहता है।" सिंह उस कुएँ पर जाकर गरजा और कुएँ के जल में देखा तो मालूम हुआ कि कुएँ में दूसरा सिंह गरज रहा है। वह सिंह

अत्यंत क्रोधित होकर कुएँ के अंदर के सिंह से लड़ने के लिए कुएँ में कूदकर गिर पड़ा और उसी में अपने प्राण गँवाये।

कुएँ में कोई दूसरा सिंह था नहीं। था उसी का प्रतिबिम्ब, जो कुएँ के जल में देखने में आता था। जो आत्मज्ञान-विहीन मनुष्य हैं, वे माया के कुएँ में रूप की अनेकता देखते हैं। सबमें एक आत्मरूप को भूले रहते हैं। और भिन्न-भिन्न अनेक आत्माओं के मिथ्या ज्ञान में रहकर वह माया कि भिन्नता-रूप संसार में दुख पाते रहते हैं।

योगशिखोपनिषद्

भागे विन्दुमयी शक्तिर्ललाटस्यापरांशके ।
विन्दुमध्ये च जीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्तते।।

अर्थ—ललाट के दूसरे भाग (नीचे भाग) में विन्दुमयी शक्ति विराजमान है और विन्दु के बीच में जीवात्मा सूक्ष्म रूप से विराजमान है।।

श्री सद्गुरवे नमः



जीवों के प्रति ईश्वर का उपकार

❀ जीवों के प्रति ईश्वर का कितना उपकार है, वह वर्णनातीत है। जैसे कोई महा उदार हो और जो कोई माँगे न माँगे सबको सबकुछ दे, उसी तरह परमात्मा है। जिस चीज की जितनी अधिक आवश्यकता है, परमात्मा ने उस चीज का भण्डार उतना ही विशाल बनाया है। पाँच तत्त्वों में आकाश का कितना विस्तार है ? हवा कितनी है कि कितना भी श्वास लो, खतम नहीं होता। यह ऐसा भोजन है कि नींद में भी (हवा का) भोजन करते हैं। जल कितना है ? पृथ्वी के बिना कोई रह नहीं सकता। पृथ्वी से अन्न उपजाते हैं, जीवन-यापन करते हैं। ईश्वर की महिमा में ये सब तुच्छ हैं, लेकिन मनुष्य के लिए ये महान् हैं। मनुष्य की क्या शक्ति है कि वे इन पंच तत्त्वों को दे। देवता को कौन कहे, ईश्वर कोटि के देवता भी ये नहीं दे सकते। ईश्वर का कितना उपकार जीवों पर है, कोई वर्णन् नहीं कर सकता। हमलोग परमात्मा के उपकार से बहुत उपकृत हैं, लदे हुए हैं। परमात्मा की कोई मदद करे, सो तो होगा नहीं, उनका स्मरण करो, यश गाओ, स्तुति करो।

❀ आप किसी का उपकार करें और आपको मालूम हो कि उपकृत लोग आपके कृतज्ञ नहीं हैं, तो मैं समझता हूँ आपको अच्छा नहीं मालूम होगा। यह एक ऐसी बात है कि जो सर्वसाधारण के लिए है। लोग ऐसे भी होते हैं, जो गंभीर हैं, गहरे हैं, ज्ञानवान हैं तथा मन-इन्द्रिय पर काबू है; ऐसे जन सन्त कहलाने के योग्य हैं। इनको कुछ मालूम नहीं होता। परन्तु चाहे कोई सन्त-महात्मा उपकारक हों वा साधारण जन, उपकृत को अवश्य कृतज्ञ होना चाहिये।

महाभारत में कथा है कि भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों कुछ आराम के ख्याल से–हवा खाने के ख्याल से रथ पर इधर-उधर विचरते थे। अग्निदेव उनके सामने आये और बोले कि मैं अग्नि हूँ। अर्जुन बोले कि "हमलोगों के सामने आप किस हेतु से उपस्थित हुए हैं ?" अग्निदेव ने कहा–"भोजन माँगता हूँ। एक खाण्डव वन है वह भोजन के लिए मुझे

दीजिये। अर्जुन ने कहा कि "आप तो स्वयं भोजन वहाँ कर सकते हैं।" अग्निदेव ने कहा—"नहीं; मैं उसे जब जलाना चाहता हूँ, तब इन्द्र वर्षा कर देता है, मैं भोजन नहीं कर सकता।" अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ उस इन्द्र के उपद्रवों को रोकने गये। कारण था कि जंगल में मय नाम का एक दानव था। वह विश्वकर्मा-जैसा था। वह इन्द्र का मित्र था। इन्द्र ने कहा था कि जंगल से कोई भाग न सके। मय दानव भी भाग चला। कृष्ण ने अपना चक्र चला दिया तो वह अर्जुन का शरणार्थी हो गया। अर्जुन ने उसको बचा लिया। मय दानव बड़ा कृतज्ञ हुआ। वह अर्जुन और कृष्ण के सामने हाथ जोड़कर बोला—"मैं आपसे बड़ा उपकृत हुआ। आपकी क्या सेवा करूँ?" वे भले विचार के लोग थे। केवल वचन से नहीं, कुछ सेवा भी करना चाहते थे। श्रीकृष्ण ने कहा कि "इन्द्रप्रस्थ में ऐसी सभा बनाओ, जैसी सभा किसी ने आजतक नहीं बनायी।" उसने वही किया। जो उपकृत हो, तो उसको चाहिये कि वह उपकारक की सेवा करे।

आप महाज्ञानी हैं, बड़े विद्वान् हैं, अपने शरीर की रक्षा के लिए जो-जो भोजन करना चाहिये, जितना भोजन लेना चाहिये, समझ-समझकर आप लेते हैं। शरीर की सँभाल रखते हैं। आप जब सो जाते हैं, अचेत हो जाते हैं, तब अपनी रक्षा कैसे करते हैं? मतलब यह है कि कितने भी कोई ज्ञानी हों, बलवान हों, लेकिन अपनी रक्षा अपने से सर्वकाल में नहीं कर सकते। लेकिन फिर भी रक्षा होती है। कैसे? असल में ईश्वर रक्षा करते हैं। सोने की बात तो जाने दें, जगने के समय आप अपने सामने की बात देखते हैं; जानते हैं। लेकिन अपने पीछे की बात को नहीं देखते, नहीं जानते। जिधर आँख नहीं है, उधर नहीं देखते। अपनी रक्षा अपने से ही उस समय ठीक से नहीं कर सकते।

❀ राजा लोग अंगरक्षक रखते थे। आज भी राष्ट्रपति के लिए शरीर-रक्षक रहते हैं। परन्तु शरीर रक्षक के रहते हुए भी कितने का घात हो गया है। अपनी रक्षा जितनी आप कर सकते हैं, उससे अधिक आपकी रक्षा अज्ञात होती है। वह ईश्वर के द्वारा होती है। अपनी ओर से हम चौकीदार रखते हैं, वह पहरा करता है। फिर भी अपने तईं हम बहुत अल्प शक्ति के हैं। हो सकता है कि हम जो श्वास भीतर करते हैं, वह लौटा नहीं सकें।

❀ श्वास भीतर आकर जीवन बढ़ाता है। और जो बाहर को जाता है, वह जीवन को सुखी करता है। प्रत्येक श्वास में ईश्वर की ओर से उपकार का होना दृढ़ है। मनुष्य को जानना चाहिये कि श्वास-श्वास में ईश्वर का उपकार हम पर है। हम ईश्वर से इतने उपकृत हैं, जितने और किसी से नहीं। एक काम था कि मय दानव उसको करके अपनी उपकृतता से मुक्त हुआ। लेकिन ईश्वर को कोई इच्छा नहीं, उनको कोई आवश्यकता नहीं। सब तरह से वे पूर्ण हैं। उनसे जो हम कृतज्ञ हैं, उनके लिए हम क्या करें ? दो बातें हैं। एक तो यह कि उनका गुण गाइये अर्थात् स्तुति कीजिये। दूसरी बात यह है कि उनको खोजिये और उनका दर्शन कीजिये।

❀ बात यह है कि जो उपकृत है, वह उपकारक का गुण गावे। जो उपकारक का गुण नहीं गाता, वह कृतघ्न है। कृतघ्न को बहुत पाप होता है। कैसा पाप होता है ? आत्म-हिंसा का पाप लगता है। जैसे कोई विष खा लिया, कोई अपने से अपने को मार लिया, फाँसी लगा लिया, यह महापापी है। इसी तरह जो उपकारक का गुण नहीं गाता वह कृतघ्न है।

हमलोग ईश्वर के कृतज्ञ हैं। ईश्वर की कृपा से हवा पाते हैं। हर तरह से उपकार पाते हैं। वह वही है जो कि सबको सुलाकर निगरानी रखते हैं, जैसे बाल-बच्चे को सुलाकर माँ-बाप निगरानी करते हैं। जो सो गया उसको कुछ मालूम नहीं कि कहाँ सोया हुआ है। कौन उसका मित्र है, कौन उसका शत्रु है, लेकिन ईश्वर पहरा करते हैं। माता-पिता भी जब सो जाते हैं, तो अपने बाल-बच्चे का ख्याल नहीं रखते। लेकिन ईश्वर सबकी रक्षा करते हैं।

❀ एक वेश्या को पुत्र हुआ। वेश्या को पुत्र होने से उसकी निन्दा होती है। इसलिए उसने अपनी धाई द्वारा उस लड़के को कूड़े के ढेर पर रखवा दिया। एक राजकुमार आते थे तो उन्होंने कहा–"वहाँ कौआ क्यों घेरे हुए हैं जाकर देखो।" देखा तो एक नवजात शिशु था। राजपुरुष ने पूछा–"कहो वह जीवित है ?" उसने कहा–"हाँ जीवित है।" राजपुरुष ने कहा कि "हमारे अन्तःपुर में जाकर दे आओ, उसका पालन-पोषण करेगा।" उसका पालन-पोषण होने लगा। बड़ा हुआ तो उसने सोचा मेरी प्रतिष्ठा यहाँ वैसे नहीं हो सकती। इसलिए ऐसी विद्या सीखो कि सब कोई खुशामद करे। वह लड़का साहस कर तक्षशिला चला गया और आयुर्वेद-विद्या सीखी। छः वर्षों

तक उसने सीखी। उसके गुरु जी ने कहा—"यहाँ की शिक्षा पूरी हो गई, अपना देश जाओ, लेकिन एक परीक्षा दो। एक खंती लेकर इस महाविद्यालय के एक-एक योजन चारो तरफ घूमो। जो लत्तर वा गाछ ऐसा हो, जिसकी दवा नहीं हो, तो लेकर आओ।" वह बड़ा तेजस्वी था! चारो ओर घूमकर देखा, कहीं ऐसी चीज नजर नहीं आई, जिसकी दवा नहीं होती हो। वह खाली हाथ वापस आया। गुरु जी से कहा—"यहाँ कोई लत्तर वा गाछ ऐसा नहीं है, जिसकी दवा नहीं हो।" गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा—"तुम परीक्षोत्तीर्ण हो गये। अब तुम अपने घर जाओ।" उसका नाम था जीवक। तक्षशिला से चलने के बाद जब वह साकेत पहुँचा तो उसका राह-खर्च समाप्त हो गया। उसने सोचा यदि कोई रोगी मिल जाये तो उसकी चिकित्सा कर राह-खर्च प्राप्त हो सकता है। एक सेठानी के सिर में बहुत दिनों से दर्द हो रहा था। उसकी चिकित्सा बहुत हो चुकी थी। जीवक को सेठानी के सिर-दर्द का पता जब लगा तो वह सेठ जी से कहा—"आपकी सेठानी का ईलाज मैं करूँगा।" सेठ जी उसे सेठानी के पास ले गये। सेठानी ने कहा—"बड़े-बड़े वैद्य मेरी चिकित्सा करते-करते थक गये। ये तो नये वैद्य हैं, ये क्या करेंगे ?" जीवक ने विश्वास दिलाया कि "आप मेरी कम-से-कम एक खुराक दवा खायें।" बहुत आग्रह करने पर सेठानी दवा लेने को राजी हो गई। दवा का सेवन करते ही सेठानी के सिर-दर्द छूट गये। सेठ जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें चार हजार असर्फी सेठानी तथा चार हजार सेठ और चार हजार सेठ के लड़के तथा चार हजार सेठ जी के पतोहू ने दिया। जब जीवक घर पहुँचे तो उसने सब अशर्फियाँ उस राजपुरुष के सामने रखा, जिसने उसका पालन-पोषण किया था। उस राजपुरुष ने कहा—"मैं तुमको देखकर प्रसन्न हूँ। तुम इस रकम से मेरे भवन के सामने अपने निवास के लिए एक मकान बनाओ।"

अभी भी हमारे पास कुप्पाघाट में एक लड़का है, जिसको उसके माँ बाप ने फेंक दिया था। बाप का अभी तक पता नहीं है। वह लड़का वहाँ मेडिकल कॉलेज में पढ़ता है। कर्ण को भी जन्मकाल में पानी में फेंका गया था, कितने बड़े वीर थे। कबीर साहब को भी फेंका गया था।

एक विद्वान् ने लिखा—"जो ऊँच कुल में जन्म लिये और बड़े हुए तो

क्या विशेषता है। विशेषता उसकी है जो नीच होकर उच्च काम करके बड़े हुए।" ईश्वर हमारी हर तरह से रक्षा करते हैं। जैसी रक्षा ईश्वर कर सकते हैं, वैसी दूसरी कोई नहीं। इसलिए ईश्वर की स्तुति अवश्य होनी चाहिये।

❁ ईश्वर की कृपा 'सन्मुख मरूत' या अनुकूल पवन है। अनुकूल इसलिए कि नाव को पश्चिम जाना चाहिये, किन्तु नदी के बहाव पूरब की ओर ले जाता है। यदि पूरवैया हवा चल पड़े तो वह हवा उसको पूरव की ओर जाने से रोकती है। उस नाव पर मल्लाह पाल टाँग देता है, तब नाव भाठे से सीरे की ओर चली जाती है। मनुष्य-शरीर नाव है, ईश्वर की कृपा अनुकूल वायु है और सद्गुरु मल्लाह हैं।

❁ जो कोई ईश्वर की भक्ति करते हैं, उनको ईश्वर की कृपा मिलती है। ईश्वर महान् कृपालु हैं। वे भक्तों को अपनी सहायता देते हैं, वे अपना अवलम्ब देते हैं।

❁ **"जौं तेहि पंथ चलइ मन लाई।**
तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।"

– श्री रामचरित मानस

जहाँ आप अपने को बलहीन पाईये, तो भगवान् को याद कीजिये और अपनी शक्ति लगाइये, अवश्य मदद मिलेगी।

एक हनुमान-भक्त था। वह बैलगाड़ी हाँकते हुए कहीं जा रहा था। रास्ते में गाड़ी का पहिया पंक में फँस गया। वह गाड़ी पर बैठे-बैठे हनुमान् जी को पुकारने लगा–"हे हनुमान जी! हे हनुमान जी! मेरी गाड़ी को पंक से निकाल दो।" आर्त्त पुकार सुनकर एक सज्जन के रूप में हनुमान जी आये और बोले–"हनुमान जी! हनुमान जी! क्या करते हो; गाड़ी से उतरो, कमर में फेंटा बांधो और पहिये में जोर लगाओ। तब हनुमान जी का बल मिलेगा। वे मदद करेंगे।" वह भक्त गाड़ी से नीचे उतरता है और कमर कसकर पहिये में जोर लगाता है। परिणाम-स्वरूप गाड़ी पंक से बाहर जाती है। इस कथा से यह जानने में आता है कि अपने से कोशिश करो, तो ईश्वर मदद करेंगे।

'हिम्मते मरदा मददे खुदा।'

God helps those who help themselves.

(ईश्वर उसकी मदद करते हैं, जो अपने से अपने को मदद करते हैं।)

❀ जिसको ईश्वर की कृपा में विश्वास नहीं, उसको ईश्वर में विश्वास नहीं। ईश्वर की कृपा सदा रहती है। हम सो जाते हैं, फिर भी ईश्वर हमारी रक्षा करते हैं। जंगल में रक्षा करते हैं। सोते-जागते, साधन-भजन करते, सब समय हमारी रक्षा करते हैं। साधन-भजन में लगे रहने पर जब विशेष कृपा होती है, तब ब्रह्म-ज्योति, ब्रह्मनाद को पाते हैं। ब्रह्मनाद और ब्रह्मज्योति को पाकर साधक परमात्मा की गोद में वैसे ही पड़ जाते हैं, जैसे माता-पिता की गोद में बालक।

श्रीरामकृष्ण परमहंस जी महाराज की वाणीः–

❀ जैसे किसी कमरे का हजार वर्षों का अंधकार एकबार एक दियासलाई जलाने से दूर हो जाता है, उसी प्रकार जीव के जन्म-जन्मांतर का पाप भगवान् की एक कृपादृष्टि से दूर हो जाता है।

❀ मलय पवन के लगने से जिन पेड़ों में कुछ सार है, वे सब चंदन हो जाते हैं; किन्तु असार वृक्ष जैसे बाँस, केला, आदि पर कुछ असर नहीं होता। इसी प्रकार, भगवत्कृपा पाकर, जिनमें कुछ सार हैं, वे क्षणभर में साधुभाव से परिपूर्ण हो जाते हैं, किन्तु विषयासक्त मनुष्य पर सहज ही कोई प्रभाव नहीं पड़ता।



श्री सद्गुरवे नमः

मनोविकार और उससे छूटने का उपाय

※ सत्संग में आप जाते हैं, सद्ग्रंथों का पाठ आप सुनते हैं। वहाँ होता है कि तुम्हारे अंदर क्रोध आवे तो क्रोध न करो। काम का विकार आवे तो वैसा मत करो कि परलोक और इहलोक बिगड़ जाये। कभी लोभ होता है, कभी मोह होता है, हम सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझकर चलते हैं, जिससे बहुत नुकसान होता है। दूसरे देश के लोगों को हटाओ और अपने देश के लोगों को भी, जो हमको लूटते हैं, उनको हटाने और सम्हालने कहते हैं। लेकिन हमारे अंदर में जो काम, क्रोध, लोभ, मोह होता है, इन विकारों द्वारा हमारा आध्यात्मिक ज्ञान मटियामेट हो जाता है।

विदेशी और दूसरे जब कोई लूटते हैं, तो उसको हम मारते, पछाड़ते और भगाते हैं, किन्तु अपने अंदर में जो ये विकार हैं, उनको क्या करो ? आज के युग में जितने शस्त्रास्त्र निकले हैं, वे उन विकारों को मारने में सफल नहीं हैं। काम, क्रोध, लोभ और मोह सेनापति और दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा होता है। ये बाहरी दुश्मनों से भी अधिक तबाह हमको करते हैं। हम इनसे बचें और बचकर जाने कि इससे सुख होता है वा दुःख ? साधु-संतों ने जो इसे जाना, इसे दूर किया और कहा कि-

"थाकेऊँ सब करि करम गोसाईं।
सुखी न भयेऊँ अवहिं की नाईं।।"

–श्री रामचरित मानस

सोचने की बात है कि हरेक प्रेमी, सत्संगी, ज्ञानवान विचारिये कि आप के हृदय में काम, क्रोध आदि नहीं उत्पन्न हो तो आपका हृदय कितना शान्त रहेगा ? इतनी शान्ति, जितनी की हम चाहते हैं।

※ शरीर के अंदर मन एक इन्द्रिय है। यह बड़ा चंचल है, हमेशा विषयी होकर रहता है। मन इतना सूक्ष्म है कि उसे आँख से देख नहीं सकते। यह बहुत तेज है। हमारे अनेक जन्मों से यह हमारा साथी है, अनेक जन्मों के संस्कार लिए विषय-वासना से भरा है। इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार होते ही रहते हैं। विकारों के मारे कोई चैन नहीं पाता।

संसार के लोग—चाहे वे राजा, राष्ट्रपति, सेनापति, विद्वान्, धनवान् वा कंगाल कोई हो, इन विकारों से सताये जाते हैं। ये सभी बन्धन हैं। इन बन्धनों से छूट जाने पर कैसा होगा, विचार कीजिये। कोई विकार उत्पन्न न हो, तो कितना चैन होगा, विचारिये।

निद्दाह नींद में आपको कोई विकार नहीं होता। वहाँ एक ही दोष है कि अचेतता रहती है। जगने पर फिर विकार के चक्कर में पड़ते हैं। दर्जा वह भी होता है कि जहाँ विकार बिल्कुल नहीं होता और सचेतता रहती है। जिसमें सचेतता रहती है और विकार नहीं, वह कितना अच्छा होगा। संतों ने कहा है—इसी दर्जे में अपने को ले जाओ। यही है मोक्ष को प्राप्त करना, अपवर्ग को प्राप्त करना, छुटकारा पाना। विकारों का पता नहीं, किन्तु अचेतता रहती है, यह है गहरी नींद; किन्तु यह क्षणिक है।

❀ **"व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचंड।**
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड।।"

—रामचरितमानस

कोई अपना सिर ऊँचा करना चाहे तो माया की यह प्रचंड सेना ऊपर होने नहीं देती। बाहर में तो नहीं, लेकिन सोचिये कि अपने-अपने अंदर है वा नहीं ? इन विकारों में फँसकर लोग क्या-क्या करते हैं, विचारिये। एक हाकिम के लिए भी और एक किसान के लिए भी वही बात।

❀ काम-क्रोधादिक विकारों ने सतयुग को भी नहीं छोड़ा। कहते हैं कि पाप विशेष होने पर भगवान् का अवतार होता है तो सतयुग में ही हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए, जिनके लिए भगवान् को अवतार लेना पड़ा। त्रेता, द्वापर में भी हुआ और कलियुग में हमलोग देख ही रहे हैं।

❀ तीर्थस्नान करने से उतना लाभ नहीं होता। किसी भी तीर्थस्नान में ऐसा नहीं होता कि काम, क्रोधादिक विकार मिटते हैं। बहुत यज्ञ करे, बहुतों को खिलावे, इससे आपका मन पवित्र नहीं हो सकता। आत्म-दर्शन में विकारों से छूटना और अंतर में धँसना; ये दोनों होते हैं।

❀ हम पिण्ड, ब्रह्माण्डादि आवरणों से आवरणित हैं। हमको काम, क्रोध, लोभ, मोह सताते हैं। यह आवरण से आवृत्त रहने के कारण से ही होता है। इससे अपने को पार करो। कैसे पार करोगे, तो किसी सन्त से पूछ

लो। एक प्रेमी ने गाया है–

"भेद यह गुप्त पाना किसी ग्रन्थ से।
है असम्भव समझ लो किसी सन्त से।।"

❁ भीतर में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष उपजते हैं। ये सब विकार जो होते रहते हैं, इन विकारों के मारे लोग परेशान रहते हैं, शान्ति नहीं आती। इन विकारों में रहते हुए अशान्ति-ही-अशान्ति होती रहती है। जो विचारवान नहीं है, वह मनोविकार को ठीक से नहीं समझता है। लेकिन संस्कार वाला आदमी समझता है। विकार शान्ति को बिगाड़ देता है। यह इस लोक की बात है। परलोक की कथा पुराण-ग्रन्थों में पढ़ते हैं, तो मालूम होता है कि देवताओं को भी मनोविकार नहीं छोड़ता।

❁ तमाम मनोविकार है। न लोक में न परलोक में कहीं शांति नहीं। परलोक ठीक है। श्राद्ध-क्रिया से वहाँ पहुँचाया भी जाये, तब भी मनोविकार को शान्त करने के लिए कोई क्रिया नहीं। ब्रह्मा जैसे को भी विकार सताता है। आखिर पूछ होती है कि मनोविकारों से छूटकर कहीं रहना हो सकता है या नहीं ? संतलोग कहते हैं–"यही उपाय तो हम बतलाते हैं कि मनोविकारों से छूटो। परमात्मा के साथ एकमेक होकर रहो। यही काम है ईश्वर-भजन।"

❁ ईश्वर से नहीं मिल सकने का अथवा ईश्वर-दर्शन नहीं होने का जो कारण है, उसको त्याग दो। वह कारण क्या है ? वह कारण है, मन का संग। जैसे शरीर का संग है, वैसे मन का संग है। बिना मन के रहो। मन के साथ रहोगे तो सभी विकार रहेंगे। इसलिए मन का त्याग होना चाहिये। शरीर का त्याग लोग जानते हैं। लेकिन मन का त्याग नहीं जानते। यह काम बहुत विशेष है। मन का संग इस तरह से नहीं छूटता। मन का संग ध्यानयोग के द्वारा ईश्वर-भजन करने पर छूटेगा। ध्यान में मन की एक ओरता होती है। ऐसा साधन करो, जिससे मन की एकओरता हो। मन का संग छूटने से मनोविकार छूट जायेंगे। मन का संग नहीं, उसका विकार क्या ?

❁ आत्म-ज्ञान की बात चिराग है। इससे यह होगा कि क्रोध, मस्ती और अज्ञान-अंधकार नष्ट होकर बढ़ता हुआ अभिमान और चित्त की अनेक

वृतियाँ नाश होंगी।

मनोविकारों को रखते हुए भक्ति नहीं कर सकते और बिना भक्ति के ईश्वर को कौन पा सकता है ? इसलिए मनोविकारों से बचना बड़ा आवश्यक है।

अन्नाहारी रहने से शरीर कमजोर होगा, इन्द्रियाँ शिथिल होंगी, किन्तु विषय-भोग का रस नहीं छूटेगा। जब तक रस आता रहेगा, इच्छा चलती रहेगी। इस तरह कोई मनोविकारों को दमन नहीं कर सकता है। वह तो ईश्वर-दर्शन से ही जाता है। ईश्वर–दर्शन होने से मनोविकार जायेगा। विषयभोग की ओर उसका मन ही नहीं जायेगा। वह रस उससे उसी तरह हट जायेगा, जैसे कि कै कर देने के बाद आप उसे मुँह में नहीं डालते। वमन-सदृश विषय-भोग की इच्छा जाती रहेगी। मनोविकारों से बचने के लिए ईश्वर-भक्ति कर ईश्वर-दर्शन करो और ईश्वर-दर्शन के लिए मनोविकारों से बचो।

ईश्वर की भक्ति करो। इसी से काम-क्रोधादिक विकारों का दमन होगा। जिन्होंने भक्ति की, उन्होंने जाना। किसी में भी इन बड़े-बड़े सताने वाले प्रचण्ड दुर्गुणों को दूर करने का सामर्थ्य नहीं है, जबतक कि वह ईश्वर कृपा का पात्र न हो।

"क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया।"

–रामचरिमानस

ईश्वर की भक्ति में–ईश्वर-दर्शन के रास्ते में बड़ा प्रकाश होता है। संतों ने गाया है, उस प्रकाश में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि भाग जाते हैं। जैसे बाहर में सूर्य का प्रकाश होता है, तो अंधकार भाग जाता है। अंदर में सूर्य का प्रकाश होता है। इसको अजमाकर देखना चाहिये।

माया-मय रूप के दर्शन से मनु-शतरूपा को क्या हुआ, रामायण में है। वर मांगा कि आपहीं की तरह पुत्र हो। भले ही यह सात्त्विक इच्छा हो। स्वर्ग सुख भोगा, फिर राजा दशरथ और रानी कौशल्या हुए। इतने तप के बाद भी शिकार खेलने का इतना चस्का कि दिन को क्या, रात को क्या! शिकार खेलते रहे। शरीर में इतना बल कि किसी का भय नहीं। शरीर-रक्षक की जरूरत नहीं। शिकार के चस्के में रात को श्रवण कुमार को मार डाला।

शाप लिया कि पुत्र-शोक में मरोगे। इसी तरह कश्यप और अदिति की कथा है। वही तप, वही फल, वही श्रवण को मारना और शाप पाना। श्रीराम को कल युवराज-पद मिलेगा, राजा खुश होकर रनिवास में गये। कैकेई के महल में गये, उनको मालूम हुआ कि वह कोप भवन में बैठी हुई है। यह जब सुना तो उसकी दशा कैसी हुई, तुलसीदास जी ऐसे भक्त को लिखना पड़ा–

"कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ।
भय बस अगहुँड़ पड़इ न पाऊ।।
सुरपति बसइ बाहुँ बल जाके।
नर पति सकल रहहिँ रूख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।।"

तुलसीदास जी असली बात को कैसे छिपाते ? मैं आस्तिक का बच्चा हूँ। भारत का बच्चा हूँ। श्रीराम, श्रीकृष्ण का मानने वाला हूँ। एक बार एक पादरी मेरे पास आया और कहलवाना चाहा कि ईसा-मसीह श्रीराम और श्रीकृष्ण से विशेष थे। मैंने यह बात मानी नहीं। वह फिर मेरे पास नहीं आया। जगमग दर्शन से मनोविकार नहीं जाते। इतना तप, फिर मनोविकार। तब किस काम का वह तप।

"सूल कुलिस असि अँगवनिहारे।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे।"

– गो० तुलसी दास

इन बातों को देखतें हैं तो होता है कि इनसे विशेष दर्शन होना चाहिये, जहाँ विकार न हो।

❁ **"काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।**
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप।।"

– श्री रामचरित मानस

अपने को अंधकार के कुएँ से निकालो, तब काम-क्रोधादि विकार घटते–घटते घटेंगे और परमात्म-स्वरूप का दर्शन होगा।

❁ माया के सभी विकार अपने अंदर हैं। माया का कटक–फौज–सेना बहुत प्रचंड है। यह तमाम संसार में व्याप्त है। काम-क्रोध इसके सेनापति

और दम्भ, कपट, पाखण्ड आदि योद्धा हैं। इनके भोगाये भोग लोग भोगते हैं। इन भोगों में पड़कर कष्ट पाते हैं—अनेक जन्मों से। क्या इसका कोई उपाय नहीं है कि इनसे छूटा जाये ? है, अवश्य है। पहली बात यह है कि माया की प्रबल सेना, जो तुमको दबोचे रहती है, उससे बचने के लिए—छुटकारा पाने के लिए ऐसे की शरण लो, जो माया को अपने वश में सब तरह से रखता है। वह कौन है ? उस मायापति को ईश्वर-परमात्मा कहते हैं। उनकी शरण में अपने को बनाओ। शरण में बनाने का मतलब है कि उनका भजन करो। शरण में जाना क्या है ? पहला मुगल बादशाह बाबर था। उसका बेटा हुमायूँ था। शेर खाँ से वह भगाया गया। वह ईरान के शाह के शरण में गया और वहाँ से उसकी सहायता से फिर अपनी स्वतंत्रता को पाया। इसी तरह शरण लो, जिधर जाने से परमात्मा का प्रत्यक्ष-दर्शन होता है।

❀ रावण की माया (सिद्धियों) का वर्णन है। बहुत-से राम—लक्ष्मण, बहुत-से अपने रूप, बहुत-से बैताल, भूत, पिशाच आदि प्रचण्ड जन्तुओं की रचना करना, बालू की वर्षा करना और जलते हुए अग्नि प्रकट् करना इत्यादि-इत्यादि इसकी माया अर्थात् सिद्धियाँ थीं। ये कितनी अद्भुत और विकट थीं! रावण वेद-शास्त्र आदि विद्या का प्रकाण्ड विद्वान् भी था। उसने बड़ी तपस्या करके ब्रह्मा और शिव का दर्शन प्राप्त किया था और उससे वर भी पाया था।

"कि मैनाक कि खगपति होई।
मम बल जान सहित पति सोई।।"

— श्री रामचरित मानस

से प्रकट् होता है कि लड़ाई में उसे विष्णु भगवान् का भी दर्शन प्राप्त हुआ था। वह शंकर का इतना भक्त था कि अपने हाथों अपना मस्तक काटकर उनके नाम से हवन कर देता था। नर-रूप भगवान् राम से तो सम्मुख विकट संग्राम करके ही **"कहाँ राम रन हतउँ प्रचारी"** कहकर वह मरा। तात्पर्य यह कि भगवान् के अवतारी रूप अत्यन्त सुन्दर नर-रूप का भी उसे दर्शन मिला ही था। वह स्वयं कुलीन भी इतना था कि ब्रह्मा का प्रपोत्र था, इतना होने पर भी उसका हृदय शुद्ध न हो सका। लोग उसका नाम भक्तों के श्रेणी में नहीं गिनते। हाँ, पापियों और दुष्टों के श्रेणी में अवश्य ही गिनते हैं।

अतएव कहना पड़ता है कि उसमें कुलीनता, सिद्धियाँ और दर्शन प्राप्ति के जो-जो गुण थे उनमें (उन गुणों में) स्वाभाविक शक्ति ऐसी नहीं है कि वे किसी के हृदय को शुद्ध करा उसे, भक्त बना दे।'

❁ सुग्रीव और विभीषण रघुवर राम जी के भक्त थे, पर तो भी क्रमशः तारा और मंदोदरी के मृगलोचन एवं विधुमुख को देखकर विकल हो गये और पाप में लिप्त हो गये।

"जेहि अघ बधेउ व्याध इव बाली।
फिर सुकंठ सोइ कीन्ह कुचाली।।
सोइ करतूति विभीषण केरी।
सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।।"

—रामचरितमानस

सुग्रीव और विभीषण के विकारी हृदयों का ख्याल श्रीराम ने अपनी अति उदारता से उनपर मैत्री भाव के कारण नहीं किया। इसीलिए उनका हृदय निष्पाप हो गया, ऐसा नहीं कहा गया है। किसी को यह नहीं विचारना चाहिये कि विकारी हृदय वाले की ऊर्ध्वगति होती है और परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति इसको होती है। परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति के बिना न तो भक्ति पूरी होती है और न भक्त का परम कल्याण होता है। सगुण-साकार ईश्वर-रूप को भी प्रत्यक्ष में पाकर, उनको प्रभु और मित्र जानते हुए भी हृदय के विकार विभीषण और सुग्रीव के तथा राजा दशरथ के हृदय के विकार दूर नहीं हुए थे। इसीलिए तो भगवान् में वात्सल्य भाव रखते हुए, उनको प्रत्यक्ष पाये हुए श्री राजा दशरथ के लिए गो० तुलसीदास जी ऐसे रामभक्त को भी लिखना पड़ा—

"सुरपति बसइ बाँहु बल जाके।
नरपति सकल रहहिँ रूख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे।
ते रति नाथ सुमन सर मारे।।"

❁ राम-प्रताप-रूप सूर्य जब जिसके हृदय में प्रकाश करता है, तब

उसके हृदय में ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, विराग और विवेक बढ़ते हैं और अज्ञान, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, स्वभाव के दोष, मत्सर, मान, मोह, और मद नष्ट हो जाते हैं।

यह राम-प्रताप-रूप सूर्य त्रिकुटी महल में विराजित ओम् ब्रह्म का स्वरूप है–

"त्रिकुटी महल में विद्या सारा,
घनहर गरजै बजै नगारा।
लाल बरन सूरज उजियारा,
चत्र कँवल मँझार शब्द ओंकारा है।"

–कबीर साहब

भक्ति योग के सच्चे साधकों को अपने हृदय में यह तब दरसता है, जब वे रामचरितमानस में वर्णित नवधा भक्ति में की छठी भक्ति का साधन पूर्ण रूप से कर लेते हैं। यह सूर्य हिमकर-युक्त है। इसी को **"कृसानु भानु हिमकर"** कहा गया है। अज्ञान, पाप, काम और क्रोधादि ताप मनुष्य के हृदय को दग्ध करते हैं; परन्तु साधन में लवलीन भक्त अपने हृदय में त्रिकुटी महल पर चढ़कर ऊपर कथित सूर्य का दर्शन पाते हैं; और इससे विकारों का ताप उनके हृदय से दूर हो जाता है। फलस्वरूप हृदय शीतल एवं शांत हो जाता है। और इसमें ज्ञान-विज्ञान, सुख, संतोष, विराग और विवेक बढ़ जाते हैं। जैसे उल्लू पक्षी को आकाश में उदित सूर्य नहीं दरसता है उसी तरह छठी भक्ति के साधन से हीनभक्त को **"राम प्रताप प्रबल दिनेश"** अपने अंतर में नहीं दरसता है। इसलिए उनके हृदय के विकार दूर नहीं होते और न उनमें ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, विराग और विवेक आते हैं। **"राम प्रताप प्रबल दिनेश"** को यह समझ लेना बड़ी भूल होगी कि यह सूर्य त्रेतायुग में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के अवधेश रहने के समय में उदित था और अब अस्त हो गया है। वास्तव में यह सूर्य सर्वदा सबके हृदय-रूप आकाश में (बाहरी आकाश में नहीं) उदित है, पर उल्लू पक्षी रूपी अनाधिकारी को अपने अंतर में नहीं दरसता है।

"घूघर अंधे भेष टेक अभिमान में।
सुझै न सबमें ब्रह्म धुन्द अज्ञान में।।

घूघर नेतर खुलै सुनो सोइ साध है।
देखै तन बिच भान सो ब्रह्म अगाध है।।
जौं दुपहरे गगन रवि छाई।
तासे उजास भया घट माहीं।''

❁ ''गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी।
नील सैल एक सुन्दर भूरी।।
तासु कनक मय सिखर सुहाये।
चारि चारु मोरे मन भाये।।
माया कृत गुन दोष अनेका।
मोह मनोज आदि अबिबेका।।
रहे व्यापि समस्त जग माहीं ।
तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं।।''

— रामचरितमानस

सुमेरु पर्वत से दूर उत्तर दिशा में एक बड़ा ही सुन्दर नील पर्वत है। उसकी स्वर्णमयी सुहावनी चार चोटियाँ हैं। वे मेरे (भगवान शिव के) मन को अच्छी लगी।

माया रचित मोह, काम, और अज्ञान आदि अनेक दोष गुण अर्थात् दोषयुक्त लक्षण सम्पूर्ण संसार में व्याप्त रहते हैं, परन्तु उस पर्वत के समीप कभी नहीं जाते हैं।

(ये) वार्त्ता बड़ी ही रहस्यमयी जान पड़ती है। पहले तो चार कनकमय शिखरों वाले नील पर्वत के इस भूमण्डल पर होने का पता इस भूमण्डल की भूगोल पुस्तक में नहीं है। दूसरी बात यह कि मायाकृत् अज्ञान, काम और अविवेक आदि दोष-लक्षण उस नील पर्वत के समीप तो क्या, उसके पास तक नहीं फटकने पाते हैं, असम्भव-सी है; क्योंकि समस्त बाहरी संसार में ऐसा कोई भी स्थान देखा नहीं गया है, जहाँ प्राणी को अज्ञान, काम और अविवेक आदि दोष-लक्षण न हों।

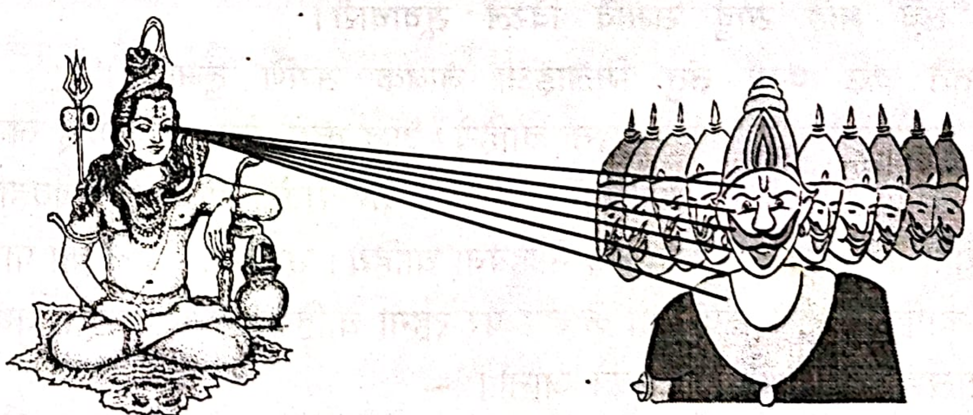
यथार्थ यह है कि मेरुदण्ड के अन्तर में सीधी खड़ी रेखा-रूप धार है, उसे ही सुमेरु गिरि कहा गया है। इससे अवलम्बित इसके नीचे से ऊपर तक पिण्ड में गुदा-स्थान से कंठ तक पाँच चक्र हैं, जिसका नाम—मूलाधार,

स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत् (हृदय) और विशुद्ध (कंठ) है। ऊपर (सूक्ष्मता) की ओर उत्तर दिशा कहा गया है। वर्णित सुमेरु गिरि से उत्तर अर्थात् ऊपर तम-रूप नील गिरि है। भक्तियोग-अभ्यासी अपने अंतर में (तम-रूप नीलगिरि) को प्रथम ही पाता है। आज्ञाचक्र नाम का छठा चक्र इसी में विराजित है। बाहरी विषयों से मुड़ी हुई चैतन्य वृति (सुरत) वाला इस पहाड़ पर ठहरा रहता है। उसको अज्ञान, काम और अविवेक आदि दोष-लक्षण नहीं छूते हैं। इसलिए वर्णन किया गया है कि इस पहाड़ के पास ये दोष-लक्षण नहीं जाते हैं।

श्री मद्भगवद्गीता

एव बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तम्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।

अर्थ–इस प्रकार बुद्धि से सूक्ष्म, बलवान और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो! (तु इस) काम रूप दुर्जय शत्रु को मार डाल।



मनोविकार

श्री सद्गुरवे नमः



अन्तःकरण-शुद्धि



❀ अन्तःकरण की शुद्धि विचार से भी करो और ध्यान-योग का अभ्यास भी करो। दोनों को दोनों से सहायता मिलेगी। अन्तःकरण की पूरी शुद्धि पहले किसी को नहीं होती। पहले ही अन्तःकरण की शुद्धि पूर्णरूप से होना असम्भव है। बल्कि ऐसा होता है कि मन शुद्ध करके रखा, माया की झपेट आयी और गिर गये। पहले विचार से मन को साफ करो और ध्यान भी करो तो मजबूती आयेगी। अन्तःकरण-शुद्धि की बड़ी आवश्यकता है। अन्तःकरण-शुद्धि के लिए केवल बौद्धिक बल ही काफी नहीं है। बौद्धिक-बल के साथ ध्यान-अभ्यास की भी आवश्यकता है।

"गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा।
कीचहि मिलई नीच जल संगा।।"

– रामचरितमानस

अन्तःकरण कीच में फँसा है, नीचे गड़हे में गिरा है। ऊपर चढ़ाई हो, तो सफाई हो। ऊपर चढ़ाई का अर्थ आँख से ऊपर होना है।

❀ हृदय को पवित्र रखना चाहिये। ईश्वर परम पवित्र हैं। बाबा नानक ने कहा–

"सूचै भाड़ै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।"

अपने हृदय को शुद्ध करके रखना चाहिये। शुद्ध कैसे होता है ? कोई जल बाह्य संसार में नहीं है, जो हृदय को शुद्ध कर सके। सत्य का व्यवहार होना चाहिये। सत्य-रूप गंगाजल में डूबना चाहिये। सत्य-रूप जल का पान करना चाहिये। सत्य-रूप गंगा के तट पर रहना चाहिये। सत्य का तट क्या है ? सत्संग है। विधि-निषेध को जानो।

"विधि निषेधमय कलिमल हरनी।
करम कथा रवि नन्दनि वरनी।।"

– रामचरितमानस

यह श्रवण, मनन, निदिध्यासन से इस तरह का ज्ञान होता है।

अपने हृदय को शुद्ध करने के लिए असत् का, व्यभिचार का, नशाओं का, चोरी का और हिंसा का त्याग करना चाहिये। इनके त्याग में जो सद्गुण है, उनको ग्रहण करना चाहिये। इस तरह अपने हृदय को शुद्ध करके निदिध्यासन में प्रवेश करना चाहिये।

❁ जैसे ठाकुर जी के दर्शन के लिए ठाकुरबाड़ी जाते हैं, तो वे पवित्र होकर जाते हैं, उसी तरह ईश्वर के पास जाने के लिए अपने को शुद्ध करना होगा। अपने को शुद्ध कैसे करना होगा ? अपने शरीर में ज्ञानमयी धारा-चेतन-धारा है। उसे इड़ा-पिंगला के संगम-स्थल-सुषुम्ना पर स्थिर करो इसी को तुलसी साहब ने कहा है–

"आली अधर धार निहार निज कै, निकरि शिखर चढ़ावहीं।
जहाँ गगन गंगा सुरति यमुना, जतन धार बहावहीं।।"

यहीं पर सन्तलोग डुबकी लगाते हैं, और अजब स्नान करके पवित्र हो जाते हैं।

❁ **"घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।।"**

–दादू दयाल जी

स्थूल शरीर स्नानादि से पवित्र करो। सूक्ष्म को पवित्र करो उसके ऊपर से स्थूल शरीर को हटाकर। कारण की पवित्रता होगी उसके ऊपर से सूक्ष्म शरीर को हटाने से। महाकारण की पवित्रता होगी कारण शरीर को हटाने से और चेतनमय–चिदानन्दमय देह को पवित्र करो महाकारण को हटाकर। तब पूरी-पूरी पवित्रता आवेगी और ईश्वर-दर्शन होगा।

❁ मनुष्य को बहुत पवित्रता से रहना चाहिये। पवित्रता शरीर की और पवित्रता हृदय की भी होनी चाहिये। पवित्रता में रहते हुए अपने को ऊपर उठाओ। ऊपर उठाने का अर्थ अपने अन्दर सूक्ष्मता में प्रवेश करो।

❁ हृदय की शुद्धि यानी हृदय की पवित्रता के लिए हृदय में राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि विकार नहीं रखो। किसी से वैर-भाव के कारण जो उसका अनिष्ट सोचता है, वह कभी ऊर्ध्वगति को प्राप्त नहीं कर सकता।

❁ केवल स्थूल-साकार सगुण की उपासना में ही लगते हो और सूक्ष्म-सगुण की उपासना में नहीं बढ़ते हो, तो तुम्हारी भक्ति आगे बढ़ेगी

कैसे ? ऐसा मानने से ही ईश्वर का पूरा दर्शन हो गया, इसको सिद्ध करना चाहिये। सगुण-रूप के दर्शन करने से विकार दूर नहीं होता। श्रीराम, श्री कृष्ण, शिवजी, देवी आदि के दर्शन से हृदय शुद्ध नहीं होता। शुम्भ-निशुम्भ ने देवी से युद्ध किया। देवी-दर्शन होने पर भी हृदय शुद्ध क्यों नहीं हुआ ? इससे जाना जाता है कि इस स्थूल-दर्शन से विचार की शुद्धता नहीं होती, माया में भले ही लाभ हो जाये।

❀ रावण की माया (सिद्धियों) का वर्णन है कि बहुत-से राम-लक्ष्मण, बहुत-से अपने रूप, बहुत-से बैताल, भूत, पिशाचादि, प्रचण्ड जन्तुओं की रचना करना, बालू की वर्षा करना और जलती हुई अग्नि प्रकट् करना इत्यादि-इत्यादि उसकी माया अर्थात् सिद्धियाँ थीं। ये कितनी अद्‌भुत और विकट थीं! रावण वेद-शास्त्रादि विद्या का प्रकाण्ड विद्वान् भी था। उसने बडी तपस्या करके ब्रह्मा और शिव का दर्शन प्राप्त किया था और उनसे वर भी पाया था। **"की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई।।"** (तृतीय सोपान, अरण्यकाण्ड) से प्रकट् होता है कि लड़ाई में उसे विष्णु भगवान् का भी दर्शन प्राप्त हुआ था। वह शंकर का इतना बड़ा भक्त था कि अपने हाथों अपना मस्तक काटकर उनके नाम से हवन कर देता था। नररूप भगवान् राम से तो सम्मुख विकट संग्राम करके ही **"कहाँ राम रन हतउँ प्रचारी"** कहकर वह मरा। तात्पर्य यह कि भगवान् के अवतारी-रूप अत्यन्त सुन्दर नर-रूप का उसे दर्शन मिला ही था। वह स्वयं कुलीन भी इतना था कि ब्रह्मा का प्रपौत्र था, इतना होने पर भी उसका हृदय शुद्ध न हो सका। लोग उसका नाम भक्तों की श्रेणी में नहीं गिनते। हाँ, पापियों और दुष्टों की श्रेणी में अवश्य ही गिनते हैं। अतएव कहना पड़ता है कि उसमें कुलीनता, सिद्धियाँ और दर्शन-प्राप्ति के जो-जो गुण थे, उनमें (उन गुणों में) स्वाभाविक शक्ति ऐसी नहीं है कि वे किसी के हृदय को शुद्ध करा उसे भक्त बना दें।

❀ उस ओर चलने के लिए अपने को बहुत पवित्र करके रहना पड़ता है। यह केवल शारीरिक पवित्रता नहीं, शारीरिक पवित्रता के सहित मन, बुद्धि की पवित्रता है। मन में कुविचार न आवे, मन बुराई की ओर न जाये, तब अन्तःकरण की पवित्रता है, ऐसा समझना चाहिये।

अन्तःकरण की पवित्रता में यह गुण है कि इससे संसार में भी प्रतिष्ठा होती है। यदि मन बुरे-बुरे कर्मों को करना चाहे, इन्द्रियों को बुरे-बुरे कर्मों की ओर प्रेरण करता है, तो वह बहुत झंझट में पड़ता है। धनी-मानी होते हुए भी उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती। किन्तु जो अन्तःकरण की पवित्रता से रहता है, तो धनी नहीं होने पर भी, विद्वान् नहीं होने पर भी लोग उनकी प्रतिष्ठा करते हैं। अन्तःकरण की शुद्धि वाले को संसार में और परलोक में–दोनों में सुख होगा।

❁ इत्रदान में गोबर वाली अंगुलि देना ठीक नहीं। ईश्वर का भजन करना चाहते हो, तो अपने अन्तःकरण को शुद्ध करो। अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए अपने को पापों से बचाओ। पापों से बचने के लिए झूठ छोड़ो। झूठ ऐसा झोला है, जिसमें सब पाप छिपा रहता है। कोई पाप चुराकर करो तो वह प्रकट् हो जायेगा। रामकृष्ण परमहंस जी ने कहा है कि पाप और पारा को कोई हजम नहीं कर सकता है। जैसे कोई छिपकर पारा खा ले तो वह शरीर फोड़कर निकल जाता है। उसी तरह से छिपकर किया हुआ पाप भी कभी-न-कभी प्रकट् हो ही जाता है। चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार मत करो।

❁ मौलाना रूम, शम्स तबरेज के यहाँ गये और उनका हाथ चूमा। इस पर शम्स तबरेज ने उसे एक थप्पड़ लगाया। मौलाना रूम ने पूछा–"हजरत! मुझसे क्या खता हुई ?" उन्होंने कहा–"तेरे से बदबू आती है।" मौलाना ने पूछा–"वह कैसी बदबू है ?" उन्होंने कहा–"इल्मियत (विद्वत्ता) की बदबू है ?" पुनः मौलाना ने पूछा–"क्या करूँ ?" उन्होंने उत्तर दिया–'कुएँ में डाल।' ज्ञान का तर्क-वितर्क सभी छोड़कर भजन करो। मुँह बन्द करो, मन बन्द करो, तब भजन ठीक-ठीक बनेगा।

भजन करते समय सब भूल जाइये। पवित्र मन रखकर ध्यान कीजिये। विषयी इस ओर बढ़ नहीं सकता। उपनिषद् में भी कहा है जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं और जिसका चित्त असमाहित या अशांत है, वह इसे आत्म-ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है।

"नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः।

नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।"

–कठोपनिषद्

❋ पवित्र काम करने के लिए आपका हृदय कैसा पवित्र होना चाहिये ? इसको भी समझिये। उपनिषद् में लिखा है–"ब्रह्मवत् परिशुद्ध हुए बिना ब्रह्म को कोई प्राप्त नहीं कर सकता।" ऐसी पवित्रता प्राप्त करने के लिए पंचशील का पालन करना अत्यावश्यक है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से अलग रहना चाहिये। पंचपापों से अलग रहना पंचशील का पालन करना है। जो पंचशील का पालन सम्यक्-रूपेण करता है, वह परमात्मा की ओर है ही।

❋ संसार में जितने लोग हैं, उनमें से पुण्य और पाप सबसे होते हैं। जो अच्छे लोग होते हैं, वे पुण्य-कर्म अधिक करते हैं और पाप-कर्म कम करते हैं। और जो पाप अधिक करते हैं, वे अच्छे लोग नहीं कहलाते। ध्यान न हो सकता, जब तक हृदय शुद्ध न हो। पवित्र हृदय में पाप की कमी होती जाती है। पुण्य का भी फंदा नहीं हो और पाप का तो रहे ही नहीं, यह कैसे होगा ? ध्यान से।

जैसे कोई गंगा और यमुना के मिलन पर स्नान करता है, उसके शरीर की मैल छूटती है, वैसे ही अपने अंदर ऊपर से धारा आती है। उसमें साधक अपनी वृत्ति को लगाता है। यही गंगा में यमुना को जोड़ना है। इससे मन की मैल छूटती है, पवित्र होना होता है।

श्री मद्‌भगवद्‌गीता

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़ब्रताः।।

अर्थ–पवित्र कर्म करने वाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेष जनित द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त दृढ़ निश्चयी भक्त मुझको भजते हैं।





श्री सद्‌गुरवे नमः



ईश्वर-भक्ति और इससे लाभ

❀ जैसे शिशु को, छोटे बच्चे को एक ही विश्वास रहता है कि मेरे शुभ के लिए, सारी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिए केवल मेरी माता ही हैं–उसी तरह भक्तों को, साथ-साथ मुझको भी यह विश्वास है कि मनुष्य के सब सुखों की एक ही माता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी और नहीं–एक-ही-एक माता ईश्वर की भक्ति है। ईश्वर की भक्ति रूपा माता की गोद में जो अपने को रखता है, वह अशुभ कभी नहीं देखता। यही जानकर इसका दृढ़ विश्वास करके संतों ने संसार के लोगों के वास्ते जो शुभ बताया है, वह शुभ के हेतु ईश्वर की भक्ति को ही बतला दी है।

❀ ईश्वर की भक्ति से मनुष्य शुभ-ही-शुभ देखता हुआ अन्त में मोक्ष को पाता है। संसार के बंधनों में–जालों में फँसा हुआ मानव शुभ की मात्रा से अधिक अशुभ देखता है। और अशुम देखते हुए वह संसार के जालों में रहकर कभी तृप्ति नहीं पाता है। तो भक्तगण, संतजन कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति सब सुख देने वाली है। सब शुभ के लिए एक ही माता यही है, इस माता को अपना लो–इस माता की गोद में हो जाओ। इसी हेतु से हमारे गुरु महाराज ने ईश्वर की भक्ति का प्रचार, जब तक उनका शरीर रहा, तब तक उन्होंने किया और हमलोगों को भी उन्होंने यही प्रचार करने का उपदेश दिया ।

❀ आपलोगों से मैं कहता हूँ कि ईश्वर की भक्ति अच्छी तरह से समझिये। जिन माता के गर्भ से आपने जन्म लिया है, वह माता आपके वास्ते बहुत ही सुखदायिनी और शुभ में रखने वाली अवश्य हैं; परन्तु भक्ति-रूपा माता आपको जिस सुख में रखेंगी, वह सुख निराला है।

❀ भौतिक-जगत् का सुख जन्मदात्री माता अवश्य देती हैं; परन्तु भौतिक जगत् में केवल सुख-ही-सुख मिले–इसका विश्वास न है, न कभी हुआ और न कभी होगा; होना भी नहीं चाहिये। क्योंकि भौतिक-पदार्थों में ऐसा गुण नहीं कि किसी को सुख-स्वरूप कर दे। परन्तु ईश्वर की भक्ति में यह गुण है। तो ईश्वर की भक्ति अवश्य करनी चाहिये।

गो० तुलसीदास जी ने कहा है–

"तीन अवस्था तजहु भजहु भगवंत।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनंत।।"

तीन अवस्थाओं को छोड़कर चौथी अवस्था में जाकर भजन होगा। चौथी अवस्था में जाने का रास्ता अपने अन्दर है, ठीक से समझ लो; लेकिन जो स्वार्थी लोग हैं, वे भरमा कर रखेंगे, उनसे सचेत रहो।

मनुष्य ईश्वर की भक्ति करे, इसी में मनुष्यता है। विषय-सुख में तृप्ति नहीं। इससे अपने को ऊपर उठाया जाये। जाना जाये कि इससे विशेष कोई सुख है कि नहीं ? जानने में आ सकता है कि इससे विशेष सुख आत्मसुख–ईश्वर-प्राप्ति का सुख है। इसी में शांति है। इसी के वास्ते ईश्वर की भक्ति है।

विषयों से अपने को हटाकर ईश्वर में संलग्न रहना भक्ति है। विषयों से हटाने का तात्पर्य रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श से अपने को अलग कर रहने से है। तब संलग्न रहे। तब किधर संलग्न रहेगा ? निर्विषय की ओर। जो कोई अपने को विषयों से हटावेगा, वही ईश्वर की ओर रहेगा।

भक्ति केवल इतना ही नहीं है कि किसी एक स्थूल-व्यक्त-रूप में प्रेम करो। वहाँ से आरम्भ करो, यह अयोग्य नहीं है । जैसे किसी पथिक को कहीं जाना है तो वह वहीं से चलता है, जहाँ वह रहता है। लेकिन पहला ही कदम निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँचाता है। चलते-चलते वहाँ पहुँचता है। उसी तरह भक्ति का आरम्भ यहाँ से करो ।

कितने का ख्याल है–"ईश्वर आवेंगे और और दर्शन देंगे। जिस रूप का ध्यान करते हैं, वह दर्शन देकर मन-वांछित फल देंगे। और यही भक्ति की पराकाष्ठा है।" दूसरे कहते हैं कि तुम्हीं चलो। तुम इन्द्रिय-गोचर नहीं हो–अव्यक्त हो। शरीर जड़ है और तुम चेतन-आत्मा हो। यह चेतन-आत्मा जहाँ से चले, वहीं से ईश्वर-भक्ति का आरम्भ होता है। जिन आवरणों में वह चेतन-आत्मा रहती है, उनसे अपने को उठा लो। शंकराचार्य जी की भाषा में आत्मानुसंधान होना चाहिये। निज-स्वरूप को प्राप्त करने, जान लेने, पहचान लेने की अवस्था जिसको आ गई, वही सारे आवरणों से हटाकर

अपने को रखेगा। उसके लिए ईश्वर कहाँ छिपे रहेंगे ? यही ईश्वर-दर्शन है और भक्ति की पराकाष्ठा है।

ईश्वर भक्त बनने के लिए ईश्वर में अडिग-विश्वास होना चाहिये। जिसको ईश्वर में अडिग-विश्वास है, उसको कुछ भी हो जाये, ईश्वर-भक्ति करने में नहीं डिगेगा। जो ईश्वर-भक्ति करने में नहीं डिगेगा, वही ईश्वर-भक्त होगा। ईश्वर-भक्ति करने के लिए पहले ईश्वर को प्रणाम करो। ईश्वर को किधर प्रणाम करो ? किसी भी ओर हाथ जोड़कर प्रणाम करो, ईश्वर को प्रणाम होगा। पूर्व, पश्चिम, उत्तर ,दक्षिण, जितनी भी दिशाएँ हैं, सबमें एक ही तरह ईश्वर विराजमान है। इसको जानना चाहिये । जो कोई ऐसा विश्वास रखता है, वह ईश्वर को मानता है।

ईश्वर को क्या चाहिये ? धूप, दीप, नैवेद्य, आरती ? इन सब चीजों की जरूरत ईश्वर को नहीं, लोग इनके द्वारा केवल अपना भाव दिखाते हैं। सूर्य को दीप दिखाते हैं। सूर्य तो स्वयं बहुत प्रकाशमान है, उसको दीपक क्या दिखाना ? लेकिन अपना भाव दिखाते हैं। गंगाजी को, यमुनाजी को उसी का जल चढ़ाते हैं, गंगाजी को यमुना जी को उसकी क्या जरूरत ? ईश्वर की भक्ति करो, इसके लिए ईश्वर को क्या जरूरत ? जैसे आजकल जाड़ा का समय है, जैसे सूर्य उदय हुआ वैसे ही जाड़ा भागा। इसी तरह जैसे परमात्म-दर्शन हुआ वैसे दुःख भागा। लेकिन ईश्वर का भजन पापवृत्ति से नहीं होगा। विषयी होने से नहीं होगा। पापवृत्ति छोड़ो, विषय का त्याग करो। ईश्वर-भजन ईश्वर से प्रेम करने से होगा, ध्यानयोग से होगा।

आप अपने शरीर में हैं। वही अक्षर-पुरुष है। उस अक्षर-पुरुष को उस प्रभु का दर्शन होना चाहिये। दर्शन करने की कोशिश को भक्ति कहते हैं। भक्ति को ही सेवा कहते हैं। इस सेवा से ईश्वर को कोई लाभ नहीं। लेकिन अक्षर-पुरुष को बड़ा लाभ है। दर्शन होते ही—जैसे अभी आपको मालूम होता है कि शरीर और संसार कष्टमय है, सो कष्टमय नहीं मालूम होगा। तब आप शरीर और संसार में रहो वा नहीं रहो, दोनों में ब्रह्म-सुख का एक ही ज्ञान रहेगा। इसी के लिए भक्ति अपेक्षित है।

ईश्वर-भक्ति में ऊँच-नीच, जाति-पाँति का विचार नहीं है। यदि आप भक्त होंगे, ईश्वर की भक्ति करेंगे, तो आप बड़े हो जायेंगे, लोग

आपका आदर करेंगे। रविदास जी चमार थे; किन्तु उन्हें लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं, पूजते हैं। आज आप राजा हैं। आपकी सन्तान राजकुमार है; किन्तु फिर भी दुःख-सुख भोगते हैं, इसीलिए कि सन्तों के कहे अनुकूल चलते नहीं। यदि सन्तों के कहे अनुकूल चलें तो शिष्ट हो जायेंगे, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा। पुलिस जो पहरा देती है उसको भी उस काम से फुर्सत मिलेगी। आप सब लोग ईश्वर की भक्ति करें और सदाचार का पालन करें, तो संसार और परलोक–दोनों जगह सुखपूर्वक रहेंगे।

❀ इसको दृढ़ता से जान लो कि ईश्वर की प्राप्ति देहयुक्त रहने से नहीं होती है। आवश्यकता यह है कि एक शरीर को छोड़ा, फिर दूसरे को, तीसरे को एवं प्रकार से सभी जड-शरीरों को छोड़ा, तो ईश्वर की भक्ति पूरी होगी। जैसे आप जगन्नाथ जाना चाहें, तो रास्तों को, गाँवों को, नगरों को छोड़े बिना वहाँ नहीं पहुँच सकते। इसी तरह सभी शरीरों को छोड़े बिना परमात्मा की पहचान नहीं हो सकती।

❀ साधन-भजन की बात मन में बराबर लाना चाहिये। जो कहे कि हमको बाल-बच्चों की सेवा तथा अपने काम-धन्धों से फुर्सत नहीं है, हम भजन-ध्यान क्या करेंगे, तो मैं कहता हूँ कि आपको मरने की फुर्सत है ? यदि आपको मरने की फुर्सत नहीं है, तो क्या मौत इसको मान सकती है। समय पर आपको मरना ही पड़ेगा। इसलिए सब कामों को करते हुए कुछ समय बचा-बचाकर ध्यानयोगाभ्यास भी किया कीजिए।

❀ जिसको आत्म-दृष्टि होती है, उसका द्वैत दूर हो जाता है। सम्पूर्ण संसार में आत्मज्ञानी के लिए **"आत्मवत् सर्वभूतेषु"** हो जाता है। इसका साधन करना चाहिये। भक्ति करो, भजन करो। भक्ति-भजन का एक ही अर्थ है–सेवा।

❀ ईश्वर की सेवा क्या है ? एक छोटी-सी कहानी कहता हूँ । एक मुनि बालक था। वह जंगल में विचरण करता था। एक राजा उस मुनि बालक को देखा। वह बालक देखने में बहुत सुन्दर था। मालूम पड़ता था जैसे वह सनक, सनन्दन, सनत् कुमार, सनातन में से कोई एक हो। बालक को देखकर राजा बड़ा प्रभावित हुआ। राजा ने कहा–"आप मेरे साथ चलें।" बालक ने कहा–"राजन्! मेरा शर्त मंजूर करो तो मैं तुम्हारे साथ

जाऊँगा।'' राजा ने कहा—''वह शर्त क्या है ?'' बालक ने कहा—मुझे खिलाओ तुम मत खाओ। मुझे पहनाओ तुम मत पहनो। मैं सोऊँ तुम जगकर पहरा करो। राजा ने कहा—''सो नहीं होगा। जो मैं खाऊँगा सो तुझे खिलाऊँगा, जो मैं पहरूँगा सो तुझे पहराऊँगा। मेरा जो पहरा करेगा वही तुम्हारा भी पहरा करेगा।'' बालक ने कहा—''मेरा राजा ऐसा नहीं है। वह स्वयं नहीं खाता मुझे खिलाता है, वह स्वयं कुछ नहीं पहनता मुझे पहनाता है, मैं सोता हूँ वह जगकर हमारा पहरा करता है। अपने ऐसे राजा को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊँ।'' वह है ईश्वर।

सेवा उसकी होती है, जिसको कोई जरूरत होती है। जिसको कोई जरूरत नहीं, उसकी क्या सेवा होगी। लोग गंगा-सेवन करने जाते हें। कितने श्रद्धालु दंड-प्रणाम करते जाते हैं। कितने देवस्थान में जाते हैं। उस देव के दर्शन वा पवित्र-पवित्र नदी में स्नान के लिए जाना उसकी सेवा है। गंगा-किनारे रहकर गंगा-स्नान करते हैं, उसका जल-पान करते हैं। यह गंगा-सेवन है। इससे गंगाजी को कुछ मिला नहीं, कुछ लाभ हुआ नहीं और गंगा जी कुछ चाहती भी नहीं है। इसी तरह जो उधर जाता है, जिधर जाते ही ब्रह्मसुख का आभास मिलता है, ब्रह्म-ज्योति की तेज का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, यह है ईश्वर की सेवा। उधर जाते-जाते इतनी पवित्रता आती है, जितनी कि अभी आई नहीं। जिधर जाने से ब्रह्मदर्शन होता है, उधर जाने वाले को लाभ है। ब्रह्म को या ईश्वर को कोई लाभ नहीं। ब्रह्म या ईश्वर-दर्शन किस ओर होता है ? जिधर जाने से शरीर, इन्द्रिय का संग छूट जाता है।

❀ केवल वर्त्तमान-शरीर के लिए प्रबन्ध करो, सो नहीं। इसके आगे के जीवन का कोई प्रबन्ध नहीं किया तो कहाँ चले जाओगे, तुमको मालूम नहीं है। दुःख में जाना कोई पसन्द नहीं करते। यदि पहले इसका ख्याल नहीं किया कि शरीर छूटने के बाद भी जीवन रहता है, जिसे सुखी बनाना है। एक शरीर छूटने के बाद का बहुत लम्बा जीवन है जीवात्मा का। यह ज्ञान साधु-सन्तों के सत्संग में सिखलाया जाता है। यदि आगे के जीवन का प्रबन्ध नहीं करते हो, तो अपनी बहुत हानि करते हो। आगे का जो लम्बा जीवन है, उसके शुभ के लिए प्रबन्ध यह है कि ईश्वर का भजन करो। ईश्वर

के भजन से तुमको शरीर छूटने के बाद भी सुख होगा। विद्या बहुत पढ़ोगे, लेकिन ईश्वर का भजन नहीं करोगे तो उतना लाभ नहीं होगा।

❁ संसार में अपने आचरण को सम्भाल कर चलो। ईश्वर के भजन में पाप-भाव मन में रखने से भजन नहीं बनता। दुनिया में कमा-खाकर रहने में लोग पाप-पुण्य पर नहीं सोचते। इसका विचार नहीं करनेवाले को आगे दुःख भोगना पड़ता है। ईश्वर के भजन में ऐसी बात नहीं। उसमें पाप से छूटना पड़ता है। इसलिए ईश्वर का भजन करो। भजन में आजकल मत करो। संत कबीर साहब ने बड़ा अच्छा कहा है–

"आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल।।"

❁ ईश्वर के भजन के लिए पहले भजन को समझो। संसार में रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श, ये पाँच पदार्थ हैं। इन पाँचो में से कोई ईश्वर नहीं। इन पाँचो को पहचानते रहोगे तो ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। चाहे अद्भुत वा दिव्य-शरीर हो या साधारण-शरीर हो, सबमें ये पाँचो पदार्थ रहते हैं। इन पाँचो का समूह जहाँ हो, वहाँ समझो ईश्वर नहीं है। ईश्वर तो सबमें हैं, लेकिन किसी की तरह वे नहीं होते। पंच विषयों को पहचानने के लिए पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों से जो तुम जानते हो, वे ईश्वर नहीं है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अलावा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार–ये जो चार अन्तःकरण हैं, इन सबों से युक्त जो कुछ तुम देखते हो, वह ईश्वर नहीं हैं, इन सबों के अतिरिक्त तुम अपने स्वंय हो। शरीर में तुम रहते हो। शरीर में रहते हुए तुम इससे विलक्षण हो। शरीर के साथ वाले ज्ञान को छोड़कर अपने आप में जो ज्ञान हो उसी ज्ञान में तुम ईश्वर को पहचानोगे। इन बातों को ठीक से याद रखो। तुम्हारा निजी-ज्ञान क्या है ? शरीर-इन्द्रियों से छूटकर निजी-ज्ञान में जो पहचानोगे, वही ईश्वर है। ऐसा भजन करो।

यदि ख्याल करो कि यह भक्ति कलियुग में नहीं होगी, तो यह समझना भूल है। आज तक पाँच हजार वर्ष कलिकाल को हुए। इसके अन्दर कितने सन्त-महात्मा हो गये। कुछ लोग कहते हैं कि काल-धर्म भक्ति नहीं होने देता है ? गो0 तुलसीदास जी ने कहा है–

"काल-धर्म व्यापै नहिं तेही।

रघुपति चरण प्रीति अति जेही।।''

जो कलियुग परीक्षित के डर से गिड़गिड़ाया था, वह ईश्वर के सामने क्या कर सकता है ? इसलिए ईश्वर-भजन करो। अपने को पवित्र रखो।

❁ एक परा-भक्ति है, तो दूसरी अपरा-भक्ति होनी चाहिये। भक्ति यानी एक निम्न-श्रेणी की भक्ति है और दूसरी उच्च-श्रेणी की भक्ति है। सुमिरण, स्थूल-ध्यान या भजन, निम्न-श्रेणी का भजन है। इसमें जो परिपक्व हो जाते हैं, तो बिना कान के अन्तर्नाद सुनते हैं। आँख बन्द है, लेकिन अन्दर में देखते हैं। अन्तर में बिना जिभ्या की ही ध्वनि होती है। यह पराभक्ति है। इसके पहले अपरा में यानी निम्न-श्रेणी के सुमिरण, ध्यान, भजन में परिपक्व होना चाहिये।

❁ यह नमूना अच्छा है कि लोग धामों के दर्शन के लिए जाते हैं, तो यह जाना भी भक्ति हैं। लोग दण्डवत्-प्रणाम करते धामों को जाते हैं। कष्टों को उठाकर जाते हैं। मैंने सिकलीगढ़ धरहरा में सड़क पर जाते हुए लोगों को देखा है कि वे साष्टांग-दण्डवत् करते हुए सिंहेश्वर स्थान जाते हैं। कितने वैद्यनाथ जी जाते हैं। यह जाना उन धामों के देवों की भक्ति में दाखिल है। गंगा के किनारे जाते हैं, गंगा की ओर एक-एक डेग चलते हैं, यह चलना भी गंगा की भक्ति में दाखिल है। इसी तरह जो ईश्वर की ओर चलता है; ईश्वर की भक्ति है।

❁ **''श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।**
रसना बिनु उच्चरै प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनन्द बढावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सों आतमा, पराभक्ति सुन्दर कहै।।''

–सुन्दर दास जी

यह पराभक्ति है, स्थूल-भक्ति नहीं है। हाथ से पकड़ो, पैर से दौड़ो सो भक्ति नहीं है। यह तो वह भक्ति है, जिसमें बाहर से बिल्कुल चुप्प और अन्दर में यात्रा। सन्तलोग सरल-उपाय बता गये हैं, लेकिन लोग तो बाहर-बाहर ही दौड़ते हैं।

❁ सीताजी का हरण हुआ था। श्रीराम उसे खोजते-खोजते शबरी के आश्रम गये। वहाँ श्रीराम ने उनको नौ प्रकार की भक्ति बतायी। नवों को पूर्ण करो, तब भक्ति पूर्ण होगी।

नवधा भक्ति में पहली भक्ति—सन्तों का संग, दूसरी भक्ति—कथा-प्रसंग में प्रेम, तीसरी भक्ति—मानहीन होकर गुरु की सेवा, चौथी भक्ति—कपट छोड़कर ईश्वर का गुणगान, पाँचवीं भक्ति—मन्त्र जप, छठी भक्ति—दम-शीलता, सातवीं भक्ति—शम का साधन, आठवीं भक्ति—यथा लाभ सन्तोष और नवीं भक्ति में सरल एवं छल-हीन होने का वर्णन है। पाँच भक्ति तक लोग समझते हैं। लेकिन छठी और सातवीं भक्ति क्या है, समझते नहीं हैं।

❁ छठि भक्ति है—

"छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धरमा।।"

—श्री रामचिरतमानस

दमशील कहते हैं—इन्द्रिय-निग्रह के स्वभाव वाले को। जानना चाहिये कि इन्द्रियाँ चलायमान कैसे होती हैं ? जाग्रत् में विषयों की ओर इन्द्रियाँ चलती हैं, स्वप्न में वाह्य प्रत्यक्ष विषयों की ओर नहीं चलती। मन की धारा इन्द्रियों तक रहने से इन्द्रियाँ विषयों की ओर होती हैं। स्वप्न में वाह्य इन्द्रियों से मन की धारा सिमटती है। तब इन्द्रियाँ वाह्य विषयों में नहीं जातीं। इन्द्रियों में मन की धारा जाती है। इसका केन्द्र कहाँ है ? आज्ञाचक्र में है। आज्ञाचक्र के नीचे पाँच चक्र और हैं। आज्ञाचक्र छठा चक्र है। इसके मध्य में शिवनेत्र है, शिवनेत्र में मन का बासा है। ब्रह्मोपनिषद् में लिखा है—

"नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्।।"

अर्थात् जीव का वासा जाग्रत् में नेत्र में, स्वप्न में कंठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है।

यदि आँख में वासा नहीं रहे तो हम कुछ नहीं देख सकते। आँख से देखते भी हैं और इन्द्रियों से काम भी करते हैं। तन्द्रावस्था में शक्ति भीतर में सिमटती है और धीरे-धीरे स्वप्न में चली जाती है। बाहर की इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। स्वप्न में कभी-कभी मुँह से भी बोल देते हैं, किन्तु

उसका ज्ञान आपको नहीं होता। स्वर आप बोल सकते हैं, किन्तु व्यंजन बिना स्वर के नहीं बोले जा सकते। कंठ स्वर का स्थान है। इसीलिए स्वप्न में कण्ठ में रहते हैं। उसके बाद सुषुप्ति में हृदय में चले जाते हैं, वहाँ स्वर नहीं है, व्यंजन है। इसलिए वहाँ कुछ बोल नहीं सकते । यहाँ द्वादश-दल-कमल का होना बतलाया जाता है। कण्ठ में षोड़श-दल कमल है। एक-एक अक्षर के स्थान को कमल का एक-एक दल कहते हैं। जाग्रत् में आँख में, स्वप्न में कण्ठ में और सुषुप्ति में हृदय में वासा होता है। तुरीय में मूर्द्धा में वासा रहता है।

इन्द्रियों को काबू में लाने के लिए आप को क्या करना चाहिये ? आँख से नीचे रोज उतरते हैं, किन्तु इन्द्रियाँ काबू नहीं होतीं। इसलिए इसके उल्टे अर्थात् आँख के ऊपर जाइये। ख्याल से आँख के ऊपर जाना नहीं होगा। इसके लिए युक्ति है। युक्ति से अपने को आज्ञाचक्र में स्थिर रखिये। जब आप गुरु के द्वारा बतायी गयी युक्ति से बिन्दु-विशेष पर दृष्टिधारों को समेट लेंगे, तब मन का पूरा सिमटाव हो जायेगा। जब मन का पूरा सिमटाव हो जायेगा तो अनिवार्य-रूप से उसकी ऊर्ध्वगति होगी। ऊपर होने से आप मूर्द्धा में होंगे। तब आपको बाह्य इन्द्रियों के ज्ञान से छुट्टी मिलेगी। जैसे स्थूल शरीर में रहते हुए आप बाहर संसार के स्थूल जगत् पर विचरते हैं, उसी तरह पिंडस्थ-सूक्ष्म शरीर में रहकर आप सूक्ष्म-जगत् में विचरियेगा। यह है ब्रह्माण्ड में प्रवेश करना। इसका विशेष अभ्यास करने पर इन्द्रियों पर काबू होगा। आप तो अन्तर में रहेंगे, बाहर की इन्द्रियाँ निश्चेष्ट रहेंगी। इसी को कहा है कि अपने अन्दर में स्थिर होने पर गति होती है।

"बैठे ने रस्ता काटा, चलते ने बाट न पायी।"

यही छठी भक्ति है। यह दम का साधन है।

❀ सातवीं भक्ति के लिए आन्तरिक नाद का अभ्यास करो। वह ब्रह्मध्वनि है। वहाँ केवल मन ही लगता और जाता है। बाहरी इन्द्रियाँ न लगती हैं और न जाती हैं। नाद-साधन में बड़ी शान्ति आती है और चंचलता दूर होती है।

"नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।

नानुसंधेः परा पूजा नहि तृप्तेः परं सुखम्।।''

अर्थात् नाद से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है, अपनी आत्मा से बढ़कर कोई देवता नहीं है, (नाद वा ब्रह्म की) अनुसन्धि (अन्वेषण वा खोज) से बढ़कर कोई पूजा नहीं है तथा तृप्ति से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

''न नाद सदृशो लयः।'' (शिव संहिता)

नादविन्दूपनिषद् में है–

''मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।
नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।''

अर्थात् नाद मदान्ध हाथी-रूप चित्त को, जो विषयों की आनन्द-वाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है। मृगरूपी चित्त को बाँधने के लिए यह (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र-तरंग रूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है।

नाद की बड़ी तारीफ है। सन्तों ने नाद-साधन पर बड़ा जोर दिया है; किन्तु नाद-साधन तब किया जाता है, जब भीतर में प्रवेश करने का अभ्यास कुछ-न-कुछ हो। नादसाधन को शब्द-साधन भी कहते हैं। इसमें केवल वृत्ति लगाकर रहते हैं, यही शम का साधन है। कितने कहते हैं कि नवधाभक्ति में 'शम' नहीं है, 'सम' है। 'सम' का अर्थ समता होता है। बिना 'शम' के साधन के किये 'समता' नहीं हो सकती। समत्व को योग कहते हैं। समत्व समाधि में प्राप्त होता है, गीता में कहा है। जहाँ मनोनिग्रह नहीं है, वहाँ समत्व कैसे हो सकता है। नादानुसंधान से मन का पूरा सिमटाव होगा। इतना सिमटाव होगा कि मन, मन ही नहीं रहेगा, केवल निर्मल सुरत रहेगी। वही उस नाद को सुनेगी। उस शब्द को पकड़ने से या उससे पकड़ा जाने पर वह उस ओर खिंच जायेगी। जैसे लोहा, जो चुम्बक से पकड़ा जाता है, चुम्बक के केन्द्र में खिंच जाता है। चुम्बक से लोहे को छुड़ाया भी जा सकता है, किन्तु उस नाद से चेतन-आत्मा के पकड़े जाने पर उसको कोई छुड़ा नहीं सकता। वज्राघात होने पर भी नहीं छूट सकता। इसीलिए कहा है–

''सोवत-जागत ऊठत-बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।

झिन-झिन जन्तर निस दिनबाजै, जम जालिम पचिहारा ।।''

यही भक्ति है।

शरीर और इन्द्रियों से अपने को छुड़ाने में कोई आपदा नहीं है। इसके लिए सन्तों की सुगम रीति जानकर ईश्वर की भक्ति का अभ्यास करना चाहिए।

कर्ण कैसा वीर था कि कवच लिए जन्म लिया था। शरीर बढ़ता था तो कवच भी बढ़ता था। वह सदा कवच के साथ रहता था। अर्जुन से उसका युद्ध होगा, अर्जुन उसका संहार करेगा, किन्तु कवच सहित उसका संहार नहीं कर सकता है। इन्द्र का पुत्र अर्जुन था। इसीलिए उसको हुआ कि किसी तरह कर्ण का कवच लेना चाहिये। सूर्य का पुत्र कर्ण था। सूर्य ने कर्ण से कहा था कि ''इन्द्र तुमसे कवच-कुण्डल माँगने आवेगा तुम नहीं देना। नहीं तो तुम मारे जाओगे।'' कर्ण ने कहा—''माँगने आवेगा तो कैसे नहीं दूँगा ?'' इन्द्र एक भिक्षुक के रूप में आये। वे कहते हैं— हम तुमको जाँचने आये हैं, तुम अपना कवच उतार कर मुझे दे दो। देह से सटा हुआ उसका कवच था। जन्म से ही था। देह से सटे को तलवार से काटकर वह दे देता है। आज भी इस दान के लिए उसकी प्रसिद्धि है। इस कर्म में उसका रक्त भी बहा होगा और उसको कष्ट भी हुआ होगा, किन्तु अपने को शरीर से, इन्द्रिय से और मन से फुटा लेने में रक्त भी नहीं बहेगा और न कोई कष्ट होगा। तुम अंश हो, अपने अंशी में अपने को मिलाओ तो इसमें क्या कष्ट है ?

भक्ति हम क्या करें, इसको पहले जानना चाहिये। ऐसा कोई नहीं है, जिसको कोई दुख न हो। सबको कोई-न-कोई दुख है। संसार में वेद से बढ़कर कोई पुराना ग्रंथ नहीं है। पारसी लोगों की किताब भी बहुत पुरानी है। परन्तु हमलोगों के यहाँ ऐसा ख्याल है कि वेद से प्राचीन और कोई ग्रंथ नहीं है। उसमें बताया गया है कि ईश्वर की भक्ति करो, तो सब दुखों से छूट जाओगे। ऐसा क्यों कहा जाता है ? संतलोग समझाते हैं कि जहाँ तक लोक-लोकान्तर है, किसी प्रकार का शरीर है, चाहे कितना ही दिव्य शरीर हो, वहाँ शापा-शापी और कोई-न-कोई आपदा आती ही है। चाहे विष्णु-लोक, शिव-लोक या किसी लोक का शरीर हो, भक्ति पूरी नहीं होती।

भक्ति पूरी वहाँ होती है, जहाँ कोई शरीर नहीं, कैवल्य-दशा प्राप्त हो, देश-काल जहाँ नहीं हो। गो० तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में लिखा है–

"सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देसकाल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।"

भक्ति में इसकी युक्ति है कि सब शरीरों को छोड़कर मोक्ष-दशा प्राप्त कर लेना। चाहे द्वैती रहो, चाहे अद्वैती रहो। दोनों का एक भाव हो जायेगा। द्वैत-अद्वैत का कोई झगड़ा नहीं रहेगा। वहाँ जैसे रहना होता है, वैसे रहता है। यहाँ माया का चक्र है। इस चक्र पर बुद्धि घुमती रहती है और नाना तर्क करती है। किन्तु वहाँ सब निर्मूल हो जाते हैं, चाहे किसी वाद के मानने वाले हों। वहाँ नास्तिक, आस्तिक सबके लिए एक ही है।

❁ ईश्वर को न कुछ खाने की, न कुछ पहनने की, न कोई ऐसी चीज की आवश्यकता है। तब उसकी सेवा कैसे कीजियेगा ? तब कहेंगे कि भगवान ने कहा है कि भक्तों के जल-पत्र-फूल को मैं ग्रहण करता हूँ ; तो क्या इसको नहीं मानते ? मैं मानता हूँ, किन्तु वह चीज उन्हीं की है और उन्हीं को देते हैं, जिसकी उनको आवश्यकता भी नहीं है। हम गौ-पालन करते हैं, घी, दूध, मालपुआ भगवान् को चढ़ाते हैं और कहते हैं कि हम चढ़ाते हैं। सब किया हुआ भगवान् का है। उपर्युक्त वाह्य पूजा का सार यह है कि उसके द्वारा भक्त अपना भाव भगवान् को अर्पण करता है। इसके अतिरिक्त और प्रकार की भक्ति है; भक्त को भगवन्त के दर्शन की जरूरत है, कुछ लेना-देना नहीं है।

❁ ईश्वर की भक्ति का प्रचार इस सत्संग से होता है। भक्ति में ईश्वर का दर्शन सबसे ऊपर का काम है। ईश्वर-दर्शन हो गया और भक्त बिल्कुल संतुष्ट हो गया। भक्त दर्शन मात्र से संतुष्ट हो जाता है।

❁ भजन करने वाला अपने आप में शांत रहेगा। देवता से भी बढ़कर लोग उन्हें पूजेंगे। लोगों को अपने पुजाने की बड़ी ईच्छा रहती है। लेकिन अपने से अपने को पूजो अर्थात् पाप से स्वयं को बचाकर रहो। पाप से निवृत्त होकर रहो तो राज्यपाल भी, राजा भी पूजने लग जाते हैं। संसार और परमार्थ दोनों में लाभ-ही-लाभ होता है इस भक्ति से।

❁ मैं पहले सोचा करता था कि क्या मुझसे परामात्म-भक्ति सध

सकेगी ? तो कभी पैर ढीला होता था और कभी बल मिलता था। मेरे कई गुरु हुए। मैं जिज्ञासु होकर कइयों के यहाँ गया। सबसे ईश्वर-भक्ति की प्रेरणा मिली। कहीं बाहर की भक्ति और कहीं भीतर की भक्ति करने का उपदेश मिला। अन्त में यह ज्ञान पाया कि बहिर्मुख और अन्तर्मुख दोनों प्रकार की भक्तियों का करना आवश्यक है।

❁ अव्यक्त की भक्ति व्यक्त व्यक्ति करे, कैसे संभव है ? मैं महाभारत की एक छोटी-सी कथा कहता हूँ। राजा मरूत ने जो यज्ञ किया था, उसका दिया हुआ दान जो लोग नहीं ले जा सके थे, वह पहाड़ में गड़ा हुआ था। व्यासदेव के वाक्य को मानकर युधिष्ठिर वहाँ गये और खोदकर निकाल लिये और यज्ञ किये। यहाँ श्रद्धा काम आती है। जिस रास्ते से व्यासदेव ने कोशिश करने कहा, युधिष्ठिर ने कोशिश की। व्यासदेव को साथ लिया और धन प्राप्त किया। इसी तरह तुम भी विश्वास करो, वह जो अव्यक्त का पता बतावे, उसको मानो। और जो कोशिश बतावे वह कोशिश करो। वह धन युधिष्ठिर के लिए पहले अव्यक्त था पीछे व्यक्त हुआ। उसी तरह अव्यक्त की भक्ति जो कठिन मालूम होती है, तो वह भी इन्द्रिय-ज्ञान से ऊपर उठे हुए को व्यक्त हो जायेगी। आप अव्यक्त हो, अव्यक्त की ओर चलो। जैसे युधिष्ठिर ने अव्यक्त धन निकाल लिया, उसी तरह तुम भी अव्यक्त परमात्मा को प्राप्त करो।

❁ हमारे गुरु महाराज कहा करते थे कि, "ईश्वर ने ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों किया" यदि पूछना है तो यह सब ईश्वर से ही पूछो। ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता मैं बतला सकता हूँ। तुम अपने अव्यक्त हो। जैसे जन्मान्ध के शरीर का रूप भी अव्यक्त है, यदि उसको आँख हो जाये तो वह देखने लगे। उसी तरह आत्म-दृष्टि से देखो तो मालूम होगा कि जो पहले अव्यक्त था वह व्यक्त हो गया।

❁ भक्ति कहते हैं सेवा करने को। किसी की आवश्यकता पूरी करनी, उनकी यह सेवा है। गंगा-सेवन करने लोग जाते हैं। वहाँ गंगा की सेवा क्या करो ? गंगा में बकरी का बच्चा फेकते हैं, लोग उसको लुटते हैं, यह भक्ति नहीं है। गंगा-जल का स्पर्श करते हैं, पानी पीते हैं, उसकी हवा में रहते हैं, यह गंगा सेवन है। गंगा जी को कोई इच्छा नहीं है, आप क्या सेवा

कीजियेगा ?

जबसे ईश्वर का ज्ञान सुनकर वह ज्ञान प्राप्त करने लगे, तब से ईश्वर की भक्ति आरम्भ हो गई।

ईश्वर की खोज में अन्दर-अन्दर चलना ईश्वर की भक्ति है। भक्ति वहाँ समाप्त होती है, जहाँ ईश्वर का प्रत्यक्ष-दर्शन हो जाता है।

❀ स्थूल-यंत्र से सूक्ष्म-तत्त्व का ग्रहण हो सकना पूर्ण असंभव है। आप विद्वानों के सामने क्या कहना ? छोटी घड़ी में जितने कल-पूर्जे होते हैं, बड़ी घड़ी में भी उतने ही। और छोटी घड़ी के कल-पूर्जों को खोलने वा लगाने के लिए जिन-जिन यंत्रों की आवश्यकता होती है, बड़ी घड़ी के कल-पूर्जों को खोलने वा लगाने के लिए उन्हीं-उन्हीं यंत्रों की आवश्यकता होती है। किन्तु बड़ी घड़ी के यंत्रों से छोटी घड़ी में काम नहीं कर सकते। उसके लिए उस तरह के महीन यंत्रों की आवश्यकता होती है। इससे प्रत्यक्ष विदित है कि मोटे यंत्र से मोटी-मोटी चीजों को ग्रहण करो और बारीक चीज के लिए बारीक यंत्र चाहिये। हमारी इन्द्रियाँ मोटी-मोटी हैं, परमात्मा परम सूक्ष्म हैं। इसलिए इन मोटी इन्द्रियों से सूक्ष्म परमात्म-स्वरूप को नहीं ग्रहण कर सकते। इसलिए गो० तुलसीदास जी ने कहा है कि–

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई।।"
"राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।"

–रामचरितमानस

सन्तों की वाणी से जो परमात्म-स्वरूप निर्णय है, उसको इन्द्रियों से ग्रहण नहीं कर सकने के कारण उसे अगोचर, अव्यक्त कहते हैं। भक्त इस पद तक पहुँचे, तब भक्ति पूरी होगी। इसी को पाकर कल्याण पाता है, और से नहीं।

"देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया बिवस विचारे।

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपुनपौ हारे।।"

–गो० तुलसीदास जी

देवताओं के लिए रामचरितमानस में कैसा लिखा है, पढ़ लें–

"आये देव सदा स्वारथी। वचन कहहिं जनु परमारथी।"

कबीर साहब को संस्कृत नहीं आती थी, वे कहते थे–**"देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की"** तथा **"गुड़वा गुड़िया सूप सुपलिया तज दे बुधि लड़कैयाँ खेलन की।"**

❀ **"राम भगति निरुपम निरुपाधी।**
बसइ जासु उर सदा अबाधी।।
तेही बिलोकि माया सकुचाई।
करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।"

–श्री रामचरित मानस

अनुपम, उपद्रव-रहित, अखण्ड राम-भक्ति जिसके हृदय में सदा बसती है, उसको देखकर माया सकुचाती है। उस पर अपनी प्रभुता कुछ नहीं कर सकती है।

माया उस भक्त से डरती है, जिसकी भक्ति का वर्णन इस चौ० में है और उस पर कुछ भी प्रभुता नहीं रखती है; परन्तु वह दूसरे प्रकार की भक्ति वाले भक्तों से नहीं डरती है और उस पर अपनी प्रभुता करती है। अब जानना चाहिये कि इस चौ० में वर्णित निरुपम, निरुपाधि-भक्ति किस भक्ति को कहेंगे ? भ्रमोत्पादक सगुण रूप की भक्ति निरुपाधि नहीं कही जा सकती; क्योंकि जिस रूप में भ्रम उत्पन्न करने का स्वभाव ही है, वह तो भ्रम उत्पन्न करके भक्ति में विघ्न कर ही देगा। कागभुशुण्डिजी, गरुड़जी तथा अन्य अनेकों को सगुण रूप के कारण भ्रम उत्पन्न हुआ था। भक्ति भ्रमोत्पादक सगुण रूप के सहारे ही आरम्भ होकर स्थूल-सूक्ष्म क्रम से बहुत दूर तक जाती है। दूसरी बात यह है कि विषय-प्राप्ति की कामना लेकर जो भक्ति की जायेगी, उसमें तो विषय-कामना-रूप विघ्न मौजूद ही है; क्योंकि विषय की आशा को दुर्बलता और विषय को भक्ति-रूप औषधि के सेवन में कुपथ्य कहा गया है। फिर ऐसी भक्ति भी निरुपाधि नहीं कही जा सकती। अतएव भ्रमोत्पादक रूप में लगे रहने की अवधि-पर्यन्त की भक्ति और

विषय-कामनायुक्त भक्ति निरुपाधि भक्ति नहीं कहला सकती, उसे अनुपम कहना निरर्थक है। अतएव भक्ति-योग के साधन से विषय की कल्पनाओं को हटाकर राम के निर्भ्रान्त-निर्गुण-स्वरूप में रत होना ही निरुपम निरुपाधि राम-भक्ति है। यह भक्ति जिसके हृदय में सदा निर्विघ्न बसती है, उससे माया डरती है। यदि कहा जाये कि रघुराज राम सगुण-भक्ति-उपासक पर ही कृपालु रहते हैं और इस जगह निर्गुण-स्वरूप वाले प्रसंग को मिलाने की आवश्यकता नहीं है, तो इसके उत्तर में सुनिये–

स्वायम्भुव मनु और शतरूपा यद्यपि भगवान् के निर्गुण-रूप को भी जानते थे, पर वे उनके सगुण-रूप ही के प्रेमी थे। इन दोनों ने अपार तप करके मनोवांछित सगुण-रूप के दर्शन प्राप्त किये थे। वे उनके निर्गुण-रूप में रत न थे और न उस रूप की प्राप्ति उन्हें हुई थी। रूप का धारण तो भगवान् की माया भर है। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा ने यथार्थ में माया ही की चाहना की और उसे ही प्राप्त किया। इसलिए कहना पड़ता है कि माया उनसे डरी नहीं, बल्कि उसने उन्हें मोहित कर लिया। माया से मोहित होने के कारण भगवान् के अनूप रूप को देखकर इच्छाधीन हो सगुण भगवान् की तरह इन दोनों ने पुत्र की इच्छा की। इच्छा के रहते कोई स्वप्न में भी सुख नहीं पा सकता। सगुण भगवान् ने कहा–"मैं अपना-सा कहाँ खोजूँ ? मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। अब तुम मेरी आज्ञा को मानकर सुरपति-राजधानी (स्वर्ग) को जाओ और वहाँ विशाल विषय-भोग करके फिर इस धरती पर अयोध्या के राजा (दशरथ) हो, आगे तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।" रामचरितमानस मानता है कि सेवक-सेव्य भाव के बिना भवसागर तरा नहीं जा सकता। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा ने तथा इन्हीं के समान अन्य कई भक्तों ने सेवक-सेव्य भाव के बदले पिता-पुत्र होने का विलक्षण वरदान प्राप्त किया। भगवान् उनके पुत्र बनकर उनको पूज्य मानकर नम्रतापूर्वक उनके चरणों को छूकर प्रणाम करते होंगे, उनकी यथोचित सेवा करते और आज्ञाओं का पालन करते होंगे। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा कुछ काल तक अपने आश्रम में रह अन्त समय प्राप्त होने पर शरीर छोड़कर भगवान् की आज्ञानुसार स्वर्ग में जा विराजे। रामचरितमानस में इसकी कथा यहीं तक है। अब आगे जैसी आज्ञा भगवान् की है, उसके अनुसार वे कुछ काल स्वर्ग

में रह वहाँ के विशाल विषय-भोगों को भोगे होंगे। वहाँ से फिर इस नर-लोक में अवतरित होकर अवध-भुआल (राजा दशरथ) हुए होंगे, शिकार खेलने के व्यसन में पड़कर निर्दोष श्रवण मुनि को हाथी समझकर मारे होंगे और पुत्र-शोक में मरने के कारण उसके पिता से शाप पाये होंगे। वाल्मीकि रामायण के अनुसार तीन सौ तीन स्त्रियों से विवाह करके रानी कैकेई की तरह की स्त्रियों के अधीन हो, उनसे डरते होंगे (जैसा कि रामचरितमानस में लिखा है—

"कोप भवन सुनि सकुचेउ राउ।
भयबस अगहुँड़ परइ न पाऊ।।
सुरपति बसइ बाँहु बल जाके।
नरपति सकल रहहिँ रुख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।
सभय नरेस प्रिया पहिँगयऊ।
देखि दसा दारुन दुख भयऊ।।"

पुत्र-हीन होने के अवसर में—पुत्राभाव में ग्लानि हुई ही होगी। (रामचरितमानस, प्रथम सोपान, चौपाई—**एक बार भूपति मन माहिं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं।।**) और ऐसे कितने ही माया-चक्रों में फेरे खाते हुए अन्त में दारूण पुत्र-शोक से शरीर छोड़कर फिर स्वर्ग गये होंगे कि जहाँ से एकबार लौट आकर यहाँ नरलोक में अवतार ले कथित यातनाओं को पाये होंगे। इन बातों को विचार करके देखिये, केवल सगुण रूप के भक्त भगवान् के पिता तक से नहीं डरी और उसने उन्हें मोहित करके सब नाच नचाया। प्रथम (स्वायम्भुव मनु वाला) शरीर छोड़कर भगवान् की आज्ञा के अनुसार स्वर्ग में गये होंगे। रामचरितमानस के मतानुसार मनुष्य होकर स्वर्ग का पाना, उसके लिए बड़ी हानि की बात है।

स्वर्ग के राजा को विषय-रूप सूखा हाड़ चबानेवाला कुत्ता, निर्लज्ज और वहाँ के वासी देवगणों को सदा स्वार्थी कहा गया है—

"आये देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु पारमारथी।।"

–श्री रामचरितमानस

रामचरितमानस कहता है कि ऐसे संग से नरक ही भला है।

"बरु भल बास नरक कर ताता।

दुष्ट संग जनि देई विधाता।।"

क्योंकि यहाँ के राजा व्यभिचारी और अन्य निवासी स्वार्थी हैं, अतएव ये दुष्ट हैं। फिर दुष्टों के बीच बसने वालों को शांति कहाँ और फिर शांति के बिना सुख कहाँ ? फिर जो ऐसी जगह रहने को दे, उससे उपकार ही क्या हुआ ? और जो ऐसी जगह को पसन्द करे उसे विचार शून्य क्यों न माना जाये ? कहा है–

"नरतन दुर्लभ देव को, सब कोइ कहत पुकार।।
सब कोइ कहत पुकार, देव देही नहिँ पावै।
ऐसे मूरख लोग, स्वर्ग की आस लगावै।।
पुन्य छीन सोइ देव, स्वर्ग से नरक में आवै।
भरमें चारो खान, पुन्य कहि ताहि रिझावै।।
तुलसी सत मत तत गहै, स्वर्ग पर करे खखार।
नरतन दुर्लभ देव को, सब कोइ कहत पुकार।।"

–हाथरसवाले तुलसी साहब

कश्यप और अदिति भी राजा दशरथ और रानी कौशल्या होकर भगवान् के माता-पिता होते हैं। सो इनकी दशा भी स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की तरह जान लेनी चाहिये। और विशेष बात यह हुई कि पूर्व-जन्म में जो ब्राह्मण थे, कठोर तप का फल भगवान् के सगुण रूप का दर्शन करके भी उनको क्षत्रिय-कुल में जन्म ग्रहण करना पड़ा अर्थात् उच्चपद से नीचपद पर आना पड़ा। पाण्डवगण पत्नी-सहित कृष्ण भगवान् के बड़े भक्त थे। यद्यपि भगवान् ने भी द्रौपदी का वस्त्र बढ़ाकर सभा में उसकी लाज रखी, पाण्डवों को जंगल में दुर्वासा के शाप से बचाया, पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में बड़ी सहायता की, महाभारत में अर्जुन का सारथी बनकर उसे जिता दिया, विराट्-रूप का दर्शन दिया, गीता का अनुपम उपदेश सुनाया, और भी अनेक उपकार पाण्डवों के किये, तथापि पाण्डवों को इस लोक में अनेक

कष्ट हुए। वे माया से मोहित होते ही रहे और कर्मानुसार नरक भोगकर बड़ा पुरस्कार केवल स्वर्ग ही पाया। ऐसी अनेक कथाएँ हैं, कहाँ तक लिखि जाये। शिव, नारद, गरुड़ और कागभुशुण्डि आदि यद्यपि रामचरितमानस के अनुसार सगुण रूप भगवान् के बड़े भक्त हैं, तथापि ये लोग बारम्बार माया से मोहित मति हुए हैं। यदि कहिये कि भक्तों को अविद्या माया नहीं व्यापती है—प्रभु-प्रेरित विद्या माया ही व्यापती है, तो इस पर प्रश्न होगा कि विद्या माया की प्रेरणा भगवान् भक्तों पर क्यों करते हैं ?

उत्तर मिलेगा—

"सुनहु राम कर सहज सुभाऊ।
जन अभिमान न राखहिं काऊ।।
संसृति मूल सूल प्रद नाना।
सकल सोक दायक अभिमाना।।"

—श्री रामचरितमानस

इत्यादि।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब भक्तों को अभिमान होता है, तब भगवान् उस पर माया को प्रेरण करके उसके अभिमान को दूर कर देते हैं। फिर प्रश्न होगा कि अभिमान अविद्या माया से होता है, और जबकि भक्तों को अभिमान होता है, तो उनपर अवश्य अविद्या माया की प्रभुता है, सो ऐसी प्रभुता भक्तों पर क्यों होती है ? अभिमान रूप अविद्या माया भक्तों से डर कर हटी क्यों न रहती है ? दोनों माया—विद्या और अविद्या का वर्णन मिलाकर समझने पर इसका उत्तर अवश्य यही होगा कि (उपर्युक्त चौ० में) जैसी भक्ति का वर्णन है, वैसी भक्ति नहीं प्राप्त करने के कारण ही माया नहीं हटती।

ऊपर के कथन से जाना गया कि केवल सगुण रूप की भक्ति करने के कारण भगवान् के पिता भी माया की प्रबलता में परे बिना न रहे, तो फिर आशा कैसे की जाये कि निर्गुण स्वरूप में रत रहे बिना, केवल सगुण रूप में ही रत प्राणी पर माया की प्रभुता कुछ नहीं होगी ? सारांश यह कि ऐसे भक्त की भक्ति अधूरी है, माया के उपद्रव से रहित नहीं है। और यह बात पहले दिखाई जा चुकी है कि निर्गुण रूप निर्भ्रान्त है। इसमें रत होना ही

राम की निरुपम-निरुपाधि भक्ति है। ऐसी भक्ति से माया डरती है। अतएव जबतक सर्वोच्च भक्ति न की जाये (भक्ति को बढ़ाते हुए निर्गुण स्वरूप में रत होना) तबतक निरुपम-निरुपाधि भक्ति को और उसके प्रभाव को कोई नहीं पा सकता है। इसी कारण बड़ी आवश्यकता है कि निर्गुण-स्वरूप वाले प्रसंग के साथ मिलाकर पूर्ण जानकारी प्राप्त की जाये। चार प्रकार के राम भक्तों में ज्ञानी भक्त राम को विशेष प्यारे हैं। ज्ञानी भक्त का लक्षण है कि वे योगी होते हैं, ब्रह्म-स्वरूप के अनुपम सुख का अनुभव करते और वैराग्य द्वारा विरंचि के प्रपंच के त्यागी होते हैं। **"अकथ अनामय नाम न रूपा"** ब्रह्म-स्वरूप ही तो राम का निर्गुण-स्वरूप है न ? फिर जो भक्ति द्वारा उपर्युक्त अनुपम सुख पाते हैं, उन्हीं की भक्ति निरूपम और निरूपाधि होगी न ? अब तो स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया न, कि–

(नाम जीह जपि जागहिं जोगी। विरति विरंचि प्रपंच बियोगी।।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।।)

में राम के जिस स्वरूप की जिस भक्ति का वर्णन है, उसी स्वरूप और उसी भक्ति का वर्णन उपर्युक्त चौपाईयों में भी किया गया है ? जबतक भक्ति इस दर्जे तक न पहुँचेगी, वह निस्संदेह अधूरी रहेगी और राम को विशेष प्यारी न होगी। फलतः माया उससे न डरेगी; बल्कि माया ऐसे भक्त को नाच-नचाकर पद-दलित करेगी।

❁ **"अस विचारि जे मुनि बिज्ञानी।**
जाँचहिं भगति सकल सुख खानी।।"

–रामचरितमानस

ऐसा विचार कर जो मननशील और सुबोध हैं, वे सब सुखों की खान भक्ति की याचना करते हैं।

पूर्ण अनुभव और पूर्ण समता प्राप्त अर्थात् पूर्ण विज्ञानी को भक्ति प्राप्त ही रहती है। उन्हें कुछ पाने की न इच्छा रहती है और न कुछ पाने को शेष ही रहता है। वे तो **"ब्रह्म सुखही अनुभवही अनुपा।"** अर्थात् अनुपम सुख का अनुभव करते हैं। वे सर्वोच्च भक्त प्रभु को विशेष प्यारे होते हैं। जैसे शबरी ने भगवान् से कुछ नहीं जाँचा। इस चौपाई में **"जाँचहिं भगति"** के लिखने से जान पड़ता है कि ऐसे विज्ञानी को यथार्थ विज्ञानी नहीं कहा गया

है। इसलिए यहाँ पर विज्ञानी का अर्थ सुबोध लिखा गया है। जब भक्ति राम के निर्गुण स्वरूप तक पहुँच जाती है, तभी वह सब सुख-खान होती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की वाणी :-

न धनं न जनं न सुन्दरीं, कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनी जन्मनीश्वरे, भवताद्भक्ति रहैतुकी त्वयि।।

अर्थ–हे जगदीश! मैं धन, जन, कविता अथवा सुन्दरी–कुछ भी नहीं चाहता हूँ। हे ईश्वर! आपके प्रति जन्म-जन्मान्तरों में मेरी अहैतुकी भक्ति हो।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी की वाणीः–

अहिल्या ने प्रार्थना की थी–हे राम! यदि शूकरयोनि में भी जन्म लेना पड़े, तो भी मुझे स्वीकार है; पर तुम्हारे चरणकमलों में मेरी अटल-भक्ति और श्रद्धा बनी रहे। मैं और कुछ नहीं चाहती।

श्रीमद्भगवद् गीता

"नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्ट्वानसि मां यथा।।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ।।"

जिस प्रकार (विराटरूप में तुमने) मुझको देखा है इस प्रकार मैं न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से (ही) देखा जा सकता हूँ।

परंतु हे परन्तप अर्जुन अनन्यभक्ति के द्वारा इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष देखने के लिये, तत्त्वसे जानने के लिये तथा प्रवेश करने के लिये अर्थात एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूँ।



श्री सद्गुरवे नमः

ईश्वर–दर्शन और उसका फल

꙰ यदि कोई कहे कि हम अपनी देह में आत्मा हई हैं और परमात्मा भी अपने अन्दर में हैं तो पहचान क्यों नहीं होती ? तो उत्तर होगा कि आत्मा शरीर, इन्द्रिय और प्रकृति के आवरण में है, इसीलिए पहचान नहीं होती है। जब इन तीनों आवरणों से छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा—पहचान होगी। जैसे आँख पर रंगीन चश्मा रहने से बाहर की चीज चश्मे के रंग के अनुरूप देखते हैं। चश्मा उतारकर देखने से वस्तु का सही रूप दीखता है। उसी प्रकार चेतन-आत्मा के ऊपर मायिक आवरण रहने के कारण मायिक-दर्शन होता है। मायिक आवरण उतर जाने पर निर्मायिक परमात्मा का दर्शन होता है।

꙰ कभी मत विश्वास करो कि ईश्वर को इसी आँख से देख लोगे। यदि कहो कि इसी आँख से श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीदेवी जी, श्रीशिवजी का दर्शन होता है, तो हमको क्यों नहीं होगा ? यदि आप श्रीराम और श्रीकृष्ण के विचार को समझने लगेंगे, तो कहेंगे कि बाहर में जो दर्शन हुआ, वह माया का दर्शन हुआ। माया में जो निर्माया है, उसका दर्शन नहीं हुआ। भगवान् श्रीराम ने कहा—

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई।।"

शरीर को क्षेत्र और उसके जानने वाले को क्षेत्रज्ञ कहते हैं—ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है। श्रीमद्भगवद् गीता के तेरहवें अध्याय में लिखा है—

"महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः ।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।।"

पाँच स्थूल-तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशः पाँच सूक्ष्म तत्त्व—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पैर, लिंग, गुदा और मुँह, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ; मन, बुद्धि,

अहंकार, चेतना, धृति, संघात, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रकृति—इन इकतीस तत्त्वों के समुदाय को सविकार क्षेत्र कहते हैं। इन इकतीस तत्त्वों में एक प्रकृति भी है। प्रकृति उस मसाले को कहते हैं, जिस तत्त्व से सारा विश्व बनता है। जिस प्रकार मिट्टी से कुम्हार वर्तन बनाते हैं, उसी प्रकार प्रकृति से सारा विश्व बनता है। प्रकृति कहते हैं—उत्पादक, पालक और विनाशक शक्ति को। तीन गुणों के सम्मिश्रण रूप को प्रकृति कहते हैं। उसी प्रकृति से समस्त जगत्, पिण्ड और ब्रह्माण्ड बनते हैं। इसलिए समस्त संसार में जहाँ देखो, इन्हीं तीन गुणों के खेल हैं। किसी भी बड़े-से-बड़े देवता के रूप में देखो कि ये इकतीस हैं या नहीं ? इन इकतीस के अतिरिक्त जो इनसे भिन्न तत्त्व हैं, वह है क्षेत्रज्ञ। कितने ही तेज-से-तेज रूप का दर्शन हो, किन्तु क्षेत्रज्ञ या आत्मतत्त्व का दर्शन बाकी रहता है। जब तक क्षेत्रज्ञ वा आत्मतत्त्व का दर्शन न हो, तब तक जो होना चाहिये, सो नहीं होता है। योगशिखोपनिषद् में लिखा है—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।"

अर्थात् परे-से-परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है; सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिस किसी भी दर्शन से ऐसा हो जाये, तो समझो कि परमात्मा का दर्शन हुआ।

❀ सम्पूर्ण शरीर को आँख से देखते हो और आँख को देखना चाहो, तो आँख से ही देख सकते हो। उसी तरह आत्मा को चेतन-आत्मा से ही देख सकेंगे, उनको किसी से और कुछ पूछना बाकी नहीं रह जायेगा। किसी भी लोक-लोकान्तर में ऐसा दर्शन नहीं होता, चाहे वे क्षीर समुद्र, ब्रह्मा का धाम, शिव का धाम, इन्द्रलोक आदि किसी भी लोक के निवासी क्यों न हों। वहाँ जंजाल लगा ही रहता है। क्षीर-समुद्र में भी लड़ाई-झगड़ा होता है। जहाँ कहीं भी शरीर है, वहाँ कुछ-न-कुछ विकार अवश्य होगा; किन्तु जहाँ आत्मतत्त्व का दर्शन होता है, वहाँ विकार उत्पन्न नहीं हो सकता।

❀ तुम नौ द्वारों में यानी आँख के दो, नाक के दो, कान के दो, मुँह का एक और मल-मूत्र विसर्जन के दो द्वारों में ठहरे हुए हो, तो तुम संसार

में दौड़ते रहते हो। दसवें द्वार में पहुँचो, जिसको शिवनेत्र कहते हैं। नौ द्वारों से सिमटकर दसवें द्वार में जाओ, तब ईश्वर की कुछ खबर मिलेगी।

❀ जैसे दूध से घी निकाल लेने पर ही घी के निज का काम होता है, उसी तरह शरीर से चेतन-आत्मा के अलग होने पर ही चेतन-आत्मा का निज काम होगा। दूध में घी है; किन्तु दूध से पूड़ियाँ, मिठाइयाँ नहीं बनती। उसी प्रकार शरीर में चेतन-आत्मा है; किन्तु ईश्वर की पहचान नहीं होती। इन्द्रियों और शरीरों से चेतन-आत्मा को अलग करने पर ही परमात्मा की पहचान होती है।

❀ सब लोगों को मालूम है कि ईश्वर सब जगह है। आपके अन्दर भी ईश्वर है। आप भी अपने शरीर में हैं। किन्तु उनको पहचान नहीं सकते हैं। आप जिस दर्जे में हैं उससे ईश्वर बहुत ऊँचे दर्जे में हैं। जिस दर्जे में आप हैं उस दर्जे में ईश्वर नहीं है—इस विचार को नहीं मानना चाहिये। ईश्वर उस दर्जे में भी है लेकिन उनको वहाँ पहचान नहीं सकते। उस दर्जे में आप शरीर और इन्द्रियों के साथ रहते हैं। सारे शरीरों—आवरणों को पार करने पर ही प्रभु मिलेंगे। चेतन-आत्मा के ऊपर से जितने आवरण हटाये जाते हैं, उतनी ही उसकी दीप्ति और अधिक बढ़ती है। बिल्कुल आवरण हट जाये तो सूर्य से विशेष प्रकाशमान वह होगा। परमात्मा, पुरुष, स्त्रीलिंग आदि कुछ नहीं, नपुंसक भी नहीं।

❀ शरीरधारी भगवान् और इसमें व्यापक भगवान्—दोनों को जानिये। शरीरकृष्ण—काले शरीरवाला और स्वरूपतः कृष्ण। कृष्ण का अर्थ है, आकर्षण करनेवाला। शरीरवाले श्री कृष्ण ने पाण्डवों की बहुत-सी आपदाओं का हरण किया; किंतु सभी आपदाओं का नहीं।

संसार में धन, पुत्र और प्रतिष्ठा का चला जाना बहुत हानि है। पाण्डवों की प्रतिष्ठा भी गयी, राजसूय यज्ञ में मातहत राजा लोग टहल करते थे। दुर्योधन भंडारी था। दीगर राजाओं में कोई द्वारपाल थे, कोई कुछ, कोई कुछ काम करते थे। इतनी बड़ी-सी सभा में राजा के पहनने के वस्त्र को ले लिया गया। अपने से ही राजसी पोशाक को हटाकर सिर नीचे कर लिया। एक बड़े आदमी का इतना अपमान हुआ। द्रौपदी की साड़ी खींची गई। यह कितनी बेइज्जती है! बाद को वनगमन किया। राजा विराट ने जुआ खेलते

समय पासे से युधिष्ठिर को मारा, सिर से खून जाने लगा। द्रौपदी को कीचक ने लात मार दी। दुर्वासा साठ हजार शिष्यों के साथ वन में भोजन माँगने युधिष्ठिर के पास आये। युधिष्ठिर के पास सूर्य की दी हुई एक हंडी थी। जिस हंडी से बना हुआ भोजन कितने ही लोगों को खिलाया जाता था; लेकिन वह घटता नहीं था। जब द्रौपदी भोजन कर लेती थी, तभी उस हंडी का भोजन समाप्त होता था। जब दुर्वासा जी ने युधिष्ठिर से भोजन माँगा, तो उस समय हंडी का भोजन समाप्त हो चुका था। फिर भी युधिष्ठिर जी ने दुर्वासा ऋषि से कहा कि आप अपने शिष्यों के साथ स्नान करके आवें। वे लोग स्नान करने चले गये। युधिष्ठिर जी ने द्रौपदी से जब भोजन तैयार करने के लिए कहा, तो द्रौपदी ने कहा कि भोजन तो समाप्त हो चुका है। युधिष्ठिर बड़े दुःखी हुए और द्रौपदी से कहा कि दुर्वासा ऋषि साठ हजार शिष्यों के साथ स्नान करके भोजन करने आ रहे हैं। यदि उनको भोजन नहीं दिया जायेगा, तो हमलोगों को शाप दे देंगे। द्रौपदी ने भगवान् कृष्ण का आह्वान किया। भगवान् कृष्ण जब द्रौपदी के पास पहुँचे, तो उन्होंने कहा–"भोजन कराओ।" द्रौपदी ने कहा–"भगवन्! भोजन के लिए कोई चीज मेरे पास नहीं है, सूर्य की दी हुई हंडी भी खाली है।" भगवान् ने कहा कि "कुछ भी खिलाओ।" द्रौपदी हंडी में लगी हुई साग की एक पत्ती भगवान् श्रीकृष्ण को देती है। भगवान् उसे खा गये। परिणाम यह हुआ कि दुर्वासा ऋषि स्नान करके जब युधिष्ठिर जी के यहाँ आने लगे, तो सबके पेट फूलने लगे। दुर्वासा जी ने सभी शिष्यों से कहा कि जल्दी भागो, नहीं तो बहुत भारी अनिष्ट हो जायेगा। वे सब-के-सब भाग गये। युधिष्ठिर जी इस आपदा से बचे; किंतु संतान-नाश, धन की हानि हुई। भगवान् के चले जाने पर अर्जुन की क्या हालत हुई! पंजाब में थोड़े ही लोगों ने उनको लूट लिया। शरीर-रूप भगवान् के दर्शन से सब आपदाएँ नहीं कटतीं; किन्तु शरीर-रहित भगवान् के दर्शन से एक भी आपदा रहने नहीं पाती।

❀ (ईश्वर) सर्वत्र है तो फिर यहाँ क्यों नहीं पहचानते हैं? जैसे आँख पर पट्टी और रंगीन चश्मा लगा रहने से बाहर की चीज देखी नहीं जा सकती और जो देखी जाती है, वह चश्मा के रंग के अनुरूप रंग में। इसलिए ऐसी भक्ति हो जिससे शरीर रूपपट्टी और इन्द्रियरूप चश्मा उतर जाये।

मनु-शतरूपा को दर्शन हुआ, जिस रूप को उन्होंने पाने की इच्छा की थी। किन्तु उस रूप में रहने वाले का दर्शन नहीं हुआ। उनका साधन केवल तप था। शारीरिक कष्ट से "हृदय जवनिका बहुविधि लागी" नहीं टूट सकती। यह वर्णन भी नहीं आया कि उनके हृदय की जवनिका टूट गई थी। उन्होंने इसी आँख से देखा था। माया के दर्शन से मायिक मोहित बुद्धि रह गई। मनु-शतरूपा के लिए इस तरह कहना मेरी ढिठाई है। उन्होंने भगवान् के ऐसा पुत्र माँगा। पुत्र के लिए क्या-क्या हुआ सो रामायण में पढ़ लीजिये। राजा दशरथ हुए, निरपराधी श्रवण को मारकर शाप लिया। उतनी तपस्या फिर शिकार खेलने का इतना चश्का कि दिन में शिकार खेलते-खेलते नहीं थकते तो रात में शिकार खेलते। पहले तो मेरे मन में भी था कि रूप-दर्शन करो, किन्तु अब समझता हूँ कि रूप-दर्शन से सन्तुष्ट मत होओ। रूप में कौन है उसको पहचान कर जानो। नहीं तो केवल रूप माया में भरमाता है। कितने कहते हैं कि भगवान् मेरे पास आयेंगे। मैं कहता हूँ नहीं, भगवान् के पास मैं जाऊँगा। जो भगवान् को बुलाते हैं तो भगवान् कहते हैं कि तुम इस आँख से मुझे नहीं देख सकते हो। इस आँख से देखना चाहते हो तो लो मेरे मायारूप को देखो। किन्तु मैं तो उस रूप में रहने वाले का दर्शन करना चाहता हूँ और आप लोगों को भी मैं उसी को पाने का लालच देता हूँ।

❀ सुना है कि राजा के दरवार में जाने के लिए दरवारी वस्त्र धारणकर दरवार में जाना होता है, जैसे-तैसे वेश से नहीं। परमात्मा के दरवार में अकेले होकर जायें। कपड़ा देह पर है, देह को भी छोड़कर जायें। अपने ऊपर से कपड़ा हटाकर राजा के दरवार में जाओ तो पगला कहकर, धक्का देकर निकाल देगा। लेकिन ईश्वर के दरवार में स्थूल-सूक्ष्मादि सभी शरीरों को छोड़कर जाना होगा।

❀ जीवनभर वेद पढ़ो, ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। भारी-भारी तप करो, देह सुखाकर हाड़-हाड़ हो रहो—भगवान् बुद्ध की तरह, फिर भी ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। भगवान् बुद्ध ने छः वर्षों तक महान् तप किया था। लोग उनको मृतकवत् समझने लगे थे। लेकिन उनको ज्ञान हुआ कि इससे भी परम ज्ञान नहीं मिलता है। आप पढ़े-सुने होंगे कि फलाँ ने तप किया और उसको दर्शन हुआ। वह दर्शन इन्द्रियों से हुआ, केवल चेतन-आत्मा से नहीं। मैं बारम्बार

कहता हूँ कि इन्द्रिय ग्राह्य रूप में जो व्यापक स्वरूप है, उसको पहचानो तो ईश्वर-दर्शन हुआ।

"लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार ....।" बड़ा भयानक कह दिया कबीर साहब ने। इतना डरा दिया कि लोग भाग जायें । गुरु नानक देव ने भी कहा है–**"जेहि मारग के गने जाय न कोसा।"** लम्बा मार्ग है और रास्ते में बहुत आपदाएँ हैं। फिर ईश्वर-दर्शन कैसे हो ? इसका उत्तर दिया है–

"अनहद बाजै नीझर झरै, ऊपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अन्तरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।"

इसमें 'लम्बा मारग' कटेगा और इसी में ईश्वर-दर्शन हो जायेगा। गुरु नानक देव जी ने कहा है कि–

"घट घट अन्तरि ब्रह्म लुकाइया घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।"

इसी निर्भय ताड़ी (ध्यान) लगाने में ईश्वर-दर्शन होगा। लोग कहते हैं कि जो सर्वव्यापक है, उसके पास जाने के लिये 'लम्बा मारग' क्यों होगा ? कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। उनसे प्रश्न कीजिये कि ईश्वर नजदीक है तो क्या आपने दर्शन पाया ? साँच-साँच कहिये, यदि झूठा कहियेगा तो ईश्वर-दर्शन का जो गुण होता है वह आप में नहीं होगा, तो आप पकड़े जायेंगे। तब वे कहते हैं कि नहीं, दर्शन नहीं हुआ। इतना लम्बा जाना है कि जहाँ जाकर इन्द्रियों से छूटना हो। दादू दयाल जी कहते हैं–

"दादू जानै न कोई, सन्तन्ह की गति गोई।
अविगत अंत अंत अंतरपट, अगम अगाध अगोई।।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुण सगुण नहिं दोई।
अण्ड न पिण्ड खंड ब्रह्मण्डा, सूरत-सिंध समोई।।
निराकार आकार न जोती, पूरण ब्रह्म न होई।
उनके पार सार सोइ पइहैं, मन तन गति पति खोई।।
दादू दीन लीन चरणन चित, मैं उनकी सरनोई ।।"

सन्तों की गति छिपी होती है। वह बाहर की गति नहीं, अन्तर की गति है। बाहर में तो खूब दौड़ जायें लेकिन अन्दर में एक बाल भर चलना

मुश्किल है।

जाते-जाते जहाँ जाना समाप्त हो जाता है, जहाँ गति का अन्त है, आगे किसी तरह जाना नहीं होता। जाने के लिए जहाँ न मार्ग है, न स्थान है, वहाँ तक जाओ तब ईश्वर-दर्शन मिलता है। सन्तगण ठीक से पता बताते हैं कि बाहर संसार में मत दौड़ो। तुम अपने अन्तर-पटों का अन्त कर डालो। ख्याल करो समझ लो कि इस स्थूल-शरीर में आप रहते हो। आप शरीर के किसी एक तल पर रहते हो, वह शरीर का एक अंतर पट है। यह तल एक ही है या और भी उसके अन्दर तल हैं ? जागने का एक तल, सपनाने का दूसरा तल और सुषुप्ति का तीसरा तल है। ईश्वर की ओर जाने के लिए चौथा तल है। उस तल को भी पार करोगे तब 'अन्त अन्तरपट' होगा। लेकिन वह अगम (बुद्धि से परे) है। तीन शून्य हैं—अंधकार का शून्य, प्रकाश का शून्य और शब्द का शून्य। अंधकार मंडल, प्रकाश मंडल और शब्द मंडल—ये तीन हैं। इन तीनों को छोड़ दें तो संसार-बंधन में जीव रहेगा कि नहीं, विद्वान विचारें—समझें। नीचे से अंधकार, प्रकाश और शब्द यही तक रचना है। ऊपर से शब्द, प्रकाश और अंधकार है। इसी को तीन शून्य कहा है। इन तीनों को पारकर जाओ तो उसको निर्गुण-सगुण कुछ नहीं कह सकोगे। जो व्यक्त माया है वह सगुण है, जो अव्यक्त है वह भी सगुण है। एक तो त्रैगुणात्मिका जड़-प्रकृति का मूल-रूप है। प्रकृति का मूल-रूप अव्यक्त है और उसका कार्य व्यक्त। इन दोनों प्रकृतियों से जो परे चेतनात्मिका परा प्रकृति है वह भी अव्यक्त है। इन दोनों प्रकृतियों से जो परे है ,वह है पुरुषोत्तम। यह पुरुषोत्तम-पद अंधकार, प्रकाश और शब्द से भी परे हैं। इन तीनों पटों से अपने को ऊपर उठा लो। जहाँ जाकर शरीर इन्द्रियों से छूटता हो, वहाँ तक चलो, वह 'लम्बा मारग' है। दृष्टि की सम्हाल ही मार्ग पर चलने में विकट कार्य है, इसीलिए **'विकट पंथ'** है। साधन काल में विषय-रस की स्मृतियाँ बार-बार मानसपट पर उदय होकर साधन में विघ्न डालती रहती है, यही 'बहुमार' है। जो कोई साधन-मार्ग पर मन लगाकर चलते हैं, तो ईश्वर की कृपा होती है, और मार्ग की विकटता और कथित 'बहुमार' धीरे-धीरे दूर होती जाती है। गो0 तुलसीदास जी ने कहा है—

"जौं तेहि पंथ चलइ मन लाई।

तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।''

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि भक्तों का योग-क्षेम मैं करता हूँ। इसकी जाँच हो सकती है, भक्त बनकर करो।

❁ परम प्रभु सर्वेश्वर से मिलने को चलने में सुरत को केन्द्रित करना होता है। दृष्टि-साधन से सुरत अत्यन्त सुखपूर्वक केन्द्रित होती है। केन्द्रित की हुई सुरत अन्धकारमय नयनाकाश से मार्ग धरकर संकीर्ण मार्ग से ब्रह्माण्ड में चढ़ती है। फिर आगे वह अनहद ध्वनियों को सुनती हुई अर्थात् सुरत-शब्दयोग द्वारा मानसरोवर के पार प्रीतम से इस भाँति जा मिलती है, जिस भाँति नदी समुद्र से जा मिलती है। सब रचना नाशवान् है और इसमें जीव सदा चलता रहता है। इस रचना से सुरत को फेरकर प्रभु की ओर करना चाहिये। सन्त दादूदयाल जी ने कहा है–

''दादू उलटि अपूठा आप में, अन्तर सोधि सुजाण।
सो ढिग तेरी बाबरे, तजि बाहरि की बाण।।''

लोग कहते हैं कि प्रह्लाद को तो बाहर में ही दर्शन हुआ। भगवान् खम्भ फाड़कर निकले हृदय फारकर नहीं। ऐसा एक विद्वान् भी कहते थे। मैं कहता हूँ–सन्त–साहित्य का अध्ययन और भी करो। खम्भ में ईश्वर को मानो और अपने अन्दर नहीं, तो ईश्वर की सर्वव्यापकता कहाँ रही! भगवान् अचेतन पदार्थ में हो और चेतन में नहीं, यह ज्ञान कहाँ तक ठीक है ? हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा था कि ईश्वर कहाँ है ? प्रह्लाद ने कहा था–सब जगह है। हिरण्यकशिपु ने पूछा–इस खम्भे में भी है ? प्रह्लाद ने कहा–हाँ। इसलिए भगवान् उस खम्भे से निकले थे। यह ऐसा ही मौका था। जैसे प्रह्लाद को और मनु-शतरूपा को दर्शन हुआ, वह इन्द्रियगम्य रूप का दर्शन था। मात्र एक प्रह्लाद नहीं डरता था और सभी देव-दानव नरसिंह भगवान् के डर से काँप रहे थे। उन्होंने जो जोर की आवाज की, तो संसार डगमगा गया। एक ब्रह्मणी का गर्भपात हो गया। यह दर्शन इन्द्रियगम्य है। इन्द्रियातीत का भी दर्शन चाहिये।

एक पुस्तक है–'पक्षपात-रहित अनुभव-प्रकाश'। यह पुस्तक सबसे पहले के काली कमलीवाले की बनाई हुई है। उसमें लिखा है–''प्रह्लाद केवल इन्द्रियगम्य ही नहीं जानते थे , इन्द्रियातीत भी जानते थे। प्रह्लाद

से विष्णु भगवान् ने कहा–समय पड़ता है तो मुझे पुकारता है और उपासना निगुर्ण- ब्रह्म की करता है।"

❁ तमाम ईश्वर व्यापक हैं। वे सबमें रहने वाले हैं। वे सबको अपने अंदर में रखते हैं। वे बहुत चमत्कारपूर्ण हैं। उनका दर्शन चेतन-आत्मा को होता है। आत्म-प्रकाश से ही आत्मा और परमात्मा की प्रत्यक्षता होती है। आत्म-प्रकाश कोई भौतिक-प्रकाश नहीं है। जिसे आत्म-प्रकाश कहते हैं, वह दिव्य-ज्योति से भी श्रेष्ठ है। सर्वव्यापी परमात्मा का प्रकाश भी सर्वव्यापी है। गुरु नानक साहब ने कहा है–

"घट घट अंतरि ब्रह्म लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई ।।"

सब शरीरों में ईश्वर व्यापक हैं। इनका प्रकाश भी सबमें है। फिर ईश्वर का दर्शन क्यों नहीं होता है ? आत्म-दृष्टि प्राप्त नहीं है, इसीलिए ईश्वर का दर्शन नहीं होता है। आत्म-दृष्टि कहीं खो गई है, सो नहीं। वह सबके साथ मौजूद है। जड़-माया की पट्टी आत्मा पर लगी हुई है, इसी कारण आत्म-प्रकाश को कोई नहीं देख सकता है। इसी जड-माया की पट्टी को खोलने के लिए संतों ने बताया है। अंदर का प्रकाश मालूम हो, तो पट्टी खोलने के लिए ही दृष्टियोग है।

❁ यदि ईश्वर-दर्शन नहीं प्राप्त करो, तो संसार में रहने का क्लेश कभी नहीं छूटेगा। जैसे देश की सुरक्षा के वास्ते यदि अपने शरीर तक की भी परवाह छोड़कर देश की सुरक्षा में बाधा पहुँचाने वाले का सामना नहीं करते, तो देश पराधीन रहकर दुःख भोगता रहता। इसलिए देश की सुरक्षा रखनेवाले अपनी देह की परवाह छोड़कर लड़ते हैं। इसी तरह ईश्वर-दर्शन करने में जितनी कठिनाइयाँ हैं, उनको नहीं झेलो, तो संसार में आने का दुःख नहीं छूटेगा। उसके बाद का जितना जीवन होगा, उसमें दुःखी रहोगे। सुनने में जो कठिनाई मालूम होती है, वह करते-करते कठिनाई हल्की हो जाती है। और धीरे-धीरे उसी में मन बैठता है और वह सुगम हो जाता है।

❁ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–हमारी प्रकृतियाँ हैं–परा और अपरा। पाँच तत्त्व, मन, बुद्धि और अहंकार–यह अपरा प्रकृति है। यह सगुण है। परा प्रकृति निर्गुण है जहाँ परा और अपरा प्रकृति नहीं, वहाँ निर्गुण-सगुण नहीं।

ईश्वर-विषयक-ज्ञान जब ऐसा होता है, तब असली ईश्वर का दर्शन हुआ, नहीं तो माया के जाल से छुटकारा नहीं।

❀ परमात्मा अपनी सर्वव्यापकता के कारण सबसे विशेष सूक्ष्म है। स्थूल-यंत्र से सूक्ष्म-तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता है। एक बहुत छोटी घड़ी के महीन कील-काँटों को बढ़ई और लोहार की सँड़सी और पेचकश आदि मोटे-मोटे यंत्रों से घड़ी में बिठाने और निकालने के काम नहीं हो सकते। उसके लिए यंत्र भी महीन ही होते हैं। हमारी भीतरी और बाहरी सब इन्द्रियाँ—नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा, मुख, हाथ, पैर, गुदा और लिंग—बाहर की इन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—अन्तर की इन्द्रियाँ—सब-की-सब उस दर्जे की सूक्ष्म नहीं हैं, जो परमात्म-स्वरूप को ग्रहण कर सकें। ये तो परमात्मा की सूक्ष्मता के सम्मुख स्थूल हैं। भला ये उसको कैसे ग्रहण कर सकती हैं!

ओउम् सयोजत उरूगायस्य
जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमिते न गाव :।
परीणसं कृणुते तिग्म श्रृंगो
दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः।।
(सा0 उ0, अ08 मं0 3)

इस मंत्र के द्वारा वेद भगवान् उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! हाथ, पैर, गुदा, लिंग, रसना, कान, त्वचा, आँखें, नाक और मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों के द्वारा ईश्वर को प्रत्यक्ष करने की चेष्टा करना झूठ ही एक खेल करना है; क्योंकि इनमें वह नहीं जाना जा सकता है। वह तो इन्द्रियातीत है।

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।"
(केनोपनिषद् खण्ड 1 श्लोक 5)

अर्थात् जो मन से मनन नहीं किया जाता, बल्कि उससे मन मनन किया हुआ कहा जाता है, उसी को तू ब्रह्म जान। जिस इस (देशकालाविच्छिन्न वस्तु) की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुँ स्वाम्।।

– कठोपनिषद्

अर्थात् यह आत्मा वेदाध्ययन-द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणा-शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है, यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस आत्मा से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

❀ आँख पर पट्टी बँधी हो, तो आँख में देखने की शक्ति रहने पर भी बाहरी दृश्य नहीं देखा जाता और आँख पर रंगीन चश्मा लगा रहने पर बाहर का यथार्थ रंग नहीं देखने में आता है, चश्मे के रंग के अनुरूप ही रंग बाहर में देखने में आता है। आँख पर से पट्टी और चश्मा उतार दो, बाहर के यथार्थ रंग देखने में आयेंगे। शरीर और इन्द्रियों के आवरण से छूटते ही या यों कहो कि चैतन्य आत्मा पर से शरीर और इन्द्रियों की पट्टी और चश्मे उतारते ही चैतन्य आत्मा को परमात्म-स्वरूप की पहचान हो जायेगी।

❀ यह जो जगत् दिखाई पड़ता है, जो देहधारियों के रहने का स्थान मालूम होता है, यह क्या है ? इसमें कोई विशेष तत्त्व ऐसा भी है, जो इसके अन्दर के अन्त-तल पर अन्दर-अन्दर है।

उसको हम नहीं पहचान रहे हैं। बुद्धिमान् इसका पता लगाना चाहते हैं और इसको यथार्थतः पहचान लेने को उत्सुक रहते हैं। अति प्राचीन काल में यह खोज और यह उत्सुकता मुनियों के हृदय में हुई और उन्होंने इसका पता लगाया, पहले विचार में, फिर इसकी प्रत्यक्षता की विधि में। इसका प्रत्यक्षानुभव हो जाने पर उन्होंने दृढ़ता पूर्वक लोगों से कह दिया कि एक-एक पिण्ड में जो व्यापक सार-तत्त्व है, संसार में भी वही व्यापक है। अर्थात् पिण्ड में जो सार-तत्त्व व्यापक है, वही ब्रह्माण्ड में भी व्यापक है। यह पता मनुष्य को ही लगा, दूसरे को नहीं; क्योंकि मनुष्य ही यह पता लगाने के योग्य हैं। इसका पता लगाने से क्या फल ? इसका पता जिसको नहीं लगा है, वे सांसारिक-मायिक चीजों में संलग्न हैं। इस संलग्नता में सन्तुष्टि नहीं, शान्ति नहीं और सुख नहीं है। परन्तु जिनको पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्यापक उस एक सार-तत्त्व का पता लगा, उन्होंने कहा कि उस सार तत्त्व का पता

लगते ही सांसारिक-मायिक वस्तुओं की संलग्नता छूट जाती है और कथित सार-तत्त्व में उनकी संलग्नता हो जाती है। सब दुःख छूट जाते हैं, फिर नीचे गिरना नहीं होता है। इस संसार के दुःखों में वह कभी नहीं आता है।

❀ मुझे किसी सम्प्रदाय–द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैती, त्रैत आदि से झगड़ा नहीं; किसी का मैं खण्डन नहीं करता। मैं कहता हूँ परमात्मा को पहचानने के लिए चलो। चलने के लिए बाहर जाना छोड़कर अन्दर में चलो। अन्दर में चलने के लिए कोट-कमीज तथा कुर्ते-रूप शरीरों को उतारो। शरीर-रहित जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होगा।

❀ सब मजहबों के वास्ते ईश्वर से मिलने के लिए चलने में एक ही रास्ता है। किसी पहाड़ पर या किसी समुद्र के तट पर ईश्वर का दर्शन हो जाये, संभव नहीं। पनडुब्बी जहाज से पानी के भीतर जाने पर भी वहाँ ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। चाहे घर में बैठा रहे या मक्का में या बदरी नारायण में उसका दर्शन नहीं होगा। किन्तु इन स्थानों में कहीं भी रहे अपने अन्दर-अन्दर चले तो वहीं दर्शन होगा।

❀ श्रीमद्भगवद्गीता में तीन पुरुषों का वर्णन हुआ है। क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और पुरुषोत्तम। जड़–अपरा प्रकृति नाशवान है। दूसरी परा प्रकृति है, जो चेतनात्मिका है, इसका नाश नहीं होता, पर ससीम है, जड़ से पृथक् पदार्थ है। नाशवान–क्षर पुरुष, अनाश अक्षर पुरुष है। परमात्मा क्षर और अक्षर से, सत् और असत् से, नाशवान् और ससीम अनाश से भी ऊपर है, वही पुरुषोत्तम है। इस पुरुषोत्तम पुरुष को जानो।

❀ **"गो गोचर जहँ लगि मन जाई।**
सो सब माया जानेहु भाई।।"

तथा उपनिषद् का यह वाक्य–

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।"

इन दोनों कसौटियों पर उसको कसकर देखो, जो कहते हैं कि "हमको ईश्वर मिल गया।" कोई बन्धन तुम पर है वा नहीं, यह तुम प्रत्यक्ष जानोगे। जैसे रोगी को प्रत्यक्ष मालूम होता है कि मैं रोगमुक्त हो गया। यदि मामूली ऋद्धि-सिद्धि को देखकर ही उसको पहुँचा हुआ समझता है, तो वह

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुँ स्वाम्।।

– कठोपनिषद्

अर्थात् यह आत्मा वेदाध्ययन-द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणा-शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है, यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस आत्मा से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

❀ आँख पर पट्टी बँधी हो, तो आँख में देखने की शक्ति रहने पर भी बाहरी दृश्य नहीं देखा जाता और आँख पर रंगीन चश्मा लगा रहने पर बाहर का यथार्थ रंग नहीं देखने में आता है, चश्मे के रंग के अनुरूप ही रंग बाहर में देखने में आता है। आँख पर से पट्टी और चश्मा उतार दो, बाहर के यथार्थ रंग देखने में आयेंगे। शरीर और इन्द्रियों के आवरण से छूटते ही या यों कहो कि चैतन्य आत्मा पर से शरीर और इन्द्रियों की पट्टी और चश्मे उतारते ही चैतन्य आत्मा को परमात्म-स्वरूप की पहचान हो जायेगी।

❀ यह जो जगत् दिखाई पड़ता है, जो देहधारियों के रहने का स्थान मालूम होता है, यह क्या है ? इसमें कोई विशेष तत्त्व ऐसा भी है, जो इसके अन्दर के अन्त-तल पर अन्दर-अन्दर है।

उसको हम नहीं पहचान रहे हैं। बुद्धिमान् इसका पता लगाना चाहते हैं और इसको यथार्थतः पहचान लेने को उत्सुक रहते हैं। अति प्राचीन काल में यह खोज और यह उत्सुकता मुनियों के हृदय में हुई और उन्होंने इसका पता लगाया, पहले विचार में, फिर इसकी प्रत्यक्षता की विधि में। इसका प्रत्यक्षानुभव हो जाने पर उन्होंने दृढ़ता पूर्वक लोगों से कह दिया कि एक-एक पिण्ड में जो व्यापक सार-तत्त्व है, संसार में भी वही व्यापक है। अर्थात् पिण्ड में जो सार-तत्त्व व्यापक है, वही ब्रह्माण्ड में भी व्यापक है। यह पता मनुष्य को ही लगा, दूसरे को नहीं; क्योंकि मनुष्य ही यह पता लगाने के योग्य हैं। इसका पता लगाने से क्या फल ? इसका पता जिसको नहीं लगा है, वे सांसारिक-मायिक चीजों में संलग्न हैं। इस संलग्नता में सन्तुष्टि नहीं, शान्ति नहीं और सुख नहीं है। परन्तु जिनको पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्यापक उस एक सार-तत्त्व का पता लगा, उन्होंने कहा कि उस सार तत्त्व का पता

लगते ही सांसारिक-मायिक वस्तुओं की संलग्नता छूट जाती है और कथित सार-तत्त्व में उनकी संलग्नता हो जाती है। सब दुःख छूट जाते हैं, फिर नीचे गिरना नहीं होता है। इस संसार के दुःखों में वह कभी नहीं आता है।

❀ मुझे किसी सम्प्रदाय—द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैती, त्रैत आदि से झगड़ा नहीं; किसी का मैं खण्डन नहीं करता। मैं कहता हूँ परमात्मा को पहचानने के लिए चलो। चलने के लिए बाहर जाना छोड़कर अन्दर में चलो। अन्दर में चलने के लिए कोट-कमीज तथा कुर्ते-रूप शरीरों को उतारो। शरीर-रहित जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होगा।

❀ सब मजहबों के वास्ते ईश्वर से मिलने के लिए चलने में एक ही रास्ता है। किसी पहाड़ पर या किसी समुद्र के तट पर ईश्वर का दर्शन हो जाये, संभव नहीं। पनडुब्बी जहाज से पानी के भीतर जाने पर भी वहाँ ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। चाहे घर में बैठा रहे या मक्का में या बदरी नारायण में उसका दर्शन नहीं होगा। किन्तु इन स्थानों में कहीं भी रहे अपने अन्दर-अन्दर चले तो वहीं दर्शन होगा।

❀ श्रीमद्भगवद्गीता में तीन पुरुषों का वर्णन हुआ है। क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और पुरुषोत्तम। जड़—अपरा प्रकृति नाशवान है। दूसरी परा प्रकृति है, जो चेतनात्मिका है, इसका नाश नहीं होता, पर ससीम है, जड़ से पृथक् पदार्थ है। नाशवान—क्षर पुरुष, अनाश अक्षर पुरुष है। परमात्मा क्षर और अक्षर से, सत् और असत् से, नाशवान् और ससीम अनाश से भी ऊपर है, वही पुरुषोत्तम है। इस पुरुषोत्तम पुरुष को जानो।

❀ **"गो गोचर जहँ लगि मन जाई।**
सो सब माया जानेहु भाई।।"

तथा उपनिषद् का यह वाक्य—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।"

इन दोनों कसौटियों पर उसको कसकर देखो, जो कहते हैं कि "हमको ईश्वर मिल गया।" कोई बन्धन तुम पर है वा नहीं, यह तुम प्रत्यक्ष जानोगे। जैसे रोगी को प्रत्यक्ष मालूम होता है कि मैं रोगमुक्त हो गया। यदि मामूली ऋद्धि-सिद्धि को देखकर ही उसको पहुँचा हुआ समझता है, तो वह

गलती करता है।

❁ अपने को और अपने शरीर को भिन्न-भिन्न करके जानना मुश्किल होता है। बहुत लोग कहते हैं कि हम तो जड़ से विहीन ही हैं। हमको तो स्वरूप का ज्ञान प्राप्त ही है। उनसे मैं कहता हूँ–"हे भाग्यवान पुरुष! आप को ज्ञान प्राप्त ही है तो आप को भूख और प्यास क्यों लगती है ? यहाँ तक कि पेशाब और पैखाना भी लगता है। ऐसे ज्ञान से कोई लाभ नहीं। खाली मन-ही-मन खीर बनाकर खा लेना, कहाँ तक यथार्थ है ? अंधेरी रात में बैठ कर केवल चिराग की बात करने से प्रकाश होगा ? नहीं होगा।

❁ बड़े जगमग रूप का दर्शन हुआ, यह मामूली बात है। मनु राजा और शतरूपा ने बहुत तप किया; लेकिन शरीर-ज्ञान से बाहर नहीं होकर, शरीर में रहकर सुन्दर दर्शन पाया। वह मायिक दर्शन था। कोई कुढ़े, तो मैं कहूँगा कि **"गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।"** इसको कहाँ फेक दीजियेगा ?

एक पंडितजी ने कहा कि भगवान् राम का शरीर चिदानन्दमय था। **"चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।"** मैंने कहा–"चिदानन्दमय रूप मायिक वा अमायिक ?" उन्होंने कहा–"अमायिक।" मैंने कहा–"तो क्या अमायिक तत्त्व का दर्शन इस मायिक आँख से हो सकता है ?" थोड़ी देर चुप रहकर वे बोले–"हाँ यह समझने की बात है।" भगवान् कृष्ण के विराट् रूप का वर्णन है कि उसमें बहुत-से विकराल मुँह, हाथ, नाक, पैर, कान आदि थे। उस रूप को देखकर अर्जुन डर से थर-थर काँपता था। कहता था कि आप अपना सौम्य रूप दिखाइये। नारद को भी विश्वरूप का दर्शन हुआ था। लेकिन भगवान् ने कहा था–"तू मेरे जिस रूप को देख रहा है, यह सत्य नहीं है, यह माया है। मेरे सत्य-स्वरूप को देखने के लिए इसके भी आगे तुझे जाना चाहिये।"

❁ जप और ध्यान करने से आवरण छूटेंगे और आवरणों के छूटने से अपने अन्दर में ईश्वर का प्रत्यक्ष-ज्ञान या दर्शन होगा। यह दर्शन बाहरी-दर्शन की तरह आँखों से नहीं; आत्मा से होगा।

❁ चेतन-आत्मा अन्दर में मायिक-आवरणों से छूटकर जब अकेली हो जायेगी, तब उस आवरण-रहित चेतन-आत्मा को ईश्वर का प्रत्यक्ष-दर्शन

होगा कि–**"जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।"** हो जायेगा। जो इस तरह ईश्वर को जान लेगा वह ईश्वर-स्वरूप हो जायेगा। वह आवागमन के चक्र से छूट जायेगा। इस वायु-मण्डल से छूटकर फिर कभी इस दुःख-सुखमय संसार में नहीं आवेगा।

❁ प्रत्यक्ष-दर्शन का यत्न सन्तमत बतलाता है। सन्तमत बतलाता है–प्रत्यक्ष-दर्शन होगा बाहर में नहीं, अपने अन्दर। बाहर में प्रत्यक्ष-दर्शन का काम करते रहो, लेकिन वह दर्शन नहीं होगा। इसीलिए बाहर का काम करना छोड़ दो। कोई कहे कि बाहर का काम कैसे छूटेगा ? मैं कहता हूँ–जाग्रत् से स्वप्न में जाते हो, क्या काम करते हो ? गहरी-नींद थोड़ी देर के लिए होती है, उसमें काम छूट जाता है। इससे आगे की भी अवस्था है, जिसको तुरीय–चौथी अवस्था कहते हैं, उसमें जाओ। यह जाना, अपने को जो चेतन-अवस्था में ले जाता है, उसी के लिए सम्भव है।

❁ शरीर-इन्द्रियों से जानने और मिलने योग्य ईश्वर मानोगे, तो उसमें ऐसी-ऐसी बात देखने में आवेगी, जिसे देखने से ईश्वर मानने के योग्य वह नहीं रह जाता। उसको ईश्वर मानना अंधी-श्रद्धा होगी। जो मन-इन्द्रियों से नहीं जानो, उसको किससे जानो ? तो कहा–चेतन-आत्मा से। इन्द्रियों से पृथक्-पृथक् होने के कारण उनका पृथक्-पृथक् ज्ञान होता है। सब विषयों को एक ही इन्द्रिय से नहीं जान सकते। आँख से रूप देखते हैं, कान से शब्द सुनते हैं, नासिका से गंध ग्रहण करते हैं। जिह्वा से रस लेते हैं और चमड़े से स्पर्श का ज्ञान होता है। इन्द्रियों के पृथक्-पृथक् होने के कारण उनका पृथक्-पृथक् काम है; किन्तु तुम्हारा निज-काम क्या है ? तुम्हारा निज काम परमात्मा की पहचान है और अपनी पहचान है।

❁ वेद के अन्दर ईश्वर की मान्यता–ईश्वर में आस्था का बहुत जोरों के साथ विश्वास दिलाया गया है। वेद केवल यही बता देता है कि–है ईश्वर, है ईश्वर, है ईश्वर–सो नहीं। वेद बता देता है कि ईश्वर है, तुम प्रत्यक्ष में पा भी सकते हो। है, परन्तु अव्यक्त है। व्यक्त-पदार्थ ईश्वर नहीं है। व्यक्त-पदार्थ माया है।

❁ जो अव्यक्त है–वह ईश्वर है। वह अव्यक्त-अव्यक्त ही नहीं रह जायेगा। अगर तुम उसकी भक्ति ठीक-ठीक करो तो वह तुम्हारे लिए व्यक्त

होगा। मायिक-पदार्थ व्यक्त मालूम होता है इन्द्रियों के ज्ञान में। इन्द्रियाँ तुम्हारी देह के साथ-साथ तुम्हारे सब अधीनस्थ चीजें हैं। इनके द्वारा तुम मायिक-तत्त्वों को ही जान सकते हो। मायिक-तत्त्वों को जानने का जो यन्त्र है, उसी यन्त्र से तुम निर्मायिक-तत्त्व को भी जानो, ऐसा विश्वास रखना पागलपन है।

❁ इसके वास्ते जो दर्शन करना चाहेगा, वह अपने को बिल्कुल शरीर आदि से हटा ले। कहने में तो कुछ ऐसा लगता है कि हेय बात है, लेकिन हेय बात नहीं—बड़ी ऊँची बात है। तुम अपने को बिल्कुल नंगा कर लो। जो यह शरीर का पहनावा तुम्हारे पर रखा गया है, यह पहनावा बड़ा दुखकर है। स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर, कारण-शरीर, महाकारण-शरीर; यह बड़ा दुखकर है। इन सब से रहित होकर **"चिदानंदमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।"** इस स्वरूप में हो जाओगे। इस स्वरूप को फिर कहीं से खोज कर नहीं लाना पड़ेगा। न गुरु महाराज को जाकर कहना पड़ेगा कि हमको इसी स्वरूप में ला दीजिए। वह कहेंगे कि बच्चा तुम खुद साधन करोगे, तुम तो यह हो ही। ऐसा जब हो जाओगे तब अव्यक्त-ईश्वर ऐसा व्यक्त होगा, जैसे इन्द्रियों के सामने सूर्य भगवान् व्यक्त हो जाते हैं।

❁ जो जहाँ कहीं बैठा रहता है, वह वहीं से चलता है। इस शरीर के अन्दर जहाँ जीव की बैठक है, वहीं से वह चलेगा। इसका यत्न गुरु से जाना जाता है, यह अंदाज से नहीं होता है। वहाँ पर जाने का रास्ता नहीं है। सिमटाव होने से उस पर जाना होता है। सन्त कबीर साहब ने कहा है—

'बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देश।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर संदेश।।"

मन और चेतन-आत्मा संग होकर चलते हैं। मन अपनी शक्ति की हद तक जा सकता है, आगे नहीं। आगे चेतन-आत्मा ही चलती है। सन्त तुलसीदास जी ने कहा—

"सहस कँवल दल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्राण पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।"

प्राणपुरुष चेतन-आत्मा है। जहाँ केवल चेतन-आत्मा ही जा सकती है, वहीं परमात्मा के दर्शन होते हैं। जहाँ अन्तःकरणों का घेरा छूटा, तब ऐसी

कोई बाधा नहीं रहती, जिससे ईश्वर-दर्शन नहीं हो। यह काम अन्दर में चलते-चलते होने योग्य है, कोई और उपाय नहीं है।

❀ संसार के दृश्यों को देखकर मालूम होता है कि सबसे परे कोई है। जिसका न कहीं ओर है, न कहीं छोर है। उसका आदि नहीं, मध्य नहीं है। उसको जो जान लेता है, तो **"जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।"** होता है। उसमें कोई हिलडोल नहीं है। वही ईश्वर वा परमात्मा है। वही ऐसा कुछ है, जिसको ईश्वर वा परमात्मा कहते हैं, और जो वचन उसके लिए आता है, उसमें कहा नहीं जाता। तब क्या कहैं ? संत कबीर साहब ने कहा है–

"जाकर नाम अकहुआ भाई। ताकी कहा रमैनी गाई।"

वह है। नहीं है, सो नहीं है; परन्तु ज्ञान से बाहर है। मेधा–ग्रहणीय-शक्ति से भी बाहर है।

❀ जीवात्मा को चाहिये कि वह परमात्मा तक पहुँचे, दर्शन करे। यह इसलिए कि उस दर्शन से मनुष्य परम शान्ति को पाता है। बिना इस दर्शन से परम शान्ति नहीं मिलती। जो जानेवाला हैं, वह जीवात्मा है और उसी को परमात्मा तक जाना है। दोनों इस शरीर में है, लेकिन कुछ कारणों से जीवात्मा को ईश्वर की प्रत्यक्षता नहीं होती। वे कारण ये हैं कि माया के स्थूल, सूक्ष्म आदि भेदों से जीवात्मा के आवृत्त् रहने में उसे केवल इन्द्रिय-ज्ञान में रहना पड़ता है। इसीलिए उसको इस दशा में ईश्वर का प्रत्यक्ष-ज्ञान से बाहर कर निजी-ज्ञान में हो जाये। तब ऐसा जहाँ पर हो सकेगा, वहीं ईश्वर का दर्शन होगा।

❀ एक ही घर में दो मित्र हैं वा एक ही घर में प्रभु और दास हैं। तो मिलने के लिए घर-ही-घर चलना होगा। बाहर जाने की क्या जरूरत ? दिल-दिल में खुदा है, ईश्वर सर्वव्यापक है।

❀ चेतन-आत्मा स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। इन्द्रियों के कारण चेतन-आत्मा को ज्ञान नहीं होता, बल्कि चेतन-आत्मा के ज्ञान से ही इन्द्रियों को ज्ञान है। चेतन-आत्मा की ही शक्ति है कि जिससे आँखें रूप को देखती हैं। यदि आप कहे कि जब कि उसी की शक्ति से इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती हैं, तो उसी से ईश्वर को क्यों नहीं ग्रहण किया जा सकता है ? तो मैं बताता हूँ–कई पहल के, कई रंग के शीशे वाली लालटेन को आप लें। जिस पहल

के शीशे का जो-जो रंग है, उधर के प्रकाश का भी वही-वही रंग हो जाता है, यद्यपि शीशे के अन्दर का प्रकाश सदा एक ही जैसा है। इसी तरह आप ही के ज्ञान से इन्द्रियों में ज्ञान है। आपकी वही शक्ति आँख में है तो वह रूप देखती है, लेकिन शब्द को नहीं सुन सकती। इसी भाँति शेष इन्द्रियों के विषय में भी आप समझ लें। इन्द्रियों से छूटकर आप अपने ज्ञान में ईश्वर की पहचान कर सकते हैं।

❁ सब धर्मों या मजहबों का सार एक ही है। जैसे शरीर का सार 'प्राण' है, उसी तरह सारे मजहबों का सार एक ही ईश्वर है। उसके लिए साधन भी एक ही है। यह बात बड़े फुक्राओं की और संतों की है। लोग इसे साधना करके जान सकते हैं।

❁ संसार में पाँच ही तरह की चीजें हैं। एक वह जो देख सकते हो, दूसरा वह जो सुन सकते हो, तीसरा वह जो तुम गन्ध ले सकते हो, चौथा वह जो स्पर्श कर सकते हो और पाँचवाँ वह जिसका रसास्वादन कर सकते हो। ये सब मिलाकर पाँच होते हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। इन पाँचो में से कोई पदार्थ ईश्वर नहीं है। इन पाँचो को चीन्हते रहोगे, लेकिन ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। पाँचो चीज का संघात मनुष्य-शरीर है। इसी तरह सभी शरीर है। कोई शरीर कितना भी सुन्दर हो, विकट हो, डरावना हो, उसमें भी ये ही पाँच हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पाँच को जहाँ पाओ, वहाँ समझो कि ईश्वर-दर्शन नहीं हुआ।

❁ **"है नेरे सूझत नहीं, ल्यानत ऐसो जिन्द।**
तुलसी या संसार को, भयो मोतिया बिन्द।।"

—गो० तुलसीदास जी

अपने को ही मोतियाबिन्द है। मोतियाबिन्द वह रोग है, जो आँख की पुतली पर पत्थर का सा परदा हो जाता है। आजकल लोग उसको डॉक्टर से निकलवा देते हैं। जिसको मोतियाबिन्द होता है, उसको सब कुछ रहते हुए कुछ दीखता नहीं। उसी तरह ईश्वर पाने के लिए जो नेत्र अपेक्षित है, उस पर परदा है। वह नेत्र कैसा है ? वह नेत्र का नेत्र है और देखने के दृश्य का देखने वाला है। वही है—अक्षर। जिसमें परिवर्त्तन नहीं होता, जो क्षीण होते-होते क्षीण हो जाता है, सो वह नहीं है। वह अक्षर-पुरुष है। वही

अक्षर-पुरुष अपने आपको समझो। यह चेतन-रूप है। इसी के ऊपर शरीर और इन्द्रियों का आवरण हो गया है। यही मोतियाबिन्द है। इस आवरण के कारण नहीं देख सकते हो, नहीं दर्शन कर पाते हो ईश्वर का।

❁ मनु-शतरूपा ने कठोर तपस्या की। शरीर छूटने के बाद विशाल स्वर्ग-सुख भोगकर उन्होंने साकेत–अयोध्या में राजा दशरथ और रानी कौशल्या होकर जन्म लिया। पुत्र-रूप में भगवान् श्रीराम का अवतार उनके यहाँ हुआ। इतना सब कुछ होने के बावजूद बाहरी दर्शन के कारण माया का खेल नहीं छूटा। गोस्वामी तुलसीदासजी जैसे राम-भक्त को भी सत्य को व्यक्त करने के लिए लिखना पड़ा–

"सुरपति बसइ बाहुँबल जाके।
नरपति सकल रहहिं रूख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।"

ऐसा तपी और वरदान पानेवाले भी काम से नहीं बच सके। मतलब यह कि बाहर के दर्शन से काम, क्रोध, मोह आदि से नहीं बच सकते।

बच कौन सकते हैं ? जो अपने अन्दर-अन्दर चलते हैं ईश्वर-दर्शन के लिए।

❁ **"लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।**
कहौ सन्तों क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार।।"

–संत कबीर साहब

इतना लम्बा कोई रास्ता नहीं है। विकट-पंथ–जिस रास्ते पर चलकर पहुँचा जाता है, उस पर विघ्न-बाधाएँ भी होती हैं। विघ्न-बाधा में मन को अशांति होती है। इसीलिए **'विकट-पंथ बहु मार'** कहा। थोड़ा-थोड़ा चलते-चलते लम्बा-से-लम्बा रास्ता भी कट जाता है। जो धीरजवान् साधक है, वह चलते-चलते रास्ते को पारकर जाता है, तब परमात्मा का दर्शन होता है। यह दर्शन चेतन-आत्मा को होता है। यह दर्शन बाह्य-आँख से देखे बिना होता है।

❀ चेतन-आत्मा को जो शरीर का संग है, इसी से अज्ञानता है। जो चेतन-आत्मा की पहचान में आ जाये, वही ईश्वर है। जो इस बात को भूल जायेंगे उनको ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। किसी अवतारी-रूप का दर्शन ईश्वर-स्वरूप का दर्शन नहीं है। आँख से जो दर्शन हुआ; वह माया का ही दर्शन हुआ। उससे आगे जो आत्मस्वरूप है, उसका दर्शन नहीं हुआ। सब-रूपों में जो आत्मा है, उसका दर्शन रूपों के दर्शन से नहीं होता है। जैसे सबके शरीरों को सब कोई देखते हैं, लेकिन आत्मा को नहीं देखते हैं। आत्मा का दर्शन हो जाता है तो ईश्वर का भी दर्शन हो जाता है।

❀ **"राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।**
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।"

—रामचरितमानस

सर्वव्यापक-तत्त्व को यहाँ स्वरूप कहा है। जो आप स्वयं हैं, वही आपका स्वरूप है। आप शरीर नहीं हैं, शरीर में आप रहते हैं। उसी को आत्मा कहते हैं। उसे आत्म-दृष्टि से देखना होता है। जो आत्म-दृष्टि का अभ्यास करता है, तब उसको आत्म-दर्शन होता है, तभी परमात्म-दर्शन भी होता है।

❀ ससीम-बुद्धि से असीम परमात्मा के कार्य का वर्णन किया जाये, नहीं हो सकता। बुद्धि रबड़ का एक थैला है। रबड़ के थैले में हवा भरो, हवा विशेष भरने से थैला फट भी सकता है। उसी तरह बुद्धि को समझो। ईश्वर को सुगम-रीति से जानने के लिए क्या करो ? बाहर में आपकी इन्द्रियाँ हैं, भीतर में मन है। मन से कुछ करते हैं। इसको बुद्धि से विचारते हैं। बुद्धि पीछे बनी। फिर मन और पीछे बाहर की इन्द्रियाँ बनीं। जो जितना पीछे बना, वह उतना स्थूल है। बुद्धि सूक्ष्म है। उससे स्थूल मन है। उससे और इन्द्रियाँ स्थूल हैं। बुद्धि को सारथी, मन को लगाम और इन्द्रियों को घोड़े कहा गया है। सबसे सूक्ष्म परमात्मा हैं। स्थूल-यंत्र से सूक्ष्म-तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। हाथ में बाँधने की घड़ी और दीवार में टाँगने की घड़ी दोनों में एक ही तरह के यंत्र हैं, किन्तु दोनों घड़ियों में एक ही औजार से काम नहीं होता। बड़ी घड़ी के लिए बड़े-बड़े और छोटी घड़ी के लिए छोटे-छोटे यंत्र

काम में लाते हैं। परमात्मा अत्यन्त-सूक्ष्म है, इन्द्रियाँ अत्यन्त-स्थूल हैं।

❀ ज्ञानियों ने कहा है कि ईश्वर को तुम अपने से पाओगे। जैसे हमारी आँख खराब हो जाये, तो हम संसार की किसी चीज को नहीं देख सकते हैं। कोई चीज नहीं देखने के कारण संसार में कोई चीज नहीं है, यह बात नहीं। जिनको आँख है, वे देखते हैं। जिसके द्वारा हम ईश्वर को पायेंगे, वह है चेतन-आत्मा। परमात्मा को हाथ से कोई पकड़ नहीं सकता। भीतर में मन, बुद्धि हैं। ये भी बाहर के पदार्थ पर आश्रित हैं। मन-बुद्धि भी ईश्वर को नहीं जान सकते। इनके परे चेतन-आत्मा है। इसी से ईश्वर को जाना जाता है। इसी के कारण इन्द्रियों को ज्ञान है। उसका निजी-काम ऐसा है कि मन, बुद्धि आदि को छोड़कर जो होता है तब जो मिलता है, वह है ईश्वर।

❀ बुद्धि से परे तत्त्व को पाने के लिए बाहर-बाहर जाना है ? पृथ्वी पर या जल पर अथवा आसमान में वायुयान पर उड़ना है ? बाहर में किसी तरह उड़ो, जैसे कि पहले अष्ट-सिद्धि प्राप्त योगी लोग अपने स्थूल-शरीर से आकाश में उड़ते थे, उस तरह उड़ो। अथवा किसी भी तरह वायुयान से उड़ने पर मन, बुद्धि के परे नहीं जा सकते।

❀ **"घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।"**

-दादू दयाल जी

चार जड़ के और एक चेतन का—इन पाँचो आवरण को उतारो। पाँचवाँ आवरण तो चेतन-चोला है। इस स्थूल-शरीररूपी घर के अन्दर जो सूक्ष्म-शरीररूप घर है, उस घर को पवित्र रखो। स्थूल-शरीर को ज़ल से धोओ। सूक्ष्म-शरीर तब धुलता है, जब इसपर से स्थूल का आवरण उतरता है। कारण तब धुलता है, जब इसपर से सूक्ष्म् का आवरण उतरता है। महाकारण तब धुलता है, जब इसपर से कारण-शरीर का आवरण उतरता है और कैवल्य (चेतन) तब धुलता है, जब इसपर से महाकारण का आवरण उतरता हैं।

इस प्रकार पाँचो आवरण उतर जाने पर प्रभु छिपकर नहीं रहते। जैसे पलक का आवरण उठाने पर या किसी के मोतियाबिन्द के पत्थर को निकाल देने पर उसको सूझने लगता है, उसी तरह जीवात्मा के ऊपर से आवरण हट जाने पर परमात्मा दीखते हैं।

❀ कितने लोग कहते हैं कि ईश्वर आकर स्वयं दर्शन देंगे, जिस रूप में हम दर्शन करना चाहेंगे। रूप को देखने से ईश्वर-स्वरूप का दर्शन नहीं होगा। राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव आदि अनेक रूप हैं। और इन सब रूपों को लोग ईश्वर मानते हैं। ठीक है, लेकिन क्या अनेक रूपों में होने के कारण ईश्वर अनेक हैं ? ईश्वर अनेक हैं, यह किसी को मंजूर नहीं हो सकता। ऐसा कह सकते हैं कि सब रूपों में एक ही ईश्वर है। उस एक ईश्वर को जानने के लिए क्या उपाय है ? अपने को पवित्र करो। संत दादू दयाल जी ने कहा–

"घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।"

और सन्त कबीर साहब ने कहा–

"घूँघट का पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे।"

जब ऐसा हो, तब ईश्वर का दर्शन होगा।

❀ पहले अव्यक्त-भाव में नहीं रह सकोगे, तो व्यक्त-रूप में ईश्वर का भाव चाहिये, गुरु-रूप में या अवतारी-रूप में। कबीर साहब और नानक साहब ने गुरु-रुप को ईश्वर-रूप मानने कहा। आप किसी अवतारी में ही वह भाव रखिये तो ठीक है; किन्तु और आगे चलिये; स्थूल से सूक्ष्म की ओर भी चलिये। ईश्वर के सूक्ष्म-रूप में आसक्त-होइये। श्रीमद्भगवद्गीता बतला देती है कि ईश्वर का अणोरणीयाम्-रूप है। उपनिषद् भी अणोरणीयाम् कहती है। इसी को हमलोग विन्दु कहते हैं। यह दर्शन सूक्ष्म-दर्शन है। स्थूल-व्यक्त छूट गया, सूक्ष्म-व्यक्त उपस्थित हो गया। केवल इतना ही कहकर सन्तों ने नहीं छोड़ा। विवेकानन्द जी ने कहा–"वह प्रभु अन्तर्दृष्टि से ही देखा जाता है।" जब केवल आत्मा ही रहे, तब जो आत्मदृष्टि होती है, उस अन्तरात्म-दृष्टि से परमात्म-दर्शन होता है। आत्मा ही दृष्टिरूप है और आत्मा ही सब ज्ञान को जानती है। केवल चेतन-आत्मा हो, तब अंग-विहीन आत्मा से परमात्म-स्वरूप की पहचान और प्राप्ति होती है।

❀ इस आँख से ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। कोई कितना भी विश्वास दिलावे कि इसी आँख से ईश्वर का दर्शन होगा, लेकिन यह बात विश्वास के योग्य नहीं है। इन्द्रिय-रहित होकर चेतन-आत्मा को अपने आपे से ईश्वर का दर्शन होता है। ईश्वर-दर्शन के लिए वह भजन है, जिससे कि

वह सब शरीरों से ऊपर उठ जाती है। ईश्वर की सहायता भी इसके लिए मिलती है। वह ईश्वर-दर्शन कर कृत-कृत्य हो जाती है। परमानन्द को प्राप्त करती है, नित्यानन्द को प्राप्त करती है। वह उस सुख को पाती है, जो सुख परमात्मा को है।

❁ सन्तों ने यह भी बता दिया है कि संसार में पाँच विषय वा पंच तन्मात्राएँ हैं। इनसे ऊँचे में इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों से इनका ज्ञान होता है। इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से ऊपर मूल-प्रकृति, उससे ऊपर अव्यक्त है। अव्यक्त जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आवे। मूल-प्रकृति या जड़-प्रकृति अव्यक्त है। अव्यक्त जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आती है। इससे परे अव्यक्त चेतन-प्रकृति है। इससे परे ईश्वर का स्वरूप है। सन्तों ने इसी स्वरूप को पकड़ने का यत्न बताया है। जो इसका यत्न जानकर अभ्यास करेगा, वह अन्त में परमात्मा को पाकर कभी दुःख में नहीं पड़ेगा।

❁ दो प्रकार के भक्त होते हैं। एक वह कि जैसा रंग-रूप में हम भगवान् को चाहते हैं, वैसे रंग-रूप में आकर वे मुझे दर्शन दें। दूसरा यह चाहता है कि—मैं अपनी ओर से क्या कहूँ आने के लिए, वे तो सर्वव्यापी हैं ही, इसलिए हे प्रभु! मुझे वैसा बना दीजिये कि मैं आपके सर्वव्यापक-स्वरूप को देख सकूँ। सन्त-लोग, गुरु-लोग कहते हैं कि तुम ऐसा प्रयास करो कि तुम स्वयं वहाँ जा पहुँचो, जहाँ ईश्वर की पहचान हो। फिर यह ज्ञान उदय होता है कि जाऊँ कहाँ ? वह तो सर्वत्र है। तब अड़चन क्या है कि यहाँ पहचान नहीं होती ? गुरु कहते हैं—तुम इन्द्रिय-ज्ञान में बराबर रहा करते हो। कभी जाग्रत् में, कभी स्वप्न में, कभी सुषुप्ति में रहते हो। इन तीनों अवस्थाओं में तथा इन्द्रिय-ज्ञान में रहकर ईश्वर-दर्शन नहीं होता है। इस बात को याद रखो। जो इस बात को याद नहीं रखता, वह वहाँ ईश्वर के लिए दौड़ता है, जहाँ ईश्वर की प्रत्यक्षता नहीं है।

❁ अर्जुन अपने पुत्र के निधन पर शोकित था। श्री कृष्ण भगवान् उसको चन्द्रलोक ले गये और उसके बेटे को दिखलाया। वहाँ बेटा-बेटा कह कर अर्जुन ने उसको पुकारा। वह बड़ा फटकारा और कहा—यहाँ कौन तुम्हारा बेटा है ? एक समय था, जब मैं तुम्हारा बेटा था। अब वह समय चला गया, तुम जाओ।

आज के वैज्ञानिक लोग चन्द्रलोक गये हैं। लेकिन उनको पता नहीं लगा है कि वहाँ, कहाँ क्या-क्या है ? उनको हारमोनियम जैसी आवाज सुनाई दी थी। कहीं भी जाओ जहाँ तक पाँच तत्त्व हैं, स्थूल वा सूक्ष्म है, जहाँ तक इन्द्रिय-ज्ञान में जाओ; माया का ज्ञान है। कहीं भी ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। यह सुनकर लोग समझेंगे कि धामों का खण्डन हो गया और हमलोग धाम-दर्शन के लिए जाते हैं। मैं सत्य कहता हूँ, चाहे खण्डन हो वा मंडन हो। कितने धामों से घूमकर आये उन्होंने कहा कि प्रत्यक्ष-दर्शन नहीं हुआ। यदि मेरी बात का विश्वास नहीं हो तो तीर्थों और धामों में घूमकर देख लो।

❁ बाहर भ्रमण करते-करते लोगों को क्या-क्या हुआ, सो पुराण पढ़कर देख लो। बाहर में जो दर्शन होगा, वह माया का दर्शन होगा। माया के दर्शन में दुःख अवश्य उठाओगे। मनु-शतरूपा की कथा तुलसीकृत रामायण में लिखी है। और कश्यप-अदिति का तप भी लिखा है।

उन्होंने कितना तप किया ? पढ़कर देखो। जैसे रूप का दर्शन चाहते थे, वैसे रूप का दर्शन हुआ। वह क्या था ? माया-रूप का दर्शन था, सो हुआ। उनसे माया का वरदान माँगा, यानी उनके जैसा पुत्र माँगा। कश्यप जी ब्राह्मण थे और क्षत्रिय हुए। ब्राह्मण का क्षत्रिय होना उनकी उन्नति नहीं कही जा सकती। दशरथ को कष्ट नहीं हुआ, दुःख नहीं हुआ, ऐसा रामायण नहीं बताता। उनको पुत्र नहीं था तो उसके लिए वे दुःखी थे। तप के कारण शरीर में बहुत बल था, किन्तु मनोविकार नहीं छूटा था। इसलिए माया सम्बन्धी दुःख उनका नहीं छूटा। गो० तुलसीदास जी साफ-साफ कहते हैं, छिपाते नहीं हैं। वे कहते हैं दशरथ कितने बलवान थे –

"सुरपति बसइ बाँहुबल जाकें।
नरपति सकल रहहिं रुख ताकें।।"

ऐसे वे प्रभावशाली थे। फिर–

"सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई।।"

तुलसीदास जी की कलम से ऐसा लिखा गया, आश्यर्च की बात है। लेकिन क्या किया जाये ? उन्होंने सत्य-सत्य लिखा, जैसा लिखना था–

"सूल कुलिस असि अँगवनिहारे।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।"

अब तुलसीदास जी और क्या कहेंगे ? इसीसे कहता हूँ। अगर रामायण सत्य है तो यह बात सत्य है। मैं अपने से देखकर नहीं कहता। मनोविकार पर दशरथ जी को विजय नहीं थी। लेकिन जो अपने अन्तर्मुख होते हैं और अभिलाषा रखते हैं कि शरीर-इन्द्रिय-ज्ञान से हीन हो जाऊँ, तब दर्शन करूँ; तो उनको ये बातें होती हैं कि उनको निर्मायिक-रूप का दर्शन होता है, जहाँ कोई विकार नहीं, कोई कष्ट नहीं।

❀ ईश्वर वही है, जिसका दर्शन केवल चेतन-आत्मा से होता है। इसको याद रखो जितने बैठे हुए हो, नहीं तो भ्रम में दौड़ते फिरोगे।

"ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद,
अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल,
परम सुगन्ध कहाँ तें आयो।।"

– गो0 तुलसी दास जी

यह मृगा में ज्ञानहीनता है, कि वह कस्तूरी की सुगन्ध बाहर में खोजता है। वैसे ही उसमें ज्ञानहीनता है, जो ईश्वर को बाहर-बाहर खोजता है।

"ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेवार तृन छायो।"

सरोवर में निर्मल-जल है, लेकिन संवार और खर से आच्छादित है। उसके आवरण को हटाओ, निर्मल-जल मिलेगा। इसी तरह ईश्वर ने जो स्थूल, सूक्ष्म-रूप में मायिक-आवरण का पसार किया है। उसको पार करो, ईश्वर प्रत्यक्ष मिलेंगे।

❀ जिस तरह बिना कील के जाँता (चक्की) नहीं चल सकता, उसी तरह इस संसार की भी कोई कील होनी चाहिये। सारे संसार को देखते हैं। यह चाक के समान घूमता है। तारे एक ही जगह पर रहते हैं, सो नहीं। सूर्य और चन्द्रमा भी एक ही जगह पर नहीं रहते, जिस कील पर ये सब घूमते हैं, वही कील परमात्मा हैं। उनसे ही जितने पिसान हैं, पीसे जाते हैं। जो परमात्मा-रूपी कील से चिपके रहते हैं, वे पीसे नहीं जाते। संत कबीर साहब ने बड़ा अच्छा कहा है–

"काल रूप चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात।
अगुन सगुन दुइ पाटला, तामें जीव पिसात।।
आसे पासे जो रहै, निपट पिसावै सोय।
कीला से लागा रहै, ताको विघ्न न होय।।"

सन्त लोग यही बात कहते हैं, कील से लगे रहो।

❁ गुरु के द्वारा ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करके उनके स्वरूप को पाने के वास्ते जो साधना अपेक्षित है, वह करनी चाहिये। तब ईश्वर का प्रत्यक्ष-ज्ञान हो जायेगा। केवल श्रवण, मनन से प्रत्यक्ष-दर्शन नहीं होगा, तब मन कहेगा कि प्रत्यक्ष-दर्शन नहीं हुआ।

मन्दिरों में जाकर दर्शन कीजिये। दर्शन के बाद मन यही कहेगा कि प्रत्यक्ष-दर्शन नहीं हुआ। सन्तमत न निर्गुण को छोड़ने कहता है, न सगुण को। निर्गुण और सगुण—दोनों को पकड़ो। लेकिन पकड़ने और छोड़ने का जो तरीका है, सो गुरु से जानो।

❁ **अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे।**
उदेव ग्मन्त उदभिः

— सामदेव

हे आत्मन्! प्रभो! हे वाणियों से प्राप्त होनेहारे! जिस प्रकार जल अन्य जलों में मिल जाते हैं, उसी प्रकार हम अपनी कामनाओं-द्वारा तेरे पास आते हैं और तेरे साथ मिल जाते हैं।

ब्रह्म को (वेद में) अप्रतर्क्य, 'अवाङ् मनसगोचर' कहा है, और कठोपनिषद् अ० 1, वल्ली 2 में है—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्।।

यह आत्मा वेदाध्ययन-द्वारा प्राप्त होनेयोग्य नहीं है और न धारणा शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है। यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त किया जा सकता है, उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

इसलिए जिस वाणी से आत्मा! प्रभु! प्राप्त होनेवाला है, वह अवश्य ही ध्वन्यात्मक अनाहत नाद होना चाहिये। और जिस तरह जल अन्य जल से

मिल जाता है, उसी तरह जीव ब्रह्म में मिल जाता है। सन्त लोग भी ऐसा ही कहते हैं–

"जौं जल में जल पैठ न निकसे, यों ढुरि मिला जुलाहा।"

–कबीरसाहब

"जल तरंग जिउ जलहि समाइआ।

तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ।।"

–गुरुनानक

श्रीरामकृष्ण परमहंस जी की वाणीः–

जब भीष्म पितामह देहत्याग के समय शरशय्या पर पड़े हुए थे, तब एक दिन उनके नेत्रों से आँसू निकलते देख अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा, "हे सखे! बड़े आश्चर्य की बात है कि पितामह, जो सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी और अष्ट वसुओं में से एक हैं, शरीर त्यागते समय माया (ममता) से रो रहे हैं।" भगवान श्रीकृष्ण ने जब यह बात भीष्म पितामह से कही, तो उन्होंने कहा, "भगवान्, आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि मैं ममता के कारण नहीं रो रहा हूँ, मेरे रोने का कारण यह है कि भगवान की लीला मैं आज तक कुछ भी न समझ सका। जिनका नाम मात्र जपने से मनुष्य अनेकानेक विपदाओं से तर जाता है, वे ही भगवान श्रीमधुसूदन, पाण्डवों के सारथि और सखा रूप विद्यमान हैं, पर फिर भी पाण्डवों की विपदाओं का अन्त नहीं होता।"



श्री सद्‌गुरवे नमः



ईश्वर-उपासना और इसका प्रकार

❀ उपासना को आराधना भी कहते हैं। एकान्त में बैठ-बठकर जप करो और ध्यान करो। जप-विधि को जानो और ध्यान-विधि को जानो। जप-ध्यान करने से ईश्वर की ओर जाया जा सकेगा—पहुँचा जा सकेगा। ईश्वर की ओर जाना ईश्वर की भक्ति है। यह उपासना है—आराधना है।

❀ यदि आप किसी स्थूल मूर्त्ति की उपासना तक ही रहे, तो चौरासी से नहीं छूट सकते। स्थूल-उपासना के द्वारा मन को कुछ एकाग्र किया जाता है और उसके बाद सूक्ष्म-ध्यान में जाना होता है। सूक्ष्म में जाने से चैन मिलता जाता है और ईश्वर की तरफ से अवलम्ब भी मिलता है।

❀ साधारणतया मन के वास्ते 'मैं', शरीर के वास्ते 'मैं' का व्यवहार करते हैं। मन और शरीर के मिलने से जो सुख होता है, वही वह जानता है, जो पाता है, इसलिए संतों ने कहा है कि उपासना करो। उपासना करने से स्वयं जानोगे। इसको कोई समझा नहीं सकता । उसको सुख मिला है, इतना ही कहा जायेगा। ईश्वर की उपासना में सुख मिलता है, कहाँ जाने से मिलता है ? अंदर में जहाँ रहे, वहाँ स्थिर रहे, तो उस सुख को धीरे-धीरे चखेगा।

❀ चाहे प्रतिमा बनाओ वा तस्वीर बनाओ, कोई हर्ज नहीं, लेकिन ध्यान में मनोमय-रूप बनाये जाते हैं। संतों ने कहा—"केवल यहीं तक नहीं रहो, इससे आगे बढ़ो।" यह स्थूल-उपासना है। इससे आगे बढ़ने में जो उपासना होती है वह सूक्ष्म-सगुण-उपासना है। इसका आरम्भ विन्दु- ध्यान से होता है। पहले सगुण-साकार-रूप-उपासना, फिर सूक्ष्म-सगुण-रूप-उपासना है, फिर सूक्ष्म-सगुण-अरूप-उपासना है इसको खत्म करके तब जो उपासना है वही निर्गुण-निराकार-उपासना है। निर्गुण को भी पारकर गया तो वहाँ केवल एकीभाव रहता है। इस चेतन से भी परे-तत्त्व को चीह्न लेने पर हृदय की ग्रंथि खुल जाती है, सारे संशयों का नाश हो जाता है और तब कर्मबन्धन टूट जाते हैं।

❀ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–"**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मरयुध्यच।**" मन पर नियन्त्रण रखना चाहिये। लेकिन नियत्रण रखना कठिन होता है। अनियन्त्रित-मन के कारण जो नहीं करने का वह भी कर लेते। मन पर नियन्त्रण उपासना से होता है।

❀ किसी एक उपासना या सम्प्रदाय को श्रेष्ठ कहना, दूसरे को न्यून समझना गलत बात है। जो जिस सम्प्रदाय में हैं, उसमें जो उपासना है, वह करें। किसी को नीच, किसी को ऊँच कहना हमारे गुरु महाराज (बाबा देवी साहब, मुरादाबाद) के ज्ञान में पाप है। किसी सम्प्रदाय से लड़ाई-झगड़ा मत करो। सभी मिलकर रहो। ईश्वर का भजन करो। सभी संतों ने सदाचार-पालन करने कहा, ध्यान करने कहा और सत्संग करने कहा। इन तीनों को नित्य किया कीजिये।

❀ अच्छे समाज में रहते हुए ईश्वर की उपासना करो। हमलोगों के यहाँ ठाकुरवाड़ी है। उसमें पूजा के समय बाजा बजाते हैं। उसका तात्पर्य है कि उसमें सभी लोग भाग लें। मुसलमान लोग नमाज पढ़ते हैं। ईसाई भी सामूहिक प्रार्थना करते हैं। जितने आस्तिक लोग हैं, सभी सामूहिक प्रार्थना करते हैं। वेद में यही आज्ञा है–"सभी कोई आपस में मिलकर रहो।"

❀ जहाँ ईश्वर-उपासना है, वहीं आत्मरत होना होता है। ईश्वर-उपासना में सार बात यह है कि अपने अन्दर में सिमटाव कि कोशिश करो। उत्तम रीति से ईश्वर की उपासना करो। अन्तर प्रविष्ट करो । अपना निशाना अपने अन्दर है, अपने को उस पर लगाये रखो। यह दृष्टियोग है। आत्मरत होने का यहाँ से आरम्भ होता है। आरम्भ नहीं तो मध्य कहाँ ? और मध्य नहीं, तो अन्त कहाँ ?

❀ किस तरह की उपासना हो, यह ज्ञान धर्म के द्वारा लोगों को मिलता है। सभी धर्मों के लोगों के लिए उपासना है। अपने देश, अपने प्रांत के लोग इस पर गौर करें। सब मिलकर ईश-उपासना करें, यह बहुत अच्छी बात है। संतों ने इसके लिये कोशिश की। गुरुनानक देव, संत कबीर साहब आदि संतों ने इसके लिए बहुत कोशिश की। इनके बाद के लोगों ने भी कोशिश की। संतों ने यह ज्ञान दिया, जो सब धर्मों के लोगों को मानने में कोई उजूर नहीं हो।

❁ परमात्मा इन्द्रियों को ग्रहण होने योग्य नहीं हैं, उनकी उपासना कैसे हो ? उपासना का आरम्भ जप से होता है। इसके बाद मानस-ध्यान है। इससे आगे सूक्ष्म-उपासना–दृष्टियोग और सुरत-शब्द-योग है। इस उपासना में संसार का कुछ भी सहारा नहीं लेना पड़ता है। बाहरी कोई चीज नहीं लेनी है अपने को ले चलो, जहाँ ईश्वर–परमात्मा है। उनको ग्रहण करने में जीवात्मा ही सक्षम है।

❁ **"त्वामीडे अध द्विता भरतो**
वाजिभिः शुनम् ईजे यज्ञेषु यज्ञियम्।।"

– ऋगवेद

हे सर्वप्रकाशक! मनुष्य मात्र सुखप्रद सर्वव्यापक तुझको सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार से ही ज्ञानयुक्त उपायों से उपासना करे। और पूज्य तुझको प्राप्त होता है।

इस मन्त्र से यही ज्ञात होता है कि सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में परमात्मा की उपासना वेदानुकूल है। मानस जप और मानस ध्यान स्थूल-सगुण-रूप उपासना है। एकविन्दुता वा अणु से भी अणु रूप प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना तथा आन्तरिक विविध ज्योतियों का दर्शन सूक्ष्म-सगुण-रूप-उपासना है, सारशब्द अर्थात् शब्दब्रह्म-स्फोट' के अतिरिक्त दूसरे सब अनहद नादों का ध्यान सूक्ष्म, कारण और महाकारण सगुण-अरूप-उपासना है और सारशब्द का ध्यान निर्गुण अरूप-उपासना है। सम्पूर्ण उपासना की यहीं समाप्ति है। उपासना को सम्पूर्णतः समाप्त किये बिना शब्दातीत पद (अनाम) तक अर्थात् परम प्रभु सर्वेश्वर तक की पहुँच प्राप्त कर परम मोक्ष का प्राप्त करना अर्थात् अपना परम कल्याण बनाना पूर्ण असम्भव है।



श्री सद्गुरवे नमः



मानस-जप और उसकी विधि

❀ ईश्वर की भक्ति में जप का प्रथम स्थान है। जो मंत्र गुरु दें, उनका जप जब मुख से किया जाता है, वह मौखिक-जप कहलाता है। उसी को जब धीरे-धीरे होंठ ओर जिभ्या डुलाते हुए जप करते हैं, तो वह उपांशु कहलाता है; उसको केवल अपना कान ही सुनता है, उसे कोई दूसरा नहीं सुनता है। उसके बाद तीसरा है मानस-जप, उसमें होंठ और जिभ्या नहीं हिलती, केवल मन-ही-मन जप किया जाता है। इसे अपना कान भी नहीं सुनता है। यह एक प्रकार का ध्यान ही है। इसमें बड़ी एकाग्रता होती है।

❀ मानस-जप जपों का राजा है। यह केवल मन से ही जपा जाता है। वाचिक और उपांशु से हजार गुणा श्रेष्ठ है मानस-जप। मानस-जप एक प्रकार से ध्यान ही है। तीनो में विशेष मानस-जप है। यह सब जपों से श्रेष्ठ है।

❀ जिनको शरीर से कुछ काम नहीं हो सकता, उनको बेकार सांसारिक वस्तुओं की चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उस चिन्ता से तो कुछ होता नहीं है। तब फिर बेकार सांसारिक चिन्ता से क्या लाभ ? ईश्वर के नाम को मन-ही-मन जपते रहो, इसको मन में घुमाते रहो। जिनको ईश्वर सम्बन्धी जो शब्द प्रिय हो, उसको जपो। चाहे राम, चाहे शिंव, चाहे कृष्ण, जो ईश्वर-वाचक शब्द हो, उसको जपो।

❀ सुमिरण का अर्थ स्मरण करना है। तरह-तरह से स्मरण या याद किया जा सकता है। सुमिरण करने से क्या गुण—क्या फल होता है, सो भी कहा। सुमिरण से सुख होता है, दुःख भाग जाता है। अन्त में परमात्मा भी मिल जाते हैं। राजा-रंक कोई हो, बड़ा वही है जो सुमिरण करता है। धन में बड़ा हो, प्रतिष्ठा में बड़ा हो, जाति में बड़ा हो, किन्तु सुमिरण नहीं करता है, तो पारमार्थिक दृष्टि से वह बड़ा नहीं है।

❀ सुमिरण तीन तरह से होता है—एक तो जोर-जोर से पुकारकर, दूसरा धीरे-धीर बोलकर, जिसमें केवल होंठ हिलते हैं और तीसरा है, जिसमें मन-ही-मन जपते हैं। मन-ही-मन जप करने से मन की स्थिरता

आती है।

"नाम जपत स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत शब्द एकै भया, जलही ह्वैगा मीन।।"

– संत कबीर साहब

लोग मुँह से मिष्ट वचन, अश्लील वचन और कटु वचन बोलते हैं; किन्तु ईश्वर का नाम जपने के लिए एकाग्र मन होना चाहिये।

"बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महौला खलक से, पड़ा धनी से काम ।।
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छान ।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जान।।
नाम जपत कुष्ठी भला, चुई चुई पड़ै जो चाम।
कंचन देहि केहि काम का, जा मुख नाहीं नाम।।"

– संत कबीर साहब

ईश्वर के गुण का वर्णन करते-करते जपने वाला उस रंग में रंग जाता है। जो समझ-समझकर जपता है, वह ईश्वर के रंग में रंग जाता है। जैसे कंगाल पैसे को नहीं भूलता, वैसे ही पल-पल नाम को जपो, एक घड़ी भी मत छोड़ो।

❁ गुरु से जो मंत्र पाये हो, उसको जपो। किसी मंत्र में विशेषता नहीं है, विशेषता जपने में है। किन्तु जपने में भी ख्याल रखो, ऐसा न हो कि–

"माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुँह माहिं।
मनुआँ तो दहु दिशि फिरै, यह तो सुमिरण नाहिं।।"

– संत कबीर साहब

तब जप कैसा होना चाहिये, तो कहते हैं–

"तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होई।
कह कबीर तेही पलक को, कलप न पावे कोई।।"

– संत कबीर साहब

यदि कहो कि गो० तुलसी दास जी ने तो कहा है–

"भाव कुभाव अनख आलसहू।
नाम जपत मंगल दिसि दसहू।।"

तो जानना चाहिये कि प्रेम से नाम जपने से जो होगा सो कुभाव से कहने से नहीं होगा। अनख–क्रोध से भी नाम लो किन्तु मन से नाम लो। सोकर उठने से आलस्य होता है तो उस समय तो कोई विशेष बात मन में नहीं रहती है, एकाग्रता से जपना है।

"नाम रट्त स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत शब्द एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।"

❀ जप की संख्या पुराने की कोई आवश्यकता नहीं है। माला पर एक लाख जाप कर लिया लेकिन एकाग्र मन से कितनी बार ? एकाग्रतापूर्वक जितनी बार जप हो वही श्रेष्ठ है। जप तीन प्रकार के होत हैं-वाचिक, उपांशु और मानस। वाचिक जप वह है जो आवाज के द्वारा जपा जाये। उपांशु वह है जो अपने मुँह के अन्दर ही बोलकर जपा जाये, इसमें होठ तो हिले, पर आवाज कोई दूसरा व्यक्ति न सुन सके। मानस जाप वह है जो केवल मन-ही-मन किया जाये, जो अपना कान भी नहीं सुने । मानस–जप सब जपों का राजा है। मुँह से भी जपो, कोई हानि नहीं, लेकिन जप के प्रकारों में मानस-जप सर्वश्रेष्ठ है।

❀ ईश्वर के कितने ही नाम हैं, जो लेना चाहो, लो।

"दादू सिरजनहार के, केते नाँव अनंत।
चित आवै सो लीजिए, यौं साधू सुमिरै सन्त।।"

– दादू दयाल जी

लेकिन जो मंत्र गुरु से पाओ, उसी को जपो।

❀ राम-राम वा गुरु कुछ कहो। मैंने अपने लिए एक शब्द रख लिया है, वह है गुरु। यदि कोई कहे कि गुरु शब्द क्यों पकड़े हो ? तो मैं पूछता हूँ कि नास्तिक वा आस्तिक कोई हो, सबको गुरु है कि नहीं ? जिन्होंने नास्तिकता सिखाई है, वे भी उनके गुरु हैं। इसीलिए नास्तिक वा आस्तिक कोई क्यों न रहे, सबको गुरु है। इसीलिए मैंने अपने लिए गुरु शब्द रखा है। गुरु-प्रदत्त मंत्र का वाचिक, उपांशु और मानस जप होता है।

❀ मानस जप करो। सुषुम्ना में वृत्ति रखकर नाम जपो।

❀ स्तुति करने से ही काम समाप्त नहीं होता। मिलने के लिए कोशिश करो। जैसे बच्चा माता की गोद में जाने के लिए उठता भी है और

बाँह भी पसारता है, उसी तरह तुम भी उठो और अपना बल भी करो, यदि अपना बल नहीं है तो परमात्मा बल देगा। बाँह उठाने के लिए नाम-भजन है।

मन में स्थिरता आवे, एकाग्र मन से जप हो। जिस शब्द का जप होता है, वह ईश्वर का गुण प्रकट करता है। गुण बखान करने वाला शब्द है। जैसे 'राम' कहा, तो इसका अर्थ हुआ सर्वव्यापी–कहीं से हीन नहीं–सब में रमण करने वाला अथवा योगी जिसमें रमण करते हैं, वह राम है। इससे ईश्वर का गुण प्रकट होता है। जिसका गुण प्रकट होता है, उस ओर मन लगता है । उस ओर लोभ होता है कि वह गुण मुझमें हो अथवा उस गुण से मुझको लाभ हो। जिसकी ओर किसी को होना हो, उसके विषय में वह विशेष गुण सुने तो वह उस ओर हो जायेगा। कौरवों की इच्छा हुई कि पाण्डवों को किसी तरह काशी भेजा जाये। इसलिए जब कभी पाण्डव लोग उनके निकट आते, खास करके जब युधिष्ठिर उन लोगों (कौरवों) के पास जाते तो वे लोग काशी की प्रशंसा करने लगते। काशी के विषय में विशेष सुनते-सुनते युधिष्ठिर की इच्छा काशी जाने की हो गई और वे काशी चले गये । इसका आशय यह कि किसी ओर होने के लिए उस ओर की अच्छी बातें विशेष सुनिये, उस ओर मन झुक जायेगा। नाम रटते-रटते उसका अर्थ भी मालूम हो तो उस ओर मन झुकेगा। जपते-जपते ईश्वर दर्शन देते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। यह भी अविश्वास करने योग्य नहीं, किन्तु दर्शन में अन्तर है। जपते-जपते ध्रुव को दर्शन हुआ। जंगल में पाण्डवों को बारम्बार भगवान् के दर्शन हुए उनके स्मरण से।

मैं कहता हूँ कि इस दर्शन से संसार के अन्दर के जो-जो काम हैं, उनमें एक काम बनता है तो दूसरा नहीं बनता है। यह परमात्म-दर्शन नहीं है, मायिक-दर्शन है। क्षेत्र का दर्शन होता है, क्षेत्रज्ञ का नहीं।

❁ केवल वर्णात्मक नाम के जप से क्षेत्रज्ञ का दर्शन नहीं होगा। नाम जप से किसी के प्रति श्रद्धा होती है और भजन करने में श्रद्धालु भक्त आगे बढ़ता है। भगवान् के क्षेत्र-रूप का दर्शन भी बड़े भाग्य से मिलता है।

❁ बाहर में आँख से आँसू बहे ओर मन में रहे कि लोग हमको भक्त समझें तो यह कीर्त्तन नहीं है। जप तो ऐसा हो कि उसकी मादकता आ

जाये। केवल माला में जप करो, मन भागे तो क्या होगा ? ऐसा जप ठीक नहीं। एकाग्र मन से जो जप होता है, वही जप है।

संत दूलन दास जी की वाणी–

कोई बिरला यहि विधि नाम कहै।टेक।।

मंत्र अमोल नाम दुई अच्छर, बिनु रसना रट लागि रहै।।
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सुरति धरनी दिढ़ाई गहै।।
दिन और रात रहै सुधि लागी, यहि माला यहि सुमिरन है।।
जन दूलन सतगुरन बतायो, ताकी नाव पार निबहै।।

मनुस्मृतिः–

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणेः ।
उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतिः।।

अर्थ–दर्शपौर्णमासरूप कर्म–यज्ञों की अपेक्षा जपयज्ञ दशगुणा श्रेष्ठ है। उपांशु जप सौ गुणा और मानस-जप सहस्र गुणा श्रेष्ठ है।

शास्त्रवचनः–

मनोमध्ये स्थितम् मंत्रो, मंत्र मध्येस्थितंमनः।
मनो मंत्रसमायोगो, जप इत्यभिधीयते।।

अर्थ–मन में मंत्र और मंत्र में मन मिल जाये, इस प्रकार मन और मंत्र के समायोग को जप कहते हैं।



श्री सद्गुरवे नमः



मूर्त्तिपूजन और मानस-ध्यान

❀ मानव-ध्यान में कोई स्थूल-रूप मन में बनाकर देखा जाता है। अपने-अपने इष्टदेव के रूप को मन में बनाकर देखना, मानस-ध्यान कहलाता है। यदि विचार करेंगे तो मूल में गुरु आ ही जाते हैं। क्योंकि शिक्षा देनेवाले को गुरु कहते हैं। इसलिए हमने तो गुरु का रूप रख लिया है और आप लोगों को भी सलाह देता हूँ कि गुरु-रूप का ध्यान कीजिये। यदि गुरु में श्रद्धा नहीं हें, किसी दूसरे इष्टदेव में श्रद्धा है तो जो कीजिये। यदि गुरु में श्रद्धा नहीं है, किसी दूसरे इष्टदेव में श्रद्धा है तो जो कुछ करना है, सो कीजिये।

❀ सुतीक्ष्ण नाम के एक मुनि थे। वे भगवान् श्रीराम के बड़े भक्त थे। वे खूब ध्यान करते थे। स्थूल-ध्यान में इतने तल्लीन हो जाते थे कि उनको बाहर की कुछ भी सुधि नहीं रहती थी। जंगल में घूमते हुए श्रीराम जी उनके आश्रम में भी गये थे। जब सुतीक्ष्ण मुनि ने सुना कि श्रीराम जंगल आ गये हैं, तो वे प्रेम में मग्न हो गये और वे उस रास्ते में जाने लगे, जिस रास्ते से श्रीराम उनके आश्रम आ रहे थे। सुतीक्ष्ण मुनि अधिक दूर नहीं जा सके। प्रेमवश रास्ते में ही बैठकर ध्यान करने लगे। वे भगवान् के स्थूल-ध्यान में इतने तल्लीन हो गये कि जब श्रीराम उनके निकट आये तो उन्हें कुछ भी खबर नहीं हुई। श्रीराम ने उनको जगाने की कोशिश की; लेकिन वे जगे नहीं। तब श्रीराम ने, उनके जिस रूप का ध्यान वे कर रहे थे, उस रूप को बदल दिया। द्विभुजी-रूप को चतुर्भुजी-रूप में बदल दिया। ध्येय-रूप बदल जाने से सुतीक्ष्ण मुनि आकुल होकर उठ गये, जैसे मणियार साँप की मणि खो गयी हो। मुनि ने देखा कि सामने श्रीराम खड़े हैं। कहने का तात्पर्य है कि स्थूल-ध्यान में भी मन इतना लीन कर लिया जाता है कि बाहरी कोई ख्याल नहीं रहता है—नजदीक की भी बात मालूम नहीं पड़ती।

❀ आप अपने शरीर में हैं। वही अक्षर-पुरुष है। उस अक्षर-पुरुष को उस प्रभु का दर्शन होना चाहिये। दर्शन करने की कोशिश को भक्ति कहते

हैं। भक्ति को ही सेवा कहते हैं। इस सेवा से ईश्वर को कोई लाभ नहीं। लेकिन अक्षर-पुरुष को बड़ा लाभ है। दर्शन होते ही–जैसे अभी आपको मालूम होता है कि शरीर और संसार कष्टमय है, सो कष्टमय नहीं मालूम होगा। तब आप शरीर और संसार में रहो वा नहीं रहो, दोनों में ब्रह्म-सुख का एक ही ज्ञान रहेगा। इसी के लिए भक्ति अपेक्षित है।

❀ मानस-जप के बाद मानस-ध्यान आवश्यक होता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं–

"गुरु की मूरति मन महिं धिआनु।"

गुरु का ध्यान क्यों ? भगवान् राम की, भगवान् कृष्ण की तथा अन्य देवों की मूर्त्तियों का ध्यान क्यों नहीं ? इसलिए कि गुरु की मूर्त्ति प्रत्यक्ष है, लेकिन भगवान् की मूर्त्ति प्रत्यक्ष नहीं है। वे त्रेता में, द्वापर में हुए। उनकी जो मूर्त्तियाँ अभी हम मन्दिरों में देखते हैं, उनमें कुछ-न-कुछ हेर-फेर है। वैसे ही देवों की मूर्तियों में भी। लेकिन गुरु की मूर्त्ति तो प्रत्यक्ष है। इसलिए–

"गुरु की मूरति मन महिं धिआनु।
गुरु के शबदि मन्त्र मनु मानु।।
गुरु के चरण रिदै लै धारउ।
गुरु पार ब्रह्म सदा नमस्कारउ।।"

गुरु नानक साहब ने कहा और कबीर साहब कहते हैं–

"मूल ध्यान गुरुरूप है, मूल पूजा गूरु पाँव।
मूलनाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।"

लेकिन गुरु होना चाहिय, गोरू नहीं।

❀ मानस-पूजा कहते हैं कि मन से इष्ट के रूप को बनाकर मन उस पर लगाना मानस-पूजा है। या बाहरी सामग्री को मन में बना-बनाकर इष्ट पर चढ़ाना भी मानस-ध्यान ही है। मानस-पूजा को मानस-ध्यान कहें तो कोई हानि नहीं।

❀ भगवान बुद्ध की मूर्त्ति को भिक्षु लोग बनाते थे। लोगों ने पूछा कि "भिक्षु! यह क्या करते हो ? "उन्होंने कहा कि" इस मूर्त्ति को बनाते-बनाते इसका रूप मन में छप जायेगा।" इसी के लिए हमारे यहाँ प्रतिमा-पूजन है, केवल प्रणाम करके चले जाने के लिए नहीं। प्रतिमा देखो और उसका ध्यान करो।

❁ प्रतिमा का ध्यान क्यों किया जाये, इसका भी उत्तर है। एक मौलवी थे। उन्होंने कहा कि "हिन्दू लोग बहुत ईश्वर मानते हैं।" मैंने उनसे कहा कि "आप एक शरीर में रहते हैं, इसलिए आपका शरीर है। खुदा सबमें रहते हैं, इसलिए सब शरीर खुदा के हैं। इस तरह हिन्दू लोग सब रूपों को ईश्वर के रूप मानकर पूजते हैं।" ईश्वर सबमें रहते हैं जैसे तुम घर में रहते हो, तुम घर नहीं हो। मूर्त्ति में परमात्मा है, मूर्त्ति परमात्मा नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ कहकर इसको अच्छी तरह समझाया गया है। मूर्त्ति-पूजा इसलिए है कि शक्ल का ध्यान करो। मूर्त्ति में ईश्वर हैं; मूर्त्ति का ध्यान करो, इससे एकाग्रता होगी, किन्तु इससे पूर्ण सिमटाव नहीं होगा।

❁ पहले से भी यह बात है कि प्रतिमा-पूजन बहुत जोरों से है। प्रतिमा-पूजन में अपने इष्ट का भाव उस प्रतिमा में रखते हैं। नवधा-भक्ति में प्रतिमा-पूजन का लेशमात्र भी संकेत नहीं है। संतों का संग और गुरु-सेवा करने को कहा। भगवान् राम ने कहा–

"मोतें संत अधिक करि लेखा।"

❁ "गुरु पारब्रह्म सदा नमस्कारउ" गुरु नानक देव जी ने कहा है। गुरु की सेवा कह दी गयी। यही प्रतिमा-पूजन हुआ। कहीं धातुमय, कहीं मृण्मय, कहीं मणि की प्रतिमा लोग बनाते हैं। बनाये हुए रूप का वे ध्यान करते हैं। वहाँ कोई धातु नहीं होती। गुरु के शरीर में हाड़, चाम और मांस है; लेकिन ध्यान करते समय हाड़, चाम और मांस कुछ नहीं रहता है; तब मानस-ध्यान होता है। दोनों तरह से एक ही घाट पर आते हैं। नवधा भक्ति में मूर्त्ति-पूजन नहीं है, ऐसा नहीं मानना चाहिये।

❁ संताल परगना में एक आदमी मुझसे पूछने आये कि आप मूर्त्ति पूजन मानते हैं वा नहीं ? मैंने कहा–मानता भी हूँ और नहीं भी मानता हूँ। उन्होंने कहा–इसका खुलासा कीजिये। मैंने कहा–ध्यान करने के लिए मूर्त्ति-पूजन मानता हूँ; लेकिन मेला लगाकर आमदनी करने के लिए नहीं मानता हूँ । आजकल तमाम यही होता है कि मूर्त्ति बनाकर मेला लगाओ और आमदनी करो।

❁ मूर्त्ति–पूजन किसलिए है ? केवल मूर्त्ति-पूजन ही करते नहीं रह जाओ। मूर्त्ति-पूजन करके मन ठहराओ, फिर इसके आगे बढ़ने का काम

करो। जिस जमीन पर कोई गिरता है, उसी का सहारा लेकर वह उठता है। स्थूल-माया में हम गिरे हुए हैं, इससे उठने के लिए स्थूल सहारा लेना होगा। मूर्त्ति-पूजन स्थूल सहारा है, जैसे पक्षी या वायुयान पहले कुछ दूर तक धरती पर चलकर फिर ऊपर में उड़ता है, उसी तरह मूर्त्ति से आरम्भ का अवलम्ब लो, फिर आगे बढ़ो।

❀ अपने को किसी एक पर लगाओ। कोई राम, कोई शिव, कोई गुरु किसी एक पर लागाते हैं। इसलिए हमारे यहाँ मूर्त्ति-पूजन है कि बारम्बार उसको देखो। बारम्बार के दर्शन से उसका रूप अन्दर में छप जायेगा फिर उसका ध्यान करो। इसलिए नहीं कि केवल उसको दण्डवत् करके चले जाओ। लोग कहते हैं मिट्टी, पत्थर या धातु पूजते हैं, तो मिट्टी ,पत्थर या कोई धातु नहीं पूजते हैं। वह तो उसकी शकल को पूजता है, ध्यान करता है। बौद्ध-धर्म के लोग बुद्ध की बहुत मूर्त्ति बनाते थे, इसलिए कि मूर्त्ति बनाते-बनाते उसका रूप उनके हृदय में छप जाता था।

❀ कोई भी लिपि लिखो जब वह दिमाग में छप जाता है तब लिखते हैं। वैदिक- धर्म के अन्दर भी ऐसे लोग हैं जिनको किसी मूर्त्ति का ध्यान करना पसन्द नहीं होता। किन्तु कोई मोटा रूप अवश्य लेते हैं। आर्य समाज में नारायण स्वामी एक साधु हुए। वे पहले बड़ा गोलाकार, फिर छोटा एवं प्रकार से छोटा-से-छोटा बनाकर ध्यान करने को कहते हैं। कोई ॐ लिखकर ध्यान करते हैं। कोई अल्लाह लिखकर ध्यान करते हैं कहते हैं–चाँदी जैसी चमकने लगता है। कोई अलिफ लिखकर ध्यान करते हैं, कोई मुर्शिद के चेहरे का ध्यान करते हैं। फनाफिल मुर्शिद हो जाते हैं। उनको विश्वास है कि फनाफिल मुर्शिद से फनाफिल रसूल हो जायेंगे। और वही फिर फनाफिल अल्लाह हो जायेंगे।

❀ जैसे आप वस्त्र पहनते हैं तो आपका जो आदर करते हैं, तो आपके वस्त्र का भी आदर करते हैं। हमारे गुरु महाराज की खड़ाऊँ अभी रहती तो हम उसको नहीं पहन सकते, प्रणाम करते । उनकी गुदड़ी अभी रखी हुई है। हम लोग पहनते नहीं हैं, प्रणाम करते हैं। तुलसी साहब की गुदड़ी अभी रखी हुई है, लोग उसका दर्शन करते हैं, प्रणाम करते हैं। गुरु महाराज जी की मूक्ति अभी है; गुरु महाराज अभी नहीं हैं; किन्तु उस मूर्त्ति को पूजते हैं;

क्योंकि उस रूप में वे आये थे। इसलिए आज हमारे यहाँ मूर्त्ति-पूजन होता है।

❀ पहले देखे हुए पदार्थ को मन से बनाकर देखो। पहले बिना मोटे अक्षरों को लिखे महीन अक्षर नहीं लिख सकते। यहीं पर आता है जिस रूप में आपकी श्रद्धा हो, जिसमें महानता है, उसका ध्यान कीजिये। ध्यान अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुकूल है। आपको एक रूप में श्रद्धा नहीं है तो दूसरे रूप का ध्यान कीजिये। किन्तु ऐसी बात नहीं है कि जो रूप-ध्यान आप करते हैं, वह ध्यान दूसरे भी करे। यदि आपको किसी रूप में श्रद्धा नहीं है, तो आप ईश्वर का नाम लिखकर ही उसका ध्यान कीजिये। आर्य-समाजी भाई गुरु–रूप का वा किसी रूप का ध्यान नहीं मानते। मैंने कहा–ॐ लिखकर ध्यान करो। कितने सूफी लोग अलिफ या अल्लाह लिखकर ध्यान करते हैं।

❀ इष्टदेव के रूप का ध्यान होता है। ऐसा नहीं कि हम जिस इष्टदेव की उपासना करते हैं, वह इष्ट बड़े हैं, दूसरे छोटे हैं, यह बड़ा जोर की बात है। कोई राम को, कोई शिव को, कोई माई को अथवा कोई दूसरे मजहब के लोग दूसरे इष्ट को धारण करेंगे। स्थूल-मूर्त्ति बनाकर, तस्वीर बनाकर अथवा इन दोनों को छोड़कर रूप-उपासना करते हैं। जो कोई कहते हैं कि जिस धातु की मूर्त्ति है, उसी धातु का ध्यान करते हो, यह गलत बात है। उपासना रूप की होती है, न कि उस धातु की। कोई कागज पर बने चित्र का ध्यान करते हैं, चाहे कोई मन्दिर की मूर्त्ति को देखकर उपासना करते हैं, चाहे एक बार देखकर फिर उसी तरह ध्यान करते हैं, यह स्थूल-उपासना है।

श्री सद्‌गुरवे नमः



दृष्टियोग और उसकी दीक्षा

❀ चन्द्र-बिम्ब अमृत को नेत्रों से पान करो। उसके दर्शन के लिए तीन प्रकार की दृष्टियाँ चाहिए। अमादृष्टि, प्रतिपदा-दृष्टि और पूर्णिमा-दृष्टि। पूरी आँखें बन्द करके देखना अमादृष्टि है। आधी आँखें खोलकर और आधी आँखें बन्दकर देखना प्रतिपदा दृष्टि है, जिसे शाम्भवी मुद्रा कहते हैं और पूरी आँखें खोलकर देखना पूर्णिमा-दृष्टि है, जिसे वैष्णवी मुद्रा कहते हैं।

इस तरह देखने से क्या होता है? तो कहते हैं कि इससे वायु की स्थिरता होती है; मन की स्थिरता होती है। क्या यह बात सत्य है? उपनिषद् की बातों को झुठलावें, मेरी समझ से बाहर है।

❀ दृष्टि वह चीज है, जहाँ पर यह ठीक से लगी रहती है, मन वहीं पर पड़ा रहता है। ऐसा नहीं होगा कि दृष्टि को एक जगह स्थिर किये हैं और मन दूसरी ओर भाग जाये। यदि ठीक-ठीक देखते हैं, तो मन वहीं रहता है। दृष्टि डीम-पुतली को नहीं कहते, देखने की शक्ति को कहते हैं। दृष्टि स्थूल है या सूक्ष्म? दृष्टि को हाथ से आप नहीं पकड़ सकते हैं। आप मेरी ओर देखते हैं और मैं आपकी ओर देखता हूँ, तो दोनों की दृष्टि दोनों पर पड़ती है; किन्तु उसे देख नहीं सकते। इस प्रकार दृष्टि सूक्ष्म है और मन भी सूक्ष्म है। सूक्ष्म को सूक्ष्म का सहारा मिलना अवश्य मानने योग्य है। इसलिए दृष्टि से मन को स्थिर होना पूर्ण संभव है। दृष्टि और मन दोनों सूक्ष्म हैं, इसलिए उपनिषद् का यह वाक्य सत्य है, ऐसा विचार में जँचता है। बाकी रही बात वायु स्थिरता की। तो आप देखिये, किसी गंभीर बात को आप सोचिए, तो मन इधर-उधर नहीं भागता। ऐसी अवस्था में श्वास-प्रश्वास की गति भी धीमी पड़ती है। आप स्वयं आजमा कर देख सकते हैं।

❀ मन की चंचलता में श्वास तेज होता है और मन की स्थिरता में श्वास की गति धीमी होती है। याद रहे कि मैं प्राण और प्राण वायु–दोनों को एक ही नहीं मानता। योगिवर श्री भूपेन्द्रनाथ सांन्याल जी ने कहा था–"जैसे दूध में घी रहता है, उसी प्रकार वायु में प्राण रहता है।"

प्राणवायु वह है, जो वायु प्राण से सम्बधित हो। उपनिषद् में जो बताया गया है कि दृष्टि-साधन से मन और वायु दोनों की स्थिरता होती है, बिल्कुल ठीक है। और जो कहा गया है कि भवसागर से पार हो जाओगे,वह भी ठीक है। यदि कहा जाये कि मन और वायु की स्थिरता में ईश्वर की प्राप्ति कैसे होगी तो देखिये, मन के सिमटाव से ऊर्ध्वगति होती है, उर्ध्वगति से मायिक तल का छेदन होता है। माया के तल से ऊपर जाने पर निर्मायिक परमात्मा का दर्शन होता है।

❁ पहले दूध-मक्खन साथ-साथ रहते हैं। जहाँ दूध रहता है, मक्खन भी वहीं रहता है। फेफड़े में संकोचन-विकासन की क्रिया होती रहती है, किन्तु बाहर की वायु से नहीं, जीवनी शक्ति से। जीवनी शक्ति प्राण है। प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता है और वायु आकाश से उपजती है। हाँ, हम जो बाहर से वायु खींचते हैं, वह प्राण से सम्बन्धित हो जाती है, इसलिए उसको प्राणवायु कहते हैं। यदि शाम्भवी मुद्रा से अभ्यास करे तो मन स्थिर हो जाता है। मन स्थिर हो जाता है, तो प्राण भी स्थिर हो जाता है। दृष्टि का ऐसा प्रयोग है, जिससे मन स्थिर हो जाता हैं। स्थिरता में सिमटाव होता है। सिमटाव से मायिक आवरणों का छेदन होता है। मायिक आवरणों के छेदन होने पर उधर परमात्मा ही बाकी रहते हैं। उसे परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

❁ कुछ लोगों का कहना है कि आज्ञाचक्र से नीचे पाँच चक्र हैं। इनमें से पहले नहीं गुजरकर आकाश में ही कैसे उड़ने लगेंगे ? तो मैं कहूँगा कि दोनों आँखों से दृष्टि की धार निकलती है। बिजली के गिरने से यदि कोई उसे देख लेता है, तो उसकी दृष्टिधार निकलते ही उसका शरीर भी छूट जाता है। दृष्टि शरीर का प्राण है।

अजगर की दृष्टि किसी आदमी की दृष्टि पर पड़े तो अजगर की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलने से वह व्यक्ति उस ओर खिंचता चला जाता है।

'शिव-संहिता' में भगवान् शिव ने एक-एक चक्र के साधन का तथा उनके गुणों का वर्णन किया है। फिर आज्ञाचक्र के वर्णन में उन्होंने कहा है–"पंच पद्मों का जो-जो फल (पंच चक्रों के ध्यान का जो-जो फल) होता है, सो समस्त फल आप ही इस आज्ञा-कमल (आज्ञाचक्र) के ध्यान से प्राप्त हो जायेगा।"

आपके दोनों हाथों को पकड़कर कोई खींचे, तो तमाम शरीर उसी ओर खींचा जायेगा। उसी प्रकार दोनों दृष्टि की धारें जिधर खींची जायेंगी, सम्पूर्ण शरीर की धार उस ओर फिर जायेगी। इसी का वर्णन गुरु नानक, कबीर साहब आदि संतों ने किया है। जिसका मन एक क्षण के लिए भी उस ओर जायेगा, तो वह एकाग्रता का सुख और कुछ-न-कुछ झलक अवश्य देखेगा। यही साधन निरापद है। करते जाओ, सुगम साधन है।

❀ जिज्ञासा कर सकते हैं कि अभ्यास के आरम्भ में गुरु-रूप का ध्यान होना चाहिये अथवा तिलपर सुरत जमाना चाहिये। इसके लिए जानना चाहिये कि गुरु-रूप का ध्यान स्थूल और मानस ध्यान है और तिल पर सुरत जमाने का ध्यान सूक्ष्म है और मन से विन्दु या तिल (इसकी युक्ति भेदी अभ्यासी गुरु से जानी जा सकती है) बनाकर देखना नहीं है। अभ्यास के आरम्भ में स्थूल से ही आरम्भ करना स्वाभावानुकूल है। इससे दृष्टि और मन का सिमटाव स्थूल-मूर्त्ति को मनोमय बनाकर मन और दृष्टि को उस पर रखने से मन और दृष्टि का जितना सिमटाव होता है, उससे तिल वा विन्दु वा सूक्ष्म-ध्यान के आरम्भिक अभ्यास करने की योग्यता अभ्यासी की होती है। जैसे मोटे-मोटे अक्षरों का लिखना सीखकर बारीक-बारीक अक्षरों के लिखने की योग्यता होती है। इसलिए अभ्यास के आरम्भ में गुरु-रूप का स्थूल-ध्यान कहा गया है और सूक्ष्म-ध्यान के आरम्भ के लिए तिल वा विन्दु-ध्यान कहा गया है।

❀ दृष्टि-साधन में यदि आपने एक बार भी झलक देख ली और फिर नहीं देख पाते हैं, तो उस ओर के लिए आपकी सुरत चलती रहेगी, उठी रहेगी, जिस ओर आपने देखा है। उसकी बारम्बार याद आपको रखनी चाहिए। यह सूक्ष्म मानस-ध्यान है। बाहर में रूप देखकर जो मानस-ध्यान करते हैं, वह स्थूल मानस-ध्यान है। यदि आप सूक्ष्म मानस-ध्यान कर सकते हैं, तो स्थूल मानस-ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है।

❀ दृष्टियोग करते हुए पहला दृश्य अन्धकार रह गया, तब तुम प्रत्याहार करते रहे, धारणा नहीं हुई। प्रत्याहार में ख्याल नहीं रहता है। मन भागता रहता है। कभी-कभी दूर-दूर तक, देर-देर तक ख्याल नहीं रहता है। बहुत देर के बाद ख्याल आता है कि ध्यान करने के लिए बैठा था, मन

कहाँ-कहाँ चला गया। यह लँगड़ा प्रत्याहार है। जिसको प्रत्याहार नहीं होगा, उसको धारणा कहाँ से होगी। धारणा ही नहीं होगी, तो ध्यान कहाँ से होगा ? इसीलिए मुस्तैदी से भजन करो।

❀ इन्द्रियों को कौन चलायमान करता है ? बच्चे को खोन्चावाले को देखकर उसकी चीजों को खाने की इच्छा होती है। वयस्क को इच्छा नहीं होती। इसमें क्या है ? मन की धार इन्द्रियों तक है। इन धारों को यदि समेट लीजिये तो इन्द्रियाँ सिमट जायेंगी। यह दृष्टियोग के साधन से होगा। यही वैष्णवी-मुद्रा–शाम्भवी-मुद्रा है। इसके बारम्बार अभ्यास से मन की धारा सिमट जायेगी।

❀ गुरु-रूप, भगवान्-रूप किन्हीं के स्थूल-रूप का ध्यान करो, किन्तु इतना ही ध्यान, ध्यान नहीं है। अभी आपलोगों ने सुना कि ध्यान को ध्यान नहीं कहते हैं, शून्यगत मन को ध्यान कहते हैं। इसीलिए शून्य-ध्यान असली ध्यान है। श्रीमद्भागवत में भी शून्य-ध्यान का वर्णन है। दृष्टि-साधन की क्रिया से शून्य-ध्यान होता है। मन में कुछ नहीं रहे और बिना कुछ बात मन में रहे शून्य लगा रहे, यही दृष्टियोग है।

❀ शून्य में मन को लगाकर रखना विन्दु-ध्यान है। फैलाव से सिमटाव में आवे। विन्दु ही सबसे विशेष सिमटाव है। विन्दु-ध्यान से पूर्ण सिमटाव हो जाता है। दृष्टि को ऐसा बनाकर रखो, जैसे सुई में धागा पहनाते समय सुई के छिद्र में दृष्टि एकाग्र हो जाती है, उसी तरह दृष्टि-योग करो। इसको कैसे करो, तो उसकी युक्ति गुरु से जानो।

❀ भगवान् बुद्ध को छः वर्षों की तपस्या करने पर उनको यह ज्ञात हुआ कि जिस सत्यज्ञान की खोज में मैं चला था, वह नहीं मिला। भगवान् बुद्ध सोच रहे थे कि उसके लिए राजपाट छोड़कर चला, वह नहीं मिला और अब वहाँ जाने पर राजपाट चला भी नहीं सकूँगा। करूँ तो मैं क्या करूँ ? इसी विचार में वे बैठे थे। बैठे-बैठे उनको नींद आई और देखा कि इन्द्र एकतारा लिए आये हैं। उसमें तीन तार थे। एक तार बहुत ढीला रहने के कारण उससे जो आवाज निकलती थी वह अच्छी नहीं लगती थी। दूसरा तार जो बहुत कसा था उससे ठस यानी कड़ी और कठोर आवाज निकलती थी और जो मध्य का तीसरा तार था वह यथोचित कसा था, उसकी आवाज

बहुत मीठी थी। इतने में उनकी नींद टूट गई और उन्होंने समझा कि मैंने तार को बहुत कसा। संसारी लोगों का तार बहुत ढीला होता है। इसलिए मध्य का मार्ग उन्होंने अपनाया। ढीले तार से कुछ होने का नहीं। यह विषयों की ओर जाता है। विषयों की ओर विशेष वेग होना धनुष की डोरी ढीली होनी है। यह बुढ़ापा में भी ढीला रहता है। महात्मा गांधीजी ने कहा है, "उपवासी होने से विषय मन्द पड़ता है किन्तु विषय-रस की स्मृति रह जाती है। वह तो परमात्म-साक्षात्कार करने पर छूट सकती है।" इसलिए अमा, प्रतिपदा, या पूर्णिमा किसी दृष्टि से धनुष पर डोरी चढ़ाने का या तार कसने का अभ्यास करो; अमादृष्टि सबसे सरल है। यह तो इतना सरल और सुखद है कि ध्यान करते हुए लोग नींद में पड़ जाते हैं। तब जो कोई कहे कि आँख बन्दकर ध्यान करने से नींद आती है, इसलिए आँख खोलकर करना चाहिये, तो मैं कहूँगा उनको मालूम नहीं है। आँख खोलकर ध्यान करने से भी औंघी आती है।

❀ बिन्दु-ध्यान एक मानस विन्दु बनाकर नहीं करना होगा। विन्दु-ध्यान के लिए दृष्टि का प्रयोग होना चाहिये, जिसके लिए कबीर साहब ने कहा–"ज्यों सुई बिच डोरा रे।" दृष्टि की धार जहाँ स्थिर होगी वहीं विन्दु उदय हो जायेगा। यह ज्योतिर्मय शालीग्राम है।

❀ अपने को नयनाकाश के तल पर दृष्टि के प्रयोग से स्थिर करना होगा। दृष्टि के साथ-साथ इन्द्रियों की सभी धारें मिली-जुली हैं। जैसे दोनों हाथों से किसी चीज को पकड़ने से समूचे शरीर का बल उस ओर फिर जाता है, उसी तरह दोनों दृष्टियाँ जहाँ दृढ़तापूर्वक स्थिर होकर रहेंगी, समूचे शरीरकी चेतनधारा उधर उलट और सिमट जायेगी। मेसमेराइजर लोग दृष्टि का प्रभाव डालकर काम करते हैं। अजगर साँप दृष्टि से दृष्टि लगाकर ही खींचता है। बिजली गिरती देखने से शरीर की चेतन-शक्ति खिंच जाती है और वह मर जाता है। इसलिए दृष्टि का साधन अच्छी तरह होना चाहिये।

❀ एक विन्दुता के लिए वैष्णवी-मुद्रा या शाम्भवी-मुद्रा या दृष्टियोग या दृष्टि-साधन की क्रिया चाहिये। इससे मन की एकविन्दुता होती है। यह साधन बहिर्मुख नहीं होकर अन्तर्मुख होना चाहिये। इसके लिए अमादृष्टि से

साधन चाहिये। अमा-दृष्टि में रहने से दृष्टि अन्दर में सिमटी रहती है। बाहर का दृश्य एकदम छोड़ दो। अन्दर में देखो। सिमटी हुई निगाह से देखो, फैली निगाह से नहीं। अन्दर देखो यानी आँख अन्दर करके देखो। बाहर का ख्याल छोड़ो। बाहरी दृश्य जितना भी देखा है सबको छोड़ दो। आँख बन्द कर देखने से सब को अन्धकार मालूम होता है। उस अन्धकार में अपने को रख दृष्टि को समेटकर इस भाँति देखो जैसे तीर या बन्दूक का निशाना करते समय देखा जाता है। अच्छा निशाना करनेवाला केवल निशाना ही देखता है। अन्दर में कथित भाँति से ठीक-ठीक देखने पर मन और दृष्टि एक जगह हो जायेगी। यह कैसे होगा ? किसी गुरु से जान लीजिये।

❀ दृष्टि-साधन करने के लिए डीम और पुतलियों पर जोर लगाने की आवश्यकता नहीं। डीम-पुतलियों पर जोर लगाने को यदि कहा भी जाये तो वैसा मत कीजिये। डीम और पुतलियों पर बिना जोर लगाये जो दृष्टियोग किया जाता है, वह हठयोग नहीं–राजयोग है।

❀ दृष्टियोग में आत्मबल होने का आरम्भ होता है। मानस-ध्यान में देखा हुआ रूप लेते हैं; लेकिन दृष्टियोग में कुछ लेते नहीं है। केवल देखने के ढंग से देखा जाता है। धर्मदास जी ने कहा है–

"सुखमनि सेज बिछाओं गगन में,
नित उठि करौं निहोर।"

गगन में ठहराव करते हैं। इसी को दूसरी तरह से कहा है–

"गंगा यमुना के वार पार बिच भरतु है अमिय करार।"
–संत गुलाब साहब

इड़ा-पिंगला के मिलन-स्थान पर स्थिर अमृत है। दृष्टियोग में निशाना अपना है, अपने अन्दर है, अपने उस पर लगे हैं। यह आत्मरत होने का आरम्भ है। प्रभु ईसा मसीह का वचन है–"शरीर का दीपक आँख है। तेरी आँख एक हो तो तेरा सारा शरीर उजियाला होगा।"

❀ दृष्टियोग में एकविन्दुता होती है। मन में कुछ बनाने की जरूरत नहीं; गुरु-संकेत के अनुसार ध्यान करो, स्थूलता से सूक्ष्मता में प्रवेश करोगे। सूक्ष्मता में प्रवेश करनेवाला मस्तक में रहता है, विविध दृश्यों को देखता है। वहाँ का भजन बाहर के विषयों से बचा हुआ होता है। बिना दृष्टियोग के

यह भजन नहीं होगा।

दोनों आँखों से देखने की धारा निकलती है उसको एक करते हैं। कुछ पढ़े-लिखे विद्वान कहते हैं कि बाहर की चीज जो हम देखते है, उसकी छाया हमारी आँख पर पड़ती है। लेकिन सबको यह प्रत्यक्ष होता है कि हम आँख से देखते हैं। जैसे पेड़ पर चिड़िया है या आम है। पेड़ पर तब हम दृष्टि से निशाना करते हैं, उसी डंटी पर मारते हैं। उसकी डंटी तक हमारी शक्ति जाती है। ऐसा नहीं हो तो हमारा निशाना ठीक नहीं हो। बंदूक का निशाना, तीर का निशाना क्या है ? दृष्टि की धार बाहर को निकलती है। दृष्टि की धार बाहर नहीं निकलते तो निशाना नहीं हो सकता–

"एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऔ सोई।"

दोनों दृष्टि की धारों को एक करने की युक्ति गुरु बताते हैं।

ताकने में फेर है। कैसे देखो ? आँखें बंद करके देखो। डीम है पहले उजला, फिर काला, फिर पुतली। उस पुतली में देखने की शक्ति है। उस देखने की शक्ति को या दोनों आँखों की शक्ति को मिलाकर एक जगह एक टक देखो।

बाहर में भी कोई कर सकता है, तो उसको हम मना नहीं करते, लेकिन बड़ा मुश्किल है बाहर में देखना। आँखें खोलकर देखने से बहुत चीजें देखी जाती हैं। उनको छोड़कर देखना कठिन है। हमारे यहाँ के योगी-लोग आँखें बंद करके देखते थे। एक समय राजा परीक्षित वहाँ पहुँचे, जहाँ शमीक मुनि आँखें बंद करके ध्यान कर रहे थे। ध्यानावस्था में रहने के कारण राजा परीक्षित का वे आदर नहीं कर सके, इसलिए राजा परीक्षित ने शमीक मुनि के गले में मरे हुए साँप को लपेट दिया। यह बात जब शमीक मुनि के पुत्र को मालूम हुआ तो उन्होंने राजा को शाप दे दिया। इस कथा से विदित होता है कि उस समय भी मुनि लोग आँखें बंद करके ही ध्यान करते थे।

हमारे पास स्वीडेन के आदमी आए थे। वे ईश्वर के नाम से कुछ जानते नहीं थे। मैंने पूछा–आपके देश में कौन धर्म का प्रचार है ? उन्होंने कहा–क्रिश्चियनिटी का। मैंने कहा–मैं बताता हूँ कि किस तरह देखोगे ? मैंने कहा इसमें विश्वास नहीं हो तो ऐसा समझो कि तुम्हारी आँख में जो

देखने की शक्ति है, उसको महीन धार में परिणत करके देखो। यह कुछ समझ में उसको आया, तब मैंने उसको भजन भेद बता दिया।

शूरमा का काम है, गगन मंडल के बीच में प्रकाश को प्रत्यक्ष देखो। यही है–दृष्टियोग, दृष्टिसाधना में है तो बड़ा सुख, लेकिन है बड़ा कठिन।

एक जापानी महिला (यूक्यूको फ्यूजिता)हमारे यहाँ आई थी। उसको स्वप्न हो गया था। क्या जाने, उसके पूर्व का क्या संस्कार था। मेरा रूप उसने कभी देखा नहीं था। रूप स्वप्न में देखा। मेरे रूप का दर्शन उसको हुआ स्वप्न में। यदि मैं कहूँ कि लोगों को मैं स्वप्न में दर्शन देता हूँ, तो झूठ होगा। एक आदमी को और हुआ था। वह बेगुसराय का रहने वाला था। उस समय मेरा फोटो भी नहीं लिया गया था। जापानी महिला अकेली थी। समूचे भारत को धांग- धूंगकर आई भागलपुर कुप्पाघाट आश्रम। मेरी तस्वीर टंगी थी, मैं आश्रम में नहीं था। उस तस्वीर को देखकर उसको विश्वास हो गया कि यही हैं। फिर मुझको देखा तो पहचान गयी। उसने मुझ से भजन-भेद लिया, मैंने समझा कि ईश्वर की यह कृपा है कि इससे मिला हूँ। महिला को जब मैंने भजन-भेद बताया और उसने थोड़ा समय मन लगाकर किया, तो किसी के पूछने पर उसने कहा–Very soft and very hard. (वेरी सॉफ्ट एण्ड वेरी हार्ड) मन को समेटने में कठिनाई होती है, इसलिए Very hard (वेरी हार्ड)और शरीर को कोई तकलीफ नहीं, इसलिए Very soft (वेरी सॉफ्ट) वह जापानी महिला कुमारी अंतरीप से हिमालय तक अकेली ही घूमी।

श्री रामकृष्ण परमहंस देव जी को काली के साथ ऐसा सम्बन्ध था, जैसा कि माता के साथ पूत्र का। एक बार दक्षिणेश्वर में तोतापुरी नाम के एक संन्यासी आये। उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंस जी से कहा कि तुम मुझसे दीक्षा ले लो। परमहंस़ जी ने कहा–जब तक माता जी (काली माई) आज्ञा नहीं देंगी, मैं दीक्षा नहीं ले सकता। फिर वे माता जी (काली माई) के पास आये और लौटकर तोतापुरी जी के पास जाकर बोले कि मुझे दीक्षा दीजिये, श्री माँ की आज्ञा हो गई है। तोतापुरी जी ने उनको ध्यान की क्रिया (दृष्टियोग की दीक्षा) बतलाई। जब वे ध्यान करने लगते तो काली जी की मूर्त्ति उनके सम्मुख आ जाती। परमहंस जी ने कहा–बहुत चेष्टा करने पर भी

ध्यान नहीं हो पाता है, माँ की मूर्त्ति सामने आ जाती है। तोतापुरी जी वहीं बरामदे पर टहल रहे थे, उन्होंने कहा–नहीं होगा! जरूर होगा। टहलते हुए उनकी दृष्टि काँच के एक टुकड़े पर पड़ी। उन्होंने उक्त शीशे के टुकड़े को उठा लिया और परमहंस जी के भ्रुवोर्मध्य में बिंधकर कहा कि यहाँ ध्यान करो। ऐसा करते ही परमहंस जी का ध्यान ठीक-ठीक जम गया।

❀ दृष्टियोग में नूर झलकता है। इसके यत्न को गुरु लोग जानते हैं। हमारे गुरु महाराज जानते थे, उन्होंने मुझको बताया। करते-करते जिसको आदत हो जाती है, तो वह बेचारा जब आँख बन्द करता है, तो उसी स्थान पर दृष्टि चली जाती है। बोलता है तब भी उसकी दृष्टि वहाँ चली जाती है। हड़बड़-हड़बड़ करने का काम नहीं। जो पहले जन्मों में बहुत साधन किया है, उसको शीघ्र होता है।

❀ द्रोणाचार्य जी धनुष-विद्या में अपने शिष्यों की परीक्षा ले रहे थे। उन्होंने काठ का एक पक्षी बनवाकर वृक्ष पर रख दिया और अपने शिष्यों से एक-एक कर उसकी आँख बेधने के लिए कहा। बेधने के लिए तैयार हो जाने के समय उन्होंने प्रत्येक से पूछा–"इस समय तुम क्या देख रहे हो ?' उत्तर में किसी ने "वृक्ष सहित पक्षी को" किसी ने केवल "पक्षी" को देखने की बात कही। गुरु ने ऐसा कहने वाले को लक्ष्य बेध करने से रोक दिया। अन्त में अर्जुन से भी वही पूछा गया। उसने उत्तर दिया–"इस समय मैं केवल पक्षी की आँख ही देख रहा हूँ।" आचार्य ने उसे लक्ष्य-बेध करने का आदेश दिया। अर्जुन के वाण ने लक्ष्य-बेध कर दिया। अर्जुन सिमटीदृष्टि से देख सकता था। आज भी जो निशाना करते हैं, वह अपनी निगाह को समेटते हैं। अपनी वृत्ति को समेटो तो उसकी ऊर्ध्वगति हो जायेगी। किसी भी चीज को समेटो तो उसकी ऊर्ध्वगति हो जायेगी।

❀ **"दोउ नैन नजर जोड़ि के, एक नोक बना के।"**–यही दृष्टियोग है। इसी में पहले एकविन्दुता आती है। दोनों दृष्टियाँ जुड़ जाती हैं, एक बिन्दुता होती है। जिसको ऐसा होता है, तो वह बड़ा भाग्यवान है।

❀ मैं विचारा तो मेरे बोध में आया कि दृष्टियोग में आत्मपरायणता होती है। अपना निशाना अपने अन्दर है, अपने उसपर लगे रहना, यह आत्मरत होने का आरम्भ है। इस तरह आत्मा में लगे रहोगे। इसके लिए

कुछ एकान्त में भी बैठने का समय रहना चाहिये। लोग कहते हैं कि समय नहीं मिलता है। मैं कहता हूँ– सिनेमा देखने के लिए समय मिलता है और एकान्त में बैठकर थोड़ा ध्यान-साधन करेंगे, तो क्या समय नहीं मिलेगा ? समत्व का–समाधि-साधन का थोड़ा-थोड़ा नित्य अभ्यास करो। जितने बड़े लोग हुए हैं, सब ने किया है। संसार का भी काम होगा और संसार से छूटने का–मोक्ष का भी काम बनेगा।

अधः उर्ध्व उरु दाँयें बाँयें पिच्छु पाँचो त्याग ।
षष्ट बीचोबीच एक निशान दृष्टि सु लाभ ।।



बुद्ध



तोतापुरी



रामकृष्ण परमहंस

श्री सद्‌गुरवे नमः



ज्योतिर्विन्दु और उसका दर्शन

❀ अथक परिश्रम से प्रत्याहार करो तो मन एक स्थान पर ठहरेगा और तब एक विन्दुता प्राप्त होगी। इसमें पूर्ण सिमटाव होता है। विन्दु को आप मन से नहीं बना सकते। परिमाणशून्य चिह्न को आप मन से नहीं बना सकते। छोटे-से-छोटे जो चिह्न हो उसको मन से नहीं बना सकते। असली विन्दु मन से नहीं बनाया जा सकता। काल्पनिक विन्दु से रेखागणित का हिसाब कर लेते हैं। काल्पनिक रेखा से ही हिसाब बना लेते हैं। रेखा में लम्बाई है, चौड़ाई नहीं। पेन्सिल की नोक जहाँ रखिये वहीं चिह्न होगा। जो दृष्टि और मन को अत्यन्त समेट कर स्थिर रखता है, उसको तब जो दीखता है वही परम विन्दु है। वही ज्योतिर्मय विन्दु है।

"तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम् ।"

– तेजोविन्दूपनिषद्

हृदयस्थित विश्वात्म-तेजस् स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। जो उस विन्दु को ग्रहण करता है उसको ज्योति मिलती है।

❀ वैज्ञानिक अपने प्रयोगों के द्वारा बतलाता है कि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलाने से पानी होता है। यदि विश्वास न हो तो खुद करके देख लीजिये। उसी तरह, मेरी बातों में विश्वास नहीं हो तो मैं जो प्रयोग बतलाता हूँ, उसको करके देख लीजिये। लोग लाल टीका लगाते हैं। वह विन्दु का द्योतक है, शक्ति का चिह्न है। सिमटाव से शक्ति एकत्रित और केन्द्रित होती है। केन्द्रित शक्ति ज्योतिस्वरूपा है।

❀ देखने का यत्न जानो तो विमल विलोचन खुल जायेगा। विन्दु का ज्ञान होगा। स्थूल से सूक्ष्म में रखने की शक्ति विन्दु में है। उसको पकड़ कर रखो तो सूक्ष्म में रहोगे। उसको पकड़कर नहीं रख सकते हो इसीलिए गिर जाते हो। थोड़ी झलक मालूम हुई; फिर मालूम नहीं हुई, तो वह नहीं भाग गया; तुम ही वहाँ से हट गये।

❀ ईश्वर की ओर से अवलम्ब है, जैसे मित्र को लेने के लिए मित्र

अगुवानी आते हैं। ईश्वर परम मित्र हैं। उनसे बढ़कर मित्र कोई नहीं। वे बड़े मददगार हैं।

"हमारा यार है हममें हमन को इन्तजारी क्या।"

— कबीर साहब

वह विन्दु-रूप में आकर आपको पकड़ ले जाना चाहता है। आप विन्दु तक नही पहुँचे हैं वा विन्दु को पकड़ने की शक्ति आपमें नहीं है। इसलिए नीचे गिर जाते हैं। लेकिन हिम्मत नहीं हारनी चाहिये कि हममें शक्ति नहीं है। अभ्यास करते-करते शक्ति बढ़ती है, जैसे व्यायाम करने से शरीर में बल बढ़ता है। यदि बल नहीं बढ़ता तो कोई महात्मा नहीं होते।

❀ गो0 तुलसीदास जी महाराज ने रामचरितमानस में लिखा है—

"लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे।।
निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी। रूप विन्दु जल होहिं सुखारी।।"

अर्थात् जैसे पपीहा पक्षी स्वाति-जल के लिए बड़ी-बड़ी नदियों, तालाबों और समुद्रों का निरादर करके मेघ को एकटक से देखता रहता है और स्वाति-जल को देख लेने पर उसे परम प्रसन्नता से ग्रहण करता है; उसी तरह भक्तियोग का साधक अपने हृदयाकाश के अन्धकार-रूप बादल में एकटक से टकटकी लगाकर देखता रहता है अर्थात् दृष्टि-साधन करता रहता है और नदी आदि बड़े-बड़े दृश्यों को निरादर करके नहीं देखता है; विन्दु-रूप को देखकर परम प्रसन्नता से दृढ़तापूर्वक धारण करता है। विन्दु देखने का अभ्यास करो। इसकी युक्ति सच्चे सद्गुरु से जानो।

❀ विन्दुध्यान को ही शून्य ध्यान कहा है। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध मे वर्णन है—भगवान् श्रीकृष्ण से उद्धव जी ने पूछा है कि "मैं आपका ध्यान किस तरह करूँ ?" उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—"पहले मेरे सर्वांग शरीर का ध्यान करो, फिर मुखारविन्द का ध्यान करो। इसके बाद शून्य का ध्यान करो।"

जहाँ कोई परिमाण नहीं, वहाँ शून्य-ही-शून्य है। सन्त कबीर साहब ने कहा—

"शून्य ध्यान सबके मनमाना। तुम बैठो आतम अस्थाना।।"

अर्थात् शून्य-ध्यान—विन्दु-ध्यान में सबका मन मान जाता है। विन्दु-

ध्यान में एकाग्रता आती है। एकाग्रता में शान्ति का रस मिलता हैं जैसे जहाँ पेन्सिल रखते हैं, वहाँ विन्दु बन जाता है, वैसे ही जहाँ दृष्टि स्थिर होती है, वहाँ प्रकाशमय विन्दु का उदय होता है। विन्दु अव्यक्त है, उसे देखने के लिए ठीक से यत्न करो तो मालूम होगा। इसमें थकना नहीं चाहिये। जितना बन सके, अभ्यास करते रहो। थोड़ा-थोड़ा ही करो, लेकिन छोड़ो मत। सफलता अवश्य मिलेगी।

❀ परम विन्दु केवल देखने की युक्ति से देखा जायेगा। गुरु-कृपा से युक्ति मिले और अपनी उत्कंठा हो। विन्दु को ईश्वर का रूप समझकर अपने को समेटता है, मन को समेटता है। अपनी दृष्टि को समेटता है जो कि बहुत सूक्ष्म पदार्थ है। ठीक-ठीक दृष्टियोग होने पर उसका उदय होता है। इसको दूसरी जगह लिखा है कि यह ज्योतिर्मय परम विन्दु है। यह ईश्वर का सूक्ष्म-रूप है।

❀ विन्दु को कोई बाहर में नहीं देख सकते हैं। जिसका स्थान है, परिमाण नहीं, उसको विन्दु कहते हैं। वह कितना छोटा होगा? उसको चर्म-दृष्टि से कोई देख नहीं सकेगा। सन्तों ने इसका भेद बताया है।

रेखा का आरम्भ विन्दु से होता है और अन्त भी एक विन्दु पर होता है। रेखा को हमलोग नहीं देखते हैं। लेकिन समझने वा समझाने के लिए बोर्ड पर एक रेखा खींच देते हैं। उसमें लम्बाई भी होती है और चौड़ाई भी। लेकिन जो वास्तव में रेखा है, उसमें चौड़ाई नहीं होती केवल लम्बाई होती है।

बाहर संसार में बाल की नोंक से, कोई रेखा खीचेंगे तो उसमें भी कुछ-न-कुछ चौड़ाई होगी ही। जो कोई समझे कि हमारे अन्दर कौन ऐसी चीज है जिसको रेखावत् हम कह सकते हैं। वह है दृष्टि की धार। दो रेखाओं का मिलन जहाँ होता है, वहाँ विन्दु होता है। बाहर में तो केवल मान लेते हैं कि विन्दु है, हम मान ही नहीं ले, बल्कि दृष्टि-धारों को एक करके प्रत्यक्ष देख भी लें, वही विन्दु है।

❀ आपकी आँख में देखने की जो शक्ति है, उसी को दृष्टि कहते हैं। आँख, डीम, पुतली को दृष्टि नहीं कहते हैं। आप दृष्टि को तब देख सकेंगे जब सन्तों की युक्ति से देखेंगे। इसी दृष्टि-धार की रेखा में उसके आदि-अन्त

में विन्दु है। जहाँ दृष्टि की दोनों रेखाएँ मिल जाये, वहीं विन्दु है।

❁ दृष्टियोग या विन्दु-ध्यान के अभ्यास से प्रकाश दीखता है। उसकी विधि सन्तलोग जो बताते हैं, उसी को दृष्टियोग कहते हैं। इसके लिये भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा है–नासाग्र में देखो, दिशाओं को देखना छोड़कर। दिशाएँ दश हैं–पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और चारो कोण तथा ऊपर और नीचे। बाहर के सब ओरों को छोड़कर जो देखते हैं, वे अन्दर देखते हैं। विन्दु–ध्यान असल में बाहर में नहीं, अन्दर में होता है।

❁ मैं देखता हूँ और आपलोग भी देखते हैं कि रेलगाड़ी में चलाने के लिए चक्के गोल-गोल, बैलगाड़ी चलाने के लिए चक्के गोल-गोल। इस गोल को भीतर की ओर समेटते जाओ उसी गोल के अंदाज पर। आखिर क्या बचेगा? **'विन्दु'**। विन्दु को आज तक किसी ने बाहर में नहीं देखा है; क्योंकि इसकी परिभाषा है–स्थान है, परिमाण नहीं। बाल की नोंक से चिह्नित करने पर भी कुछ-न-कुछ परिमाण होता है। परन्तु आँख बन्द करो अंधकार मालूम पड़ेगा। उसमें विन्दु को देखना चाहो, तो देखने की शक्ति को–दृष्टि को एक कर लो। एक करने का स्थान विन्दु होगा। वह ज्योतिर्मय विन्दु होगा।

❁ कबीर साहब के वचन में है–

"गगन मण्डल के बीच में, तहवाँ झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर।।"

ठीक-ठीक बीच कितना बड़ा होता है? किसी मण्डल का बीच केवल एक ही विन्दु होगा। विन्दु से बड़ा करने से ठीक-ठीक बीच नहीं होगा। वह किसी ओर विशेष और किसी ओर कम होगा। किन्तु छोटे-से-छोटा चिह्न विन्दु है, उसमें फैलाव नहीं है।

❁ एक क्या है? इसको विद्वान् पण्डित समझ सकते हैं कि एक देखने में नहीं आता। एक वह है जिसको चर्मदृष्टि से कोई देख नहीं सकता। मानस-दृष्टि वा दिव्यदृष्टि से देख सकता है। वह है 'विन्दु'। विन्दु की परिभाषा है कि जिसका स्थान है, परिमाण नहीं। जबकि परिमाण नहीं है, तब कोई कैसे स्थूल-दृष्टि से देखे।

❁ पूर्ण सिमटाव करने वाला विन्दु है। जहाँ नहीं देख सकते हो, वहाँ

दिखलाने वाला विन्दु है। जितनी दूर देखना इस चर्म-चक्षु से असम्भव है वहाँ तक दिखलाने वाला विन्दु है। जिस तरह प्रत्यक्ष में बड़े-बड़े दूरबीनों को लगा-लगाकर देखते हैं—दूर-दूर तक देखते हैं, कहते हैं कि सूर्य के पार भी देखने लगं गये। लेकिन सन्त दरिया साहब, जो बिहार ही में हुए थे-आरा जिले में, उन्होंने बड़ा अच्छा कहा—

''क्या जामे जमशेद का, क्या सिकन्दर ऐन।
दिल चश्मा से देखिये, अविगत सूझै नैन।।''

सिकन्दर एक बादशाह था। उसने एक ऐना बनवाया था। उससे बहुत दूर तक मालूम होता था। जमशेद भी एक राजा था। उसने एक प्याला बनवाया था, उसमें देखता था। उसमें भी बहुत दूर तक देखता था। ये दोनों उस जमाने के लिए दूरबीन थे। तो दूरबीन से देखने के लिए बहुत दूर तक लोग देखते हैं।

तो अपने अन्दर की दृष्टि से देखो।

❁ किसी आकार का आरंभ विन्दु से होता है और अन्त विन्दु पर होता है। निराकार से साकार जब बना है, तब पहले एक विन्दु बना है। इधर से उलटिये तो उस विन्दु को पकड़िये। इसी को गीता में भगवान् ने 'अणोरणीयाम्' कहा।

❁ देखने की शक्ति को दृष्टि कहते हैं। दोनों आँखों की दृष्टि एक हो जाये, तब देखो। दृष्टि की धार कितनी पतली है, इसको लोग नहीं जानते हैं। दृष्टि की धार बहुत पतली है। रेखा विन्दुओं से बनती है। रेखा की लम्बाई है चौड़ाई नहीं है। रेखागणित यही बतलाता है। जहाँ से रेखा शुरू होती है, वहाँ स्थान अवश्य होता है। जिसमें लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई नहीं; वह स्थान कितना छोटा होगा ? इसीलिए रेखागणित कहता है—वह ऐसा है, जो स्थान भर रखता है, परिमाण नहीं रखता है। जो स्थान रखे, परिमाण नहीं रखे, उसी को कहते हैं विन्दु। विन्दु के समूह को कहते हैं रेखा। दृष्टि की धारों को मिलाकर देखो। जहाँ दो रेखाओं का मिलन होता है, वहाँ विन्दु होता है। वहाँ विन्दु अवश्य होगा। वह कैसा विन्दु होगा ? आँख बन्द करके देखना चाहिये। देखने की चीज जो नजर आयी, वह प्रकाश है। वह ज्योतिर्मय-विन्दु है। उपनिषद्कार ने कहा है—

"तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।।"

वह ज्योतिर्मय विन्दु होगा। स्कूलों में पढ़ाते हैं—मान लो कि यह रेखा है, मान लो कि यह विन्दु है। लेकिन असली विन्दु को कोई अन्दर में देखेगा। अन्दर में देखने के लिए दृष्टि की धारों को एक करके देखो, वहाँ ज्योतिर्विन्दु निकल आयेगा। यह करके देखो।

❁ एकाग्रता की शक्ति होने से और काम किया जाता है। विशेष एकाग्रता के लिए किसी इष्ट-मूर्त्ति का ध्यान करते हैं। संतों ने कह दिया-एक गुरु-मूर्त्ति का ध्यान करो। कोई प्रतिबन्ध नहीं है, जिसमें अपनी श्रद्धा हो, उसका ध्यान करो। मूर्त्ति-ध्यान में अनेक लकीर हैं। एक लकीर में कितने ही विन्दु हैं। बहुत-से विन्दुओं, बहुत-सी लकीरों और बहुत-से अंग-प्रत्यंगों के योग से मूर्त्ति बनती है; लेकिन केवल एक-ही-एक रह जाये, इसके लिए विन्दु-ध्यान है।

विन्दु-ध्यान में पूर्ण सिमटाव होता है। जिस मण्डल में पूर्ण सिमटाव हुआ, उस मण्डल से उसकी गति और आगे हो जायेगी।

विन्दु भी ईश्वर का रूप है। विन्दु-रूप को देखने से पूरी शान्ति मिलती है। अन्य रूपों में यह शान्ति नहीं मिलती। हाथ-पैरवाले भगवान् होते हैं और बिना हाथ-पैर के भी भगवान् होते हैं। यदि बिना हाथ-पैर के भगवान् नहीं माने जाते तो शिवलिंग में, शालिग्राम में अंग-प्रत्यंग ,हाथ-पैर कहाँ है ? फिर इसको भगवान् कैसे मानते हैं ?

विन्दु को ईश्वररूप मानना, यह कोई अन्ध-विश्वास नहीं है; क्योंकि जो सबमें रहता है, वह विन्दु में भी रहता है। इसलिए विन्दु भी उसका रूप है। इसमें पूर्ण सिमटाव होता है; इससे अन्दर में प्रवेश होना होता है; स्थूल से सूक्ष्म में, बाहर से भीतर में प्रवेश होना होता है।

❁ मेरे ख्याल से जो भक्त लोग चन्दन लगाते हैं; वे एक टीका भी लगाते हैं। यह टीका विन्दु का प्रतीक है। मैं कहूँगा शालीग्राम भी इसी का प्रतीक है। यह ईश्वर का सूक्ष्म-रूप है। ईश्वर का रूप क्यों कहा जाये ? जो सत्संग करते हैं; वे जानने लगते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक हैं।

"अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा,

वसत इति वासना धूप दीजै।"

–गो0 तुलसीदास जी

विन्दु में भी वह व्यापक है। इसीलिए वह उसका रूप है। शालीग्राम में व्यापक है, इसलिए वह भी उसका रूप है। इसीलिए साधक लोग टीका लगाते हैं। मन को एक ओर करते-करते सूक्ष्मातिसूक्ष्म-दशा में ले आना है। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूप क्या हो सकता है ? विन्दु हो सकता है। जिसमें स्थान है, परिमाण नहीं है। यह अन्दाज से बन नहीं सकता।

❀ जिसका मन खूब समेट में आया है, दृष्टि स्थिर है तब जो विन्दु उदय होता है, अभ्यासी उसको देखता है कि ज्योतिर्मय-विन्दु है। अथवा तुलसी साहब–**"गगन द्वार दीसै एक तारा।"** तारक-लोक में पहुँच जाता है। देखो तो ऐसा लगे कि फिर देखूँ, फिर देखूँ। देखने में अच्छा लगता है, मन में बड़ी शान्ति आती है। यह तो आरम्भ की बात है। यह तो प्रथम अव्यक्त रहता है। करते-करते व्यक्त होता है, गोचर होता है। अगर अपना ठहराव ठीक रखा हो तो परमात्मा के नाना-प्रकार के ज्योति-रूप का दर्शन होता है। साधक प्रत्यक्ष तरह से देखता है। जिसको इसकी अनुभूति होती है, उसकी योग-शक्ति बढ़ती है। यहाँ तक कि अष्टसिद्धियों का ज्ञान होता जाता है। अष्टसिद्धि की शक्ति थोड़ी-थोड़ी मिलती जाती है। जो विन्दु-ध्यान करेगा उसको अवश्य होगा। गुरु के बताये अनुकूल जो कोशिश करता है तो दर्शन होता जाता है, शक्ति आती जाती है।

❀ मन से विन्दु बनाकर विन्दु-ध्यान करना विन्दु-ध्यान नहीं है; क्योंकि मन को परिमाण-रहित स्थान का रूप पहले से ज्ञात नहीं है, इसलिए विन्दु की परिभाषा के अनुकूल मन से विन्दु बन नहीं सकता है। केवल अत्यन्त सिमटी हुई यौगिक-दृष्टि से ज्योतिर्विन्दु का उदय होता है। पदार्थ-रूप में यह विन्दु शून्य का छोटे-से-छोटा चमकता हुआ अंश है, इसलिए यह शून्य नहीं है। इसी के ध्यान को शून्य-ध्यान कहते हैं और वह परम ध्यान है।

'तेजो विन्दुः परं ध्यानं विशषात्म हृदि संस्थितम्।"

–तेजोविन्दूपनिषद्

हृदय-स्थित विश्वात्म-तेजस्-स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। 'तेजोविन्दु' का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय में इस प्रकार है–

"कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्यधातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।9।।"

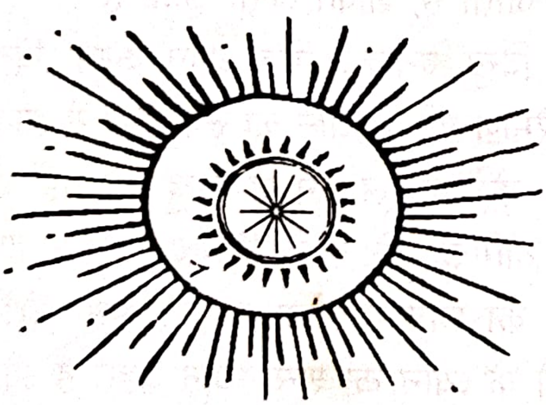
कवि अर्थात् सर्वज्ञ, पुरातन, शास्ता, अणु से भी छोटा, सबके धाता अर्थात् सबका आधार या कर्त्ता, अचिन्त्यस्वरूप और अन्धकार से परे सूर्य के समान देदीप्यमान पुरुष (है)।

और मनुस्मृति, अध्याय 12 में भी इसी 'तेजोविन्दु' का कथन इस प्रकार है–

"प्रशासितारं सर्वोषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ।।122।।"

इस श्लोक के द्वारा मनुस्मृति में भी अणु-से-अणु शुद्ध-स्वर्ण समान कान्तिमान अर्थात् 'तेजोविन्दु' को परमात्मा का रूप बताकर उसकी उपासना की आज्ञा है।

यह विन्दु परमात्मा का विशेष और सूक्ष्म रूप तेजोमय विभूति-रूप है। यह सेन्द्रिय सब विभूतिरूपों से विशेष आकृष्टकारी, मनोविकार-नाशक और शान्तिप्रद है।



श्री सद्गुरवे नमः



अन्तर्ज्योति और उसकी प्रत्यक्षता

❀ कितना भी प्रखर-प्रकाश रहे अन्दर में अन्धकार पहले मालूम पड़ता है। स्थूल, सूक्ष्म के भेद को जाना है। उसका थोड़ा-थोड़ा नमूना जाना है, तब विश्वास हुआ है। जो थोड़ा विश्वास था, थोड़ा-थोड़ा नमूना देखते-देखते और अधिक विश्वास हो गया। तुम नहीं-नहीं कहते रहो और हम हाँ! हाँ!! कहते रहेंगे। और यहाँ आकर हार जाओगे जहाँ **"तम बिनु कहै प्रकाश"** है।

❀ अन्धकार में अज्ञानता रहती है, ज्ञान नहीं रहता है। जहाँ अन्धकार है, वहाँ कौन-कौन बैठे हैं, पता नहीं लगता। साधक कुछ ऐसा साधन करता है, जिसमें अन्धकार से प्रकाश में जाता है। अन्दर में प्रकाश नहीं हो, तो आँख में रोशनी कहाँ से आती है? यह कहिये कि बाहर की रोशनी देखने से आँख में रोशनी आती है, तो यह बात ठीक नहीं है। अपने अन्दर में जो प्रकाश है, उसमें जो रहता है, वह ज्ञान में रहता है।

❀ जो एक विन्दु पर अपने को लाता है, एक प्रकार से समाधि को वह पाता है। तब उस समय वह दुनिया को नहीं जानता है, शरीर को नहीं जानता है। वह अपने अन्दर घुसेगा, तो पहले जो अन्धकार मालूम होता था, सो छूट जायेगा। अन्धकार के विरूद्ध में जो चीज है, वह है प्रकाश। अंधकार का उलटा प्रकाश होता है। विन्दु-ध्यान से जो प्रकाश होता हैं वह बाहर का प्रकाश नहीं है। वह सूर्य, चन्द्र और तारे का प्रकाश नहीं है। वह अन्तर्ज्योति है। वह अन्तर्ज्योति, ब्रह्मप्रकाश है। सबके अन्दर में वह ईश्वर की ज्योति विराजती है।

❀ सिमटाव होने का फल ऊर्ध्वगति होती है, जैसे-जैसे ऊर्ध्वगति होती है, वैसे-वैसे परमात्मा की विविध-ज्योतियों को देखता है और लाभ प्राप्त करता है। कहने के लिए तुरत हो जाता है, लेकिन करने में समय लगता है। मेहनत लगती है, जो उकताता है, वह असमर्थ होता है। करने को जाता है ध्यान और हो जाती है दूसरी बात ही, जिसको गुनावन कहते हैं। यह

इसलिए होता है कि वह प्रत्याहार ठीक से नहीं करता है। प्रत्याहार में सचेत नहीं है। जहाँ-जहाँ मन भागे वहाँ-वहाँ से संमेट-समेटकर लाओ। जितनी बार मन बिछुड़े उतनी बार मन को घेर-घेरकर लाओ जहाँ गुरु ने बताया है। जो बहुत प्रत्याहार करेगा उसको अवश्य धारणा होगी। कुछ काल ठहराव होगा। उसी ठहराव में शान्ति की अनुभूति होगी। दृष्टि का काम है देखने का। गुरुओं का आदेश है कि प्रत्याहार में खूब लगे रहो। प्रत्याहार से हारो मत। ज्योति जगेगी, प्रकाश होगा; इस आशा से डोलो मत।

"ऊँची अँटरिया लाल किवड़िया, निरगुण सेज बिछी।।
पचँरंगी झालर शुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बाजूबन्द कड़ूला सोहै, माँग सिन्दुर भरी।।"

उपनिषद् में ज्योति को भी एक परदा बताया है।

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वम् पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।।15।। "

–ईशावास्योपनिषद्

अर्थात् आदित्य-मण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय-पात्र से ढका हुआ है। हे पूषन्! मुझ सत्य धर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसे उघाड़ दे। मीरा बाई के वचन में पँचरंगी की चर्चा है। वह क्या है ? ध्यान करते समय अभ्यासी को पाँच रंग मालूम होते हैं।

"स्याही सुरख सफेदी होई। जरद जाति जंगाली सोई।।

–तुलसी साहब

पृथ्वी का रंग पीला, जल का रंग लाल, अग्नि का रंग काला, वायु का रंग हरा और आकाश का रंग साफ, ये ही पाँचो रंग•पँचरंगी झालर है।

कड़ूला=कड़ा=दम। बाजूबन्द=शम है।

इस तरह भजन करो तो मूर्द्धा में प्रकाश मालूम होगा। यही माँग का सिन्दुर है। नहीं तो मीराबाई विधवा थी। उनको सिन्दूर की क्या जरूरत ?

❁ साधक चमकती हुई ज्योति को अपने अन्दर पाते हैं। अपने अन्दर ज्योति और नाद नहीं है, इसके माननेवाले को समझना चाहिये कि बिना प्रकाश के हम बाहर की चीज को नहीं देख सकते। जातीय-पदार्थ को जातीय-पदार्थ से सहारा मिलता है। यदि हमारी दृष्टि ज्योति की जाति की

नहीं होती तो बाहर की ज्योति का सहारा नहीं मिलता। दूसरी बात है कि साधक अन्धकार में ध्यान करता है, उसको प्रकाश मालूम होता है, यह ऐसा प्रकाश है कि संसार के सभी प्रकाश और सभी खूबसूरतियाँ किसी काम की नहीं रहती। उस प्रकाश के सामने यह सूर्य भी अंधकार है। जो करके देखने की चीज है, उसको बिना किये कोई कैसे अनुभव कर सकता है। अन्दर में प्रत्यक्ष प्रकाश है, इसको करके देखो तो विश्वास होगा। हमारी दृष्टि जो ज्योति-स्वरूप है, अपने अंदर के प्रकाश को देख ले तो उसका मुकाबला कोई खूबसूरत नहीं कर सकता। जिस रूप में तेज नहीं है, वह भद्दा लगता है। **"जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं"** मृतक-शरीर में से ज्योति निकल जाती है, तब वह पहले जैसा सुन्दर नहीं लगता। इस शरीर में ज्योति अवश्य है।

"मन हीं सन्मुख नूर है, मन हीं सन्मुख तेज।
मन हीं सन्मुख ज्योति है, मन हीं सन्मुख सेज।।"

—दादू दयालजी

सूरदास जी ने कहा है—

"नयन नासिका अग्र है, तहाँ ब्रह्म को बास ।
अविनाशी विनसै नहीं, हो सहज ज्योति परकास।।"

बाबा नानक ने कहा है—

"घट-घट अंतरी ब्रह्मु लुकाइआ, घटि-घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती, निरभै ताड़ी लाई।।"

निडर-ध्यान लगाओ, अन्धकार का बज्र-कपाट खुल जायेगा। ईश्वर की ज्योति जो सब में समाई है, देखोगे।

ईश्वर प्रकाश-स्वरूप है, अन्धकार-स्वरूप नहीं। ऐसा नहीं कि कोई अभ्यासी अपने अंदर सूर्य, चन्द्र, तारे नहीं देखता। अभ्यासी अपने अन्दर में प्रकाश देखता है तो उसके लिए बाहर का प्रकाश फीका पड़ जाता है। यत्न करके इनको पकड़ना चाहिये।

ज्ञानी केवल सिखाने वाले हैं, करना तुमको ही पड़ेगा। अपना सिमटाव करो, जहाँ मैंने बताया है। सद्ग्रन्थ, गुरु का वाक्य और अपना विचार मिल जाये तो कितना विश्वास होगा! गुरु नानक ने कहा है—

"अंतरि जोत भई गुरु साखी चीने राम करंमा।।" अन्तर में प्रकाश हुआ, यह गुरु की गवाही है और तब गुरु के दयादान को पहचाना। इस सहारा को पकड़ो। जो इसको पकड़ता है, वह विषयानन्द में नहीं दौड़ता।

❁ यह शरीर ऊपर से देखने पर खूबसूरत या बदसूरत लगता है। डॉक्टर लोग जितना पढ़ते हैं, उतना ही नहीं है। यह शरीर हाड़, मांस, चाम का ही लोथड़ा नहीं है, खोजने पर इसमें ईश्वर भी मिलते हैं। इसके अन्दर ईश्वर से मिलने का सहारा है। उस सहारे को पकड़ो। सहारा यह है कि बाहर दुनिया में चाँद-सूर्य आदि की रोशनी है। किन्तु अन्दर में चाँद-सूर्य के बिना ही रोशनी है; उसको जो पकड़ता है, वह ईश्वर को पाता है। ब्रह्म-ज्योति सहारा है।

❁ गुरु महाराज की दया से 1909 ई0 में मुझे विश्वास हुआ। 1904 ई0 में मैंने स्कूल छोड़ा। इस मार्ग के पहिला मेरे गुरु थे बाबू राजेन्द्र नाथ सिंह वकील। मैंने उनसे पूछा–"कैसे विश्वास हो कि तारा अन्दर में देखने में आवेगा ?" उन्होंने कहा–"आकाश के तारे को कैसे देखते हो ? बाहर के तारे की ओर नजर करके देखते हो उसी तरह उस तारा की ओर भी नजर करो तो देखोगे।"

"जौं लग नहिं देखौं निज नैना ।
तब लग नहिं मानौं गुरु के बैना।।"

जिस तरह गुरु कहे उस तरह करो, तब नहीं देखोगे तो कहना कि गुरु झूठा है। जैसा गुरु ने कहा वैसा किया नहीं और कहे कि नहीं है, ठीक नहीं।

❁ दृष्टि स्थिर होने पर ब्रह्मज्योति देखने में आती है। **"देखे आँखी कोनो मते फिरे ना।"** वह परमात्मा के तरह-तरह के प्रकाशों को पाता है–देखता है। गीता में है कि भगवान ने अर्जुन को विराट् रूप दिखलाया। उसमें इतना प्रकाश था कि करोड़ों सूर्य का प्रकाश उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। उस प्रकाश को उस रूप से हटा दीजिये तो क्या सुन्दरता रह जाती है ? बिना तेज के रूप सुन्दर नहीं दीखता। **'जिमि बिनु तेज न रुप गोसाईं'**। असल में तेज ही वह पदार्थ है जो अपनी ओर वा रूप

की ओर आकर्षित करता है। सभी जीवित चेहरे में प्रकाश रहता है, मृतक शरीर के चेहरे में वह सौन्दर्य नहीं रहता। ब्रह्म-तेज ही तेज है, किन्तु बहुत लुभानेवाला है, यह अवलम्ब मिलता है। जिसको यह अवलम्ब मिलता है वह उधर ही टन जाता है, इधर नहीं आता है।

❀ शबरी जी ने राम के सम्मुख ही योगाग्नि में अपने शरीर को छोड़ दिया। योगाग्नि कोई बाहर की अग्नि नहीं है, जिससे शरीर जल जाये। जो योग करता है उसके अन्दर योग अग्नि प्रकट होती है। ब्रह्म ज्योति मिलती है।

❀ शून्य में अपनी वृत्ति को ले जाओ। चाहे अन्धकार देखोगे, चाहे प्रकाश देखोगे। पहले तो अन्धकार ही रहेगा। वह अन्धकार तो व्यक्त हई है, उसमें अपनी सुरत को टिकाओ। जो आँख बन्दकर देखता है, तो वह उस शून्य में अन्धकार को पाता है। वहाँ जो अपनी सुरत को एक जगह केन्द्रित करता है, वह विन्दु-ध्यान है। फिर उसको प्रकाश मालूम होता है। कोई आँख बन्द करके ठाकुरवाड़ी में जाये और तब आँख खोल दे, तो जो ठाकुरवाड़ी में है, उसे प्रत्यक्ष पाता है। उसी तरह जब वृत्ति सूक्ष्म में प्रवेश करती है, तब वह उसे देखती है, जो वहाँ है—प्रकाश।

❀ स्थूल-मंडल से आगे बढ़कर सूक्ष्म-जगत् में प्रवेश करने पर जिससे सम्बन्ध होता है, वह ब्रह्मज्योति है। स्थूल-जगत् में जप, गुणगान और साधु-संग द्वारा ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। सूक्ष्म-जगत् में प्रवेश करने पर परमात्म-प्रकाश से सम्बन्ध होता है। उस प्रकाश से परमात्मा की ओर भक्त खिंचता है। परमात्मा का प्रकाश पाना परमात्मा की खास भक्ति है।

❀ प्रकाश वह चीज है, जिसको प्रत्यक्ष देखा जाता है। प्रकाश में अन्धकार नहीं सूर्य के प्रकाश में अन्धकार है। सूर्य के प्रकाश से सभी कुछ नहीं देख सकते, दुरबीन से देखते हैं। अपने शरीर में जो आत्मा है, उसको इस प्रकाश से नहीं देख सकते। इसलिए इसमें भी अन्धकार है। गुरु ऐसे प्रकाश में रहते हैं, जिसमें अन्धकार नहीं है। वह आत्मप्रकाश है।

❀ परमात्मा सर्वव्यापी है, इसका प्रकाश सर्वव्यापी है, वह निकाला नहीं जा सकता। जैसे कोई सूर्य के प्रकाश को देखता है, फिर सूर्य को, इसी

तरह पहले ब्रह्म के प्रकाश को देखो, फिर ब्रह्म को देखोगे।

❁ वाक्य ज्ञान किसी को कितना भी अधिक है, उससे वह संसार से पार नहीं हो सकता। जैसे अँधेरे घर में यदि कोई दीपों की चर्चा करता रहे, तो घर में प्रकाश नहीं हो सकता। कोई बहुत दीन दुःखी है, उसके सामने कल्पवृक्ष और कामधेनु के चित्र रख दे, तो उनसे दीन-दुःखी व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति नहीं होती। उसी तरह जब तक अपने अंदर में प्रकाश नहीं होगा, तब तक विषयों की इच्छा मन से नहीं जायेगी और संसार में डूबते रहेगा। उसको सपने में भी सुख नहीं होगा। इसलिए अपने अंदर प्रकाश चाहिये।

❁ दृष्टि से लोग देखते हैं। दृष्टि को जोड़ने की क्रिया को दृष्टियोग कहते हैं। इसी को शाम्भवी मुद्रा या वैष्णवी मुद्रा भी कहते हैं। दृष्टि को अपने अंदर इस तरह कौशल-पूर्वक रखना चाहिये, जिससे आप-ही-आप प्रकाश हो जाये। कहाँ दृष्टि रखें, इसका कौशल जानना चाहिये। दृष्टि को कौशल से रखेंगे, प्रकाश होगा।

❁ घट-घट में परमात्मा की ज्योति समायी हुई है। जब तक अपने अंदर में प्रकाश नहीं होगा, तब तक संसार के बंधन से कोई मुक्त नहीं होगा। इसलिए केवल वाचक ज्ञानी मत बनो। दिव्य ज्योति के दर्शन के लिए ध्यान करो। साधना के अंत में आत्म-ज्योति का दर्शन होता है।

❁ प्रकाश को पाने के लिए कैसी दृष्टि बनाओ? सन्तों ने कहा–"सूक्ष्म-दृष्टि बनाओ।" आँख, पुतली, डीम, को दृष्टि नहीं कहते हैं। देखने की शक्ति को दृष्टि कहते हैं। यह तो पतली है ही, फिर ऐसा सूक्ष्म करो कि एकविन्दुता प्राप्त हो जाये, तब प्रकाश अवश्य मिलेगा।

जैसे उषाकाल में सूर्य का प्रकाश है, फिर भी सूर्य का दर्शन नहीं होता–पीछे होता है, उसी तरह अन्तर्ज्योति का दर्शन करने पर ईश्वर का दर्शन नहीं होता। इससे ईश्वर की ओर बढ़ने के लिए उत्साह मिलता है, साहस होता है। फिर और प्रकाश मिलता है, तब ईश्वर की ओर बढ़ने को और अधिक उत्साह मिलता है।

❁ बाहर में चन्द्र-सूर्य की ज्योति है। इसको तुमने नहीं बनाया है। इसी तरह अन्दर में ज्योति है, उसको तुमने नहीं बनाया है। बाहर की ज्योति

बाहर की ओर खींचती है और अंतर की ज्योति अंतर में खींचती है। मन से कुछ बनाने का काम नहीं। संसार में जन्म लेते ही, इस ओर कुछ ख्याल नहीं रहता। ज्योति और अन्तर्नाद को प्राप्त करने के लिए ध्यान करो। एक तो चमकता हुआ सूर्य है, उसको मन से बनाओ नहीं। अन्दर में देखो। देखने का कौशल है कि फैली निगाह से नहीं, सिमटी निगाह से देखो।

आकाश में पहले बिजली चमकती है, फिर तड़ाके की आवाज सुनने में आती है। उसी तरह अपने अंदर में पहले ज्योति देखो।

❀ सोलहों कलाओं से युक्त चन्द्र का उदय हो जाये, आसमान में तमाम तारे हो जायें, लेकिन जब तक सूर्य का उदय नहीं होता है, रात्रि नहीं जाती है। इसलिए यह मिशाल बाहर में लोगों को देने के लिए है। हमारे अंदर में भी बड़ा अंधकार है। रात में जैसे अमावस्या में अंधकार होता है, उसी तरह हमारे अंदर घोर अंधकार है। रास्ता मालूम नहीं पड़ता कि हम किधर को जायें। चाहिये कि दिन हो अर्थात् प्रकाश हो। प्रकाश के लिए खोज कीजिये। बिना प्रकाश के रास्ता नहीं पा सकेंगे।

❀ जिसके अन्दर में प्रकाश होता है, वह तीनों लोकों को देखता है। उससे कुछ छिपा नहीं रहता। उस प्रकाश से बहुतों को सुख और बहुतों को दुःख होता है। बाहर के सूर्य में गर्मी मालूम पड़ती है और अन्दर के सूर्य के प्रकाश में मन शान्त हो जाता है, जैसे अधिक ठंढ़ से पानी जम जाता है। दुःख किनको हुआ ? प्रथम अविद्या निसा नसानी। अविद्या गई, अन्धविश्वास गया। अविद्या का ज्ञान राजस वा तामस है। अविद्यारूपी रात को दुःख हुआ। मतलब, जिनको सूर्य-दर्शन हो, उनकी पापवृत्ति चली जाती है। पाप-रूपी उल्लू पक्षी जहाँ-तहाँ छिप गये। अनेक प्रकार के गुण, कर्म, काल और स्वभाव चकोर हैं, ये कभी सुख नहीं पाते हैं। डाह, प्रतिष्ठा का विचार, अज्ञानता और मद चोर हैं, इनकी कला किसी ओर न रही। सुख किनको हुआ ?

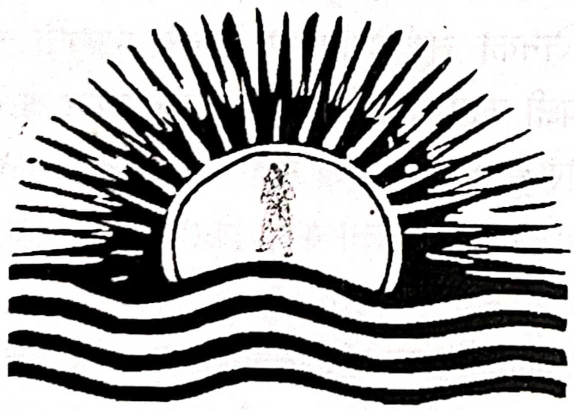
धर्म-रूपी तालाव में ज्ञान और विज्ञान-रूपी अनेक प्रकार के कमल हैं; ये खिल गये। सुख सन्तोष, विराग और विवेक, ये अनेक चकवे पक्षी शोक-रहित हो गये।

❀ सूर्य की ज्योति को देखकर जैसे सूर्य को देखते हैं, उसी तरह

ईश्वर की ज्योति आपके अन्दर है, इसके द्वारा ईश्वर को पहचानिये।

❁ अन्दर का प्रकाश बाहरी सूर्य का प्रकाश नहीं है, आत्मा का प्रकाश है। जो इस ज्योति को पकड़ता है, वह महान् पुरुष हो जाता है। ऋद्धि-सिद्धि सब आ जाती है। मोह से छूटता है। अन्तःप्रकाश में जिसकी वृत्ति डूबती है, बाहर के विषयों में उसकी डूबती नहीं। अन्दर में प्रकाश सबको है। प्रकाश-हीन कोई नहीं है। अन्दर में प्रकाश को जो पकड़े, वह ईश्वर की ओर जाता है। जो प्रकाश को पकड़ता है, वह ईश्वर की भक्ति में पूर्ण होता है।

❁ ब्रह्मज्योति के दर्शन श्वास-प्रश्वास द्वारा नहीं होते। किसी भी पदार्थ के दर्शन तो दृष्टि से ही होते हैं, अतः प्राणवायु और दृष्टि, जब दोनों ही सुष्मन-विन्दु पर स्थिर होते हैं, तभी ब्रह्मज्योति के दर्शन होते हैं। जब दृष्टि सुषुम्ना में स्थित होती है, तो प्राणवायु को भी वहाँ ठहर जाना पड़ता है। किन्तु जब प्राणवायु सुषुम्ना में हो और दृष्टि सुषुम्ना में नहीं हो, तब ब्रह्मज्योति के दर्शन नहीं होंगे।



श्री सद्गुरवे नमः



सुरत-शब्द-योग और उसकी विधि

꙳ नाम-भजन सबसे श्रेष्ठ है। नाम-भजन दो तरह से होता है–जप और ध्यान। वर्णात्मक नाम का जप और ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान करो। इसी ध्वन्यात्मक नाम के ध्यान को नाम-भजन और सुरत-शब्द-योग भी कहते हैं। इसको अन्तर्मुख होकर करना पड़ेगा। यह शब्द मनुष्य का बनाया हुआ नहीं हैं। इसको कोई मनुष्य मुँह से उच्चारित करके किसी से कह भी नहीं सकता है। इसकी युक्ति जानो और ध्यान करो। ध्यान करने से आप-ही-आप यह नाद सुन पड़ेगा। सन्तों की वाणी में जो पाँच शब्द आते हैं, वे ये हैं कि परमात्मा से सृष्टि के लिए जो मौज होती है, उससे जो धारा प्रवाहित होती है, उससे पाँच मण्डल बनते हैं। उन्हीं पाँच मण्डलों के केन्द्रिय शब्दों को पाँच शब्द कहते हैं। कबीर साहब ने कहा है–

"पाँचो नौबत बाजती, होत छत्तीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।।"

और गुरुनानक देव जी ने कहा–

"पंच सबदु धुनिकार धुन तहँ बाजे गगन निसानु।"

जो अपने अन्दर गहरा ध्यान करता है, उसको यह नाद मिलता है और उस नाद को ग्रहण कर परमात्मा को पाता है।

꙳ नानक पंथ के दसवें गुरु–गुरु गोविन्द सिंह जी ने कहा है–

"बाजे परम तार तत हरि को, उपजै राग रसारं।"

यह नादानुसंधान है। नादानुसंधान सभी संतों के ग्रन्थों में मिलता है।

꙳ सृष्टि का स्थूल या सूक्ष्म कोई भी मंडल हो बिना शब्द के नहीं है। वहाँ के शब्द को सुनने वाला वही होता है, जिसकी दृष्टि प्रकाश में पहुँच गई है, जहाँ जाओ कि सुन सको; वहाँ तक़ पहुँचने के लिए दृष्टियोग चाहिये। शब्द का सहारा इतना उत्तम है कि कहा नहीं जाता। शोक से मुरझाया हुआ आदमी है तो उसको ऐसे-ऐसे शब्द सुनाये जाये जिससे वह मुरझाया हुआ नहीं रहे, वह प्रसन्न हो जाये। शब्द का चार गुण हैं। ऊपर

का शब्द नीचे दूर तक जाता है, नीचे का शब्द ऊपर दूर तक नहीं जाता है, अपने उद्गम स्थान पर खींचता है और अपने स्थान के गुण को लिए रहता है–उस शब्द को जो कोई सुनता है वह गुण उसमें हो जाता है। सिनेमा-नाटक आदि देखते हैं तो उसमें शोक का दृश्य देखने से शोकित और हर्ष के दृश्य को देखकर हर्षित होते हैं। आप जिस शब्द को पकड़ना चाहें उसे पकड़िये, उसके केन्द्र में केन्द्रित करावेगा। सच्चिदानंद पद मंडल के केन्द्र से जो शब्द आता है वही रामानाम, ऊँ, आदि नाम है। उस शब्द से जो खींचा जायेगा वह पर धाम में पहुँचेगा।

❀ नाम के ध्यान को ही नादानुसन्धान कहते हैं। यह बाहर का शब्द नहीं, अन्तर की ध्वनि है। शब्द आकर्षक होता है। अन्तर्नाद में जो मिठास है, उसको जो एक बार भी चख लेता है, तो मन बारम्बार उधर ही घूमता रहता है।

❀ ऋषि-मुनि लोग ब्रह्मनाद के साधन को नादानुसंधान कहते हैं। इसी को संत नाम-भजन या सुरत-शब्द-योग कहते हैं। अपनी वृत्ति को स्थूल से सूक्ष्म में ले जाकर अन्तर्नाद में वृत्ति जोड़ो। केवल मनोवृत्ति से ही नाद ग्रहण होता है। वहाँ कोई बाह्य इन्द्रिय नहीं है। नादानुसंधान में सिवा मन के अन्य कोई इन्द्रिय नहीं रहती। नाद की बड़ी महिमा है। शिवसंहिता में लिखा है–**"न नाद सदृशो लयः।"** नाद साधन मनोलय का सर्वोत्तम साधन है। मन बहुत चंचल है। उसकी चंचलता मिटाने का सर्वोत्तम साधन नादानु-सन्धान है। मृगरूपी चित्त को बांधने के लिए यह नाद जाल का काम करता है। समुद्र तरंग रूपी चित्त के लिए यह नाद तट का काम करता है।

शंकराचार्य जी ने अपनी 'योगतारावली' में लिखा है–"मन तो भेरी, मृदंग और शंख आदि के आघातजन्य नादों में भी एक क्षण के लिये मग्न हो जाता है। फिर इस मधुवत् मधुर, अखंडित और स्वच्छ अनाहत नाद की तो बात ही क्या है ?"

उन्होंने नादानुसंधान की विनती भी की है। यह एकदम परमात्मा से मिला देनेवाला है। बीच में रोकनेवाला कोई नहीं।

❀ सद्गुरु बाबा देवी साहब के वचन में है कि–जहाँ तक दर्शनीय पदार्थ है, जहाँ से आवागमन होता है, वहाँ तक दृष्टि ले जाती है। इससे

आगे जहाँ से आवागमन नहीं होता, इसका साधन शब्दयोग है। चौथा पद, सतलोक को कहा है और उसको मोक्ष धाम कहा है। कोई कहे कि दृष्टि-साधन करते-करते सतलोक तक जाता हूँ, तो यह बाबा देवी साहब के कहने के अनुकूल नहीं है और न उपर्युक्त वचन का कहने वाला अपने विचार को समझाकर बोध दिला सकता है। ऐसे फजूल ही बक-बक करने वाले क्षमा के पात्र हैं।

❁ शब्द से ही सारे संसार का पसार होता है। शब्द से ही संभाल होती है। शब्द से ही मनुष्य, मनुष्य बनता है। जितने विद्यालय हैं, सबमें शब्द की शिक्षा है। इसी शिक्षा से लोग बढ़ते हैं। सन्तों के यहाँ जो नादानुसंधान है, इस साधना से ईश्वर तक पहुँचा जाता है।

❁ योग-शास्त्र के प्रवर्त्तक भगवान् शिवजी ने मन के लय होने के सवा लक्ष साधन बतलाये हैं, उन सबमें नादानुसंधान सुलभ और श्रेष्ठ है। हे नादानुसंधान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं, आपके ही प्रसाद से मेरा प्राण-वायु और मन, ये दोनों विष्णु के परमपद में लय हो जायेंगे। योग-साम्राज्य में स्थित होने की इच्छा हो, तो सब चिन्ताओं को छोड़कर सावधान हो एकाग्र मन से अनहद नादों को सुनो।

नादानुसन्धान अर्थात् शब्द की खोज। रामानन्दी महन्त ने भी यौगिक क्रिया-नादानुसंधान का अच्छी तरह समर्थन किया है। इसी का प्रचार यहाँ से है। वैसे अपनी-अपनी क्रिया को सभी पूर्ण कहते हैं; लेकिन समझा नहीं सकते। यह नादानुसन्धान सरल भी है और पूर्ण भी। इसको समझाया जा सकता है।

❁ ध्वन्यात्मक-शब्द—सार-शब्द ईश्वर को प्राप्त करा देता है। वही ईश्वर का असली नाम है। ध्वन्यात्मक-शब्द ईश्वर तक पहुँचा देता है और परिचय करा देता है। वर्णात्मक-शब्द में ईश्वर की पहचान कराने का गुण नहीं है। साधना के आरम्भ में इसकी भी बड़ी आवश्यकता है। इसलिए वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक—दोनों नामों का भजन करना चाहिये।

"नाम जपत स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत शब्द एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।"

इसलिए दोनों नामों को जानना चाहिये। नाद-विन्दु की उपासना

करनी चाहिये। विन्दु-उपासना में ज्योति पकड़ी जाती है और ज्योति में शब्द पकड़ा जाता है। ज्योति ग्रहण करो। ज्योति में केन्द्रिय शब्द को ग्रहण करना चाहिए।

❀ विन्दु-ध्यान करने पर शब्द ग्रहण होता है और उस शब्द की विविधता भी मिट जाती है एक सारशब्द की प्राप्ति में। यह सीधा और सरल मार्ग है।

❀ जो उस शब्द को पकड़ते हैं, वे सर्वज्ञ हो जाते हैं। एक महात्मा ने मुझे पत्र लिखा कि मुझे सारशब्द प्राप्त है। आपकी साधना क्या है सो लिखिये। तब दोनों मिलाकर कोई सरल राह ईश्वर-प्राप्ति की निकाली जायेगी। उसके उत्तर में मैंने लिखा—मुझे विश्वास है कि जिसको सारशब्द प्राप्त हो जाता है, वह सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी और पूर्णकाम हो जाता है। आपको सारशब्द प्राप्त है, इसलिए आपको मुझसे कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं।

❀ प्रकाश अन्त तक नहीं पहुँचा सकता, इसीलिए नादानुसन्धान करने के लिए सन्तों ने कहा है। इसको साधु-सन्त लोग नाम-भजन वा सुरत-शब्द-योग भी कहने लगे।

नाम-भजन करते हुए एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र तक पहुँचते हुए ईश्वर तक पहुँचा जाता है; क्योंकि आदि में शब्द ईश्वर से उत्पन्न होता है। वेद में इसको 'विश्वजन्या' कहा है। वेद में जब है ही, तब उपनिषद् में क्यों नहीं होगा और सन्तवाणी तो इसी की किताब है ही। सन्तवाणी से इसको निकाल दिया जाये, तो सन्तवाणी का सार ही निकल जाये।

❀ ध्वन्यात्मक-शब्द अंत तक पहुँचाता है। अपनी-अपनी भाषाओं में दूसरी तरह भी कहते हैं। फकीर लोग जिक्र करना कहते हैं। ध्यान को मरकवा कहते हैं। उस ध्यान में जो नाम जपा जाता है, ध्यान किया जाता है, उसको सुलतान उलजकार कहते हैं। अर्थात् जो ध्वन्यात्मक-शब्द में पड़ता है, आखिर मंजिल तक पहुँचता है।

❀ कबीर साहब, गुरु नानक साहब के वचन में शब्द-ध्यान का बहुत वर्णन है। शब्द में भी दो प्रकार हैं—एक आहत् जो ठोकर से हो। यह बाहर और भीतर दोनों में हो सकता है। दूसरा है—अनाहत्, यह अपने अंदर में

होता है। अंदर में जो शब्द होता है, उसमें भी ठोकर लगती है। लेकिन लोग नहीं जानते। यह "राजबातिन" है अर्थात् अंदर का गुप्त भेद है। इसी से आखिर में जाकर ध्यान खत्म होता है। आहत् से शुरू होता है और अनाहत् में खत्म होता है। उसको ओम्, स्फोट, उद्गीथ भी कहते हैं।

❀ नाम शब्द को कहते हैं। परमात्मा के भी नाम होते हैं। उनके वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक–दोनों नामों में श्रद्धा रखो। दोनों का अभ्यास करते-करते खत्म होता है। वर्णात्मक-नाम बहिर्वृत्ति और ध्वन्यात्मक-नाम आन्तरिक वृत्ति में होता है। जबतक कोई आंतरिक वृत्ति में नहीं घुसे, नादानुसन्धान जब तक नहीं करे, ईश्वर-भक्ति पूरी नहीं होगी। जबतक ईश्वर की भक्ति पूरी नहीं होगी, आवागमन का चक्र नहीं छूटेगा।

❀ जिस तरह दूध में घृत है, वही उसका सार है। अगर घी नहीं रहे तो दूध असार है। उसी तरह संतों के मत में यदि नादानुसंधान–सुरत-शब्द-योग नहीं रहे, तो संतमत खोखला हो जायेगा। इसमें सार नहीं रहेगा।

❀ आप देखते हैं कि बादल लगता है, बिजली चमकती है। बिजली की चमक हो जाने पर बादल से आवाज भी आती है। इसी तरह साधक जब अन्तर्साधन करता है, तो पहले ही ठनका ठनकता नहीं है। पहले ज्योति चमकती है तब ठनका ठनकता है। इसीलिए जब तक ज्योति-उदय नहीं हो, तब तक नादानुसंधान करने की इजाजत संतों की नहीं है। पहले देखो, फिर सुनो। अगर नहीं देखो तो जो सुनोगे, ठीक नहीं सुनोगे।

❀ चौथी अवस्था में रहकर भजन करो। इसमें जो बढ़ते-बढ़ते अधिक बढ़ जाता है, वह उस अखण्ड-नाद को सुनता है। उसके नीचे का जो नाद है; वह भी कारण होता है उसको आगे बढ़ने का। जानना चाहिये शब्द में आकर्षण होता है। जिधर से शब्द आता है, खींचते-खींचते उस ओर पहुँचता है। कुत्ता भी पुकार सुनकर निकट आता है। यह सुरत-शब्द-योग में गुण है। इसमें यह ज्ञान है कि शब्द कहाँ से आया। लोग कहते हैं, वह आकाश से आया। मैं कहता हूँ वह भी मायिक-शब्द ही है। पंच भौतिक-शरीर में रह कर जो सुनते हो, वह अन्दर की अनहद-ध्वनि नहीं है। आज्ञाचक्र में अपने को स्थिर करने पर वह ऊपर की ध्वनि सुन पड़ती है।

❀ संत कबीर साहब ने कहा है–

"यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं ऊबरै, केता करै उपाय।।
शब्द गह्यो जिव संशय नाहिं, साहब भयो तेरो संग।"

इसके लिए पहले सगुण-ध्वनियों का अभ्यास साधु लोग करते हैं। जो एक प्रकार का शब्द सुना गया उसके खिंचाव से ऊपर पहुँचा। फिर उसके केन्द्र पर दूसरे मंडल का केन्द्रिय-शब्द पकड़ा जाता है। इसी प्रकार एक शब्द से दूसरे शब्द को पकड़ता है। शब्द ही शब्द को पकड़ाने वाला हुआ। गोया शब्द ही शब्द का गुरु हुआ। साधन करने से यह आप मालूम होता है। कहने से, सुनने से, विश्वास होगा। श्रद्धायुक्त होकर साधन कीजिये, यही है दीक्षा। लेकिन बिना शिक्षा के दीक्षा नहीं। ईश्वर-भक्ति में यह शिक्षा बहुत काम करने वाली है। ऐसी कोई धारा नहीं जिसके सहारे ईश्वर तक पहुँचा जाये। ईश्वर का यह निर्गुण नाम है।

❁ **"सुमति पाए नाम धिआए, गुरुमुखि होए मेला जीउ।"**

–गुरुनानकदेव जी

सन्तों ने वर्णात्मक-नाम का जप और ध्वन्यात्मक-नाम का ध्यान करने के लिए कहा। वर्णात्मक-शब्द के जप से स्थिरता आती है–

"नाम जपत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरति सबद एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।"

सुरत-शब्द-योग का जो अभ्यास करता है, वह शरीरस्थ होने की दशा को छोड़कर ऊपर उठता है। जैसे मछली पानी में पानी को भोगती हुई रहती है, उसी तरह जीव शरीर में रहकर शरीर के सुख-दुख को भोगता है; किन्तु जो ध्वन्यात्मक-शब्द का ध्यान करता है, वह शरीर से ऊपर उठकर ब्रह्म-रस को प्राप्तकर ऐसा मग्न हो जाता है कि संसार के विषय उसके लिए तुच्छ-से-तुच्छ हो जाते हैं। इसी ध्वन्यात्मक-नाम का भजन करने के लिए सन्तों ने कहा।

❁ अन्तर्नाद में भी आहत् और अनाहत् दो प्रकार हैं। किसी प्रकार के स्थूल या सूक्ष्म आघात से जो शब्द होता है, वह आहत् शब्द है। किसी एक चीज को तोड़ो वा ठोकर दो तो आवाज होती है और इस आवाज से वह विशेष है जो अन्दर में होती है, वही आवाज सन्तमत में विशेषता रखती है।

इस अन्तर की आवाज के भी बहुत प्रकार हैं। उन बहुत प्रकार के शब्दों में सद्गुरु के संकेत से आहत् के बाद अनाहत यानी सारशब्द को पकड़ा जाता है। और इस आवाज को पकड़कर उसके अन्त तक पहुँचा जाता है। अन्त सबका वह है, जिसका अन्त नहीं है और इसीलिए उसको अनन्त कहते हैं।

यह जो भादो में अनन्त-पूजा होती है, वह अनन्त नहीं है। यर्थाथ में अनन्त होना चाहिये, वह एक परमात्मा ही है।

❀ जैसे बाहर में आप देखते भी हैं और सुनते भी हैं, वैसे ही अपने अन्दर में विन्दु का दर्शन होने पर देखा भी जायेगा और सुना भी जायेगा। जो सुना जाता है, वह शब्द है। लेकिन वह वर्णात्मक शब्द नहीं है। नाभि की परा वाणी नहीं है। पश्यन्ति वाणी नहीं है, मध्यमा वाणी नहीं है, वह बैखरी वाणी नहीं है, जिसे लोग मुख से बोलते हैं। इन सबसे परे की वाणी में सन्तों ने ध्यान लगाने को कहा है। विन्दु-दर्शन के बाद से यह ध्यान होता है। शब्द वहाँ इसलिए मानना पड़ता है कि जहाँ देखना है, वहाँ सुनना नहीं हो, असम्भव है। परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी वाणी में जो वर्णात्मक शब्द होता है, वह वहाँ नहीं है। वहाँ ध्वन्यात्मक शब्द होता है। इसी ध्यान को नादानुसन्धान वा सुरत-शब्द-योग कहते हैं। इसी सुरत-शब्द-योग की उत्कृष्ट शक्ति है, जो ईश्वर तक पहुँचा देता है; क्योंकि शब्द का कहीं आरम्भ और कहीं अन्त मानने योग्य है। विन्दु के स्थान से जो शब्द सुना जाता है, वहाँ इसका अन्त है और जहाँ से इसका आरम्भ होता है, उसको निःशब्द कहते हैं।

❀ शब्द-अभ्यास खूब करो। लेकिन पहले सूक्ष्म में प्रवेश करो। किसी ने कहा–"शब्द ध्यान करके क्या होगा ? यह रग-रेशे की आवाज है, खून का दौरान होता है, वायु का संचार होता है।" मैंने कहा–"महाराज ! इस तरह शब्द-ध्यान नहीं होता है।" उन्होंने बड़े प्रेम से कहा–"तब कैसे होता है जी ?" मैंने कहा–"पहले ध्यान करके एक विन्दुता प्राप्त कर लेनी चाहिये। एक विन्दुता प्राप्त कर लेने पर स्थूल में वृत्ति नहीं रहेगी, सूक्ष्म में रहेगी। तब नाद-श्रवण करना चाहिये।" आर्यसमाज के संन्यासी स्वामी श्री सर्वदानन्द जी से यह चर्चा हुई थी।

❁ **"जान आदिकवि नाम प्रतापू।**
भयउ सुद्ध करि उलटा जापू।।"

–श्री रामचरित मानस

आदिकवि वाल्मीकि जी नाम के प्रताप को जानते हैं, जो (वाल्मीकि जी) उलटा नाम-जाप वा भजन करके पवित्र हुए हैं। वर्णात्मक शब्द की धार की गति नीचे से ऊपर की ओर नाभि से मुख की ओर को है और अनाहत् तथा अनहद ध्वन्यात्मक शब्द की धार की गति ऊपर से नीचे की ओर को वा ब्रह्माण्ड के परे से ब्रह्माण्ड की ओर को पिण्ड में दिमाग के भीतर सूक्ष्म स्नायविक (स्नायु-सम्बन्धी) मण्डल के केन्द्र से स्थूल स्नायु-समूहों की ओर को है। इस प्रकार वर्णात्मक और कथित ध्वन्यात्मक; दोनों शब्दों की धारें एक दूसरे की उलटी ओर को प्रवाहित है। इसीलिए वर्णात्मक नाम-भजन के सम्मुख ध्वन्यात्मक नाम-भजन को उलटा नाम-भजन कहा गया है। आदिकवि (वाल्मीकि जी) केवल "मरा, मरा" ही नहीं जपे थे, बल्कि वे ध्वन्यात्मक रामनाम का भी भजन करके पवित्र होकर (सब आवरणों को पार करके) ब्रह्म में लीन हो गये थे।

"उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।"

–श्री रामचरित मानस

बिना शब्दब्रह्म में वा सर्वव्यापक शब्द में वा ध्वन्यात्मक रामनाम में लीन हुए, ब्रह्म में लीन होकर कोई ब्रह्मस्वरूप नहीं हो सकता।

"द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।"

–ब्रह्मविन्दूपनिषद्

अर्थ–दो विद्याएँ समझनी चाहिये, एक तो शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। शब्दब्रह्म में जो निपुण हो जाता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। पुनः–

"अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।"

–योगशिखोपनिषद्

अर्थ–अक्षर (अनाश) परम नाद को शब्दब्रह्म कहते हैं।

❁ **"ब्रह्म पयोनिधि मन्दर, ज्ञान सन्त सुर आहि।**
कथा सुधा मथि काढ़इ, भगति मधुरता जाहि।।"

ब्रह्म क्षीर-समुद्र है और उसको ज्ञान-रूप मन्दराचल से सन्त-रूप देवता मथकर कथा-रूप अमृत को निकाल लेते हैं, जिसमें भक्ति-रूपी मिठास है।

ब्रह्म-पयोनिधि = त्रिकुटी। कथा-सुधा = सारशब्द। जो अभ्यासी तीसरे तिल में प्रवेश करके सहस्त्रदल कमल के विविध ज्योति-मण्डलों के पार होता हुआ त्रिकुटी के महान् ज्योति-मण्डलों को भी पारकर जाता है, वही ब्रह्म-पयोनिधि को मथ डालता है और कथा-सुधा अर्थात् सारशब्द को प्राप्त करके भक्ति के अत्यन्त मीठे रस में निमग्न हो जाता है। त्रिकुटी तक त्रयगुणात्मक मायिक-आवरण विशेष मोटा होने के कारण उसके अन्दर सारशब्द का कुछ भी आभास मिलना नहीं हो सकता है। परन्तु त्रिकुटी के परे मायिक-आवरण उत्तरोत्तर विशेष झीना होता जाता है। इस झीनेपन में सारशब्द की परख का आभास प्राप्त करता एवं क्रमशः आगे बढ़ता हुआ त्रयगुणात्मिका मूल प्रकृति के परे सच्चिदानन्द पद में जाकर भक्त साधक को उसकी (सारशब्द की) पूर्ण परख होती है। सारशब्द को ही रामनाम कहते हैं। सारशब्द की प्राप्ति से जीव को परम प्रभु प्राप्त हो जाते हैं और अमरत्व अर्थात् मोक्ष मिल जाता है, इसलिए यह शब्द (सारशब्द) सुधा-कथा है। उपर्युक्त दोहे में 'ब्रह्म' का अर्थ लोग वेद करते हैं, ऐसा अर्थ करने से 'कथा-सुधा' का अर्थ वेद-वर्णित राम-यश होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण दोहे का तात्पर्य यह हो जाता है कि सब वेदों को सम्पूर्ण रूप से पढ़-सुन, उनकी यर्थाथताओं को अत्यन्त शुद्धतापूर्वक बोध करके उनमें से केवल राम की मधुर भक्ति-दायिनी राम-कथाओं को सन्त ग्रहण करते और उनकी शेष सब विधियों को असार जान त्याग देते हैं। यदि यही अर्थ लिया जाये तो राम-भक्त बनने के लिए बिना वेदों के पढ़े-सुने काम नहीं चल सकता है। इस दशा में सन्त भी वे ही होंगे, जिनको वेद-शास्त्रों ने वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार दिया है। शूद्र, अन्त्यज और स्त्रियाँ, ये सब भक्ति प्राप्त करने से वंचित रहेंगे। पर रामचरितमानस अन्त्यज और स्त्रियों को भी भक्ति प्राप्त करने के अधिकारी मानता है। शबरी भीलनी अन्त्यज जाति की स्त्री थी, उसको भक्ति के सब प्रकारों में पूर्ण कहा गया है। यदि भक्ति के साधन में वेदों को पढ़ना-सुनना परमावश्यक माना जाये (जैसा कि ऊपर-लिखित दोहे में ब्रह्म का अर्थ वेद करने से माना ही जायेगा), तो भक्ति के सब प्रकारों में

पूर्ण शबरी ने भला त्रेतायुग में धर्मशास्त्र-विरूद्ध किस प्रकार वेदों को पढ़ा-सुना होगा ? फिर मांतंग आदि मुनियों ने ही उसको वेद पढ़ा-सुनाकर धर्म-शास्त्र-विरूद्ध कार्य कैसे किया होगा ?

❁ नाक के छिद्रों में श्वास-प्रश्वास आते-जाते रहते हैं। भीतर खींचते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हं' का आरोपण करके उसी का ख्याल करते रहने को बहुत लोग 'अजपा जप' कहते हैं, जो बिना जपे नहीं हुआ; जैसा कि 'अजपा जप' शब्द का अर्थ 'बिना जपे हुए जप' होता है। परन्तु इससे विशेष अनहद ध्वनि में सुरत रखना 'अजपा' है; क्योंकि इसमें किसी प्रकार के शब्द की भावना मन में नहीं रखनी पड़ती है और न उसके होने के लिए श्वास-प्रश्वास की तरह की स्थूल-वायु की आवश्यकता रहती है। यह अनहद ध्वनि भावना-विशेष से नहीं बनती है और न यह आरोपित ध्वनि है। यह तो वह सहज ध्वनि है, जिसे साधक गुरु-गम होकर अपने अन्दर में ग्रहण करता है। **'जाप अजपा हो सहज धुन परख गुरु-गम धारिये।'**–सन्त कबीर साहब।

"अनहद अपने साथ है, अजपा ताको नाम।
अमल करो अपनाइ के, अमर नाम घर ठाम।।"

–श्रीलक्ष्मीपतिजी महाराज

❁ शब्द-साधना के सम्बन्ध में देखना चाहते हो तो 'सत्संग-भोग' (महर्षि मेँहीँ परमहंस जी द्वारा विरचित चार भागों में) देखो । तमाम शब्द-साधना से भरा है ।

श्री सद्गुरवे नमः



शब्द की महिमा और अन्तर्नाद

'शब्द' की महिमा अपार है। शब्द का ज्ञान भी अपार है। कल्याण केवल शब्द-ध्यान से ही होता है। वैसे लोग कहेंगे कि सभी अपने-अपने विचार को उच्च कहते हैं। मैं कहता हूँ, मेरा विचार ऊँच नहीं हो, किन्तु विचार करो–सिद्ध करो कि क्या ठीक है। केवल अन्धी-श्रद्धा से काम होना असम्भव है। यह कार्य है, इसका यह कारण है; विचार होना चाहिये। युक्तिवाद की ओर से क्या निर्णय होता है, जानना चाहिये। युक्तिवाद के निर्णय-बिना केवल विश्वास, अन्धविश्वास है। युक्तिवाद में कारण और कार्य का ज्ञान अवश्य होता है।

'शब्द' की महिमा अपार है। आरंभ में शब्द कारण नहीं है। जिसके होने का कोई वा कुछ हो, वह उसका कारण है। इसमें किसी को भी सन्देह नहीं होना चाहिये कि कम्प के बिना कुछ नहीं बन सकता। कम्प शब्दमय होता है। कम्प हो और उसका सहचर-शब्द नहीं हो असम्भव है। परन्तु इस बात को पढ़े-लिखे लोग समझ सकते हैं। बिना कम्प के एक अक्षर नहीं लिख सकते। बिना कम्प के मिट्टी की गोली भी नहीं बन सकती। अवश्य ही कुछ कम्प के शब्द को हम नहीं सुन सकते, लेकिन शब्द होता है। शब्द-विज्ञान में यह बात है कि कान के परदे पर ठोकर होती है, तो शब्द सुनते हैं। शब्द में कम्पन होता है। कम्पन की संख्या भौतिक-वैज्ञानिकों ने दृढ़ की है। उस संख्या में बताया है कि प्रति-सेकेण्ड बीस से नीचे की संख्या नहीं सुन सकते और बीस हजार तक बहुत लोग सुनते हैं; कोई-कोई तीस हजार तक सुनते हैं। इससे ऊपर की आवाज को नहीं सुन सकते। कम्पनांक–आवृत्ति-संख्या (Frequency–फ्रीक्वेन्सी) साईन्स के पढ़े लोग समझ सकते हैं। किसी कम्प में शब्द है, किसी कम्प में नहीं, ऐसा ज्ञान नहीं होना चाहिये। शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है, तब कम्पन की संख्या होगी, इसमें आश्चर्य क्या? जल में अंगुलि सटाते हैं, उससे कम्प होता है। कम्पन की रेखा बढ़ती जाती है, यह प्रत्यक्ष देखते हैं। यह रेखा कम्पनांक की है। रेखा बढ़ती है, तो कम्पनांक भी बढ़ता है। इसलिए हम जो

नहीं सुन सकते हैं, उसमें भी कम्पन-संख्या है। बीस से नीचे और तीस हजार से ऊपर का नहीं सुन सकते।

❀ प्रकृति का निर्माण परम प्रभु परमात्मा ने ही किया है। अतएव इसके निर्माणार्थ परमात्मा ने ही स्वयं सबसे पूर्व कम्प का सृजनकर शब्दमय स्फोट प्रकट कर दिया। और स्वयं गति-विहीन, अकम्प, निश्चल, ध्रुव रहा और है। जैसे कि आकाश जस का तस स्थिर है और उसके अन्दर उपजा हुआ वायु गतिशील है। तो निश्चित रूप से जानना चाहिये कि आदिशब्द की धारा परम प्रभु परमात्मा से हुई है और संसार में व्याप्त है।

❀ यह 'शब्द' की महिमा है कि शब्द की धारा स्वयं परमात्मा तक पहुँचाती है; क्योंकि शब्द के द्वारा उस तक पहुँचा जा सकता है, जिससे शब्द होता है। परमात्मा के शब्द में वह गुण है कि–

"सो परमातम होय जीवता जाय खोय"

–संत चरणदास

जिस महात्मा ने कहा है, वह साईन्स पढ़े हुए नहीं थे, परन्तु साधन द्वारा शब्द-विज्ञान को जानते थे। जो शब्द जिससे होता है, उसके गुण को वह शब्द लिए रहता है और जो उस शब्द को धारण करता है, उसमें भी वह गुण हो जाता है। हास्यात्मक-खेल को सुनकर हँसते हैं और आपदाओं से ग्रसित खेल की रुलाई सुनकर रोते हैं, क्योंकि उस रुलाई को सुनकर खेल में उपस्थित जनता को आपदाग्रस्त दुख-भाव होता है। इससे जानना चाहिये कि आदि-सृष्टि के हेतु परमात्मा-द्वारा जो आदि-कम्पनमय नाद प्रकट हुआ, उसको जो ध्यान-साधन द्वारा अपने अन्दर में ग्रहण कर सकेगा उसमें ऊपर कथित गुण अवश्य हो जायेगा।

❀ **"सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।**
झिन झिन जंतर निसिदिन बाजै, जम जालिम पचिहारा।।"

–दरिया साहब

हम सबके अन्दर में कुछ ऐसा यन्त्र है, जो बजता ही रहता है। असल में वह सारशब्द है। उसको पा लेने पर यम का भी डर नहीं रहता। 'झिन झिन जंतर' से यही बात है कि जिसके अन्दर में वह शब्द दिन-रात बजता ही रहे, उसको यम का डर नहीं रहेगा। वह अपने को देखकर परमात्मा को

देखता रहेगा।

जबसे यह शब्द प्राप्त हो जाता है, तबसे बजता ही रहता है, क्या सोने में, क्या जगने में उसे सुनेगा ही। उस सारशब्द को सुनता हुआ काम भी करता रहेगा और कर्मबन्धन से निर्लिप्त रहेगा। एक ही जन्म में ऐसा नहीं होता हैं। एक जन्म से दूसरे जन्म तक इसका संस्कार लगा रहेगा, सारशब्द का साधक कभी उस शब्द से नहीं छूटेगा। छूटेगा तभी जब परमात्मा से मिलकर एक हो जायेगा।

❀ शब्द से सृष्टि हुई है। जिस शब्द से जो बनता है, वह शब्द उसके कण-कण में व्यापक होता है। सृष्टि के निमित्त ईश्वर से जो शब्द हुआ, वह शब्द सृष्टि के कण-कण में व्यापक है। शरीर में पाँच मण्डल और संसार में भी पाँच मण्डल है। कोई भी मण्डल तबतक नहीं बनता, जबतक उसके केन्द्र से धारा प्रवाहित नहीं हो। प्रत्येक मण्डल के केन्द्र से शब्द की धारा प्रवाहित होती है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है; नीचे का शब्द ऊपर दूर तक नहीं जाता। शब्द में अपने उद्‌गम-स्थान तक खींचने का गुण है।

एक शब्द के केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर पहुँचना होता है और शब्द के सहारे चलते-चलते अन्त में आदि-नाद की पहचान होती है। जो उसको पकड़ता है, उसके लिए सन्त कबीर साहब ने कहा है—

"आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।"

❀ वह शब्द सर्वव्यापक है, इसलिए उसका नाम 'राम' है। कल्याणकारी शब्द है, इसलिए उसका नाम है 'शिव'। आदिनाद ही रामनाम है, शिवनाम है, शक्ति-शब्द है; आदि। शब्द के अतिरिक्त और कोई रास्ता ईश्वर तक पहुँचने के लिए मानने-योग्य नहीं है। शिवजी से विशेष योग के जानकार और कोई हुए, भारत में माना नहीं जाता। उन्होंने सवा लाख साधन बताये और उन सबमें नादानुसंधान को श्रेष्ठ बतलाया।

❀ **विन्दु-ध्यान विधि नाद-ध्यान विधि।**

नाद किसको कहते हैं ? जिसमें बैल खाता है, बोलचाल में उसको भी नाद कहते हैं, और नाद कहते हैं शब्द को भी। यहाँ नाद कहा गया शब्द को।

❀ यहाँ बाहर संसार में जैसे प्रकाश को देखते हैं और शब्द भी सुनते हैं, वैसे ही अन्दर में विचित्र-प्रकाश को देखते हैं, तो विचित्र-शब्द भी सुनते हैं। बाहर में एकविन्दुता प्राप्त नहीं होती है। अन्दर के साधन से साधन करें तो एकविन्दुता प्राप्त होती है। गुरुजी ने ऐसा कहा, "अन्दर में विचित्र-प्रकाश के साथ विचित्र-शब्द सुनता है।" नादानुसन्धान करते-करते, जब सब शब्द लय होकर एक शब्द रह जाये तो उसको प्रणव-ध्वनि कहते हैं। उसमें जो लय हो गया, उसने परमात्मा को पाया।

❀ पसरे हुए मन को समेटो। विन्दु तक पूरा समेटना होगा। विन्दु में नाद मिलता है। उसमें जो अपने को लगाता है, वह वहाँ तक पहुँचता है, जहाँ **"निःशब्दं परमं पदम्"** है। इसके लिए पहले स्वयं उस अन्तर-नाद को पकड़ो, पीछे स्वयं उस नाद से पकड़े जाओगे। वह नाद ईश्वर तक पहुँचा देगा, जो ईश्वर शान्ति-स्वरूप हैं।

❀ **"अजर अमर एक नाम है सुमिरन जो आवै।"** नाम शब्द होता है। शब्द नहीं, तो नाम नहीं। जिस शब्द से जिस किसी पदार्थ या जिस किसी व्यक्ति की पहचान होती है, वह शब्द उस पदार्थ या व्यक्ति का नाम कहलाता है और वह उसका नामी होता है। यह शब्द ऐसा होता है, जिसको आप वर्णों में लिख सकते हैं इसलिए यह वर्णात्मक-शब्द है; रामनाम, शिव-नाम आदि सब वर्णात्मक हैं। शब्द केवल वर्णात्मक ही नहीं, ध्वन्यात्मक भी होते हैं। पाठशाला में भी लड़के सार्थक और निरर्थक शब्द पढ़ते हैं। सार्थक का अर्थ होता है; वह वर्णात्मक है और दूसरा है बिना अर्थ का; वह ध्वन्यात्मक है। निरर्थक का अर्थ बेकाम का नहीं। परन्तु वह बहुत महत्त्व रखता है। अर्थ नहीं होता, किन्तु महत्त्व वर्णात्मक से विशेष है।

किसी विशेष गवैये को मँगाइए, तो आप देखेंगे कि एक भजन के टुकड़े को गाने में ही वह कितना अधिक समय लगाता है और आप पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, इस बात को सर्वसाधारण नहीं जानते; विशेष बुद्धिमान् जानते हैं।

एक वकील वर्णात्मक-शब्द को बना-बनाकर बहस करके जन्म भर में जितनी कमाई कर सकते हैं, उतनी कमाई तानसेन ऐसे गवैये के एक ही भजन में हो जायेगी।

वर्णात्मक से ध्वन्यात्मक का महत्त्व विशेष होता है। वर्णात्मक-शब्द से दीपक नहीं जल सकता; किन्तु ध्वन्यात्मक-राग से दीपक भी जल जाता है। तानसेन ने दीपक जलाया था, प्रसिद्ध है। उसका गला दीपक राग के गाने से जल गया था, तो दो महिलाओं ने मेघराग गाकर ठीक कर दिया।

❀ ध्वनि बहुत बड़ी बात है। भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी कि वे पाँचो तीर से पाँचो पाण्डव को मारेंगे। पाँचो पाण्डव महादुःखी हुए। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा–''सोचो मत, इसके लिए उपाय करो।'' भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को संग लेकर दुर्योधन के पास गये और भगवान् के निर्देशानुसार अर्जुन ने दुर्योधन से उसका मुकुट माँग लिया और भीष्म के पास जाकर दुर्योधन के स्वर में उच्चारण करके उन वाणों को माँगा। अर्जुन का रूप दुर्योधन से मिलता-जुलता था। भीष्म ने दुर्योधन जानकर अर्जुन को पाँच वाण दे दिये। इस प्रकार पाँचो पाण्डव के प्राण बच गए।

❀ आन्तरिक ध्वन्यात्मक-शब्द सुनने के लिए कान बंद करो। सदा आवाज होती है, वह सुनने में आयेगी। बाजे-गाजे की आवाज ध्वन्यात्मक है; किन्तु आहत् है।

वर्णात्मक-शब्दों में जैसे परमात्मा का नाम है, वैसे ही ध्वन्यात्मक में भी है। वर्णात्मक-शब्द परमात्मा की ओर झुकाता है, ध्वन्यात्मक-शब्द निर्मल-चेतन की ओर खिंचकर परमात्मा से मिला देता है।

❀ हमलोग बोलते हैं, तो शब्द होता है; नहीं बोलते हैं, तो शब्द नहीं होता है, ऐसा नहीं, जब तक आकाश है, तबतक शब्द रहता है। स्थूल-आकाश जब तक है, तबतक स्थूल-शब्द रहेगा। यह शब्द 'अजर-अमर' नहीं है। सन्त कबीर साहब 'अजर-अमर' शब्द के लिए कहते हैं कि उस शब्द को कैसे जपोगे ? तो कहते हैं कि बिना मुँह के जपो। अपनी सुरत को उलटाओ, तब 'अजर-अमर-नाम' को पाओगे।

❀ बिना कम्पन के कुछ बन नहीं सकता। शब्द कम्पमय है और कम्प शब्दमय होता है। आदि-कम्प समझिये तो उसी को पराप्रकृति कहते हैं। उस पद को सच्चिदानंद कहना चाहिये। वह जड़-विहीन है। जड़-विहीन होने के कारण उसको कैवल्य परम पद कहते हैं।

''अति दुर्लभ कैवल्य परम पद।''

आदि-कम्प की ध्वनि आदि-नाद है। उसको ब्रह्मनाद कहते हैं। अक्षर-ब्रह्म-शब्दब्रह्म कहते हैं। इसी को निर्गुण-शब्दब्रह्म कहते हैं। इसके ऊपर परमात्मा का स्वरूप है। वह सत्-शब्द है।

❀ **"बंदउँ नाम राम रघुवर को।**
हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।"

—रामचरितमानस

जितने वेद-मंत्र हैं, सबका यह प्राण है। राम-नाम सगुण भी है; निर्गुण भी है। सगुण रामनाम को जिभ्या से जपते हो। निर्गुण रामनाम को जिभ्या नहीं जानती। नाम-भजन की बड़ी महिमा है। सगुण राम-नाम को भी जपो और निर्गुण-नाम को भी जानो। ऐसा जाने कि कभी विश्वास से डिगे नहीं।

❀ **"अक्षंर परमो नादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते।"**

—योगशिखोपनिषद्

शब्द दो प्रकार के हैं—नित्य और अनित्य। नित्य-शब्द में परिवर्त्तन नहीं होता। जिसको आदि-नाद या स्फोट कहते हैं, वह निर्गुण है। और जिस शब्द को आकाश का गुण कहते हैं, वह सगुण है।

जहाँ से जो शब्द निकलता है, वहाँ वह विलीन हो जाता है। वहाँ शब्द नहीं रहता। उसको संतों ने अनाम और उपनिषद् में **"निःशब्दं परमं पदम्"** कहा है।

❀ **"साधो शब्द साधना कीजै।**
जेहि शब्द से प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै"।।

—संत कबीर साहब

दूसरे देश के लोग भी मानते हैं—"In the beginning was the word, the word was with God and the word was God.–"अर्थात् सृष्टि के आदि में शब्द था, वह शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ही ईश्वर था।

लोगों का विश्वास है कि क्राइस्ट इस देश में आकर बहुत दिनों तक रहे थे। मुहम्मद साहब भी यहाँ आकर रहे थे। शब्द वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक; दोनों प्रकार के होते हैं। इसके अतिरिक्त प्राणमय, इन्द्रियमय और मनोमय; इन तीनों के भेद को भी जानिये। बाहर के वर्णात्मक में राम, शिव, गॉड (God), अल्लाह आदि कहते हैं।

❁ नाम जपते-जपते ईश्वर की ओर ख्याल होता है, यह बाहर का शब्द है। बाहर के ध्वन्यात्मक से ईश्वर की पहचान नहीं होती है। अन्दर के ध्वन्यात्मक में भी पहले ईश्वर की पहचान नहीं होती। नाद-साधना करते-करते अन्त में निर्गुण रामनाम 'ओऽम्' को पाता है, तब ईश्वर की पहचान होती है। वह अकथनीय है। केवल अन्तर्ध्यान से ही जाना जाता है। केवल वर्णात्मक पर जोर लगाकर अन्दर के ध्वन्यात्मक को नहीं जानना अपने में ज्ञान की कमी रखना है। जानिये और साधन कीजिये।

❁ वह शब्द अक्षरों में लिखा नहीं जा सकता; मुँह से बोला नहीं जा सकता।

"अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अतालुकण्ठोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।"

उसको चेतन जानता है। उस शब्द को जो पकड़ता है, तो वह उसी तरह हो जाता है, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। इस शब्द को पकड़ने से बन्धन-मुक्त हो जाता है। यह अखण्डनीय है।

श्रीमद्‌भागवत पढ़ो। उसमें लिखा है–शब्द तीन प्रकार के होते हैं–प्राणमय, मनोमय और इन्द्रियमय।

"शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रिय मनोमयम्।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत्।।

प्राणमय शब्द चेतन-धारा को कहते हैं। ईश्वर का नाम प्राणमय-शब्द है। उसको जपने की जरूरत नहीं, ध्यान में जाना जाता है। उसको पकड़ो। उसको क्या पकड़ोगे, वही तुमको पकड़ लेगा।

❁ सन् 1922 ई0 में छपरा में मैं एक महीने ठहरा था, वहाँ एक सत्संगी था। वह पढ़ा-लिखा नहीं था, किन्तु सत्संग सुना था। शब्द के बारे में चर्चा होने पर उसने कहा–एक शब्द और होता है, जिसको श्रुतात्मक-शब्द कहते हैं। उस सत्संगी का नाम था–तहबल दास। जाति का वह मेहतर था; लेकिन सत्संग के प्रभाव से वह इस बात को जानता था।

❁ कल्याण चाहते हो तो ईश्वर का नाम-भजन करो। नाम-भजन के लिये गुरु नानक देव ने कहा कि–

"कासट महि जीउ है बैसन्तरू, मथि संजमि काढ़ि कढ़ीजै।

राम नाम है जोति सबाई, तत गुरमति काढ़ि लईजै।।''

जैसे काठ में अग्नि छिपी है, घिसने से उससे निकलती है, उसी तरह रामनाम अपने अन्दर है। साधन की युक्ति से उसको पाओगे। यह किसी के कान में कहने की नहीं है। इसके लिए साधन करना होगा। कितना साधन करना होगा तो गुरु नानक देव ने कहा–

''भरिसागर भगति करीजै।''

अर्थात्–बहुत भक्ति करो। सतगुरु अगम और ठाकुर–परमात्मा भी अगम है। शरीर में नौ दरवाजों के अतिरिक्त दसवाँ द्वार है। वहाँ अमृत-रस है। उसी के साथ ईश्वर का नाम है। उस दसवें द्वार में जो फिरता है, उसमें अपने को लगाता है, तब उसको वह नाम मिलता है।

❁ उस शब्द को पकड़ने के पहले बहुत-से शब्द मिलते हैं। परमात्मा का नाम वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक दोनों में है। असली नाम ध्वन्यात्मक में है। जो ध्वन्यात्मक को पहचानता है, वह ईश्वर को पाता है। अन्तर में केवल चेतन-आत्मा जाती है। शब्द में बहुत गुण है। गो0 तुलसीदास जी ने नाम के सम्बन्ध में कहा है–

''श्रवणात्मक वर्णात्मक ध्वन्यात्मक विधि तीन।
त्रिविध शबद अनुभव अगम तुलसी कहहिं प्रवीन।।''

शब्द के केन्द्र में मायिक-सिद्धियाँ–शक्तियाँ हैं। जो उस शब्द को पकड़ता है, उसमें सिद्धि हो जाती है। शब्द में ज्ञान है। जो उस शब्द को पकड़ता है, वह ज्ञानी हो जाता है। सृष्टि के आरम्भ में जो शब्द परमात्मा से हुआ, उसको जो पकड़ता है, वह परमात्मा को पाता है। सन्त कबीर साहब ने कहा है–

''शब्द गह्यो जीव संशय नाहीं, साहब भयो तेरो संग।''

❁ ईश्वर की ध्वनि घट-घट में होती है। जैसे माता अपने गीत को सुनाकर अपने बाल-बच्चों को शान्त करती है, उसी तरह अन्तर की ध्वनि, परमात्म-ध्वनि इसीलिए है कि जीवात्मा उसको सुनकर शान्ति प्राप्त करे। सन्तों ने इसको जानकर प्राप्त किया। उसका यत्न सरल कायदे का ध्यान बताया।

❁ जो अन्तर्नाद है, उसको वह पा सकता है, जो सदा ध्यान करता है।

वही शान्ति पाता है। वही मधुर-ध्वनि–प्रणवनाद ईश्वर का नाम है। वह वर्णात्मक नहीं, ध्वन्यात्मक है। जो अन्दर की ओर नहीं चलेगा, वह कभी इसको नहीं पावेगा और न कभी वह शान्ति पावेगा। इसीलिए सन्तों ने उलटने के लिए कहा। उलटने का अर्थ है कि बाहर में नहीं देखकर अन्तर में देखे। पसरी-दृष्टि से नहीं, सिमटी-दृष्टि से देखे। बाहर से पसरी-दृष्टि से देखते हो, इसको उलटो अर्थात् सिमटी-दृष्टि से देखो तो ईश्वर की ज्योति को देखोगे कि वह तमाम पसरी हुई है।

❀ विमल-विमल अनहद ध्वनि होती है, सो बिना ध्यान लगे क्या सुनेगा ? जब बाहर के बाजे-गाजे और मधुर संगीत को सुनकर भी मन उस ओर लग जाता है, तब अन्दर की विमल-विमल अनहद ध्वनि सुनने में कैसा मन लगेगा, कहा नहीं जा सकता। बिना ध्यान किये विमल-विमल अनहद ध्वनि और हरिरस को कोई नहीं जान सकता।

❀ कोई भी कम्प बिना शब्द के नहीं है। शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है। इस बात को मानने के लिए आज के वैज्ञानिक भी बाध्य हैं। जो आदिकम्प वा आदिशब्द हुआ वह आदिशब्द बहुत अद्भुत है, ऐसा संतों ने देखा। इसका प्रतीक वा वाचक जो मनुष्य-भाषा में कहा जा सके उसे उन्होनें ओऽम् कहा। यह एक ऐसा शब्द है जो उच्चारण के सब स्थानों को भरकर होता हे। ऋषियों ने बहुत सोचा होगा। यह शब्द सब शब्दों का प्रतिनिधि है।

❀ ईश्वर का कोई निशान है वा चिह्न है ? तो कहा–सारशब्द चिह्न है। लेकिन वह बड़ा गजब है। जो उसको पाता है, ईश्वर को पाता है।

"शब्द गह्यो जिव संशय नाहिं, साहब भयो तेरो संग।।"

उसको पाना भी कठिनता से होता है। जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए जाने में समय लगता है, ऐसी ही कुछ बात है। अन्दर चलो तब साँचे शब्द निशान का चिह्न मिलेगा। वह जब मिलेगा तब ईश्वर दूर नहीं रहेगा। दो ही बातें जानने को हैं–शब्दब्रह्म और परब्रह्म।

"द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्द ब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।"

दो विद्याएँ समझनी चाहिए, एक तो शब्द-ब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। शब्द-ब्रह्म में जो निपुण हो जाता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

जो शब्द-ब्रह्म को पाता है, वह परब्रह्म को पाता है। पहले ही यह नहीं मिलता है। पहले अनहद नादों को सुनो। उस नाद में आपको ऐसी सूक्ष्मता आयेगी कि आप सारशब्द को पकड़ लेंगे।

❁ जिसकी वृत्ति ध्वनि में लग जाती है, तो उससे खिंचकर जीवात्मा माया से उसी तरह छूट जाता है, जैसे लोहा जो लकड़ी में लगा हो चुम्बक से खिंच जाता है। वह ध्वनि कैसी ध्वनि है ? ईश्वर की ओर से यह ध्वनि होती रहती है। इसकी पहचान के लिए दूसरी जगह जाने की जरूरत नहीं हैं। गुरु की बतायी विधि से जो साधन करते हैं, घर में पाते हैं।

❁ जैसे गंगा की हवा से पहले ही लाभ होता है, उसी तरह उस भक्त के वास्ते, जो ईश्वर की ओर जाता है, सहारा मिलता है। वह है शब्द। बाहर में जो बातचीत होती है, वह शब्द भी सहारा है। लेकिन अन्दर चलने के लिए बाहर का शब्द सहारा नहीं। ईश्वर की ओर से सबके अन्दर-अन्दर शब्द है। शब्द मिलता है गोया आज्ञा मिलती है कि चले आओ। आज्ञा मिलने के कारण उस स्थान का नाम है आज्ञाचक्र। पिण्ड में छः चक्र बताते हैं। पिण्ड में सबसे ऊपर आज्ञाचक्र है। आज्ञाचक्र में पहुँचे बिना, अवस्थित हुए बिना किसी को उधर के लिए आज्ञा नहीं मिलती।

❁ शब्द के बारे में मैंने तो यही समझ रखा है कि ईश्वर के लिए जितने चिह्न और प्रतीक लोगों ने अपनाये हैं, उन सबमें श्रेष्ठ शब्द है। देव-रूप, ईश्वर कोटि के देव-रूप, महात्मा-रूप इत्यादि बहुत-से चिह्न लोग लेते हैं, ईश्वर की ओर अपने को फिराने के लिए। इनमें शब्द सबसे बढ़कर है। शब्द का छोर सारी सृष्टि में अटूट रूप से व्यापक है। लेकिन वह शब्द ऐसा नहीं कि आप कहें और मैं सुनूँ वा मैं कहूँ आप सुनें। वह वर्णात्मक नहीं, ध्वन्यात्मक है। उन ध्वनियों को मालूम करने की विधि सन्त लोग बतला गये हैं।

❁ परमात्मा नाद करता हुआ, गर्जता हुआ जीवधारियों के शरीर में व्याप्त रहता है, परमात्मा के समान उसका गर्जन या नाद भी सबमें व्यापक है। जो कोई इस नाद को अपने अन्दर में पकड़ेगा, वह परमात्मा के स्वरूप

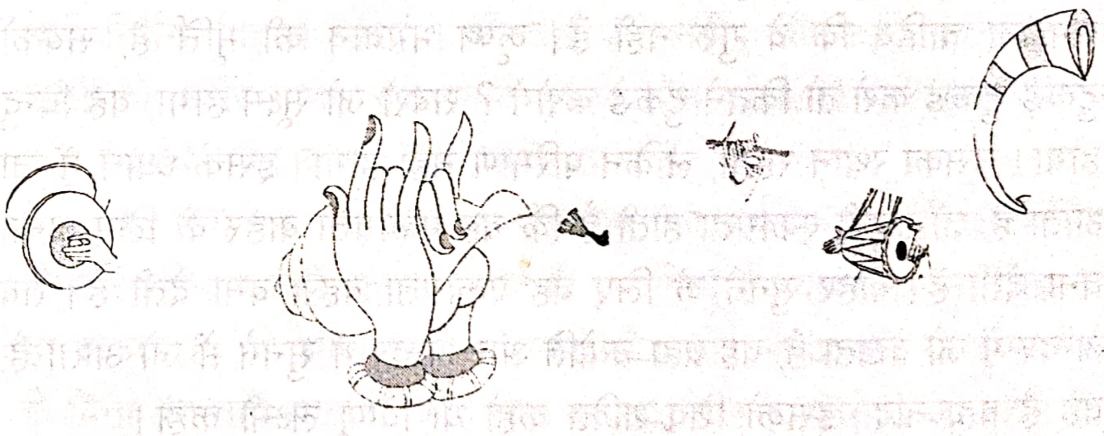
तक पहुँचेगा; क्योंकि नाद वा शब्द अपने उद्‌गम-स्थान पर खींचकर पहुँचा देता है।

"साहब कबीर सदा के संगी शब्द महल ले आवै।।"

श्रीमद्भगवद्‌गीता

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्

अर्थ : सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर तथा मनको हृदेश में स्थिर करके, (फिर उस जीते हुए मनके द्वारा) प्राणको मस्तक में स्थापित करके परमात्मसम्बन्धी योगधारणा में स्थित होकर जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ (और उसके अर्थस्वरूप) मुझ निर्गुण ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।



नाद तूर डफ झाँझ, शंख मुरली बजै।
मिरदंग झालर भेरि, अजब तुरही सजै।।

—सन्त गरीब दासजी

श्री सद्गुरवे नमः



विन्दु और नाद की उपासना

❁ जो विन्दु-नाद की उपासना करते हैं, वे शिव-शक्ति से रक्षित हो जाते हैं। जो विन्दुनाद की उपासना करते हैं, वे विष्णु-लक्ष्मी की उपासना करते हैं। उनको खाने-पीने की कमी नहीं रहती। यथार्थ में विन्दु कहते किसको हैं ? जिसका स्थान है, परिमाण नहीं। रेखागणित में जिस विन्दु के बारे में पढ़ते हैं, उसको तो मान लेते हैं। यथार्थ विन्दु वह नहीं है। दोनों आँख की दृष्टि-धारों को एक जगह स्थिर करो, विन्दु झलक जायेगा।

❁ आप जाइये, जहाँ कथा-पुराण बहुत होते हैं, लेकिन उसमें विन्दु और नाद-ध्यान कहाँ-कहाँ होता है, सो देख आइये। मैं यह नहीं कहता कि और कहीं नहीं है। विन्दु और नाद की उपासना जहाँ नहीं है, वह सन्तमत नहीं है। इसका संकेत वेद-उपनिषद् में है, सन्तों के ज्ञान में है, मैंने भी अपने गुरु से जाना है।

ऊपर उठाने वाला यदि कोई ध्यान है, तो वह विन्दु-ध्यान और नाद-ध्यान है। जो गुरु विन्दु और नाद-ध्यान की जानकारी नहीं रखते, तो समझना चाहिय कि वे गुरु नहीं हैं। कृष्ण भगवान् की मूर्त्ति है, सबको टुकड़े-टुकड़े करो तो कितने टुकड़े करोगे ? सबसे जो सूक्ष्म होगा, वह विन्दु होगा। उसका स्थान रहेगा, लेकिन परिमाण नहीं होगा। इसके ध्यान में जो आता है, तो इतनी एकाग्रता होती है कि वह एकाग्रता बाहर के लिए अन्धा बना देती है। बाहर सुनने के लिए वह एकाग्रता बहरा बना देती है। तब अन्दर में जो देखता है, वह ब्रह्म-ज्योति और अन्दर में सुनने में जो आता है, वह है ब्रह्म-नाद। इसको शिव-शक्ति कहो या विष्णु-लक्ष्मी कहो।

❁ **"लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।**
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।"

–सन्त कबीर साहब

सन्तों ने इसी के लिए रास्ता बताया है। विन्दु-ध्यान करो और नाद-ध्यान करो। इसको कोई अपवित्र-मन वाला कर सकेगा ? कभी नहीं। इसलिए जिससे मन अपवित्र होता है, उसको छोड़ दो। झूठ, चोरी, नशा,

हिंसा और व्यभिचार, ईर्ष्या, राग, द्वेष इन सबको छोड़ो। लेकिन एक ही बार सब नहीं छूट जाते। धीरे-धीरे हटता है। हटाते जाओ, हट जायेगा।

पसरे हुए मन को समेटो। विन्दु तक पूरा समेटना होगा। विन्दु में नाद मिलता है। उसमें जो अपने को लगाता है, वहाँ तक पहुँचता है, जहाँ **"निःशब्दं परमं पदम्"** है। इसके लिए पहले स्वयं उस अन्तर-नाद को पकड़ो, पीछे स्वयं उस नाद से पकड़े जाओगे। वह नाद ईश्वर तक पहुँचा देगा, जो ईश्वर शान्ति-स्वरूप हैं।

बाहर में लोग शिवलिंग को मोल लेते हैं, लोगों का बनाया हुआ। किन्तु आप के अन्दर ज्योति-रूप और नाद-रूप शिवलिंग परमात्मा का बनाया हुआ है। इसका ध्यान करते-करते परमात्मा मिल जाते हैं, इसलिए शब्द की बड़ी महिमा है। ज्ञानियों ने कहा कि जो अपने अन्दर में ठाकुर जी को देखना चाहता है, वह अपने अन्दर ध्यान करता है। शिवालय में नीचे जलढ़री और उसके ऊपर में शिवलिंग रहता है। उसी तरह अपने शरीर-रूप शिवालय में ज्योति-विन्दु जलढ़री और उसके ऊपर नाद शिवलिंग है। परमात्मा ने अमीर-गरीब, धनी-निर्धन, सबके लिए उनके शरीर में शिवजी की स्थापना कर दी है। सब कोई दर्शन कर सकते हैं। इसमें जाति-पाँति, धनी-निर्धन, विद्वान-अविद्वान् की कोई बात नहीं। यदि जाति-पाँति की बात रहती तो कबीर साहब, गुरु नानक साहब कौन पढे-लिखे थे ? सन्त रविदास और श्वपच भक्त कौन ऊँची जाति के थे ?

नाद का अर्थ है–शब्द और विन्दु का अर्थ है–छोटे-से-छोटा चिह्न। जिसमें परिमाण नहीं, केवल स्थान है, वह विन्दु है। बाहर में ऐसा चिह्न नहीं हो सकता है, जो आँख से देख सकते हो। कोई भी आकार या दृश्य विन्दु के बिना बन नहीं सकता। कोई चित्र बनाओ, पेन्सिल रखने से जो पहले चिह्न उदय होगा, वही विन्दु होगा। फिर उसी को बढ़ाकर, लम्बाई-चौड़ाई बनाकर आकार बनाते हैं। इसलिए बिना विन्दु के कोई आकार नहीं बन सकता। असली विन्दु को कोई यौगिक दृष्टि से देख सकता है। उसके लिए किसी पेन्सिल वा कलम की जरूरत नहीं। अपनी दृष्टि की नोक जहाँ दृढ़ता से ठहरा रखेंगे, वहीं विन्दु उदित होगा। विन्दु जलढ़री है। जलढ़री पर शिवलिंग खड़ा हो जाता है।

❀ संसार में बिना शब्द के कोई जगह नहीं है। शब्द कैसे होता है ? शब्द घर्षण से होता है, गति से होता है। गति कहते हैं, चलने को–कम्प को। तारे चलते हैं, पृथ्वी चलती है; सबकी गति में शब्द होता है। किन्तु आप सुन नहीं पाते। गति में ध्वनि है, संसार में सब पदार्थों की गति है। बिना शब्द के संसार का एक रत्ती भी स्थान खाली नहीं। हमलोगों का शरीर बढ़ता है, इसमें भी गति होती है। इसके शब्द को सुन नहीं पाते। नाड़ियाँ चलती हैं, इससे भी आवाज होती है। जहाँ कुछ गति है–संचालन है, वहाँ ध्वनि है। संसार गतिशील है, इसलिए संसार शब्द से भरा है। आपके शरीर में भी शब्द है। स्थूल शब्द को डॉक्टर लोग कान में यंत्र लगाकर सुनते हैं; किन्तु बारीक शब्द को नहीं सुन सकते। बारीक शब्द तब सुन सकते हैं, जब आप विन्दु को प्राप्त कर लें। विन्दु को प्राप्त करने वाला उस सूक्ष्म शब्द को सुन सकता है। वह शब्द शिवरूप है। शिव का अर्थ 'कल्याणकारी' है। उसको जो प्रत्यक्ष करता है, उसका कल्याण होता है।

❀ विन्दु में जो अपने मन को समेटता है, दृष्टि को समेटकर देखता है, तो उसमें शक्ति आ जाती है। फैलाव में शक्ति घटती है, सिमटाव में शक्ति बढ़ती है। जिसकी दृष्टि सिमट गई है, उसकी शक्ति बढ़ जाती है। रूप या दृश्य का बनना बिना विन्दु से नहीं होता। इसलिए सब दृश्य का बीज विन्दु है। किसी आकार और दृश्य जगत् का आरम्भ एक विन्दु से होता है और उसका अन्त एक विन्दु पर ही होता है। दृश्य जगत् का बीज विन्दु है और अदृश्य जगत् का बीज शब्द है। जिसकी वृत्ति शब्दरूप शिव को पकड़ लेती है, वह सारी सृष्टि को अन्त कर जाता है। उसे मोक्ष के साथ परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है।

❀ यदि कहो कि नाद क्या है, तो जहाँ विन्दु है, वहाँ नाद हैं। ध्यानविन्दूपनिषद् में लिखा है–

''बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।''

आप अपने को एक जगह–केन्द्र पर स्थिर कीजिये। पूर्ण सिमटाव होगा, तो नाद खुल पड़ेगा। वहाँ ज्योतिर्मय विन्दु देखियेगा और ज्योतिर्मय नाद सुनियेगा। यदि कहिये कि नाद तो है ही, फिर ज्योतिर्मय नाद कैसा ?

तो उत्तर है कि अन्धकार का शब्द काला और ज्योति के शब्द को पकड़ने पर श्वेत शब्द मिलता है।

❀ विन्दु शक्ति है और नाद शिव है। विन्दु लक्ष्मी है और नाद विष्णु है। विन्दु जलढरी है और नाद शिव-चिह्न है। इनकी उपासना कीजिए। लक्ष्मी और शक्ति में तथा विष्णु और शिव में भेद नहीं है। यदि कोई कहे कि रूप देखने में तो भिन्न-भिन्न है, फिर दोनों एक कैसे ? तो उत्तर में निवेदन है—किसी के स्थूल रूप पर ही विचार नहीं करो, उसके विन्दु-रूप और नाद-रूप पर भी विचार करो। विन्दु और नाद की जहाँ पर समाप्ति होती है, वहाँ एक ही है। उस शब्दातीत पद में पहुँचो तो वहाँ एक-ही-एक रहता है। यहाँ तो दो रहते हैं—विन्दु और नाद। जो विन्दु और नाद की उपासना करते हैं, वे एक ईश्वर की उपासना करते हैं। विन्दु-पीठ का भेदन करके नादलिंग उपस्थित होता है। ऐसा उपनिषद् में भी वर्णन आया है। नाद स्वयं उपस्थित होता है। कोई कहे कि यह बिल्कुल सूक्ष्म-ही-सूक्ष्म है, स्थूल-साधना नहीं है ? तो उत्तर है कि अवश्य है। नाद का स्थूल रूप श्रवणात्मक शब्द अथवा इन्द्रिमय शब्द है, जिसको कान से सुनते हैं। विन्दु का स्थूल रूप शालिग्राम है।

❀ ध्यानविन्दूपनिषद् में लिखा है—

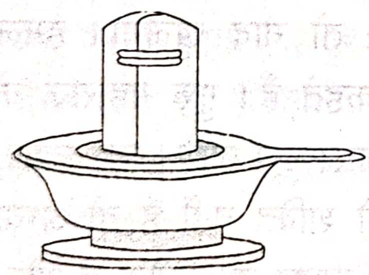
''बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरिस्थितम्।''

अर्थात् विन्दु मिले तो नाद खुलेगा। हमलोग विन्दु-उपासना और नाद-उपासना के लिए कहते हैं। गुरु महाराज के कहे अनुकूल उपासना इसलिए करते हैं कि जंजाल छूट जाये। यह केवल कहने के लिए है ? नहीं, करके देखिये। करने की शक्ति नहीं है तो अभ्यास कीजिये, करते-करते शक्ति आ जायेगी। नाद ईश्वर का प्रतीक है और विन्दु उसकी ज्योति का प्रतीक है। पहले सूर्य का प्रकाश होता है यानी उषा होती है, फिर अरुणोदय होता है, फिर सूर्य निकल आता है। जिसकी ज्योति है, वह पीछे निकलता है। इसी तरह पहले ईश्वर की ज्योति और नाद को पकड़ो। पीछे वह ईश्वर भी पकड़ा जायेगा।

❀ विन्दु पर नाद स्वाभाविक होता है। नाद से नादों में चलते-चलते परम नाद को पाता है। यह जिसको होता है उसके लिए किसी से पूछने की

जरूरत नहीं। जैसे भूखा आदमी यदि भर पेट भोजन कर ले तो उसे किसी से पूछने की जरूरत नहीं होती कि मेरा पेट भरा या नहीं। लोगों को विन्दु और नाद की उपासना करनी चाहिये। इसकी साधना में लोगों को घबड़ाना नहीं चाहिये। ध्यान का आरम्भ पहले ही नहीं होता। पहले मानस-जप होता है। तब मानस-ध्यान होता है। इसके बाद ज्योति-ध्यान अर्थात् विन्दु-ध्यान होता है और तब नाद का ध्यान होता है। नाद-ध्यान तो वह ध्यान है जिस ध्यान में डूब जाये। इससे मन में दूसरे ख्यालों का आना बन्द हो जाता है।

❁ सब रूपों का—दृश्य मण्डल का बीज विन्दु है। उसके ऊपर शब्द है, जो न पशु-पक्षी की भाषा है, न किसी बाजे-गाजे की। वह अन्तर- ध्वनि है, ब्रह्मनाद है। बिना विन्दु प्राप्त किये हुए भी शब्द सुनने में आता है; किन्तु वह शब्द नहीं सुनने में आता, जो विन्दु-ग्रहण करने पर सुनने में आता है। वह सूक्ष्म मण्डल का शब्द है। बिना विन्दु पर आरूढ़ हुए जो शब्द सुनते हैं, वह शरीर के रग-रेशे, धमनियों के चलने से उत्पन्न शब्द है। किन्तु विन्दु प्राप्त करके जो शब्द सुना जाता है, वह असली ध्वनि है।

बिन्दुनाद महालिंगम् शिवशक्तिनिकेतनम् ।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदहिनाम् ।।

—योगशिखोनिषद्

श्री सद्गुरवे नमः



प्रकाश और शब्द की महिमा

❀ अन्तर में प्रवेश करके ईश्वर का चिह्न क्या पाना होगा, जिससे ईश्वर को पहचाना जाये ? संसार में आप दो चीजों को देखते हैं। दिन में सूर्य का प्रकाश और रात्रि में चन्द्रमा तथा तारे का प्रकाश। बादल के कारण सूर्य-चन्द्र भले नहीं देखने में आवे, किन्तु चन्द्र और सूर्य, शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में बराबर रहते हैं।

"सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
शशि-शोषक पोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह।।"

—रामचरितमानस

अंधकार और प्रकाश दोनों पक्षों में होते हैं, रात्रि में बादल के कारण अगर घोर अंधकार है तो कभी-कभी बिजली का प्रकाश अवश्य परमात्मा हमको देते हैं। दूसरी बात यह कि अंधकार रहे वा प्रकाश, लेकिन शब्द रहता है। संसार से शब्द और प्रकाश को परमात्मा हटा लें तो जितने जीव-जन्तु हैं, सभी ज्ञानहीन होकर मर जायेंगे। संसार, संसार के रूप में नहीं रहेगा। राज्य के सम्हाल में, राज्य की वृद्धि और उसके शासन के लिए प्रकाश और शब्द के सहारे लिए जाते हैं। अतएव इनकी शिक्षा अनिवार्य हो पड़ी है। माता के पेट से निकलते ही प्रकाश मिलता है और शब्द सुनते हैं। बच्चे से ही, बच्चा जब कुछ नहीं बोल सकता है, माता बोल सिखाती है। लोग बचपन से पढ़ते-पढ़ते मरने तक पढ़ते रहते हैं। बिना प्रकाश और शब्द के हम जीवित नहीं रह सकते। ज्योति निकलने से गर्मी निकल जायेगी और शब्द के निकाल लेने से गति बन्द हो जायेगी। महाप्रलय हो जायेगा। इनका प्रभाव संसार में ही नहीं, संतों ने देखा है कि अन्दर में भी शब्द और प्रकाश है। साधक अपने अन्दर ज्योति और नाद को पाता है। **"अंतरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।"**—गुरु नानक। ईश्वर की ओर से यही दया-दान होता है, साधक-भक्त उसे पाता है। गो० तुलसीदास जी कहते हैं—

"श्री गुरुपद नख मणि गण जोति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू।।
उघरहिं विमल विलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मणि माणिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।
जथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल वन, भूतल भूरि निधान।।"

–रामचरितमानस

जिसके अन्दर में ज्योति प्रगट होती है, वह एक ही भूतल क्या, सारा ब्रह्माण्ड देखता है–उसे सारे प्रकृति मण्डल का ज्ञान होता है।

"जब लगि नहिं निज हृदि प्रकाश अरु विषय आश मन माहीं।
तुलसीदास तब लग जग योनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं।।"

–गो० तुलसीदास जी

संतलोग अन्तर्ज्योति को प्राप्त करने के लिए बहुत कहते हैं।

❁ जहाँ प्रकाश रहता है, वहाँ शब्द रहता है। प्रकाश नहीं रहने पर अंधकार में भी शब्द होता है। अन्तर्जगत् में जो कोई सुनने लगता है, वह अंधकार में भी और प्रकाश में भी शब्द सुनता है। जिस शब्द और जिस प्रकाश को परमात्मा ने हमारे अंदर दिया है, उसका सहारा लेकर हम परमात्मा को पावें और परम कल्याण पावें।

❁ हमारे गुरु महाराज अन्तर-मार्ग की निस्बत कहते थे कि सबसे पहले जो मिलेगा–वह है अन्धकार। भगवान् बुद्ध ने कहा है–"अन्धकार में पड़े तुम प्रकाश की खोज क्यों नहीं करते ?" ज्योति के रास्ते पर चलने का भी संकेत 'धम्मपद' में है। हमारे गुरु महाराज भी अन्तर्ज्योति का वर्णन किये हैं। भगवान् बुद्ध के अन्तर्नाद का वर्णन 'थेरीगाथा' में है, मैंने पढ़ा है। बिना कम्प के कुछ बन नहीं सकता। इसलिए संसार होने के लिए आदिनाद–आदिशब्द हुआ। यह नाद वहाँ से उत्पन्न हुआ, जिसके पहले का

कुछ नहीं, जो अनादि, अनन्त असीम है। किसी चीज के निमार्ण के लिए शब्द की आवश्यकता है। एक शब्द बोलना, एक अक्षर लिखना, बिना कम्प के नहीं हो सकता।

गुरुनानक देव ने कहा है–

"शब्द तत्तु वीर्य संसार। शब्द निरालमु अपर अपार।
सारी सृष्टि शब्द कै पाछे। नानक शब्द घटै घटि आछे।।"

कबीर साहब ने कहा है–

"साधो शब्द साधना कीजै।
जेहि शब्द से प्रकट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै।।"

हमारे बाबा कहते थे कि भगवान् बुद्ध भी अन्तर्नाद को जानते थे। जो अन्तर-साधन का अभ्यास करते हैं, वे अन्तर में प्रवेश कर नाद को किस तरह नहीं पा सकते! चाहे भगवान् बुद्ध, चाहे और कोई संत, सभी ने शब्द और प्रकाश को पाने के लिए कहा।

❁ ईश्वर की श्रेष्ठ विभूति ज्योति और शब्द है। इससे बढ़कर कोई विभूति नहीं। विराट् रूप का दर्शन अर्जुन को दिया गया। बड़ा तेजोमय रूप था। हजारों सूर्य के समान उस रूप का तेज था। और उसी से उपदेश भी मिला। गोया प्रकाश और शब्द भी मिला। विराट् रूप में भयंकरता और सुन्दरता दोनों रूप का मेल था। अर्जुन भयंकर रूप से डरता था। उस विराट् रूप में से ज्योति निकाल लीजिये, तो बिल्कुल अन्धकारमय हो जायेगा, उसमें सुन्दरता-असुन्दरता कुछ नहीं रहेगी। विराट् रूप का पहले दर्शन हुआ, तब उस आश्चर्यमय रूप से आवाज हुई, जिसको सुनकर अर्जुन को बिल्कुल भरोसा हो गया। बिना ज्योति के सुन्दरता नहीं और ज्योति हो, शब्द नहीं, ऐसा नहीं। अन्दर देखने के लिए दिव्य-नेत्र चाहिये और सुनने के लिए अन्तर्वृत्ति की दिव्य श्रवणशक्ति चाहिये। सन्तों ने इसका भेद बताया है। इसको जानना चाहिये।

❁ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि संसार में जो कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण है, वह मेरी विभूति है। पहली विभूति तेज है अर्थात् ज्योति व प्रकाश है और दूसरी शब्द है। इन्हीं से संसार का काम होता है। इनसे विशेष विभूति भगवान् की नहीं है। ये दोनों जैसे संसार में हैं वैसे शरीर में हैं। शरीर में

ज्योति और अन्तर्नाद दोनों हैं। जो कोई साधन करेगा वह इन दोनों को पावेगा। साधन करने वाले पाते हैं। पंजाब में गुरुनानक हुए, उन्होंने कहा–**"अन्तरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।"** इसी तरह कबीर साहब, दादू दयाल जी आदि सभी संतों ने वर्णन किया है।

❀ बहुत दिन पहले मैंने धम्मपद के मैक्समूलर का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा, फिर मेरे गुरु भाई का किया भाषा अनुवाद पढ़ा और काश्यप जी (भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा विश्वविद्यालय) से भेंट होने पर पालि में पढ़ने की इच्छा हुई। फिर मैंने राहुल सांकृत्यायन और चन्द्रमणि भिक्खु आदि के अनुवाद को भी पढ़ा। बुद्धचर्या और दीर्घनिकाय आदि ग्रंथों को मैंने पढ़ा। इन सब ग्रंथों में भी ज्योति और शब्द का वर्णन पढ़ा। **"हंसादिच्च पथे यन्ति आकाशे यन्ति इद्धिया।"**(धम्मपद लोकवग्गो) अर्थात् हंस सूर्य के रास्ते पर चलते हैं और ऋद्धि से योगी आकाश में गमन करते हैं।

❀ संसार की रचना को तीन तलों में और अपने शरीर को भी तीन तलों में बाँट सकते हैं। अंधकार का तल–इस पर अभी हमलोग हैं। शरीर में जागने का जो स्थान है, जिसकी वृत्ति वहाँ रहती है, वह स्थूल संसार में काम करता है। स्थूल का रूप अन्धकार है। यह पहला तल है। अन्धकार के बाद प्रकाश आता है, यह दूसरा तल है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी बताया है–"तुम्हारे शरीर में ज्योति है। इसी कारण से तुम्हारा शरीर गर्म है।" जो अन्तर्ज्योति को पाता है, वह अन्तर्नाद को भी; जैसे बिजली की चमक के बाद आप कड़ाके की आवाज सुनते हैं। यह शब्द का तल तीसरा तल है। ज्योति और शब्द से ही सब सम्हाल होते हम संसार में देखते हैं। ज्योति और शब्द के सहारे से ही संसार के सब काम चलते हैं। इन दोनों को यदि संसार से हटा दें, तो संसार का कोई काम नहीं चलेगा। इसी तरह अपने शरीर में ज्योति और शब्द से सब काम होते हैं।

❀ बाहर संसार में हम देखते हैं कि पहले बिजली चमकती है, पीछे ठनके की आवाज सुनते हैं। बिना बिजली के हम ठनके की आवाज नहीं सुन सकते। इसी तरह अपने अन्दर में पहले देखो, फिर सुनो। पहले देखने के लिए जानो। साधन ऐसा हो कि दृष्टि सूक्ष्म हो जाये। इसी को दृष्टियोग, शाम्भवी मुद्रा और वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। पहले देखो, फिर सुनो; ये ही दो

साधन हैं।

❀ संसार में क्या है ? प्रकाश को हटा दो तो सारा कारबार समाप्त हो जायेगा। शब्द को हटा दो तो कम्प नहीं रहेगा। कम्प नहीं रहेगा तो सृष्टि नहीं रहेगी। आपके शरीर से कम्प हट जाये तो आपका शरीर नहीं रहेगा। संसार में प्रकाश और शब्द से सँभाल होती है। ईश्वर की ओर का यह प्रतीक है—प्रकाश और शब्द। इससे उत्तम प्रतीक नहीं है। इसको मन से बनाने की जरूरत नहीं। देखने के कौशल से देखो। देखने का कौशल जानो। जैसे संसार में प्रकाश और शब्द की प्रबलता है वैसे ही अपने अन्दर में भी। प्रकाश नहीं तो संसार नहीं। शब्द नहीं तो संसार नहीं। इसी तरह ईश्वर की ओर जाने के लिए शब्द है और प्रकाश है।

❀ भक्ति में ईश्वर की ओर से जो सहारा है शब्द, उसको पकड़ना चाहिये। वह पकड़ा जायेगा आज्ञाचक्र में। वह नयनाकाश में है। ईश्वर की ओर से एक इशारा दिया गया है कि शब्द कब पकड़ सकते हो। यह आसमान ईश्वर की ओर से है। उसमें बिजली चमकती है, तब आवाज होती है। इससे ईश्वर बताते हैं कि देखो ! मेघ लगता है, बिजली चमकती है, तब ठनके की आवाज सुनाई पड़ती है। बिना बिजली चमके ठनके की आवाज न हुई, न होने को है। तुम्हारे अन्दर भी ज्योति है, बिजली है और आवाज है। पहले दर्जे में शब्द है, दूसरे दर्जे में ज्योति। शब्द-उपासना तब करोगे, जब ज्योति पकड़ोगे और ज्योति तब पकड़ोगे, जब विन्दु प्राप्त करोगे।

❀ शब्द का बड़ा महत्त्व है। शब्द नहीं रहे तो कोर्ट-कचहरी, विद्यालय सब खत्म। शब्द का इतना महत्त्व है कि यदि कहीं भयंकर युद्ध हो रहा है और सेनापति अपने शब्द में कहे कि युद्ध बन्द करो, तो तुरन्त बन्द हो जायेगा। यह शब्द की करामत हुई। शब्द सबको शासन में रखता है। शब्द में ही विधान वा कानून बनता है। ज्योति और शब्द संसार में बहुत प्रभावकारी है। इसलिए शब्द और ज्योति ईश्वर की अति विशेष विभूतियाँ हैं। संतों ने इसे बहुत अच्छी तरह समझाया है। जिसने अंतर में ज्योति और नाद को प्राप्त किया अर्थात् ज्योति-ध्यान और नाद-ध्यान किया, उन्होंने ईश्वर को प्राप्त किया।

❀ ईश्वर का दर्शन पहले नहीं होता है, पहले ब्रह्मतेज मिलता है, फिर

ब्रह्मनाद पाता है। प्रकाश में जो शक्ति होती है, उससे अधिक शक्ति नाद में होती है। जैसे कोई कुएँ में गिर पड़े और उसको कोई मजबूत रस्सी पकड़ने दे तो उससे निकल सकता है। वैसे ही शब्द की धार मिलती है। वह चुम्बक के समान होता है। वह लोहा-रूप जीव को खींच लेता है।

❁ पहले ईश्वर की रोशनी को अपने अंदर में देखो। बाहर जाने से वह रोशनी नहीं मिलेगी। अन्दर की रोशनी मिलेगी तो एक-एक दर्जे करके चौदह दर्जे जो हैं, उनसे पार देखना होगा। और जब ये दर्जे देखे जायेंगे, तो एक आवाज आयेगी, जो सदा से होती ही रहती है, पर लोगों को वह सुनाई नहीं देती है। क्यों नहीं सुनाई देती है ? तो उन दर्जों को नहीं पार किये हैं, जहाँ तक कि देखने की बात है। जब उन दर्जों को पार करते हैं, तो उस आवाजे गैब (गुप्त शब्द) को सुनते हैं, जो हमेशा होता ही रहता है। जो उस शब्द को सुनते हैं, तो उनको न कुछ सुनने को बाकी रहता है और न कुछ कहने को बाकी रहता है। परन्तु यह कब हो सकता है ? जब तक उस गुप्त भेद को कोई नहीं लेता है, तब तक न तो वह अन्दर की रोशनी को देखता है और न तो अन्दर के शब्द को ही सुन सकता है।

❁ चंचल-मन को थिर करो, मन चलेगा। ईश्वर की ओर ले चलने वाला तुम्हारा मददगार तुम्हारे साथ है, वह है अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद। लेकिन आँख है नहीं, देखोगे कैसे ? श्रवण-शक्ति है नहीं, सुनोगे क्या ? जो अन्तर्मार्ग पर चलता है, उसको दिव्य-दृष्टि होती है, जिससे दिव्य-रूप देखता है और दिव्य-श्रवण होता है, जिससे दिव्य-नाद सुनता है। अपने ही अन्दर अपने को अवलम्ब मिलता है, दिव्य-ज्योति और अन्तर्नाद ईश्वर की ओर से सहायता है।

"अन्तरि जोति भई गुरु साखी, चीने राम करंमा।"

गुरु ने कहा था—अन्तर में प्रकाश होगा, सो हुआ। यह गुरु की गवाही है।

कबीर कमल प्रकासिया उगा निर्मल सूर ।
रैन अँधेरी मिटि गई बाजे अनहद तूर ।।

श्री सद्‌गुरवे नमः



राजयोग अथवा ध्यानयोग



❀ अष्टांग योग में पहले यम, नियम और तब आसन-सिद्धि के बाद प्राणायाम कहा, किन्तु प्राणायाम में ही समाप्त नहीं किया। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि भी कहा है। इसलिए पहले यम, नियम, आसन-सिद्धि आदि और अन्त में समाधि होगी। प्राणायाम से आपदा भी हो सकती है; किन्तु ध्यान से आपदा नहीं होती। प्राणायाम से उन्माद भी होता है। 'कल्याण-पत्र' में ऐसा लेख भी निकला है। गुरु नानक, दादूदयाल, कबीर साहब, तुलसी साहब आदि संतों ने ध्यानयोग पर ही जोर दिया है। दृष्टि-साधन से आरम्भ करके अन्त तक का वर्णन किया। प्राणायाम के बाद ध्यान-योग में जाना पड़ेगा, किन्तु ध्यान-योग से प्राणायाम में नहीं जाना होगा।

❀ बिना प्रत्याहार के धारणा नहीं होगी। बिना धारणा के ध्यान नहीं होगा। इसलिए पहले प्रत्याहार होगा। मन जहाँ-जहाँ भागेगा, वहाँ-वहाँ से लौटा-लौटाकर फिर वहीं लगाया जायेगा, तो अल्प टिकाव अवश्य होगा। **"रसरी आवत-जात ते सिल पर पड़त निशान।"** यही धारणा होगी। फिर विशेष देर तक टिकते-टिकते ध्यान होगा।

❀ भक्ति में त्रिपुटी होती है। भक्ति-भक्त-भगवन्त, सेवक-सेव्य-सेवा; ये तीनों अवश्य होंगे। मिलाप होने से सेवा होती है। मिलन को ही योग कहते हैं। योग से जो लोग डरते हैं, उनको डरना नहीं चाहिये। चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं। लोग शारीरिक कठोर कर्म; जैसे नेती, धौती, आसन आदि को योग समझते हैं। अपने शरीर को किसी सरल आसन से बैठाने का हिस्सक लगाओ। इस काम को हल जोतनेवाला, लिखा-पढ़ी करनेवाला आदि सभी कोई कर सकते हैं। जिस बच्चे को कुछ समझने-बूझने का ज्ञान है, उस बच्चे को बता दो, तो वह भी एक आसन से बैठ सकता है।

❀ यह योग हमारे देश में जितने अधिक दिनों से आ रहा है, उतने पुराने और किसी देश में नहीं। दार्शनिक विचार दूसरे-दूसरे देश में भी थे;

किन्तु योग के सहित दर्शन हमारे देश में भी था और है। हाल ही में हमारे देश में एक अंग्रेज पाल ब्रन्टन नाम के आये थे योग की खोज में। दक्षिण भारत के मदुरै में श्री महर्षि रमण से बहुत सन्तुष्ट होकर वे अपने देश गये। लोग योग से डरते हैं; किन्तु योग का अर्थ जोड़ना है। योगदर्शन पढ़ने वाले कहते हैं–चित्तवृत्ति निरोध को योग कहते हैं। यह भी ठीक ही है। हमारे देश में हठयोग विशेष प्रसिद्ध है। यह इसलिए कि इस क्रिया के द्वारा शरीर की पूरी सफाई हो जाती है, जिससे राजयोग-क्रिया करने में सुलभता होती है।

❁ हठयोग राजयोग की क्रिया करने के योग्य बनाने के लिए किया जाता है, न कि यह हठयोग योग है। इसमें ठीक-ठीक रीति से किया जाये, तब तो ठीक है, यदि अविधि हुई तो बड़ी गड़बड़ी होती है। एक योगी थे, वे लम्बे दतुवन अपने मुँह से धीरे-धीरे गले के नीचे उतारते थे, फिर उसे निकाल लेते थे। यह क्रिया वे प्रायः प्रतिदिन किया करते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि दतुवन असावधानी के कारण उनके पेट में चला गया। उसके चलते दतुवन मुँह से निकल नहीं सका। परिणामस्वरूप उनका प्राणान्त हो गया। हठयोग में किसी का मस्तिष्क खराब हो जाता है। इससे लोग समझते हैं कि योग बड़ा कठिन है।

शांडिल्योपनिषद् में लिखा है–

"यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।"

अर्थात् जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे काबू में आते हैं; उसी तरह प्राणायाम (अर्थात् वायु का अभ्यास कर वश में करना) भी किया जाता है, प्रकारान्तर होने से वह अभ्यासी को मार डालता है। इन घटनाओं से हमारे देश के लोग योग से बहुत डर गये हैं। अकेला हठयोग पूर्णता को प्राप्त नहीं करा सकता। उसके बाद राजयोग करने से ही पूर्णता प्राप्त होगी। और राजयोग बिना हठयोग के भी पूर्णता को प्राप्त करा देता है। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–"यह योग मैंने पहले-पहल सूर्य को बताया। सूर्य ने अपने पुत्र मनु को, मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दिया था। इस भाँति राजर्षियों की परम्परा में यह उपदेश बहुत काल तक चलता

रहा।'' दीर्घकाल की प्रबलता से इस योग का लोप हो गया, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सुनाकर प्रकट किया।

❁ गीता में ध्यानयोग का एक अध्याय खास करके है। प्राणायाम के विषय में चर्चा तो है; किन्तु एक भी अध्याय प्राणायाम योग का नहीं है। ध्यानयोग के लिए तो कहा गया है कि ऐसी जगह पर बैठो, ऐसी आसनी रखो, इस ढंग से बैठो, किन्तु प्राणायाम के लिए ये सब कुछ नहीं बतलाये गये हैं। इससे साफ मालूम होता है कि भगवान् ने ध्यानयोग की ओर विशेष ध्यान दिया है। मन को पवित्र रखो और मन को साधना में लगाये रहो, इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करते रहने से ध्यानयोग सिद्ध होगा।

❁ हल जोतने वाला हलवाहा ध्यान कर सकता है। आप विद्वान् हैं, कुर्सी पर बैठते हैं, तो आप भी आराम से बैठकर ध्यान कर सकते हैं। लेकिन उकताना नहीं होगा कि आज ही हो जायेगा। आज आप विद्वान् हैं, लेकिन एक ही दिन में विद्वान् नहीं हुए। पढ़ते-पढ़ते बहुत दिनों में विद्वान् हुए। उसी तरह अभ्यास करते-करते ध्यान दृढ़ और पूर्ण होगा। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि मुझे साधन करके बुद्धत्त्व लाभ करने में 550 जन्म लेने पड़े हैं। भगवान् बुद्ध ने भी प्रकाश की बातें कही हैं, 'धम्मपद' पढ़कर देखिये। गुरुनानक ने भी कहा है–**''भरि सागर भगति करीजै।''** कुएँ भर भक्ति से नहीं होगा।

❁ मानस-जप, मानस-ध्यान, दृष्टि-साधन और शब्द-साधन–ये ही चार साधन हैं, विशेष नहीं। कबीर साहब ने कहा है–

''न योगी योग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।''

प्राणायाम योग के लिए मना किया और तपसी जो पंच अग्नि तापते हैं उसके लिए भी मना किया। मानस-जप में, मानस-ध्यान में, दृष्टि-योग में और नाद-ध्यान में सुरत का खेल है। केवल उपासना करते समय ही सुरत का खेल नहीं होता है, बल्कि संसार का काम करते हुए भी अपना ख्याल प्रभु में लगाकर रखो।

❁ मुझे किसी मजहब से घृणा नहीं है, मैं सभी मजहबों में ध्यान को देखता हूँ। किसी भी मजहब में तुम हो, ध्यान करते हो कि नहीं। ध्यान

करो। नाथनगर के खलील साहब नमाज पढ़ने के बाद ध्यान करते थे।

❀ ध्यानयोग सब योगों से श्रेष्ठ है और सरल है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी पर जोर दिया है। सन्तों ने भी इसी को उत्तम साधन बताया है। हमलोगों को भी यह बताया गया है। इसका अल्प अभ्यास भी महाभय से बचाता है। महाभय क्या है ? जन्म लेना और मरना यही महाभय है। बच्चा जब जन्म लेता है तो वह रोता है। उसको कष्ट होता है, इसलिए वह रोता है। कोई किसी को मार डालना चाहे; तो मरने से भी लोग डरते हैं। इस तरह जन्म और मरण में दुःख होता है। इसी दुःख की निवृत्ति के लिए ध्यान है।

❀ लोग कहा करते हैं—योग तो सब कोई नहीं कर सकेंगे। मैं कहता हूँ—योग सभी कर सकेंगे। स्त्रियाँ भी कर सकेंगी, पुरुष भी कर सकेंगे। एक मेहतर भी कर सकता है। मेहतर का अर्थ है—विशेष कृपालु। हमलोग बहुत बच्चे थे, तो हमारी माता, हमारी बड़ी बहन हमारे मैले को साफ करती थीं, पवित्र करती थीं। और मेहतर हमारे-आपके मैले को साफ करते हैं। मैंने छपरे जिले में मेहतर के एक टोले को देखा था, बड़ी सफाई थी। उसके टोले में खाने-पीने की गड़बड़ी नहीं थी। तहबल दास जी उस टोले को चेताये थे। एक बार छपरे में दो संन्यासी आये थे। उनके सामने तहबल दास जी ने कहा कि महाराज! आत्मा के बारे में कहिये। महात्मा ने कहा—तुम कौन हो ? उन्होंने अपने हाथ का झाड़ू दिखलाकर कहा—"आप तो देख रहे हैं—मैं सफाई करने वाला हूँ।" महात्मा बोले—"तुम समझ सकोगे ?" उन्होंने कहा—"आप समझा देंगे, तो मैं समझ जाऊँगा।" महात्मा जी ने कहा—"मेरी धारणा गलत थी कि ऐसे लोग समझ नहीं सकेंगे। अब मैं इन लोगों को भी समझाऊँगा।"

❀ ध्यान हृदय की चीज है। उसको अपने ही जानेंगे। अपने को ठीक-ठीक लगाना चाहिये। केवल बैठकर रहना और औरों को दिखाना कि ध्यान करते हैं, इससे लोगों को ठगते हैं। लोगों को क्या ठगेंगे, अपने ही ठगे जाते हैं। मूर्त-ध्यान के बाद अमूर्त-ध्यान भी होता है। अमूर्त-ध्यान के पहले विन्दु-ध्यान होता है। विन्दु-ध्यान ऐसा है कि अन्तर्नाद को खोल देता है।

अन्तर्नाद वहाँ ले जाता है जहाँ परमात्मा है। इसलिए जप और ध्यान कीजिये।

❁ रूप के बदलने से रूप का धारण करने वाला नहीं बदलता। जो इस ज्ञान में नहीं रंगा है, उसको साम्प्रदायिक खैंच होती है। आपको जिसमें श्रद्धा हो, उसका ध्यान कीजिये। कोई राम का, कोई कृष्ण का, कोई शिव का, कोई अल्लाह का और कोई अलिफ को बनाकर ध्यान करते हैं। पहले जप करो, फिर ध्यान करो। जब कोई चित्तवृत्ति का निरोध प्राणायाम द्वारा करते हैं और कोई मन को एक ओर करने का काम केवल ध्यान द्वारा करते हैं, तो ध्यान-योग से साधन करने में कोई भय और आपदा नहीं है। हाँ, मस्तिष्क पर कुछ जोर अवश्य पड़ता है, फेफड़े को कोई हानि नहीं होती। निज-मन द्वारा भजन होता है और निज-मन के ही स्थान से ईश्वर की ओर का मार्ग पकड़ा जाता है।

❁ लोग कहते हैं कि 'भक्ति में योग करना होगा'। योग में प्राणायाम करना पड़ेगा। प्राणायाम सबसे नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारी भक्ति को खारीज (रद्द) करते हैं। जो ऐसा कहते हैं उनको और जानना चाहिये। हमारे यहाँ दो तरह के साधक हुए हैं। एक प्राणायाम करके ध्यानाभ्यास करने वाले और दूसरे केवल ध्यानाभ्यास करने वाले। पुनः वे कहते हैं–प्राणायाम से वायु स्थिर होती है, मैं मानता हूँ, लेकिन जो प्राणायाम नहीं कर सकें, उनके लिए क्या है ? हाँ, है। ध्यानाभ्यास करते-करते प्राण कुम्भक में हो जाता है। अर्थात् वायु स्थिर हो जाती है। इसको आजमा लेने की बात है। विचार करते हैं तो समझ में आता है कि बिना प्राणायाम के भी वायु स्थिर होती है, तथा इसके लिए शास्त्र-प्रमाण भी है–

"द्वादशांगुल पर्यन्ते नासाग्रे विमलेऽम्बरे।
संविद् दृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दोनिरुध्यते।।
भ्रूमध्ये तारकालोक शान्तावन्तमुपागते।
चैतनैकतने बद्धे प्राणस्पन्दो निरुध्यते।।
चिरकालं हृदेकान्तव्योम संवेदनान्मुने।
अवासन मनो ध्यानात्प्राणस्पन्दो निरुध्यते।।"

– शाण्डिल्योपनिषद्

अर्थात् "जब ज्ञान-दृष्टि (सुरत-चेतन-वृत्ति) नासाग्र से बारह-अंगुल पर स्वच्छ आकाश में पहुँचकर स्थिर होती है, तो प्राण स्पन्दन रूद्ध हो जाता है। जब चेतन वा सुरत भौओं के बीच के तारकलोक (तारा मण्डल) में पहुँचकर स्थिर होती है तो प्राण की गति बन्द हो जाती है। हृदयकाश में संकल्प-विकल्प और वासना हीन मन से बहुत दिनों तक ध्यान करने से प्राण की गति रूक जाती है।" केवल ध्यानाभ्यास करो। ध्यानाभ्यास से यह होगा कि मन का सिमटाव एकविन्दुता तक होगा। किसी चीज को जिस ओर से समेटो तो वह उसकी उलटी ओर को जाती है। स्थूल में सिमटाव होने से सूक्ष्म में प्रवेश करेगा। इस तरह धीरे-धीरे सब छूटते हैं। चलते-चलते वह शरीर और इन्द्रियों से छूटकर कैवल्य दशा पाता है। तब परमात्मा की प्राप्ति होती है।

❁ चित्त रूप वृक्ष के दो बीज हैं—प्राणस्पन्दन और वासना। प्राण का हिलना और इच्छा दोनों में से किसी को चुप करो। एक को खतम करने से दोनों खतम हो जायेंगे। एक के रोकने से दोनों समाप्त होते हैं। प्राण का अर्थ है—जीवनी शक्ति। नाक से निकलने वाली वायु प्राण नहीं है। प्राणवायु वह है जिस वायु का प्राण से सम्बन्ध हो। वायु खींचने के लिए आप के पास यंत्र है जिसे फेफड़ा कहते हैं। इसमें संकोचन-विकाशन दो क्रियाएँ होती हैं। संकोचन में हवा को खींचते हैं और विकाशन में हवा निकल जाती है। फेफड़े को जो पसारे और समेटे उस शक्ति को प्राण कहते हैं। वायु से यह काम नहीं होता। फेफड़े में जो हवा आती-जाती है वह है—प्राणवायु। इसे चुप करने कहा गया है। इसी हवा के साथ व्यायाम करते हैं, उसे प्राणायाम कहते हैं। इसमें तीन क्रियाएँ हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। पूरक में वायु को खींचते हैं, कुम्भक में रोकते हैं तथा रेचक में निकाल देते हैं। हवा का साधन करके प्राण स्थिर करना चाहते हैं। दूसरा है—इच्छा का रोकना। प्राणायाम में भी इच्छा का रोकना होता है। परन्तु मुख्यतः हवा की तीनों क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। दूसरा साधन है—मन को एक ओर लगाओ। इच्छा आवे, हटाओ। कोई इच्छा आने न पावे। मन समेटकर एकांत मन से कुछ सोचने से श्वास धीमा हो जाता है। चंचल काम में श्वास तेजी से चलता है। मन अचंचल हो तो हवा भी स्थिर होगी। हवा को खींचने, ठहराने और

फेंकने में हवा की ठोकर भीतर में लगती है, जैसे बाहर की हवा देह में टकराती है। बाहर के चमड़े से भीतर के तन्तु कोमल होते हैं। इसमें प्राणायाम की क्रिया से हवा की यदि कड़ी ठोकर लग जाये तो मस्तिष्क बिगड़ जाये, कलेजा में चोट लगना सम्भव है। ऐसा सुनने में आया भी है कि किसी का मस्तिष्क घूमता है, कितने को रोग हो गया है इत्यादि। इसलिए इसको सापद कहा गया। यदि ठीक तरह से किया जाये तो जो लिखा है वह फल प्राप्त होगा। किन्तु यह सापद है। फिर दूसरा साधन है–आप बैठे-बैठे मन को एक ओर लगाओ। मन भागता है समेटो। एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करो; तो हेमन्त काल के कमल सदृश भोग वासना का नाश हो जायेगा। इसके लिए फिर चार बातें बतलाई गई हैं। अध्यात्म-विद्या की शिक्षा, साधु-संग, वासना परित्याग और प्राणस्पन्दन निरोध। इन युक्तियों को छोड़कर जो मनमाना ही काम करते हैं तो वे प्रकाश को छोड़कर अन्धकार में ढूँढ़ते हैं। अथवा मदमस्त गजराज को कमल-नाल के तन्तु में बाँधते हैं।

❀ भगवान् बुद्ध ने पहले कठोर तप किया, बाद में ध्यान किया। एक ही रात में उनको सारी अनुभूतियाँ हो गईं। उनका शिष्य जिसका नाम देवदत्त था, वह कठोर-कठोर नियम बना कर लाता। भगवान् ने कहा–"इस कठोर नियम को मानता हूँ, लेकिन सहज में भी लोग कर सकते हैं। जिनको जो मंजूर होगा, सो करेंगे।" भगवान् बुद्ध के नहीं मानने पर उनसे देवदत्त द्रोह करने लगा।

ध्यानयोग सबसे होने योग्य है। चाहे वह हल जोतने वाला ही क्यों न हो जो एक शब्द भी नहीं जानता, उससे भी होगा।

❀ गीता में प्राणायाम की भी चर्चा है। लेकिन छठे अध्याय में केवल ध्यानयोग का वर्णन है। उसमें है कि समतल स्थान पर बैठो। कुशासन बिछाओ, उस पर मृगचर्म बिछाओ, उस पर वस्त्र दो। अर्जुन राजकुमार थे, उनके लिए ये चीजें मिलनी कठिन नहीं। लेकिन गरीब आदमी एक गमछी वा वस्त्र बिछाकर बैठे। अवधूत है, तो जमीन पर बैठ जाये। हाँ, गरदन-शरीर और मस्तक को सीधा करके बैठे। इससे मेरुदंड सीधा रहता है। भगवान्

श्रीकृष्ण ने किसी आसन का नाम नहीं लिया और कहा कि ध्यानयोग का अभ्यास करो।

❁ जैसे आँख देखने का सरलतम-साधन ऐना है। इसी तरह अपने को और ईश्वर को देखने के लिए सरलतम-साधन ध्यानयोग है। हठयोग जबर्दस्त है। है तो है। लेकिन यह सबसे सधने योग्य नहीं है। **राजयोग कहता है–"हे हठ्योग! तुम्हारे बिना ही हम चल सकते हैं, लेकिन मेरे बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकते।"**

❁ बाहर में शरीर को पानी आदि से साफ करते हैं और भीतर की सफाई ध्यान से होती है। जो मूर्त्तिमान हैं, उनका ही ध्यान नहीं, बल्कि जो मूर्त्तिमान नहीं हैं, उनका भी ध्यान। जहाँ तक देखने के लिए है, वहाँ तक दृष्टि के अभ्यास से देख सकते हैं। स्थूल और सूक्ष्म को दृष्टि से देख सकते हो। लेकिन यह सीमित है। जो असीम है, उसको नहीं पहचान सकते। मन-बुद्धि से उसकी पहचान नहीं होती है। मन, बुद्धि से परे जो चेतनधार है, उसको लगाना है, जो दृष्टि से देखी नहीं जाती है। उसका यत्न गुरु से जानना चाहिये।

❁ पहले मोटा-मोटी ध्यान, फिर सूक्ष्म-ध्यान–ज्योति-ध्यान। फिर नाद- ध्यान। इस नाद-ध्यान से परमात्मा में मिलकर एकमेक हो जाते हैं। परमात्मा को सांसारिक-सुख वा दुःख नहीं है। उनको ब्रह्म-सुख है। जो उस सुख में डूब जायेगा, वह संसार में फिर नहीं आवेगा। इसी के लिए दृष्टियोग और शब्दयोग है।

❁ चित्त की शान्ति में शान्ति है। चित्त अशान्त है, तो हमेशा अशान्ति है। चित्त की वृत्तियाँ अनेक हैं। उन चित्तवृत्तियों को एकत्र करने का नाम ही योग है। योग दो प्रकार के होते हैं–एक हठयोग और दूसरा राजयोग। राजयोग में ध्यान की प्रधानता है। हठयोग में आसन, प्राणायाम आदि का साधन करना पड़ता है। इसमें यही प्रधान है।

❁ **भगवान् श्रीकृष्ण ने भी ध्यान-योग बताया है।** गीता में एक अध्याय ध्यानयोग का है। प्राणायाम-योग का कोई अध्याय गीता में नहीं है। खोजकर देख लीजिये। ध्यान के लिए बात प्रत्यक्ष है। कहते हैं–"ध्यान

देकर सुनो।" बच्चों को कहते हैं-**"ध्यान देकर पढ़ो।"**

❀ बिना ध्यान के कुछ नहीं होता है। हमलोग बचपन में पढ़ते थे तो पंडित जी कहते थे कि एकचित्त होकर पढ़ो, मन लगाकर सुनो। ध्यान लगाकर पढ़ो। मोटे-से-मोटा काम हल जोतना है, हलवाहे का मन गड़बड़ हो जाये तो बैल को फाल लग जाये। मतलब यह कि बिना ध्यान के कुछ नहीं होता है। ध्यान–मन के पूरे सिमटाव को असली ध्यान कहते हैं।

❀ गुरु से साधन-विधि जानकर ध्यानाभ्यास करना चाहिये। पहले मोटा-ध्यान फिर महीन-ध्यान। मोटे-ध्यान में इष्ट-मूर्त्ति का ध्यान और महीन में विन्दु-ध्यान है। विन्दु-ध्यान के बाद शब्द-ध्यान है। शब्द को कोई देखता नहीं है। यह बाहर का नहीं, अन्तर का शब्द जो उसको पकड़ता है, वह शब्द जहाँ से आता है, वहाँ खींचकर ले जाता है और अशब्द में पहुँचा देता है। अशब्द ही अनाम है।

❀ **"जिमि दूध के मथन से, निकसत है घी जतन से।**
तिमि ध्यान के लगन से, परब्रह्म ले निहारा।।"

भगवद्गीता के अनुयायी ने कहा कि "अब ध्यान करने का समय नहीं है।" जिन भगवान् बुद्ध को ध्यान-योगी कहते हैं, उनके शिष्य कहते हैं कि अब ध्यान का समय नहीं है। सारे संसार के लोग जिस अध्यात्म-विद्या के लिए यहाँ आते थे, उस ज्ञान को झाँप दो, उचित नहीं। गीता में सबसे विशेष कर्म-योग को माना गया है। स्थिर-बुद्धि रखकर समान-दृष्टि से सब संसार को देखते हुए काम करो। अपना सुख-दुःख जैसा, दूसरे का भी सुख-दुःख वैसा ही समझो। सब काम करते रहो और ईश्वर की तरफ मन लगाते रहो, यह भक्ति कर्मयोग है। स्थितप्रज्ञता–समत्त्व कैसे होगा, इसके लिए प्राणायाम का वर्णन किया है, किन्तु ध्यानयोग की जैसी विधि बतलायी गई है वैसी नहीं। वहाँ कहा गया है कि "समाधि में तुम्हारी बुद्धि स्थिर होगी।" बिना ध्यान के समाधि नहीं हो सकती। जिससे हो सके प्राणायाम करो। जिससे नहीं हो सके यह ध्यान करो। प्राणायाम में आपदा भी आ सकती है, उससे फेफड़ा बिगड़ सकता है; मस्तिष्क बिगड़कर पागलपन भी हो सकता है। किन्तु ध्यानयोग में आपदा नहीं। उपनिषद् में आया है–

"यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यता हन्ति साधकम्।।

अर्थात्–जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे काबू में आते हैं, इसी तरह प्राणायाम भी किया जाता है, प्राकारान्तर होने से वह अभ्यासी को मार डालता है।

नीचे के पाँच चक्रों का नहीं, केवल छठे-चक्र (आज्ञाचक्र) से ही साधना आरम्भ करो, तो पाँचों चक्र के जो गुण हैं, वे भी आ जायेंगे, ऐसा वर्णन शिव-संहिता में है।

"यानि यानि हि प्रोक्तानि पंच पद्मे फलानि वै।
तानि सर्वानि सुतरामेतज्ज्ञानाद्भवन्तिहि।।"

अर्थात्–पंच-पद्मों का जो-जो फल पहले कहा, सो समस्त फल आप ही इस आज्ञाकमल के ध्यान से प्राप्त हो जायेगा।

❁ शिव कहते हैं कल्याण करने वाले को। सबका पालन करने वाले को विष्णु कहते हैं। अगर आप ध्यान में–नादध्यान में लगे रहें, तो पालन-पोषण में भी कोई कमी नहीं होगी, यह पूर्ण विश्वास करके रखना चाहिये।

ध्यान में मन के जितने विकार हैं, सब अस्त हो जाते हैं और जीवात्मा उन विकारों से रहित हो जाता है। इसलिए संतों ने विन्दु-ध्यान और नाद-ध्यान बतलाया है। विन्दु-ध्यान और नाद-ध्यान असली चीज है संतमत की। संतमत शांति पाने के लिए रास्ता बतलाता है। शांति प्राप्त हो जाने पर कोई कमी नहीं रहेगी और मंगल-ही-मंगल होता रहेगा। इसलिए हमलोगों को गुरु के बताये हुए विन्दु और नाद-ध्यान का अभ्यास बहुत अच्छी तरह से करना चाहिये। पहले अवश्य ही विन्दु-ध्यान है, उसके बाद नाद-ध्यान है। विन्दु-ध्यान ऐसा हो कि एक विन्दु को छोड़कर दृष्टि किसी ओर नहीं जाये। अगर दृष्टि किसी ओर चली जाये तो विन्दु छूट जायेगा। दृष्टि को खूब टिकाये रखना, यह विन्दु-ध्यान में होता है। इसके बाद ही **"विन्दु में तहँ नाद बोलै, रैन दिवस सुहावनं।"** होता है।

❁ जो दृष्टियोग करता है, सूक्ष्म-मंडल में प्रवेश करता है और शब्द-ध्यान से सूक्ष्म-मंडल को–दृश्य और अदृश्य दोनों जगत् को पार करता है।

मुक्तिकोपनिषद् में आया है–

"प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं चिदात्मकम्।
अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मुनिभावितः।।"

अर्थात् ज्योति, मन तथा बुद्धि-रहित होकर केवल चैतन्य-आत्मा ही रहे, यह अतद्व्यावृत्ति (जिसको किसी दूसरे की आवश्यकता न हो) समाधिस्थ मुनियों से अभिलषित है। उसके वास्ते ब्रह्मज्योति को पार करके नादानुसंधान–नाम-भजन करना है।

❀ सन्तमत कहता है कि ध्यान करो। पीछले पहर रात में, दिन में स्नान के बाद, फिर संध्याकाल ध्यान-साधन करो। रात में जब-जब नींद टूटे, तब-तब थोड़ा-थोड़ा ध्यान करो। यदि नींद न माने तो फिर सो जाओ, लेकिन पिछले पहर का ध्यान अवश्य करो।

"जागै ना पिछले पहर, करै न गुरु मत जाप।
मुँह फाड़े सोवत रहै, ताकूँ लागै पाप।"

–सन्त चरणदास जी

❀ ध्यान-योग ईश्वर-भक्ति के लिए ऐसी चीज है; जिस तरह शरीर के लिए प्राण है। प्राण नहीं तो शरीर जीवित नहीं रह सकता। ध्यानयोग नहीं तो ईश्वर-भक्ति में सार नहीं। ध्यान मनको एक ओर करने को कहते हैं। मन को एक ओर करने के लिए जप की भी आवश्यकता है। मनको एक ओर करो। क्योंकि जिस ओर मन रहता है, उसी का ध्यान होता है।

❀ **"प्रथमहिं सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।"** संत कबीर साहब ने कहा है। इसी को विन्दु-ध्यान कहते हैं। चाहे शून्य-ध्यान कहो, चाहे विन्दु-ध्यान कहो, मनसे बनाना नहीं होता। देखने के ढ़ंग से दृष्टि को रखो, आप उदय होगा। जैसे कागज पर कलम की नोक रखी गयी; वहीं एक चिह्न हो गया। उसी को लोग विन्दु कहते हैं। संत पलटू साहब ने कहा है–

"काजर दिहे से का भया ताकन को ढव नाहिं।"

इसका तरीका है। इसकी युक्ति है। युक्ति से दृष्टि को रखो। चित्त को इधर-उधर मत करो। ताकने का ढव चाहिये। यही गुरु से सीखा जाता है।

यही एक विद्या है; जो सारी शक्तियों को प्राप्त करा देने वाली विद्या है। ईश्वर से मिलने का ज्ञान यही विद्या देती है। ईश्वर-मिलन-पथ में जो अनुभूति होती है, एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, एवं प्रकार से उसमें साधक मन से कुछ बनाता नहीं है। यहाँ मानस-ध्यान का दखल नहीं। इसी को विन्दु-ध्यान कहते हैं। इसके लिए अन्दाजी बात नहीं हो सकती है। गुरु से जानो।

❀ प्रत्येक आदमी देखते हैं–एक का सिर जहाँ होना चाहिए, दूसरे का सिर भी वहीं है। आँख, नाक, पैर सबको एक जगह पर है। उसी तरह प्रत्येक आदमी जो सुख चाहता है, वह बाहर संसार में नहीं है, अपने अन्दर में हो गये। अब क्या मालूम होने लगा ? अंधकार। अपने को पूछो, मैं कहाँ हूँ ? उत्तर आवेगा–अंधकार में। अंधकार का गुण अज्ञान है। अंधकार में अज्ञानता रहती है। इसलिए इस अंधकार से बाहर होना हो सकता है कि नहीं ? संतलोग कहते हैं, हो सकता है। लेकिन देखने की युक्ति चाहिये। कोई काजल या सुरमा लगाकर देखा जायेगा ? नहीं। एक सन्त हुए पलटू साहब। वे कहते हैं–

"काजर दिहे से का भया, ताकन को ढव नाहिं।
ताकन को ढव नाहिं, ताकन की गति है न्यारी।
इक टक लेवै ताकि, सोइ है पिव की प्यारी।।"

देखने का यत्न अलग ही है। एकटक देखो, आँख बन्द करके देखो। एकटक देखने के लिए एक ही तरफ ख्याल रखना चाहिये। देखे हुए रूप को देखेगा, तो उस रूप के अनेक अंग-प्रत्यंग होते हैं। रेखा को देखो तो उसके अनेक टुकड़े हो सकते हैं। रेखा का टुकड़ा करते-करते क्या बचता है ? जिसका टुकड़ा नहीं हो, वह है विन्दु। सन्तों ने विन्दुध्यान-विधि, नाद ध्यान-विधि का प्रचार किया है। सन्तों ने विन्दुध्यान, नादध्यान बताया है। विन्दुध्यान को दृष्टिसाधन और नादध्यान को नादानुसन्धान कहा है। दृष्टि-साधन दृष्टि-योग और नादानुसंधान यानी सुरत-शब्दयोग।

❀ **"शून्य ध्यान सबके मन माना।।"**

शून्य-ध्यान कैसे होगा, इसका पता अभ्यासी को ही मालूम होता है। शून्य-ध्यान भगवान श्री कृष्ण को भी पसन्द था। श्रीमद्भागवत में आया है—उद्धव से भगवान् श्री कृष्ण कहतें हैं—पहले तुम मेरे सम्पूर्ण शरीर का ध्यान करो, फिर चेहरे का और यथा—

"इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ।।
तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम।।
तत्र लब्ध पदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।"

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर उस मन को बुद्धि रूपी सारथी की सहायता से सर्वांगयुक्त मुझमें ही लगा दे। सब ओर से फैले हुए चित्त को खींचकर एक स्थान में स्थिर करे और फिर अन्य अंगों का चिन्तन न करता हुआ केवल मेरे मुस्कानयुक्त मुख का ही ध्यान करे। मुखार-बिन्द में चित्त के स्थिर हो जाने पर उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करे।

❋ योग चित्तवृत्ति-निरोध को भी कहते हैं। आपलोगों ने सुना होगा कि हठयोग में बहुत आसन आदि लगाने पड़ते हैं। घर को छोड़े बिना नहीं होगा। जो पूर्ण वैरागी होगा, उसी से होगा; किन्तु सन्तों ने ऐसा नहीं कहा। सन्तों ने कहा है—हठयोग के किये बिना भी ईश्वर की प्राप्ति होती है; किन्तु हाँ, संयमी होकर रहना होगा। तब गृहस्थ रहो या विरक्त रहो—दोनों से होगा। संयमी होने का आशय है मितभोगी होना। स्वल्पभोगी संयमी है। जो भोगों में विशेष आसक्त है, वह भोगी है। उससे संयम नहीं होगा।

❋ ध्यान करो। इसके लिए वृत्ति को मध्य में रखो। सर्वसाधारण भी इसे कर सकते हैं। इसके लिए प्राणायाम करना सबके योग्य नहीं है, ध्यानयोग सबके करने योग्य है। ध्यानयोग में किसी प्रकार की आपदा नहीं है। इसमें शीघ्रता का ख्याल रखने वाला गलती में पड़ जाता है। वह इस लोभ में ऐसा करता है कि शीघ्र ही प्राप्ति होगी।

मैं कहता हूँ कि मध्यवृत्ति वाले बनो। इसमें मन की एकाग्रता होगी,

स्थिरता आयेगी। इसमें पूर्ण सिमटाव होगा। पूर्ण सिमटाव एक विन्दुता पर होता है। अपनी वृत्ति को मध्य में रखने का यत्न सच्चे गुरु से सीखो।

❁ सरल राजयोग है और कठिन हठयोग है। सन्तों ने राजयोग का वर्णन किया है। श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् ने छठे-अध्याय में प्राणायाम की कुछ भी चर्चा नहीं करके सरल ध्यानाभ्यास करने बताया। इसलिए कबीर साहब ने जोर देकर कहा–

"न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।"

यहाँ योगी का अर्थ हठयोगी से है। हठयोग करके राजयोग करे वा ध्यान करे, ऐसी बात नहीं है। हठयोग में कठिनाई है। यह सर्वसाधारण के लिए नहीं है और राजयोग–ध्यानयोग सरल है, सर्व साधारण के लिए है। इन दोनों में दृढ़ हो जाने पर शून्य में ध्यान करो।

❁ ध्यानाभ्यास में जिनका अधिक लौ है, वे उतना ही अधिक तरक्की करेंगे। ध्यान-अभ्यास में जिनका मन नहीं लगता है और जो मन को फेर-फेरकर ध्यान में नहीं लगाते हैं, वे ध्यान में उन्नति नहीं कर सकेंगे। मन के दूसरे सारे ख्यालों को छोड़कर ध्यान करना होता है। अनेक जन्मों के संस्कार के कारण मन जहाँ-जहाँ घूमता है, इसको बारम्बार रगड़ के द्वारा ध्यान में लगाना चाहिये। थकना नहीं चाहिये। बड़ी मुस्तैदी रहेगी, साहसपूर्वक करते रहेंगे, तो साधन का फल मिलेगा, जो संत कह गये हैं।

❁ **"काल धरम नहिँ ब्यापहिँ ताही।**
रघुपति चरन प्रीति अति जाही।।"

–रामचरितमानस

काल का धर्म उसे नहीं व्यापता है, जिसका राम के चरणों में अत्यन्त प्रीति है।

(पाठान्तर-"कलि अधर्म नहिं व्यापै ताही।")

चारो युग-काल के पृथक-पृथक चार विभाग हैं। इनके धर्मों को काल-धर्म कहतें हैं। काल-धर्मों में जो खोटे हैं, वे परम प्रभु राम के प्रेमी को नहीं व्यापते। (इसको) खूब याद रखिये, और इस विचार को मन से निकाल

दीजिये कि योग-ध्यानादि काल-धर्म के अनुसार अब कलिकाल में नहीं हो सकेंगे। देखिये, इसी कलिकाल में महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, कबीर साहब, नानक साहब और गोस्वामी तुलसीदास जी आदि बहुत-से ज्ञानी, योगी, परम भक्त, सन्त आदि हुए हैं। अतएव इस विचार को पकड़े रहना और फैलाना कि कलिकाल में योग-ध्यानादि नहीं हो सकते, आलसी, प्रमादी और राक्षसी प्रकृति के लोगों का काम है।


राजा इक्ष्वालु


वैवस्वत मनु


सूर्य

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा–

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।

अर्थ : मैंने इस अविनाशी योगको सूर्य से कहा था, सूर्य ने (अपने पुत्र वैवस्वत) मनुसे कहा (और) मनुने (अपने पुत्र) राजा इक्ष्वाकुसे कहा


परमात्मा श्रीकृष्ण

राज विद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।

अर्थ : यह सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला। धर्मयुक्त साधन करने में बड़ा सुगम (और) अविनाशी है।

श्री सद्‌गुरवे नमः



नासाग्र



※ मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में तीन प्रकार से सिमटाव करना बतलाया है–अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा से। आँख बंदकर देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा है। उसका लक्ष्य नासाग्र होना चाहिये।

※ श्रीमद्भगवद्‌गीता के छठे अध्याय में दृष्टि-साधन करने के लिए कहा–

"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।"

अर्थात् काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर अपनी नासिका के आगे दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ देखे। नासाग्र-ध्यान में भी भेद है।

एक सेठ ने अपने धन रखने का स्थान अपने बही-खाते में लिखकर रख दिया था कि अमुक महीने की अमुक तिथि के दिन, दुपहर के समय धन अमुक ताड़ गाछ की फुनगी पर रखा है। जब वह मर गया और उसके बेटे ने जब इसे पढ़ा, तो अति आश्चर्यित हुआ कि ताड़-वृक्ष तो अभी वर्त्तमान है, पर वहाँ तो धन है नहीं! और सोचा कि वहाँ धन रह भी सकता है कैसे ?

उसके पिता के समय का एक वृद्ध मुनीम था। जब लड़के ने इस विषय में उससे पूछा, तब उस वृद्ध ने कहा–"वह महीना, तिथि और वह समय आने दो, तो मैं बतला दूँगा।" जब वह समय आ गया, तब उस वृद्ध ने उस सेठ के पुत्र को उस स्थान पर ले जाकर ताड़-गाछ की फुनगी की छाया जहाँ पड़ती थी, वह स्थान बता दिया और बोला कि इस जगह में वह धन गड़ा है। सेठ-पुत्र ने कोड़कर अपना धन निकाल लिया। संत धरनीदास जी ने कहा–

"धरनी निर्मल नासिका, निरखो नैन के कोर।
सहजै चन्दा ऊगिहैं, भवन होइ उजियोर।।"

निर्मल नासिका को समझो । शाण्डिल्योपनिषद् में भी नासाग्र का

जिक्र आया है।

"विद्वान्समग्रीवशिरो नासाग्रदृग्भ्रूमध्ये शशभृद्बिम्बं पश्यन्नेत्राभ्यांममृतं पिवेत् ।।"

विद्वान गला और सिर को सीधा करके नासिका के आगे दृष्टि रखते हुए, भ्रुवों के बीच चन्द्रमा के बिम्ब को देखते हुए नेत्रों से अमृत का पान करें।

❀ दिशाओं को मत देखो, नासाग्र में देखो। नासाग्र लिखा है, नासाग्र-भाग नहीं लिखा है। टीकाकार अपनी ओर से 'भाग' शब्द जोड़ देते हैं। अग्र का अर्थ 'आगे' किया जाये, तब भी 'भाग' छूट जाता है। अग्र-भाग को देखने कहा, तो दस दिशाओं में कोई-न-कोई दिशा हो जायेगी। किन्तु भगवान् ने किसी दिशा को देखने नहीं कहा है। ऊपर देखने से ऊपर हो जायेगा। नीचे देखने से नीचा हो जायेगा। ये ऊपर नीचे दस दिशाओं में से है। मुझको गुरु महाराज ने यह बताया—"भाग को छोड़ दो।"आँख बन्द करो, तब जो देखता है, वह नासाग्र में देखता है। लेकिन यदि कोई मानसिक नासाग्र भाग को बनाता है, तो मानसिक ध्यान होता है। ध्यान ऐसा हो कि—

"ध्यानं निर्विषयं मनः।" "ध्यानं शून्यगतं मनः।"

मन निर्विषय हो जाये, मन शून्यगत हो जाये। इसका यत्न गुरु से जानो। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध में है कि भगवान् श्री कृष्ण से उद्धव ने पूछा कि भगवन्! आपका ध्यान कैसे करूँ ? तो कहा—

"सम आसन आसीनः सम कायो यथासुखम्।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः।।"

अर्थात् श्री भगवान् बोले—हे उद्धव! सुखपूर्वक सम आसन से शरीर को सीधा रखकर बैठे, हाथों को तर-ऊपर गोद में रखे और दृष्टि को नासिका के अग्र में स्थिर करे।

नाक का निचला भाग वा ऊपर का भाग दोनों इसमें छूट जाते हैं। इसका कोई यत्न खास तरह से है, जिसको गुरु से जान लेना चाहिये। असल में यही गुरु-दीक्षा है।

❀ **"नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः।"**

नादरूप मन का मण्डल भौंओं के बीच में है, यह ज्ञानियों ने कहा है।

पहला स्थान आज्ञाचक्र-सम्बन्धी बातों का संकेत किया है, 'भ्रुवोर्मध्ये। इसी को तीसरा तिल कहकर भी जनाया गया है। इसको ऊपर-नीचे, मध्य का भी स्थान कहते हैं। स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करने का यह द्वार है। इसी द्वार होकर सूक्ष्म में प्रवेश करने से ऊर्ध्वगति होती है। इसलिए भ्रुवोर्मध्य की बड़ी महिमा है। सन्तों की वाणियों में भी इसका विस्तृत वर्णन है।'

❀ एक बाबू साहब के दरवाजे पर मैंने देखा कि शिवजी, पार्वती जी और गणेश जी की तस्वीर में सबको तीन-तीन आँखें हैं। मैंने कहा–"ठीक है। शिवजी को तीन आँखें हैं, पार्वती माता को और गणेश जी को भी। मानी यह है कि शिवजी की जितनी सन्तानें हैं, सबको वह तीसरी-आँख है।" शिवजी की सन्तान सभी हैं। शिवजी ने उस तीसरी आँख को खोल ली थी, हम भी उसको खोलें।

❀ **"नउ दरवाजे नवै दर फीके रसु अंम्रितु दसवैं चुईजै।"**

इनके अतिरिक्त एक और द्वार है, जिसको दसवाँ द्वार कहते हैं। आपलोग जानते होंगे कि शिवजी ध्यान में बैठे थे, तो देवताओं ने कामदेव को भेजा। शिवजी का ध्यान छूटा, उन्होंने अपनी तीसरी आँख खोल दी।

"तब शिव तीसरा नयन उघारा।
चितवत काम भयउ जरि छारा।।"

–श्री रामचरित मानस

नौ दरवाजे तो पहले गिना दिये और शिवजी ने तीसरी दृष्टि खोली, यह दसवाँ द्वार है। इस तीसरी दृष्टि से, क्रूर-दृष्टि से देखा जाये, तो नाश हो और दया की दृष्टि से देखे, तो अमृत बरस जाये। साधु-सन्त कहते हैं कि केवल शिवजी को यह आँख नहीं थी, सबको है। किन्तु शिवजी का उस पर काबू था। अब भी जो यत्न करेंगे, तो दसवाँ द्वार देख सकते हैं। जितने साधु-सन्त हुए हैं, सभी ने इस तीसरी आँख को अपनाया, तब साधु-संत कहलाये। शिव, पार्वती और गणेश के तीन-तीन आँखों के होने की बात उनकी तस्वीर से जानी जाती है। यह तस्वीर सिखाती है कि तीन-तीन आँखें सबको हैं। जब तक आप नौ दरवाजे में रहियेगा, तो मुक्ति का द्वार नहीं मिलेगा। दसवें द्वार में जाने से मुक्ति का द्वार मिलेगा।

❀ सरस्वती नदी अंतःसलिला है। इड़ा-पिंगला गंगा-यमुना है और

सरस्वती सुषुम्ना है। सुषुम्ना में सेज लगाना शुभ घड़ी है।

❀ ये जो नौ द्वार हैं, इनमें से कोई द्वार मोक्ष का द्वार नहीं है। सन्तवाणी से पता चलता है कि जो नौ द्वार वाले शरीर में रहते हैं, वे संसार में दौड़ते रहते हैं। इस शरीर में दसवाँ द्वार भी है। उस द्वार से गमन करो तो निजघर में पहुँच जाओगे। यह शरीर स्थूल घर है। सन्त जो कहते हैं कि इसमें दशम द्वार है, यह बहुत कमलोग जानते हैं। बाहर से अपने को समेटकर अन्तर-प्रविष्ट होकर अन्तर्मुखी जहाँ तक होना होता है, वहीं दसवाँ द्वार है। यह दसवाँ द्वार ही मोक्ष का द्वार है। इसमें शरीर नहीं जाता; मन अवश्य जाता है। यह इस द्वार की विलक्षणता है। दसवें द्वार को योगियों के यहाँ आज्ञाचक्र कहा जाता है। यही है अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद का द्वार है।

❀ इन्द्रियों में चेतनधार है—दसों इन्द्रियों में चेतन-धाराएँ हैं, तभी इन्द्रियाँ काम करती हैं। जिन केन्द्रों से ये धाराएँ निकलती हैं, उनमें उन्हें केन्द्रित करो तो चेतन-धाराओं का इन्द्रियों के गोलकों से इस भाँति के त्याग में ब्रह्माग्नि प्रज्वलित होती है। यह स्थान सुषुम्ना है, यहाँ सतोगुणी प्रकाश होता है। जो इसका साधन करता है—उसी का आवरण दूर होता है, घूंघट-पट खुलता है। धुलते-धुलते काया रूप पाँचो कपड़े उसके धुल जाते हैं। वहीं अन्त में परमात्मा का दर्शन पाता है।

❀ प्रत्येक की आँख में ज्योति है और उस ज्योति का खजाना भीतर में है। जहाँ से दोनों आँखों में शक्ति आती है। वह खजाना शिवनेत्र है। प्रकाश के बाद शब्द है। शब्द सभी जगह है। आज्ञाचक्र में जो जाता है वह उस मार्ग के शब्द को सुनता है। जहाँ ज्योति का अन्त होता है, वहाँ केवल शब्द ही रह जाता है।

❀ इस शरीर में छोटे-छोटे बहुत छिद्र हैं; बड़े-बड़े नौ—आँख के दो कान के, दो नाक के, दो मुँह का एक और मल-मूत्र के दो छिद्र हैं। छोटे-छोटे छिद्र झरोखे हैं। यह शरीर नौ द्वारों का घर है। नौ द्वारों में से एक भी द्वार ऐसा नहीं है जिससे शरीर से छुटकारा मिले, मोक्ष मिले। ये सब द्वार भीतर से बाहर जाने को है और वह द्वार जिसमें भीतर प्रवेश कर सकते हैं, दसवाँ द्वार है। वह आपकी आँख के पास है।

आपलोग शिवजी की प्रतिमा में तीन आँखें देखते होंगे। शिवनेत्र

इसलिए कहलाता है कि जो उसको प्राप्त करता है, उसका कल्याण होता है। यह रास्ता ब्रह्म की ओर जाने का है। गुरु नानक साहब ने कहा है–

"नउ दरवाजे नवै दर फीके रसु अमृतु दसवै चुईजै।"

और

"नउ दरि ठाके धावतु रहाए दसवैं निज घरि वासा पाये।"

इन नौ द्वारों में रहते हुए आप कल्याण नहीं पाते हैं, दसवें द्वार में जायें तब बहुत कल्याण होगा। दसवें द्वार में जाने के लिए बड़ी एकाग्रता की जरूरत होती है। एकाग्रता में शान्ति आती है।

जो अन्तर की ओर चलता है, वह संसार की ओर से छूटता है। जो संसार की ओर से छूटता है, वह परमात्मा की ओर जाता है। जो उस दसवें द्वार से गुजरता है, वह मोक्ष की ओर जाता है, वह भक्ति करता है। दसवें द्वार की ओर जाना भक्ति करनी है।

❁ मनुष्य तीन गुणों के अन्दर रहता है; कभी राजस-प्रधान, कभी तामस-प्रधान और कभी सत्त्व-प्रधान में। लेकिन सत्त्व प्रधान में बहुत कम रहते हैं। बड़े-चरित्र के जो हैं, उनका विचार सात्त्विकता में रहता है।

सात्त्विकता का विचार कैसे होगा? अपने को कहाँ रखोगे? एक बंगाली संत का वचन सुनिये–

"बायें इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला रजस्तमोगुणे करिते छे खेला।
मध्ये सत्त्वगुणे सुषुम्ना विमला धर धर तारे सादरे।।"

अगर सात्त्विकता में अपने को रखना चाहते हो, तो सुषुम्ना को आदर से पकड़ो

❁ भगवान् बुद्ध ने जिस ज्ञान से, जिस धर्म से, जिस प्रभुत्त्व से समूचे संसार में अपना ज्ञान फैलाया था, वह फिर फैले। वह क्या ज्ञान था? जब वे घर से निकले तो वह उस ज्ञान को नहीं जानते थे। घर से निकल कर वे अग्निहोत्री पण्डित आदि के यहाँ गये और उनके बताये साधन को किये। कठोर तप के बाद भी उनको नाउम्मीदी आई कि जिस परम ज्ञान को मैं चाहता था, वह प्राप्त नहीं हुआ । घर जाकर राज्य सम्हालूँ या संसार में घूमूँ? सोचा, राज्य में मन नहीं लगेगा। फिर उन्होंने विचारा–ध्यान करूँगा, चाहे शरीर गल जाये। ध्यान करने बैठे गये। उस प्रथम ध्यान में मालूम हुआ

कि कठोर साधन से कुछ नहीं होगा। और न उससे होगा जो इन्द्रिय-निग्रह नहीं करता। मैंने सुना था कि जब वे प्रथम ध्यान में थे तो उन्होंने देखा कि इन्द्र आये हैं। उनके हाथ में तानपूरा है। तानपूरा में तीन तार हैं। एक तार बहुत कसा हुआ है, जिसकी आवाज ठस् मालूम पड़ती है, दूसरा तार बिल्कुल ढीला है, उसकी आवाज घड़ड़-घड़ड़ मालूम पड़ती है–अच्छी नहीं मालूम होती। मध्य का तार (तीसरा) ठीक तरह से, यानी न तो अधिक कसा हुआ और न एकदम ढीला है–उसकी आवाज बड़ी मीठी और सुरीली है। इससे उन्होंने निर्णय किया कि मध्य-मार्ग को पकड़ो। न तो इन्द्रिय-आधीन होकर संसार में पड़े रहो और न शरीर को इतना कसो कि शरीर ही सूख जाये। इसलिए भगवान् बुद्ध ने बीच का रास्ता बताया।

इसका दूसरा अर्थ है कि अपने शरीर में दो भाग हैं– दायाँ और बायाँ। दाहिने-बायें के बीच में रहो। इसी को संतों ने दूसरी तरह से कहा कि दाहिने भाग में एक नाड़ी है, जिसको पिंगला और बायें भाग में दूसरी नाड़ी है, उसको इड़ा कहते हैं। इसी को संतों ने इंगला और पिंगला भी कहा और मध्य की नाड़ी को सुषुम्ना कहा है। जो दाहिने भाग में है उसमें रजोगुण का संचार होता है, जो बायें भाग में है उसमें तमोगुण का और मध्य में जो है, उसमें सतोगुण का संचार होता है। मध्य में रहनेवाले की सात्त्विकी वृत्ति होती है, वह आगे बढ़ता है। राजस् वृत्ति चंचल होती है तथा तामस् वृत्ति आलस्य और मूढ़ता उत्पन्न करती है और उलटी बात सोचती है। इसलिए सात्त्विकी वृत्ति में रहें और ध्यान करें।

❀ "क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रासता शहरग में है दिलवर पै जाने के लियेन।।"

हमलोग सुखमना कहते हैं, सूफी महात्मा शहरग कहते हैं। एक ही बात है। यहीं से रास्ता आरम्भ होता है। उस शहरग वा सुखमना का रास्ता कौन बतावेगा ?

"मुर्शिदि कामिल से मिल सिद्क और सबूरी से तकी।
जो तुझे देगा फहम शहरग के पाने के लिये।।"

–तुलसी साहब

सच्चाई और सन्तोष के बिना गुरु के पास जाने पर गुरु का ज्ञान नहीं

पाता है। जो गुरु के पास सच्चाई और सन्तोष लेकर जाते हैं, वह वही प्रसाद लेकर जाते हैं, जिससे वे गुरु का ज्ञान पाते हैं। अपनी सच्चाई और सन्तोष को आचरण में करके दिखला देते हैं, यह उत्तम भेंट है। वैसे तो बहुत लोग गुरु के पास जाते हैं। गुरु सुखमना का बोध देगा ।

❁ पढ़ना आरंभ करते हो, तो पढ़ते-पढ़ते ही विद्वान् होते हो। उसी तरह ध्यान-साधन का आरम्भ करो, करते-करते इसमें भी पूर्णता मिलेगी। बहुत-से गुरु बहुत तरह की दीक्षा देते हैं, लेकिन यह दीक्षा कोई-कोई देते हैं। दसवें द्वार की बात जो जानते हैं, उसमें प्रविष्ट होने के लिए जो साधन करते हैं, वे अन्दर का आनन्द पाते हैं।

❁ एक कथा कहता हूँ–

"नदी किनारे घर किया, करजा करि करि खाय।
करजदार जब माँगन आवै, घुसक नदी में जाय।।"

आपको बड़ी हँसी लगेगी। इस शरीर के अन्दर में यह ऊपर का खोपड़ा एक भाग है और नीचे से इसका मिलन, तब यह शरीर है। इसमें इड़ा और पिंगला धारे हैं। इड़ा और पिंगला के बीच सुषुम्ना है। सुषुम्ना के किनारे लोग रहें और हैं भी। यहीं कर्म करते हैं। कर्म का फल तो होता ही है। कर्म करते हैं, तो कर्जा करते हैं, कर्म करना छोड़ दें, तो कर्जा नहीं होगा। जो जानते हैं, कहाँ रहने से कर्मफल नहीं लगेगा, तो सुषुम्ना में जाओ। कर्मफल से बच जाओगे । सुषुम्ना के तीर में नहीं, सुषुम्ना में डुबो।

❁ सुषुम्ना में वह रास्ता है। आपके अन्दर की बायीं और दायीं-धार को इंगला और पिंगला कहते हैं। बीच की धारा को सुषुम्ना कहते हैं। दोनों को मिलाकर बीच में देखो। वही सुषुम्ना की धारा होगी। उस धार पर जो ठहरता है, वहाँ ज्योतिर्मय-विन्दु मिलता है। वहाँ जो शब्द मिलेगा, वह ज्ञानमय ज्योतिर्मय-शब्द है। उस शब्द को जो पकड़ता है, ईश्वर तक जाता है।

❁ यह शरीर-रूपी घर अपवित्र भी बहुत है और पवित्र भी बहुत है। सन्तों ने बताया है कि शरीर की अपवित्रता को छोड़ना चाहो तो अपनी वृत्ति को अगल-बगल नहीं रखकर मध्य में रखो। पवित्र बनते-बनते बन जाओगे। मध्य के वास्ते सन्तों ने सुषुम्ना का वर्णन किया है। अगल-बगल यानी

इड़ा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना का वर्णन किया है। जितना अधिक अपने को सुषुम्ना में रख सकोगे, उतना अधिक पवित्र हो सकोगे। यह मध्य में वृत्ति रखने वाला होने के लिए जो यत्न है, वह सच्चे गुरु से सीखो।

❀ अवश्य ही यह शरीर पिंजड़ा है और इस पिंजड़े से बाहर होने की युक्ति भी है। इससे निकलने के लिए कहाँ से निकलना चाहिये ? दायीं ओर से या बायीं ओर से ? दायीं ओर पिंगला है, बायीं ओर इंगला, इसके बीच में सुषुम्ना है। दायीं ओर पिंगला–गंगा नदी है। बायीं ओर इंगला–यमुना-नदी है। बीच में सुषुम्ना सरस्वती है। इसमें डुबकी लगाओ। यह बाहर में डुबकी लगाने से नहीं होगा।

❀ मैं इलाहाबाद गया था। वहाँ गंगा-यमुना का मिलाप है, सरस्वती नहीं देखी। कहते हैं कि वह अन्तःसलिला है। उस अन्तर की सरस्वती–सुषुम्ना में डुबकी लगाने से अन्तर के अन्तर-पट में चला जाता है।

"अविगत अन्त अन्त अन्तर–पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन सुन्न के पारा, अगुण सगुण नहीं दोई।।"

सन्त दादू दयाल जी ने तीन पटों का वर्णन किया है, जो तीन पटों को पार करता है, वह पिण्ड-ब्रह्माण्ड से निकल जाता है। अनेक पिण्ड-ब्रह्माण्ड हैं। एक से निकल जाओ, सबसे निकल जाओगे। लेकिन रास्ता है सुषुम्ना से। मीरा ने कहा–

"सेज सुखमणाँ मीराँ सोवै, शुभ है आज घड़ी।"

इसका यत्न-युक्ति मैं बताता हूँ ।

दोउ नैन बीचो बीच सन्मुख एकटक देखते रहो।
आपही वह विन्दु झलके, पट गिरा निरखत रहो।।

❀ सुषुम्ना में से जाने के लिए मीरा बाई कहती है, जो घोर निद्रा में सो जाता है, उसको बाहर की सुधि नहीं रहती है, उसी तरह जो सुषुम्ना में प्रवेश करता है, उसको बाहर की सुधि नहीं रहती। इस सोने में फिर जगना नहीं होगा गोया संसार में आना नहीं होगा।

श्री सद्गुरवे नमः



समाधि और उसका प्रकार



यह अवश्य ही जानना चाहिये कि समाधि किसे कहते हैं? योगाभ्यास के अन्तिम अंग को समाधि कहते हैं, इसमें पूर्ण सफल होने पर अभ्यासी पूर्ण योगी होता है। मुक्तिकोपनिषद् में समाधि की निम्नलिखित स्थितियाँ बतलायी गई हैं—

''ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना।
संप्रज्ञातसमाधिः स्याद्ध्यानाभ्यासप्रकर्षतः।।
प्रशान्तवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददायकम्।
असंप्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः।।
प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम्।
अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसो समाधिर्मुनि भावितः।।
ऊर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम्।
साक्षाद्विधिमुखो ह्येष समाधिः पारमार्थिकः।।''

अर्थ—जब अहंकारवृत्ति निरूद्ध होकर केवल ब्रह्माकार में चित की वृत्ति होकर रहती है, तब इसको संप्रज्ञात समाधि कहते हैं। यह अतिशय ध्यानाभ्यास से होती है। जब चित की सब वृत्तियाँ प्रशान्त हो जायेंगी, उसी अवस्था का नाम असंप्रज्ञात समाधि है। वह योगियों को प्रिय है। ज्योति, मन तथा बुद्धि-रहित होकर केवल चैतन्य आत्मा ही रहे, यह अतद्व्यावृत्ति (जिसको किसी दूसरे की आवश्यकता न हो) समाधिरथ मुनियों से अभिलषित है। (इस समाधि में) ऊपर, नीचे और मध्य; सर्वत्र कल्याणकारी ब्रह्म की परिपूर्णता की अनुभूति होती है। विधिमुख (कथित) यह पारमार्थिक समाधि है।

समाधि की इन स्थितियों में ब्राह्म ज्ञानविहीन होकर रहना होता है। नादविन्दूपनिषद् में भी कहा है—

''शंखादुन्दुभिनादं च न श्रृणोति कदाचन।
काष्ठवज्ज्ञायते देह उन्मन्यावस्थया ध्रुवम्।।''
न जानाति स शीतोष्णं न दुःखं न सुखं तथा।

न मानं नावमानं च संत्यक्त्वा तु समाधिना ।।
अवस्थात्रयमन्वेति न चित्तं योगिनः सदा।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्तः स्वरूपावस्थितामियात्।।''

अर्थ—इसके पश्चात् किसी समय भी शंख या दुन्दुभि के नाद को वह (अभ्यासी) नहीं सुनता है। निश्चय ही उन्मुनी अवस्था को पाकर उसकी देह काष्ठवत् हो जाती है। ठण्ड, गर्मी और सुख-दुःख को वह कुछ नहीं जानता है। योगी का चित्त सदा मान और अपमान को त्यागकर समाधि से तीनों अवस्था को पार करता है। जाग्रत् और निद्रावस्था से छूटकर वह आत्मस्वरूप को प्राप्तकर लेता है।

समाधि-साधन में जब इन दशाओं को कोई प्राप्त करेगा, तभी वह समाधि-प्राप्त महापुरुष कहलाने का अधिकारी होगा। ऐसे समाधिस्थ महापुरुष स्थितप्रज्ञ होकर पूर्ण कर्मयोगी होंगे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। समाधि प्राप्त करने के लिए ध्यानयोग का और पूर्ण कर्मयोगी होने के लिए कर्मयोग का अभ्यास संग-संग आरम्भ कर, करते रहना युक्तियुक्त है। अभ्यासी ध्यानयोग में पूर्ण होकर कर्मयोग में भी पूर्ण हो जायेगा। समाधि-रहित को स्थितप्रज्ञता कदापि प्राप्त नहीं होगी और इसके बिना कर्मयोगी कच्चा और अपूर्ण रहेगा।

कोई-कोई कर्म समाधि मानते हैं। उनका कहना है कि 'बाह्य' कर्त्तव्यों को पूर्णरूपेण मन लगा-लगाकर करते रहो, इसमें ऐसी तन्मयता आवे कि कर्त्तव्य कर्म करते समय मन दूसरी ओर तनिक न जायें। ऐसी कर्म-समाधि में जाग्रतावस्था नहीं छूटेगी। ऊपर लिखित समाधियों में तुरीय और तुरीयातीतावस्था में रहकर अभ्यासी बाह्य ज्ञान से शून्य होगा। और नाना प्रकार के कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए मन और बुद्धि एक-ही-एक पर अधिक विलम्ब-पर्यन्त नहीं ठहराये जा सकेंगे। इस भाँति एक तत्त्व का दृढ़ाभ्यास नहीं होगा और एक तत्त्व के दृढ़ाभ्यास के बिना भोगवासना का क्षय नहीं होगा। भोगवासना के क्षय नहीं होने से समाधि की प्राप्ति कदापि नहीं होगी।

एकतत्त्वदृढ़ाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।।
प्रक्षीणचित्तादर्पस्य निगृहीतेन्द्रियद्विषः।

पद्मिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोगवासनाः।।

—मुक्तिकोपनिषद्

अर्थ—जब तक मन नहीं जीता गया हो, तबतक एक तत्त्व के दृढ़ अभ्यास से चित्त-अहंकार को पूर्ण रूप से नष्ट करके इन्द्रिय-शत्रु को निग्रह करना। ऐसा होने से ही हेमन्त काल के कमल-सदृश भोग-वासना का नाश हो जायेगा।

अतएव कर्म-समाधि को असली समाधि नहीं मान सकते, जिसमें गीता की स्थितप्रज्ञता प्राप्त हो। वर्णित कर्म-समाधि के माननेवाले, अपने कर्म-समाधि के साधन को 'विकर्म' (विशेष कर्म) भी कहते हैं। परन्तु उनके केवल इस विकर्म-साधन से ही असली समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती है; और न कर्म-बन्धन से ही छूटा जा सकता है। कर्म-बन्धन तो असली समाधि में ही नष्ट हो सकता है। इसलिए उनके इस विकर्म-साधन से 'अकर्म होना माननेयोग्य नहीं है। कच्चे कर्मयोगी को परमात्म-दर्शन और मोक्ष-लाभ नहीं होंगे। जब ये ही नहीं मिले तो ऐसे कर्मयोग के लिए यह कह देना अनुचित नहीं होगा कि—

"जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।।"

—गो0 तुलसीदास

जिसको परमात्म-स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन समाधि में प्राप्त करने का प्रेम नहीं है, उसको राम (परमात्मा) में प्रेम है, यह कैसे कहा जायेगा ? केवल 'मनोमय कुछ' को परमात्म-दर्शन जानना भूल है।

❀ ध्यानाभ्यासी को समाधि में कोई दुःख नहीं होता, शरीर ज्ञान में आने से उसे दुःख होता है। परन्तु उसकी सहन शक्ति बढ़ा रहने के कारण वह साधारण मनुष्य की भाँति दुःख में विकल नहीं होता। दिन में गेन्द खेलते समय पैर में चोट लगी, स्पप्न में उस चोट का दर्द नहीं है और सपने में भी गेन्द खेलता है। फिर जगने पर चोट का दर्द भी मालूम होता है और गेन्द नहीं खेल सकता। उसी प्रकार जो समाधि में चला जाता है, इन्द्रियों से ऊपर उठ जाता है, कर्म मण्डलों को पार कर जाता है उसके संचित और प्रारब्ध कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

❀ शरीर, संसार का ज्ञान नहीं रहे तो समाधि होती है।

समाधि माने सुख, जिसमें दुःख नहीं। सांसारिक सुख के साथ दुःख लगा रहता है। जिस सुख में दुःख नहीं, वह आध्यात्मिक सुख है। जैसे, जब तक कछुआ चलता रहता है, तब तक चार पैर निकले रहते हैं। भीतर समेट लेता है, तो मिट्टी के ढेला जैसा रहता है। इसी तरह का साधन हो कि इन्द्रियों को इतना समेटो कि कछुआ जैसे हो जाओ। सब इन्द्रियों के ज्ञान से अपने को हटाओ।

❀ यदि 'दूजा-भाव' (द्वैत-बुद्धि) सम्पूर्णतः छूट गया हो, घर और उजाड़ यथार्थ में एक ही तरह मालूम होत हो, निरन्तर-शब्द में सूरत सदा लगी हुई रहती हो और 'मलिन वासना' कभी नहीं आती हो, तो इस दशा पर पहुँचे हुए को अवश्य ही 'सहज समाधि' प्राप्त है। 'निरन्तर-शब्द' के विषयों में तो बिहारी दरिया साहब कहते हैं:-

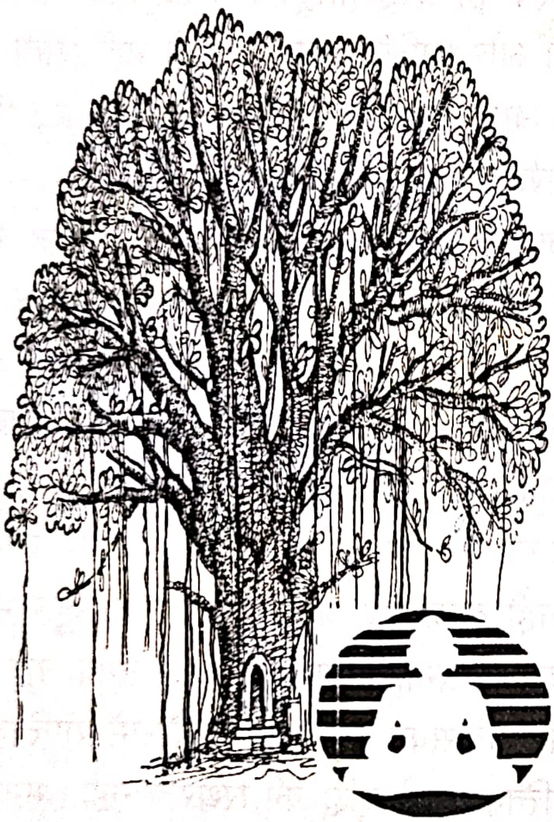
"सोवत जागत ऊठ्त बैठ्त, टुक विहीन नहिं तारा।
झिन झिन जंतर निस दिन बाजै, जम जालिम पचिहारा।।"

परन्तु यह "सहज समाधि" की अवस्था किसी को आरम्भ में ही होने योग्य नहीं है। दृष्टियोग और नादानुसन्धान करते-करते जब कोई साधन को अन्तकर देता है, तब उसे यह दशा प्राप्त होती है। फिर उसको आँख बन्द और कान बन्द करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रथम से ही आँख, कान बन्द नहीं करते हुए अथवा अभ्यास के कुछ भी कष्टों को नहीं धारण करते हुए सहज समाधि प्राप्त हो कभी संभव नहीं है।

❀ स्थिर-बुद्धि किसको कहते हैं ? जिसमें सात्त्विकता विशेष बढ़े। असल में बिना सात्त्विकता के बुद्धि की स्थिरता नहीं। भगवान् श्री कृष्ण के कहने के अनुकूल ऐसी स्थिर-बुद्धि समाधि में होती है। इतना ऊँचा साधन हो कि त्रैगुणातीत हो जाये। शरीर धारी त्रैगुण से छूट जाये, सो सम्भव नहीं। राजस, तामस छूटकर अत्यन्त कम हो और सात्त्विकता ही रहे, यह समाधि में होता है। समाधि में समत्त्व यानी मन की एकरसता होती है। समाधि वाले की बुद्धि स्थिर हो जाती है।

❀ केवल मानसिक चिन्तन ही सहज समाधि की अवस्था पर नहीं पहुँचायेगी। जिस समाधि में पहुँचकर पिण्ड में उतार होने पर भी सहज समाधि लगी रहती है, उस समाधि में मन नहीं पहुँचता। वहाँ केवल चेतन-

धारा की ही गति है। एक बार भी इस समाधि की प्राप्ति होने पर इस समाधि वाले को समाधि में प्राप्त सार-पदार्थ (शब्द निरन्तर) कभी छूटता नहीं है। यद्यपि यह विषय सम्पूर्णतः वचन में आने योग्य नहीं है, तथापि देश में फैले हुए सहज समाधि के भ्रामक विचारों को कुछ-न-कुछ कहकर दूर करना आवश्यक है। इसीलिए इस विषय पर यह थोड़ी-सी बात कही गई।



समाधिस्थ मुनि

श्री सद्गुरवे नमः

इन्द्रियों का स्वामी मन और उसका प्रारूप

❀ शरीर में इन्द्रियाँ न होतीं, तो शरीर किसी काम का नहीं। एक इन्द्रिय के बिगड़ने से शरीर बेकाम हो जाता है। जब सब इन्द्रियाँ बिगड़ जायें, तब क्या हो सकता है ? शरीर की शोभा के लिए, शरीर के काम के लिए इन्द्रियाँ हैं। शरीर में इन्द्रियों की प्रधानता है। इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है। इन्द्रियों को मन जिधर प्रेरण करता है, इन्द्रियाँ उस ओर जाती हैं; जिस ओर से खींचता है, उस ओर से रूकती हैं। मन से बुद्धि श्रेष्ठ है। जैसे अंकुश हाथी को वश करता है, उसी तरह बुद्धि मन को वश में रखती है। मन अन्धा है। मन को बुद्धि जो कहती है, मन वही करता है।

❀ ज्ञान कहते हैं जानने को और ध्यान कहते हैं मन की एक ओरता को। आप मन नहीं हैं, आप मन के संग हो गये हैं। पाँच कर्म-इन्द्रियाँ हैं–मुँह, हाथ, पैर, गुदा और लिंग और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं–आँख, कान, नाक, जिह्वा और चमड़ा। चार अंदर की इन्द्रियाँ हैं। मन का काम है संकल्प-विकल्प करना। बुद्धि का काम है विचारना। यह मैं हूँ–यह ज्ञान अहंकार में होता है। जबतक कुछ कम्पन्न न हो, तबतक कुछ हो नहीं सकता है। कम्पन्न-स्वरूप चित्त है, वह सबको डोलाता है, तब मन-बुद्धि आदि काम करते हैं। इन सभी इन्द्रियों से छूटने के लिए ध्यान है।

❀ मन को जीतने के लिए किधर जाइयेगा ? आकाश में उड़ने से मन वश होता तो आकाश में उड़ने वाला, वायुयान पर चलने वाले का मन काबू हो जाता। पहले जाने कि मन कहाँ है ?

"इस तन में मन कहाँ बसत है, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम होय तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब सन्तन सिर मौर ।।"

–कबीर साहब

ब्रह्मोपनिषद् में भी यही बात है–**"नेत्रस्थं जागरितं विद्यात् ......"**

यह आँख में रहता है। आँख का स्थान सबसे ऊँचा है।

❀ मन को काबू में करने के लिए बाहर जाना नहीं है। मन को सम्हाल कर उसके केन्द्र में समेटना है। समेट लो तो मन में मन हो जायेगा। उसको मिठास मिल जायेगा, अपना आनन्द अपना सुख उसको मिल जायेगा। भगवान् श्री कृष्ण के वचनानुकूल कछुए की तरह अंगों को समेट लेगा। शरीर के अंग तो नहीं सिमटेंगे, इन्द्रियों में की चेतन-धारा सिमटेगी।

❀ मन की चंचलता में बहिर्मुखता होती है और मन की स्थिरता में अन्तर्मुखता होती है। मन का जो सिमटाव होता है, यही अन्तर्मुखी करता है। इसलिए भक्ति के साधन में मन के सिमटाव की बातें हैं।

❀ आप जप कीजिये, पूजा कीजिये, किन्तु मन उसी ओर रहे। पूजा-पाठ मन को एक ओर करने के लिए है। बाहरी पूजा-जप भी ऐसी चीज नहीं है कि आध्यात्मिकता में उसकी कोई आवश्यकता नहीं। जप, प्रार्थना, स्तुति, प्रेयर (Prayer) सबकुछ कीजिये, मन की एकाग्रता के लिए कीजिये। मन की एकाग्रता के लिए प्राणायाम की भी उपादेयता मानी जाती है और यह बिना प्राणायाम के भी हो सकते हैं। प्राणायाम में कुछ विघ्न भी है, उसको छोड़कर केवल ध्यान कीजिये तो कोई हानि नहीं।

❀ किसी चीज को समेटो, तो उसकी ऊर्ध्वगति होती है। धान सुखाते हो तो पसरा रहता है, उसको समेटते हो तो ढेर हो जाता है—ऊपर की ओर उठ जाता है। पानी को समेटो तो उसकी ऊर्ध्वगति होती है। मन को समेटो तो और भी अधिक ऊर्ध्वगति होगी जैसे दूध और घी एक साथ रहता है। दूध जिधर बहता है घी भी उधर बह जाता है। दूध को मथो तो दूध अलग और घी अलग हो जायेगा। उसी तरह मन और चेतन संग-संग रहता है। आगे चलकर मन और चेतन अलग हो जाता है।

❀ मन के सिमटाव के लिए सत्संग करो, जप करो, मोटा ध्यान करो, दृष्टियोग करो, नादानुसंधान करो।

❀ यह मन जबसे है, तबसे चंचल है। लोगों के अनेक जन्म हो चुके हैं, लेकिन मन नहीं बदला है। उसको थोड़े समय में काबू करके रखना वा उसका संग छोड़ देना हठात् संभव नहीं है। मन के सिमटाव का अभ्यास करते रहने से वह अवश्य वश में आता है। ध्यान में जब मन लग जाता है,

तब उसको अंदर का चैन मिलता है, तब संसार की किसी चीज में आसक्ति नहीं रहती है।

❀ मन को केवल एक तरफ लगा रहना पसन्द नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यही कहा था–"मन बड़ा चंचल है; लेकिन अभ्यास और वैराग्य से वश होता है।" मन की सँभाल करते रहो। जहाँ-जहाँ मन भागे, उसको वहाँ-वहाँ से तत्क्षण लौटा-लौटाकर अपने ध्येय में लगाओ। इसका अभ्यास बहुत करना पड़ता है। इसी को प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार में जो हार जाता है, वह शान्ति के मार्ग में नहीं जा सकता है। इसमें थको नहीं। प्रत्याहार का फल धारणा अवश्य होगी। इसको बारम्बार क र ा ` , इससे धारणा में गहराई आयेगी तो यही ध्यान होगा।

❀ मन विषय-हीन हो जाये। मन से रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द दूर हो जाये। मन इनको याद करे नहीं। मन में इन सबके कोई रूप बने नहीं। सिर्फ उसी रूप का ध्यान हो, जिस पर मन को लगाना है। यहाँ से शुरू करो। **"ध्यानं निर्विषयं मनः।"** इसमें नहीं होगा।

❀ संसार के जितने पदार्थ हैं, जीवन छूट जाने से सब छूट जायेंगे। इस जीवन के बाद का जो जीवन है, इतना लंबा है, जिसका ठिकाना नहीं। शरीर छूटेगा, मन नहीं छूटेगा। मन साथ रहेगा। मन अगर साथ नहीं रह जाये, तो ईश्वर की कृपा से जो यह मनुष्य-शरीर मिला है, इसमें उसका संस्कार भी नहीं रहे। पहले का संस्कार अभी भी है, वही संस्कार कभी सुख देता है, कभी दुःख देता है। आपका मन कहता है, सुख-ही-सुख मिले जैसे दिन-ही-दिन हो ऐसा नहीं होता। दिन भी होगा और रात भी होगी। यह अनवरत रूप से होता है। इसी तरह कभी सुख होता रहेगा, कभी दुख होता रहेगा, मन नहीं रहे, तो यह सुख-दुःख लय हो जाये।

❀ मन की चंचलता में शांति नहीं आती है। जब शांति नहीं आती तो सुख नहीं होता। अशान्त को सुख कभी नहीं होता, चाहे वह कोई हो–पढ़ा-लिखा हो, अनपढ़ हो, व्यापारी हो वा खेती करने वाला कोई हो, यदि उसका मन अशान्त है, तो उसको सुख नहीं होता। साधु-संत महात्मा कहते हैं–"जिससे सुखी रहो, वह उपदेश देता हूँ। मन को एकाग्र करो, सुखी होओगे।"

❀ लोग समझते हैं कि विशेष धन हो और लोगों पर हुकूमत हो जाये,

इन्द्रियों के भोग मिले तो सुखी होऊँ, किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। किसी को भी धन, हुकूमत और इन्द्रिय-भोग में सुख नहीं होता। सुख मन की एकाग्रता में है। चंचलता में सुख नहीं है। मन की एकाग्रता में जो शान्ति मिलती है, उसके साथ-साथ और बातें हैं। मन एक ओर लगा रहता है, चंचल नहीं होता। जैसे आपकी देह स्थिर रहे, तो आपको आराम मालूम होता है, दौड़ने-चलने से दुःख मालूम होता है, उसी तरह मन स्थिर रहने से सुख होता है। सुखी होने के लिए बाहर का सामान नहीं चाहिये। अपने अन्दर मन को समेटो।

❀ दूध से घी निकाला जाता है, तो दूध का दाम कम हो जाता है। जितनी देर में बिना घी का दूध खराब हो जाता है, उतनी जल्दी दूध के साथ घी रहने से नहीं। उसी तरह जब जीवात्मा मन से निकल जाता है, तब मन मर जाता है।

❀ मन की चंचलता में संसार है और मन की निश्चलता में परमात्मा है। मन चंचल होता है, विषयों के अवलम्ब से। जैसे भौंरा एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है सुगन्धि के लिए; क्योंकि बगीचे में विविध प्रकार के फूल रहा करतें हैं। जहाँ एक-ही-एक फूल हो, और फूल नहीं हो वहाँ भौंरा एक ही फूल पर रहेगा। घर में बहुत चीजें हैं, सब को निकाल दीजिये तो केवल शून्य बच जाता है। मन बिना किसी एक पर रहे नहीं मानता। मन से पंच विषयों को हटा दीजिये तो संसार नहीं बचता, तब परमात्मा बचता है। ईश्वर में मन को लगाना चाहे तो पंच विषयों से मन को हटा लीजिये। परमात्मा की ओर हो जायेगा।

❀ लोग मुंगेर गये हैं। मुंगेर के विषय में सोचते हैं, तो कहतें हैं कि मन मुंगेर चला गया। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। मन का जाना ऐसे नहीं होता। यदि मन मुंगेर गया तो कहिये तो इस समय मुंगेर में क्या हो रहा है ? यह तो मन ने मुंगेर को पहले जैसा देखा था, उसी को अपने में बना-बनाकर देखता है। मन का चलना तब होता है, जब मन का सिमटाव हो। जहाँ यह मन ठहरा हुआ है, मन का वहाँ से सिमटाव हो तो इसकी ऊर्ध्वगति होगी।

❀ यह मन निशि-दिन बाहर-ही-बाहर जाता है। मन को नियन्त्रित

करने के लिए उसको अन्तर्मुख करना होगा। जिसका मन बाहर-बाहर जायेगा, उसका मन स्थिर नहीं होगा। मन दो प्रकार के हैं—तन-मन अर्थात शरीर—मुखी मन और निज—मन अर्थात् आत्म—मुखी मन। मन का जो केन्द्रिय—रूप है, वह 'निज-मन' है और जो मन इन्द्रियों के संग होकर वाह्य-विषयों में भटकता है, वह 'तन-मन' है। मन को बाहर के विषयों में आनन्द मिलता है। अन्दर में प्रवेश करने पर और विशेष आनन्द मिलता है, इसको साधक जानते हैं।

❀ इस शरीर में मन बड़ा बलवान है। बाहरी सभी इन्द्रियों को यह प्रेरण करता है, इन्द्रियों से संसार की वस्तुओं की पहचान करवाता है, काम करवाता है। चाहिये कि हम मन को काबू करें। काबू करने के लिए ईश्वर भजन करें।

❀ मन का संकल्प-विकल्प छुटाना होगा। संकल्प-विकल्प छुटा हुआ मन पवित्र होता है। संकल्प-विकल्प छुटे हुए मन में राग-द्वेष नहीं होता। संकल्प-विकल्प वाला मन राग-द्वेष उत्पन करता है।

❀ इस शरीर में मन अपना स्थान कहीं अवश्य रखता है। आँख के अन्दर उसका वासा है। दायीं-बायीं आखों के बीच अन्तरस्थित शिवनेत्र में इसका निवास है। इसके सामने ज्योति है।

"मनहीं सौं मन थिर भया, मनहीं सौं मन लाई।
मनहीं सौ मन मिलिरह्या, दादू अनत न जाई।।"

पिण्डी मन की धारों को समेटो और उसके केन्द्र में उसको लय करो। इसका यत्न जानो और अभ्यास करो, तब मन स्थिर होगा। मन की स्थिरता में सब काम बन जायेगा।

❀ **मन मस्त-पागल हाथी से भी विशेष पागल है।** इस मन पर काबू करने का उपदेश है। संसार में जितनी सवारियाँ हैं, किसी से मोक्ष-धाम में नहीं पहुँच सकता। लेकिन जिसने अपने मन को काबू कर लिया है, वे ही मोक्ष-धाम तक पहुँचते हैं।

❀ मन की दो दृष्टियाँ होती हैं। एक मन के केन्द्र की और दूसरी मन की फैली हुई धार की। मन की धार जो संसार-मुख है, उसको तन-मन कहते हैं और जो समेटकर अन्तर्मुख होती है, वह ब्रह्ममुख होती है।

मानस-चक्षु के लिए तन-मन और निजमन यानी आत्ममुखी मन दोनों चाहिये। तब देखेगा कि **"कौतुक देखहिँ सैल बन भूतल भूरि निधान।"**

❀ आज्ञाचक्र में स्थित मन के केन्द्रिय रूप को ब्रह्माण्डी मन कहते हैं और पिण्ड में फैलनेवाली उसकी धारों को पिण्डी मन कहते हैं। पिण्डी मन की पुत्री चिन्ता है, ब्रह्माण्डी मन का पुत्र बोध हैं। बोध और चिन्ता का विवाह हुआ। अर्थात् चिन्ता बोध के वश में हो गयी। चिन्ता का भाई डर है; क्योंकि यह भी पिण्डी मन से उत्पन्न हुआ है। साधन-द्वारा पिंडी मन ब्रह्माण्डी मन के घर गया, उससे मिला। इस तरह समधी के घर समधी गया। ब्रह्माण्डी मन की बहु–पतोहू चिन्ता का भाई डर भी अपने बाप के साथ वहाँ गया। पिंडी मन में इच्छा, चिन्ता और डर उपजते रहते हैं। जब यह सिमटकर अपने केन्द्र (ब्रह्माण्डी मन) में केन्द्रित होता है, तब आत्म-बोध का उदय होता है; इच्छा, चिन्ता और डर दूर हो जाते हैं। दृष्टि-धारों को आज्ञाचक्र के केन्द्र-बिन्दु में बारम्बार लगाने से पिंडी मन ब्रह्माण्डी मन से मिलकर रहता है और इच्छा, चिन्ता, डर तथा सारे मनोविकारों से बना पिण्डी मन का चक्र नाश को प्राप्त होता है।

श्री सद्गुरवे नमः

दम (इन्द्रियों के साथ मन का साधन)

꧁ मन और दृष्टि का बहुत संबंध है। जहाँ आप देखेंगे, मन वहीं रहेगा, इसलिए दृष्टि-साधन से मन सधता है। दृष्टि-साधन आँख से होता है। इसलिए इन्द्रियों के साथ मन का साधन 'दम' कहलता है।

꧁ आप जब जगने से सोने में जाते हैं, तो कहीं बाहर नहीं जाते, अपने अन्दर सिमटते हैं। सोने पर कुछ ज्ञान नहीं रहता। यदि उस समय किसी के मुँह में कोई मिश्री का टुकड़ा रख दे, तो उसका स्वाद उसको मालूम नहीं होगा। बात यह है कि इन्द्रियों में जो चेतन-धार है, स्वप्न में उसका सिमटाव हो जाता है, बाहर इन्द्रिय-घाटों पर नहीं रहती है। इससे जानने में आता है कि भीतर जाने से इन्द्रियों से छुटना होता है।

꧁ छठी भक्ति है–इन्द्रियों को रोकने का स्वभाव वाला बनना। इन्द्रियों का सूत मन के साथ है। मन इन्द्रियों को चलाता रहता है। इन्द्रियों के साथ मन भी साधा जाता है। मन का जो सूत इन्द्रियों से लगा है, उसको उस स्थान में समेटो, जहाँ से यह बिखरा है। दमशीलता के साधन में इन्द्रियों के साथ-साथ मन का भी साधन होता है। ध्यान की क्रिया से मन के सूतों को समेट सकते हैं। समेटने से ही इन्द्रियों की धार मन में आकर एकत्रित होती है। इस सिमटाव में एक विचित्र-मौज मिलती है। ऐसे साधक का मन विषयों से अलग हो जाता है।

꧁ सूक्ष्म में प्रवेश करता है, तब इन्द्रिय-निग्रह होता है। यह किधर रहता है ? अन्दर में लौटकर सूक्ष्म-भाव में रहता है। परमात्मा के प्रकाश में रहता है। बिना किसी आड़ के वह परमात्मा से एक सहारा पाता है। वह सहारा प्रकाश है, ब्रह्म-ज्योति है, जिसको पाकर ईश्वर-मुख होता है, संसार-मुख नहीं होता है। ईश्वर-भक्ति में यह प्रकाश पाना बहुत जरूरी है। और इसके लिए योगाभ्यास चाहिए। अन्दर का प्रकाश ब्रह्म-ज्योति पाना है वा ब्रह्म-ज्योति के अन्दर अपने को ले जाना होता है। तब इन्द्रियों को काबू में रखने के लिए हमें संसार में इधर वा उधर जाना चाहिए, सो छूट जाता है। इसलिए छठी-भक्ति में जो 'दम' कहा गया है, इससे ईश्वर की ओर

घूमने का बड़ा यत्न है।

❀ योगाभ्यास में यही नहीं समझना चाहिए कि कठिन-ही-कठिन है। कठिन भी है और सरल भी है। कठिन में नहीं जाइये, सरल में जाइये। यह है ध्यानयोग। धनी, निर्धन, पढ़े, अनपढ़े, स्त्री, पुरुष सबके लिए सुगम है। इस ध्यान से मनोनिरोध होता है। पूर्ण सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। प्रकाश मिलता है। उस प्रकाश में जिसकी वृत्ति हमेशा रहती है, वह दमशील हो जाता है। ईश्वर-भक्ति में दमशीलता की बड़ी आवश्यकता है।

❀ जहाँ इन्द्रियों और शरीरों का संग छूटा वहीं उसका दर्शन हो जायेगा। दूध को मथकर अलग कर लेने पर जो काम दूध से होगा वह काम घी से नहीं होगा और जो काम घी से होगा वह दूध से नहीं होगा। दूध से खीर बना सकते हैं, पूड़ी नहीं छान सकते। घी से पूड़ी बना सकते हैं, खीर नहीं बना सकते। उसी तरह इन्द्रियों के संग में रहकर जो काम होता है, इन्द्रियों से छूटने पर वह काम नहीं होगा। और इन्द्रियों से छूटने पर जो काम होगा, वह इन्द्रियों के संग में रहने से नहीं। इसीलिए ईश्वर के पास जाने कहते हैं ?

❀ इन्द्रियों को काबू में रखने का स्वभाव वाला बनो। बहुत से कर्मों से हटे रहो और निरन्तर सज्जन के धर्म में लगे रहो। इन्द्रियों को रोकने का स्वभाव वाला कैसे बनियेगा ? केवल ख्याल से या और कुछ करना होगा ? इन्द्रियों को रोकने का स्वभाव वाला होने के लिए जानना चाहिये कि इन्द्रियाँ चलायमान कैसे होती हैं। पहले कहा जा चुका है कि इन्द्रियों से मानस-धारा समेटने से उसके पास विषय रहने पर भी वह उसको ग्रहण नहीं करती। इसलिए जानो कि ऐसी क्रिया होनी चाहिये जिससे चेतन-धार अन्तर्मुखी हो सके। विचार से मन को समेटोगे किन्तु वह थोड़ी देर के लिए रहेगा, फिर वैसा ही हो जायेगा। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा कि समाधि में बुद्धि स्थिर होगी। विचार द्वारा भी रोको और इन्द्रियों की धारों को केन्द्र में केन्द्रित करो तब दम का साधन होगा।

❀ कोई भी रूप बनता है एक विन्दु से। रूप जगत का बीज विन्दु है। विन्दु को ही अणोरणीयाम् कहा है। **"बड़ा ते बड़ा छोट ते छोटा"** कबीर साहब ने कहा है, इसी को **"अणोरणीयाम् महतो महीयान्"** उपनिषद् में

कहा है। विन्दु रूप से कोई छोटा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं समझना चाहिये कि विन्दु रूप आ गया और भगवान् का रूप छूट गया। किन्तु नहीं जो सर्वव्यापी है वह कहीं भाग नहीं सकता। स्थूल-रूप से छूटकर विन्दु रूप में आ गये। विन्दु में पूर्ण सिमटाव होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। इन्द्रियों के घाटों से सुरत खींचकर ऊपर उठ जायेगी। यह दम का साधन होगा। दम के साधन में मन और इन्द्रियों का संग-संग साधन होता है।

❁ इन्द्रियों को रोकना 'दम' कहलाता है। योगाभ्यास में यह अति आवश्यक साधन है। दृष्टियोग के द्वारा यह सरलता से होने योग्य है। जैसे किसी वस्तु को अपना पूरा बल लगाकर दोनों हाथों से पकड़ा जाये, तो शरीर का सारा बल उसी पकड़ की ओर फिर जाता है—वहीं एकत्र हो जाता है, इसी तरह गुरु-युक्ति के द्वारा अपने अन्दर में गुरु-इंगित स्थान पर नेत्रों की युगल दृष्टि-धारों को दृढ़ रखने से इन्द्रियों की सभी चेतन-धाराएँ वहाँ खींचकर आ जाती हैं। इन्द्रियों की बाह्य विषयों की ओर की गति रूक जाती है और इसकी परिपक्वता में 'दम' का साधन बन जाता है। इस साधन के बिना योगाभ्यास का आरम्भ होकर उसमें आगे बढ़ना नहीं हो सकता है।





श्रीकृष्ण वाणी-

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जैसे कछुआ सब ओर से (अपने) अंगो को (समेट लेता है । वैसे ही)जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर है (ऐसा समझना चाहिए)।

श्री सद्‌गुरवे नमः

शम (केवल मन का साधन)



शम में केवल मन का साधन होता है। मनोनिग्रह के बिना समता नहीं आती। इसलिए यदि 'शम' नहीं लेकर 'सम' लो, तो भी मनोनिग्रह करना होगा।

शम अर्थात् मनोनिग्रह के लिये लिखा है कि—"**न नाद सदृशो लयः।**" नाद विन्दूपनिषद् पढ़ो उसमें है—"नाद मदान्ध हाथी रूपचित्त को जो विषयों की आनन्द वाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है। मृगरूपी चित्त को बांधने के लिए यह (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र तरंग रूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है।"

"मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यान चारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।
नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपिवा।।"

—नाद विन्दूपनिषद्

विन्दु प्रगट होने पर नाद प्रगट होता है। नाद अभ्यास शम का साधन है। ब्रह्म के दो रूप हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म।

"शब्द ब्रह्म परिब्रह्म, भली विधि जानिये।
पाँच तत्त्व गुण तीनि, मृषाकरि मानिये।।
बुद्धिवन्त सब सन्त, कहैं गुरु सोइरे।
और ठेर सिष जाई, भ्रमे जिनि कोई रे।।"

—सुन्दरदास जी

यह नादब्रह्म की उपासना है। इससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है। नाद ब्रह्म की उपासना से तुरन्त सब अवतारों को पार कर 'शम' के स्वरूप का दर्शन करता है।

स्वरोदय-योग-शास्त्र में चन्द्र को इंगला और सूर्य को पिंगला कहते हैं। दोनों का मेल मिल जाने पर शम हो जायेगा। मैं कहता हूँ—आप आजमा

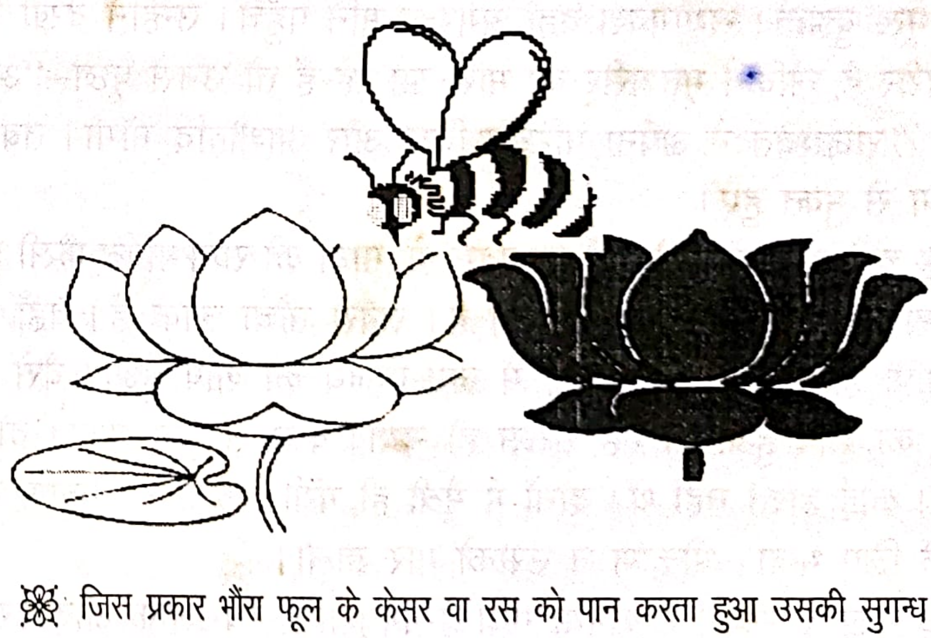
कर देखें तो आपको मालूम हो जायेगा।

❁ केवल मन का साधन 'शम' कहलाता है। दृष्टिसाधन के बाद नाद-अभ्यास है। नाद खोजने के लिए बाहर जाना नहीं पड़ता। वह आपके अन्दर है। वह परमात्मा की ध्वनि है। उस ध्वनि को जो प्राप्त करता है, शमशील हो जाता है, फिर वह समता को प्राप्त कर लेता है। समता प्राप्त करने पर वह दूसरों के दुःख-सुख को अपने समान मानता है, वह दूसरों का दोष नहीं देखता।

❁ 'दम' के साधन में भी 'शम' का साधन होता ही रहता है, परन्तु इन्द्रियों का संग छोड़कर केवल मन का ही साधन हो, यही असली 'शम' का साधन है। दृष्टि-योग के बाद इसका साधन होने योग्य है । इस साधन से पूर्णता प्राप्त किये बिना योगाभ्यास पूर्ण नहीं होता । नादानुसन्धान वा सुरत-शब्दयोग इसका निज साधन है।

"सबद खोजि मन बस करै, सहज योग है येहि ।
सत्त सब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि ।।"

—कबीर साहब



❁ जिस प्रकार भौंरा फूल के केसर वा रस को पान करता हुआ उसकी सुगन्ध की चिंता नहीं करता है, उसी प्रकार चित्त जो नाद में सर्वदा लीन रहता है, विषय–चाहना नहीं करता है; क्योंकि वह नाद की मिठास के वशीभूत है तथा अपनी चंचल प्रकृति को त्याग चुका है ।

श्री सद्गुरवे नमः

स्वर्ग-नरक और उसका दर्शन



❀ भगवान् श्री राम ने कहा–

"स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।"–श्रीरामचरितमानस

जहाँ-जहाँ स्वर्गादिक लोक हैं, वहाँ-वहाँ कुछ-न-कुछ आपदा है। ब्रह्मा को भी दुःख होता है। ब्रह्मलोक में जाने पर भी दुःख होता है। राजा श्वेत ब्रह्मालोक गये। उन्होंने दान नहीं किया था। फलस्वरूप उनको ब्रह्मलोक में भूख-प्यास सताने लगी। तब उन्होंने ब्रह्मा जी को कहा। ब्रह्मा जी ने कहा–"यहाँ खाने का कोई समान है ही नहीं। आपने कभी दान नहीं किया, उसका ही फल है कि यहाँ आपको भूख-प्यास सता रही है। इसलिए आप अमुक सरोवर में जायें, वहाँ आपका मृतशरीर सुरक्षित है। उसी का भोजन करें।" राजाश्वेत ने पूछा–"महाराज! यह भोग मुझे कबतक भोगना पड़ेगा ?" ब्रह्मा जी ने कहा–"जब आपको अगस्त्य मुनि का दर्शन होगा और जबं उनका आशीर्वाद आपको मिलेगा तो आप इस कष्ट से मुक्त हो जायेंगे।" राजाश्वेत लाचारी नितप्रति उक्त सरोवर जाते और अपने मृतशरीर का मांस खाकर भूख बुझाते। संयोगवश वहाँ अगस्त्य मुनि पहुँचे। उन्होंने देखा कि दिव्य शरीर है, लेकिन मृतशरीर का मांस खा रहे हैं तो उनसे पूछा–"आप कौन हैं? राजाश्वेत ने अपना परिचय दिया और आशीर्वाद माँगा। तब वे उस भोग से मुक्त हुए।

❀ चाहे ऊँचे-से-ऊँचे दर्जे का स्वर्ग हो, माया की सेना सर्वत्र फैली हुई है। गोलोक भगवान् का विहार-स्थान है। सबसे ऊँचा लोक है। वहाँ भी शापा-शापी होती है। जैसे बैकुण्ठ में जय-विजय को शाप हुआ। वैसे ही श्रीदामा को शाप हुआ तो वंह राक्षस हो गया। कंस से युद्ध हुआ। दोनों बली थे। कोई हारते नहीं थे। दोनों में मैत्री हो गयी। कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिए भेजा। श्रीकृष्ण ने उसको मार डाला।

❀ सुख के स्थान में बताया गया है–पितृलोक, स्वर्गलोक और उसमें भी ऊँचे-ऊँचे लोक। लेकिन यह स्वर्ग जो है, उससे भी फिर कर आना पड़ता है और कर्मवश जहाँ जन्म लेना चाहिये, जन्म लेता है।

❀ सब लोगों के घर में कोई-न-कोई शरीर छोड़ते हैं। ऐसा कोई घर नहीं, जिस घर में किसी ने शरीर न छोड़ा हो। जो जाता है, वह जानता नहीं कि कहाँ जाना होगा; किन्तु जाना होता है। सुख-दुःख मिला हुआ भी स्थान है और कहीं दुःख-ही-दुःख का भी स्थान है। ये ही स्वर्ग-वैकुण्ठादि स्थान हैं। वहाँ का भोग समाप्त होने से या किसी कारण के उपस्थित हो जाने से बहुत शीघ्र ही इस मृत्युलोक के किसी स्थान पर जन्म हो जायेगा। राजा ययाति बड़े प्रभावशाली और पुण्यात्मा थे। किसी कारण इन्द्र लुके (छिपे) हुए थे। इन्द्रासन खाली था, तो विचार हुआ कि मृत्युलोक में वैसा कोई है, जिसे इस आसन पर बैठाया जाये, तो इन्द्र-जैसा ठीक-ठीक प्रबन्ध कर सके। ययाति को ही चुना गया। ययाति गये और उस आसन पर विराजे। यदि ययाति ठीक तरह से रह सकते, तो जब तक इन्द्र नहीं आते, तब तक वहाँ रहते; किन्तु ययाति को घमण्ड हो गया। वहाँ लोगों को वे अपमानित करते थे। सभी ने विचारा कि इनको नीचे गिराना चाहिए, इसलिए उनके सामने उनके पुण्य की चर्चा करो। वे अपने मुख से पुण्य की चर्चा करेंगे और नीचे गिर जायेंगे। ऐसा ही हुआ, घमण्ड में आकर अपने पुण्य का वर्णन करने लग गये और वहाँ से नीचे गिरा दिये गये। **'सुर पुर ते जनु खसेउ ययाति।'** उनके गिरते समय मुँह से बहुत लार निकली, वही कर्मनाशा नदी है। उनके कुल का कोई तपस्या कर रहा था। उसने समझा कि मेरे कुल के श्रेष्ठ आदमी नीचे गिर रहे हैं। इसलिए उसने कहा कि ठहर जाइये, तो वे वहीं ठहर गये।

❀ जय-विजय ने भगवान् विष्णु के पार्षद रहते हुए सनक, सनन्दन आदि को द्वार पर रोक दिया, जिस कारण वे क्रोधित हुए और शाप दिया—मृत्युलोक में राक्षस होकर जन्म लो। वे बहुत डरे और विनती की, तब उन सनक, सनन्दन आदि ऋषियों ने कहा—"भगवान से प्रार्थना करना, वे तुम्हारा उद्धार करेंगे।" भगवान् के पास वे बहुत गिड़गिड़ाये। भगवान् ने कहा—"मैं तुम्हारे लिए अवतार लूँगा और अपने हथियार से उद्धार करूँगा, चाहे बड़ी अवधि ही क्यों न हो, किन्तु उसके समाप्त होने पर फिर यहाँ जन्म लेना पड़ेगा।"

गोलोक में राधाजी ने कृष्णजी के सखा श्रीदामा को शाप दिया।

श्रीदामाजी ने भी राधाजी को शाप दिया। श्रीदामाजी राक्षस हो गये और राधाजी को इस पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा। श्रीदामाजी राक्षस हुए और भगवान् कृष्ण ने उन्हें मारा। इस प्रकार कितने इतिहास हैं। ऊँचे-से-ऊँचे लोक से भी गिरना होता है। स्वर्गादि जो पितृलोक हैं, वहाँ के भोग समाप्त होने पर फिर यहाँ जन्म लेना पड़ता है।

❀ मरने के बाद दुःख और सुख अवश्य होते हैं। दुःख के लोक को नरक, सुख के लोक को स्वर्ग कहते हैं। कोई स्वर्ग जाते हैं, कोई नरक जाते हैं।

एक साधु बाबा कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक वेश्या का घर पड़ता था। उस घर के सामने से वे गुजर रहे थे, तो उन्होंने सुना–वेश्या अपनी सेविका से कह रही थी कि शहर में जो अमुक आदमी मरा है, पता करके आओ, वह स्वर्ग गया अथवा नरक ? साधु बाबा ने यह सुना, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि वेश्या के यहाँ भी स्वर्ग-नरक का हिसाब होता है। वे वहीं ठहर गये कि देखें, सेविका आकर क्या जवाब देती है। कुछ देर तक इन्तजार के बाद वह सेविका आती है और खबर सुनाती है–मालकिन! उस आदमी को स्वर्ग हो गया है। अब तो साधु बाबा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे उसके घर पर पहुँच जाते हैं और जानकारी करना चाहते हैं कि आप कैसे पता लगाती हैं कि अमुक आदमी स्वर्ग जाता है और अमुक आदमी नरक ? वेश्या ने बड़े सहज भाव से जवाब दिया–यह तो बड़ी सीधी-सी बात है। जिसको सब लोग भला कहे, जिसके लिए सब कोई कहे कि उसका रहना बड़ा अच्छा होता। जिनके मरने के बाद उनकी तारीफ करे, बड़ाई करे, दुःख प्रकट करे, तो समझना चाहिए कि वह स्वर्ग गया और इसके विपरीत जिनके मरने के बाद लोग उनकी निन्दा करे, दुर्नाम करे, सुख माने, तो समझना चाहिए कि वह नरक गया।

❀ सन् 1904 ई० में पण्डित लोग हमको धमकाते थे कि तुमको स्वर्ग तो कहाँ से मिलेगा, नरक में भी मुलायम दुःख का स्थान नहीं मिलेगा। तुम्हारे ऊपर ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण और देव-ऋण हैं। एक षट् शास्त्री पण्डित जी आये थे, वे वेदान्त भी जानते थे। लोगों ने उनसे मेरी निस्बत कहा कि ये पढ़ते थे, पढ़ना छोड़कर साधु हो गये हैं। इनके ऊपर ऋषि-ऋण,

पितृ-ऋण, देव-ऋण, सभी ऋण बाकी हैं, इनको तो स्वर्ग कहाँ से मिलेगा कि नरक में भी मुलायम दुःख का स्थान नहीं मिलेगा। पण्डित जी ने कहा–हाँ, ठीक ही कहते हैं। मैंने कहा–मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये और न नरक ही। मेरे पिता जी ने कहा–पण्डित जी! मेरे पुत्र की बात को भी आप ठीक कहते हैं और उन पण्डितों की बात को भी आप ठीक कहते हैं; यथार्थ में बात क्या है ? उक्त षट् शास्त्री पण्डित जी ने कहा–स्मृति के अनुसार पण्डित लोग ठीक कहते हैं और आपके पुत्र वेदान्त पढ़े तो नहीं हैं, लेकिन वेदान्त की उक्ति कहते हैं, यह बात भी ठीक है। मैनें कहा–**"एक ही साधन सब ऋद्धि-सिद्धि साधि रे।"**

❀ पुराणों के पढ़ने से स्वर्ग और नरक का ज्ञान होता है। जीव अपने कर्मानुसार दोनों का भोग भोगता है। स्वर्ग का भोग सद्गति नहीं है। भगवान् श्री राम ने अपनी प्रजा को उपदेश देते हुए कहा है–

"एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।"

–रामचरितमानस

स्वर्ग पाने की ईच्छा छोड़ देनी है। सद्गति किसको कहते हैं ? परमात्मा के संग हो जाना–ब्रह्म से मिलाप हो जाना असल में सद्गति है।

❀ जिसको तिल पर स्थिरता होती है, उसका सूक्ष्म-मंडल खुल जाता है। स्वर्ग-नरक उसको मालूम होता है। गुरु महाराज ने लिखा है कि सहस्त्रदल-कमल में जो जाता है, वह वहाँ के देवताओं को भी देखता है।

❀ तीन शरीरों के साथ जहाँ रहना होता है; वह है दुःख-सुख भोगने का परलोक। अर्थात् वह स्वर्ग है। ब्रह्मा का धाम, इन्द्र का धाम, इस तरह, तरह-तरह के धाम स्वर्ग-लोक में हैं। गुरु महाराज ने कहा है कि अन्धकार को पार करके पहले स्थान के स्थानीय-दर्शन करके जो आगे बढ़ता है, उसको ज्योतिर्मय-स्थान मिलता है। उसको सहस्त्र-दल-कमल कहते हैं। लेकिन वहाँ सूर्य की ज्योति नहीं है। चन्द्र और तारे की ज्योति है। इसी के अन्दर सातों स्वर्ग हैं। जो भजन करते हैं, वे बड़े-बड़े देवताओं को देख सकते हैं और अनेक लोकों को भी देख सकते हैं।

❀ आँख से रूप देखते हैं। कान से शब्द सुनते हैं। जिभ्या से

रसास्वादन करते हैं। त्वचा से स्पर्श का ज्ञान करते हैं। और नासिका से गंध ग्रहण करते हैं। इन पाँच से बेसी न यहाँ है, न स्वर्ग में है। पाँच विषयों से अधिक स्वर्ग में भी नहीं है। बड़े-बड़े देव, ईश्वर-कोटि के देव के यहाँ भी ये ही पाँच विषय हैं। वहाँ भी काम, क्रोधादिक विकार होते रहते हैं। न काम मिटता है, न क्रोध की लहर मिटती है। अंधकार बढ़ता ही जाता है। लोभ का थैला सब दिन खाली ही रहता है।

❀ पहला वह मसाला जिससे सब कुछ बने, पहले स्थूल-ही-स्थूल कैसे बनेगा? इसलिए पहले ऐसा बनेगा, जो आकार-प्रकारवाला नहीं है। फिर वैसा बनेगा, जिसमें आकार-प्रकार रहेगा; किन्तु सूक्ष्म। फिर ऐसा रूप बनेगा, जिसे सब देखते हैं। इसलिए इस सूक्ष्म-लोक—स्वर्ग को इस स्थूल-दृष्टि से नहीं देख सकते। लोग समझते हैं कि इसी संसार में सुख से रहना स्वर्ग में रहना है और दुःख में रहना नरक में रहना है।

❀ स्वर्ग में देव-शरीर की प्राप्ति होती है और नर-देह सुर-दुर्लभ कही गयी है। इस कारण मनुष्य-देही यदि देव-देह के लिए यत्न करे, तो कहा जायेगा कि वह क्षति की ओर जा रहा है।

"नर तन दुर्लभ देव को, सब कोइ कहत पुकार।।
सब कोइ कहत पुकार, देव देही नहिं पावैं।
ऐसे मूरख लोग, स्वर्ग की आस लगावैं।।
पुन्य छीन सोइ देव, स्वर्ग से नर्क में आवैं।
भरमें चारो खान, पुन्य कहि ताहि रिझावैं।।
तुलसी सत मत तत गहे, स्वर्ग पर करे खखार।
नर तन दुर्लभ देव को, सब कोइ कहत पुकार।।"

—संत तुलसीसाहब

श्री सद्गुरवे नमः

ब्रह्मनिर्वाण अथवा परमधाम की यात्रा

"सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसीदास एहि दसाहीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।"

–गो० तुलसीदास

भक्ति से देश-कालातीत होना होता है और उस भक्ति के साथ योग होगा, जिससे होगा कि–

"सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवइ निद्रा तजि जोगी।"

इसी योग में शर्करा और बालू का मेल और सफरी मछली का भाठे से सिरा जाना होता है। सफरी मछली छोटी, किन्तु बड़ी तेज होती है। वह भाठे से सिरे में जाती है। जो सुरत का सिमटाव करता है उसकी ऊर्ध्वगति होती है। चेतन की धार ऊपर से नीचे आती है। जो सुरत को समेटकर उस धार में लगाता है, वह उसके उद्गम स्थान पर चला जाता है। चीनी चेतन धार है और बालू जड-धार। जो ध्यान करता है, सुरत का सिमटाव करता है, वह जड़-धार से चेतन-धार को फुटा लेगा, जैसे बालू से चीनी को चींटी अलग कर लेती है। यह योग की क्रिया है। ऐसा योगी नींद छोड़कर सोता है और वह उस पद को पाता है, जहाँ शोक, मोह, भय, हर्ष, दिवस नहीं है। गीता में भी कहा है–

**"न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।"**

अर्थात् उस पद को सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। जिस परम पद को प्राप्त कर मनुष्य इस संसार में नहीं आते, वह मेरा परम धाम है। सन्त कबीर साहब ने कहा–

"कहौं उस देश की बतियाँ। जहाँ नहिं होत दिन रतियाँ।।"

**"बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरिस्थितम्।
स शब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।"**

अर्थात् बीजाक्षर परम विन्दु है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश) ब्रह्म में लय हो जाता है, तो निःशब्द परमपद है।

शब्दातीत अर्थात् अनाम पद में पहुँचकर परमपद पाता है।

❁ ध्यान इतना करे जैसे बुद्ध भगवान् ने किया था। उनका नाम तो राजकुमार सिद्धार्थ था। ध्यान के बल से ही उन्होंने अपने को "बुद्ध" घोषित किया। उन्होंने वह ज्ञान पाया जो संसार में नहीं था। ध्यान से वे इतने बढ़े कि जिससे और अधिक बढ़ा नहीं जा सकता।

ध्यान की विद्या से आरोहण होता है और वहाँ तक पहुँच जाता है, जहाँ हम परमात्मा का पद कहें वा निर्वाण कहें।

❁ जैसे पानी का सहारा लेकर सूखी जमीन पर जाता है, उसी तरह ज्योति का सहारा लेकर ज्योति को पार करता है, तब जानता है कि–**"प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं"** भी है। और तब शब्द का सहारा लेकर शब्द को भी पार करता है। फिर **"निःशब्दं परमं पदम्"** का ज्ञान भी होता है। उस परम पद तक पहुँचें।

❁ ईश्वर-धाम में चन्द्र, सूर्य, तारे, पाँच तत्त्व आदि कुछ नहीं हैं, ऐसा पाओगे। वहाँ काल भी नहीं, स्थान भी नहीं। जीव, जन्तु, पहाड़, सूर्य आदि जितने हैं, सभी देश-काल के सहारे हैं। लेकिन परमात्मा किसी के सहारे नहीं, अपने ही आप हैं। जो ईश्वर को पाता है, अपने को देश-काल का रहने वाला नहीं देखता। वह देखता है कि अब ईश्वर से द्वैतभाव नहीं है। ईश्वर दूसरा है और मैं दूसरा, ऐसा नहीं। यह अनुभव की बात है।

❁ जहाँ विन्दु को वह देखता है, वहाँ वह नाद को भी सुनता है। नीचे की तरफ से नहीं, ऊपर की तरफ से शब्द आता है।

नाद जिधर से आता है, उधर को खींचता है। जैसे चुम्बक में गुण होता है लोहे को अपनी ओर खींचने का। उसी तरह शब्द जहाँ से आता है, वह अपने उद्‌गम की ओर खींचता है। शब्द कहाँ से आया है ? जहाँ शब्द नहीं था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है–

"एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा।"

शब्द वहाँ खींच लेता है परमधाम में।

❁ स्वर्ग और बहिस्त में आना मामूली बात है, ब्रह्म निर्वाण कठिन है,

वह मिल जाये, फिर कुछ बाकी नहीं रहेगी। परिश्रम का फल पाकर; उस पद में जाकर लय हो जाओगे जहाँ से संसार में फिर आना नहीं पड़े। बारम्बार का आना बहुत दुःख की बात है। हमलोग जो अभी संसार में आये हैं, कभी रोग, कभी सोग, कभी अभाव, कभी खर्च के दुःख से दुखी होते हैं। सच्चाई से कमाकर खाओगे, ईश्वर-भजन करोगे तो कभी दुखी नहीं होओगे।

❀ किसी लोक–ब्रह्मलोक, विष्णुलोक या शिवलोक में जाना, असल में मुक्ति नहीं है। जिस ख्याल में उसको मुक्ति कहते हैं, उसको चार दर्जों में बाँटते हैं–सालोक्य–उपास्यदेव के लोक की प्राप्ति; सामीप्य–उपास्यदेव की समीपता प्राप्त करनी; सारूप्य–उपास्यदेव के शरीर-सदृश रूप प्राप्त करना और सायुज्य–उपास्यदेव के साथ युक्त होना अर्थात् उपास्यदेव के शरीर से भिन्न अपना दूसरा शरीर नहीं रखना। किन्तु पहले जो मैंने कहा है, वह ब्रह्म-निर्वाण मुक्ति है। ब्रह्म-निर्वाण उसको कहते हैं, जिसमें न तो आपकी देह और न इष्टदेव की देह रहे, आत्मा-से-आत्मा युक्त हो जाये। वह ब्रह्म–निर्वाण मुक्ति है। असली मोक्ष यही है। और लोक-लोकान्तरों से इस नरलोक में पुनः पुनः आना-जाना पड़ता है; किन्तु ब्रह्म-निर्वाण में जाना-आना नहीं होता।

❀ जहाँ कहीं कभी नहीं गये हो, राजाज्ञा हो कि वहाँ जाना पड़ेगा; किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी, उस स्थान पर जाना होगा, तब तुम्हारे मन में कैसा दुःख होगा! नहीं मालुम कि कहाँ ले जाया जायेगा, वह स्थान कैसा है, दुःख-सुख वहाँ के कैसे हैं। परन्तु जाना अवश्य होगा। बिना गये कल्याण नहीं होगा। जिस क्षण के लिए आज्ञा हो जायेगी, उस क्षण से कुछ आगा-पीछा नहीं होगा; कुछ मुरौवत (लिहाज) नहीं होगा।

"चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वाबीस।
सहजो तनिक सुहाग पै, कहा गुधावै सीस।।"

सन्तलोग कहते हैं कि इस आज्ञा में अदल-बदल नहीं हो सकता। किन्तु तुम यदि कोशिश करो, तो जिस स्थान में तुम जाओगे, उसको जीवन में देख लोगे। यदि पूरी कोशिश करो, तो उस स्थान में भी जा सकोगे, जहाँ सदा सुख-ही-सुख है, वहाँ से लौटना नहीं होता।

❀ निरापद तो कोई भी लोक नहीं। सन्तों ने कहा–निरापद स्थान भी

है, जहाँ जाकर कोई आपदा नहीं रहती। सन्तों की आज्ञा के अनुकूल यदि तुम बरतो (आचरण) यानी भक्ति करना आरम्भ करो और पूरी भक्ति नहीं कर सको, तो शरीर छूटने पर फिर तुम स्वर्ग-स्थान को पाओगे और वहाँ से लौट आकर फिर ईश्वर का भजन करोगे और उस निरापद पद को भी प्राप्त कर लोगे।

❁ **"प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।**
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।"

–श्री मद्भगवद्गीता

अर्थात् वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थापित करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

जो कोई इसके दर्शन का हिस्सक (आदत) लगा लेता है और मरने के समय उसी ओर मन लगाता है, तो उसी परम पुरुष को प्राप्त करता है। "उस" शब्द यहाँ पर अणु-से-अणु रूप 'तमस् से परे' के लिए कहा गया है। यह बिल्कुल निरापद तो नहीं है; किन्तु इसको जो प्राप्त करके शरीर छोड़ेगा, तब जो फिर इस संसार में आयेगा, तो इस संस्कार से प्रेरित होकर फिर भजन करेगा और निरापद स्थान को प्राप्त कर लेगा।

❁ निर्वाण विषयक उपदेश करते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा–"वह एक ऐसा आयतन है जहाँ न तो पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न आकाश है, न यह लोक है, न परलोक है, न चाँद है, न सूर्य है। वहाँ भिक्खुओ! न जाना होता है, न आना होता है, न ठहरना होता है, न फिर च्युत होना पड़ता है, न उत्पन्न होता है। वह आधार रहित है, आलम्बन रहित है, यहीं दुःख का अन्त है।"

तथा दीर्घनिकाय केवट्ट सुत्त में इस प्रकार है–

"अनिदर्शन (उत्पत्ति, स्थिति और नाश की जहाँ बात नहीं है) अनन्त और अनन्त प्रभायुक्त निर्वाण जहाँ है वहाँ जल, पृथ्वी, तेज और वायु स्थित नहीं रहते।"

❁ वशिष्ट और अन्य ऋषि-मुनि भी कुछ-न-कुछ माँगते हैं। शबरी जी कुछ नहीं माँगती हैं–

"तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे।"

यह दशा उसकी हो गई। उसके गुरु थे मातंग मुनि। मातंग मुनि बोले कि "मैं चलता हूँ! तू शबरी यहीं रहना।" उसने कहा कि "यहाँ रहकर क्या होगा?" मुनि ने कहा–भगवान् का अवतार होगा। वे यहाँ भी आयेंगे। उनका दर्शन होगा। शबरी 14 हजार वर्ष तक वहाँ रह गई अपने गुरु की आज्ञा पर। उनको दर्शन हुआ। वहाँ माँग-चाँग कुछ भी नहीं। योग-पावक में शरीर छोड़ दिया और वह वहाँ पहुँच गई, प्रभुपद में लीन हो गयी, जहाँ से फिर लौटकर नहीं आते।

❀ चेतन आत्मा का पद ऐसा है कि जिस पद के परे और कोई पद नहीं। उस पद पर से गिरना नहीं होता। उस पद पर पहुँचना दूसरे की निन्दा करने से नहीं होता; जैसा कि आजकल के लोग मिनिस्टरी में जाने वा मुखिया आदि बनने में करते हैं। वहाँ तो **'जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।'** इस पद को पाने के लिए पैसे खर्च करने की जरूरत नहीं होती; केवल भजन करने की जरूरत होती है। उस पद पर जाने के लिए किसी सवारी की जरूरत नहीं होती। चलने में थकान नहीं होती। उस पद पर चलने के लिए जो जाता है, तो चलते-चलते आनन्द पाता है; थकान नहीं होती।

❀ जबतक शरीर के बारम्बार प्राप्त होने और छूटने का कारण बना रहता है, यथार्थ में तबतक शरीर पूर्ण रूप से नहीं छूटता है। साधारणतः शरीर के तीन प्रकार हैं–स्थूल, सूक्ष्म और कारण। गुदा-चक्र से लेकर छठे (आज्ञा) चक्र को पारकर सहस्त्र हुं-दल-कमल में पहूँच ब्रह्म-ज्योति को प्राप्त करने पर स्थूल शरीर छूट जाता है। सहस्त्र-दल-कमल को पार कर अभ्यासी त्रिकुटी–ओऽम्ब्रह्म-पद तक पहुँचता है, तो उसका सूक्ष्म शरीर छूट जाता है। (बहुत लोग दोनों भौंओं के मध्य-स्थान को त्रिकुटी कहते हैं, पर यह वह त्रिकुटी नहीं है। शरीर के ऊपर किसी चिह्न को वा उसके सामने अन्तर की ओर इस त्रिकुटी का स्थान बतलाया नहीं जा सकता है। जो अपने अन्दर में के सूक्ष्म मण्डल में प्रवेश कर सहस्त्र दल कमल को पार कर सकेगा, वही इस त्रिकुटी को जानेगा। त्रिकुटी ब्रह्म-ज्योति का केन्द्र है। जब अभ्यासी त्रिकुटी को भी पार करके केवल ध्वन्यात्मक शब्द (शब्द-ब्रह्म) से

व्याप्त तीनों शब्द-मण्डलों (शून्य, महाशून्य और भँवर गुफा) को पार कर जाता है, तो उसका कारण शरीर भी छूट जाता है, अभ्यासी के माया-सम्बन्धी सब बन्धन योगाग्नि में भस्म हो जाते हैं और वह राम के परम पद में लीन हो जाता है, जहाँ से इस संसार में फिर नहीं लौटता है।

❁"तजि जोग पावक देह हरि पद, लीन भइ जहँ नहिं फिरे।।"

योगाग्नि में अपने शरीर को छोड़कर वह (शबरी) हरि के उस पद में लीन हो गई, जहाँ से (कोई) नहीं लौटता है।

योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य परम कल्याणकारी उन तत्त्वों को योगाग्नि कहते हैं, जिनके प्राप्त होने से अभ्यासी के शरीर आदि माया-रचित बन्धन भस्म हो जाते हैं। ये (तत्त्व) दो प्रकार के हैं—ब्रह्म-ज्योति अर्थात् ब्रह्म का ज्योति रूप और ब्रह्म-शब्द अर्थात् ब्रह्म का शब्द रूप।

शबरी ने इसी योग-पावक में अपना शरीर छोड़ा था। भक्ति-योग के साधन में वह पारंगत थी।

शरीर छोड़कर वह राम के परम पद में लीन हुई, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

शरभंग मुनि के विषय में भी योग-अग्नि-द्वारा शरीर जलाने की चर्चा है। **'यहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदय छाड़ि सब संगा।।**

सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरन्तर, सगुन रूप श्री राम।।

अस कहि जोग अगिन तनु जारा। राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा।।
तातें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति वर लयऊ।।"

महाभक्तिन शबरी की योग-अग्नि और शरभंग मुनि की योग-अग्नि, एक ही नहीं है। शबरीजी ने चिता रचकर तब योग-अग्नि से शरीर को जलाया, सो नहीं; परन्तु शरभंग मुनि ने चिता रचकर अपने शरीर को जलाया। शबरी जी की भक्ति की पूर्णता तक शरभंग जी की भक्ति पहुँची थी, सो नहीं कहा जा सकता है। शबरी जी ने श्रीराम से वरदान की याचना नहीं की और वह उस हरि-पद में लीन हुई, जहाँ से कोई लौटता नहीं है। शबरी जी से तो श्रीराम जी ने स्पष्ट कह ही दिया कि **'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे'**, जो शरभंग जी से उन्होंने नहीं कहा।

❀ चौपाई **(गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ह जो जाँचत जोगी।।)** में वर्णन किया गया है कि गिद्ध राज जटायु को भगवान् ने वह गति दी, जो योगी जन माँगते हैं। जटायु को वही गति मिली है, जिसका वर्णन चौपाई –

(सीता हरन तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहिँ दसानन आई।।
गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।)

में किया गया है। जटायु गिद्ध शरीर त्याग हरि-रूप (श्यामला चतुर्भुजी रूप) को प्राप्त हुआ और उस हरि-धाम में गया, जहाँ राजा दशरथ गये थे और जहाँ सपरिवार रावण पहुँचकर राजा दशरथ से सीता-हरण का समाचार कहेगा। भगवान् ने जटायु से कह दिया कि तुम सीता-हरण का समाचार हमारे पिता से नहीं कहना। जटायु को प्राप्त 'योगी-वांछित गति' और शबरी को प्राप्त 'योगियों की दुर्लभ गति' की सुलभता में बड़ा अन्तर है। जटायु को 'परम मोक्ष' न हो सका। पर शबरी को 'परम मोक्ष' प्राप्त हो गया। भगवान् के दसों अवतार के दर्शन उन अवतारों के समकालीन बहुतों को हुए, पर सबों को 'योगी वांछित गति' वा वह 'गति जो योगियों को दुर्लभ है' प्राप्त न हो सकी। जिन लोगों ने साधन-भजन के द्वारा अपने को जिस पद को प्राप्त होने योग्य बना लिया था, उन्हें वही पद भगवान् ने दे दिया था। इसलिए यह उचित नहीं है कि कोई भ्रम और आलस्यवश योगाभ्यास आदि साधन और संयम न करे और केवल मोटी उपासना में ही अपना जीवन बिता दे।

❀ शबरी को नवों प्रकार की भक्ति अटल रूप से थी और तभी उसे योगियों की 'दुर्लभ गति' सुलभ हो गई थी। उसकी भक्ति के सब साधन समाप्त हो चुके थे, इसलिए उसने सम्पूर्ण वरदानों के सहित अविरल भक्ति भी नहीं माँगी। पर जटायु अविरल भक्ति का वरदान माँगकर हरिधाम गया। इससे विदित होता है कि जटायु भक्ति के साधन में पारंगत न था, इसी कारण परम मोक्ष न पा सका। इस मत को काटने के लिए यदि यह कहा जाय–"**ताते हरिपद लीन न भयऊ। प्रथमहि भेद भक्ति वर**

लयऊ।।'' तो इसका उत्तर यह है कि गो० तुलसीदासजी भेद-पद में परम मोक्ष नहीं मानते हैं। दूसरी बात यह है कि नवधा भक्ति में की सातवीं भक्ति तो स्वतन्त्र रूप से समता प्राप्त करने के लिए ही है। यदि भेद-पद—असम-पद—द्वैत पद ही परम मोक्ष-पद होता, तो इस सातवीं भक्ति के साधन से समता प्राप्त करके क्या करना था ? यथार्थ में यह अत्युक्ति (अलंकार) रोचकता के लिए है।

❀**''मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।''**

मेरे दर्शन का अतिशय अनुपम फल है कि जीव अपने आत्म-स्वरूप को पाता है। शबरी को अपना सहज स्वरूप वा आत्म-स्वरूप अवश्य ही प्राप्त हुआ, पर जटायु को नहीं। चतुर्भुजी, दोभुजी, अनन्तभुजी श्यामल वा गौर आदि कोई रूप जीव का निज सहज स्वरूप नहीं है। निज सहज स्वरूप सगुण नहीं, निर्गुण है। वह मायिक नहीं, अमायिक है। जटायु भी जब भक्ति के उस अंग तक का साधन कर लेगा, जहाँ तक साधन पूर्ण करके जीव भगवान् के दर्शन का फल, निज सहज स्वरूप की प्राप्ति को पा लेता है, तो उसको भी निज सहज स्वरूप प्राप्त हो जायेगा। भगवान् का वाक्य कदापि मिथ्या नहीं होगा।

श्री सद्‌गुरवे नमः

मुक्ति अथवा जीवन-मुक्त-दशा की प्राप्ति

❀ मुक्ति का अर्थ है–छुटकारा। कोई बन्धन में रहता है, तब उससे छूटना चाहता है। तो हमलोग बन्धन में बँधे हैं। जिस प्रकार कोई कारागार में हो, उसी प्रकार हमलोग शरीर और संसार के कारागार में बन्दी हैं। बन्दी नहीं समझो तो कैदी जरूर समझोगे। कारागार नहीं समझो तो जेल और कैदखाना जरूर समझोगे।

❀ शरीर और संसार की फाँस में हमलोग फँसे हैं। इससे छूटने का नाम है–मुक्ति। यदि कहो कि मरने पर शरीर छूट जायेगा, मुक्ति होगी, तो सो नहीं। स्थूल-शरीर छूटेगा, लेकिन सूक्ष्म-शरीर होगा। फिर स्थूल होकर दुःख होगा। यदि दान-पुण्य कर स्वर्ग जाओ तो भी फिर यहाँ आकर दुःख भोगना पड़ेगा। युधिष्ठिर ने कितने दान, पुण्य, तीर्थ किये। उसके बदले में स्वर्ग आदि भोगे, फिर उनको नरक भी देखना पड़ा, थोड़ा-सा झूठ बोलने पर। चित्त का स्वभाव है–मैं सुखी-दुःखी, भोग करने वाला हूँ।

यह स्वभाव चित्त से कोई हटा नहीं सकता। जैसे देह से मैल को कोई हटा नहीं सकता। चाहे उबटन लगाकर स्नान करो। इस प्रकार चित्त में कर्त्ता-भोक्ता, सुखी-दुःखी होते रहना दुःख का कारण है।

अभी जो आपलोगों ने मुक्तिकोपनिषद् का पाठ सुना; उसमें भगवान् श्रीराम हनुमान जी को उपदेश देते हैं–मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, करने वाला हूँ तथा भोगने वाला हूँ–चित्त का धर्म है। यही बन्धन का कारण है। चित्त के धर्म पर जो काबू कर लेता है, वह जीवन-मुक्त है। शरीर रहते मुक्ति मिल गई, शरीर में है, किन्तु शरीर-संसार का बन्धन उस पर असर नहीं करता। ऐसे पुरुष का जब शरीर छूटता है, तो केवल स्थूल नहीं, जड़ के और तीनों शरीर छूट जाते हैं।

❀ घट के अन्दर जो आकाश है, घट-आवरण के टूटने से मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार जीवन-मुक्त के शरीर छूटने से वह घटाकाश की तरह मुक्त हो जाता है। तब वह विदेह-मुक्त हो जाता है। राजा जनक जी जीवन-मुक्त थे। शरीर में रहते हुए भी वे विदेह कहलाते थे। जीवन-मुक्त

पुरुष को अख्तियार है कि वह शरीर और संसार में रहें या नहीं। किन्तु नियम पालन के लिए अपने शरीर को रखे रहते हैं। जैसे हनुमान जी को ताकत थी कि मेघनाद की फाँस को काट दे; किन्तु ब्रह्म-फाँस की मर्यादा रखने के लिए अपने बँधकर रावण के दरबार में गये। उसी प्रकार जीवन-मुक्त परमात्मा के विधान का पालन करते हैं और संसार का उपकार करते हैं। तो यह जीवन-मुक्ति शरीर में रहते हुए ही होती है, मरने पर नहीं। गो0 तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है–

"लहहिं चारि फल अछ्त तनु, साधु समाज प्रयाग।"

❁ विद्यालय में जो विद्यार्थी पढ़ते हैं, पढ़ते-पढ़ते कितने की आधी उम्र खत्म हो जाती है, तब कहीं योग्य समझे जाते हैं और इस जीवन-मुक्त अवस्था के लिए कहना कि जल्दी क्यों नहीं होती है। जिस तरह विद्यार्थी धीरे-धीरे पढ़ते-पढ़ते योग्य होते हैं, उसी प्रकार यह अवस्था प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके अनुभव-ज्ञान में जीवन-मुक्त की दशा प्राप्त करेंगे।

❁ हमलोग बन्धन में पड़े हैं। इनसे छूटने के लिए वेद, उपनिषद् और संतवाणियों में उपदेश वर्णन है। चेतन-आत्मा को शरीर का बन्धन, इन्द्रियों का बन्धन है ही। फिर संसार का बन्धन, मन की अनेक इच्छाओं का बन्धन संसार के पदार्थ और सरोकारी सभी बन्धन हैं। इनसे छूटना मोक्ष है। इस मोक्ष को लाभ करने का उपदेश संतों ने दिया है। वे कहते हैं–"परमात्मा पर कोई बन्धन नहीं है।" जो भक्ति की चरमसीमा को खतम कर चुके हैं, वे परमात्मा की तरह निरबन्ध हैं। उस परमात्मा को प्राप्तकर सभी जन मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। परमात्मा की ओर अपनी वृत्ति को लगाना, बन्धनों से छूटने का यत्न है।

ईश्वर माया से परे है। माया के अन्दर सात्त्विक, राजस और तामस तीनों तरह के कर्म होते हैं। ये ही सत्, रज, तम तमाम संसार में हैं। सात्त्विक-कर्म शुभ-कर्म वा पुण्य-कर्म करने को कहते हैं। कुछ भले-कर्म और कुछ बुरे-कर्म मिलाकर कर्म करते हैं, यह राजस है। आलस में पड़ा रहना, बिना सोचे समझे कर्म करना तामस-कर्म है। इन तीनों प्रकार के कर्मों के फल का वेद में वर्णन है–

"उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्वाधमं वि मध्यंम श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम्।।"

अर्थात्–हे परमेश्वर! तू उत्तम-कोटि के सात्त्विक-बन्धन को उत्तम-भोगों द्वारा शिथिल करता है और निकृष्ट तामस-बन्धन को नीचे की जीव योनियों में भेजकर शिथिल करता है। उन सब भोगों के अनन्तर हे शरण में लेने हारे एवं सूर्य के समान प्रकाशक! हम तेरे दिखाये कर्त्तव्य-कर्म में चलकर अखण्ड-सुख मोक्ष को प्राप्त करने के लिए निष्पाप-स्वच्छ हो जाते हैं।

❁ सभी नदियों का जल जिस तरह समुद्र में मिल जाता है, अलग नहीं होता है। उसी तरह साधक साधना करके परमात्मा में मिल जाता है। कभी वह आवागमन के चक्र में पड़कर इस संसार में नहीं आता।

❁ नररूप, देवरूप, विराटरूप, नरसिंहरूप के दर्शन में माया के बहुत काम बनते हैं; किन्तु सब काम नहीं बनते। अर्जुन भगवान् के साथ में रहते थे। भगवान् के चले जाने पर उनके शरीर में बल ही नहीं रहा। युधिष्ठिर को भगवान् का दर्शन कई बार हुआ था; अपने भी वे बड़े धर्मात्मा थे, किन्तु द्रोणाचार्य को मरवाने के लिए एक झूठ बोले थे, जिससे उनको कुछ काल के लिए नरक देखना पड़ा। तो इस प्रकार के दर्शनों से आप मुक्ति नहीं पा सकते। मुक्ति तो आत्म-स्वरूप के दर्शन से ही होती है। इसलिए सभी संतों ने परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करने के लिए उपदेश दिया।

❁ इस दुनिया से निकल जाने के वास्ते, परलोक से भी निकल जाने के वास्ते तुरीयावस्था में चलना होता है। इसके भी परे तुरीयातीतावस्था में चलना होता है। तभी जीवन-मुक्ति की दशा होती है। जिनको जीवन-मुक्ति की दशा होती है, वे अपने से अपने को जानते हैं, ईश्वर को भी जान लेते हैं, उनको कुछ जानने को बाकी नहीं रह जाता है।

❁ अपने शरीर की शुद्धि बाहर में शौचादि से और अन्तःकरण की शुद्धि पवित्र-कर्म करने से होती है। तुम्हारा शरीर शिवालय है, विष्णु-मन्दिर है। इसके लिए पैसे खर्च करने की जरूरत नहीं। अपना अन्तःकरण शुद्ध करना होता है। बाहर में लोग शिवालय, देवालय बनाता है। इससे संसार में भले कुछ प्रतिष्ठा हो, किन्तु उससे उनको मोक्ष नहीं मिलता। यदि अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता तो उससे मोक्ष हो जाता।

❀ जैसे शिवालय को पवित्रता से रखते हैं, उसी तरह अपने शरीर को भी पवित्र रखो और जिस किसी ने संसार में बड़ा-बड़ा काम किया है, उसका नाम आज है; किन्तु उसको मोक्ष नहीं मिला। यदि कोई अपने अन्तर की सफाई रखे और ध्यान करे, तो उसको मोक्ष मिलता है।

सन्तों ने लोगों को मोक्ष-प्राप्ति का ऐसा सरल उपाय बताया है कि लोग संसार में हैरान न हों। किसी को बहुत पैसा है, दान देता है, कूआँ बनाता है, पोखर बनाता है, मन्दिर बनाता है, लेकिन जिसके पास पैसे नहीं हैं, वह नहीं कर सकता है; लेकिन दान देने के सम्बन्ध में ऐसा जानना चाहिए कि यदि कोई लखपति है और कोई एकदम गरीब है, यदि अपनी-अपनी शक्ति के अनुकूल दोनों दान देते हैं यानि लखपति बहुत देता है और एक गरीब अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा ही देता है; तो दोनों बराबर हैं। किन्तु यह तो बाहर की बात है। असली बात है अपने शरीर को, अन्तःकरण को पवित्र रखो। ध्यान करो तो मोक्ष मिलेगा। सारे दुःखों से छूट जाओगे।

❀ वाह्य-उपासना से ही भक्ति का काम समाप्त हो जायेगा, ऐसा विश्वास मत करो। भक्ति के स्थूल-विषय में रह जाना, उसके आगे सूक्ष्म को नहीं पकड़ने वाले का ज्ञान संकुचित है, अभी विकसित नहीं हुआ है, ऐसा कहा जायेगा। स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार की भक्तियों को जानो, सगुण-निर्गुण के परे जाकर ईश्वर का साक्षात् करो। तब सभी बन्धन छूटेंगे और ईश्वर-दर्शन होगा।

❀ किसी बन्धन से बन्धा हो, रोग-ग्रस्त हो, कारागार में बन्द हो; उससे छूट जाना मुक्ति है। वैसे ही एक-एक जीव एक-एक शरीर में बन्धे हैं। बाहर जा नहीं सकते। शरीर को ही पिण्ड कहते हैं। बाहर संसार को ब्रह्माण्ड कहते हैं। पिण्ड में रहो तो ब्रह्माण्ड में रहोगे। ब्रह्माण्ड में रहोगे तो पिण्ड में रहोगे। पिण्ड में रहकर कोई संसार से छूट नहीं सकता।

श्रीराम ने कहा था कि एक तो ऐसा परलोक है कि जिससे लौट-लौट कर आओ। दूसरा परलोक है कि जहाँ से लौटना नहीं होता। जो संसार में लौट-लौटकर आते हैं, उनको संसार में रहने का कष्ट होता है और जो लौटकर नहीं आते, उनको शरीर-संसार का कष्ट नहीं होता।

❀ सब लोगों को अपनी पूर्ण स्वतंत्रता विदित नहीं होती है। यह जो

अपना राज्य कहलाता है, इस राज्य में रहकर भी या कोई सम्राट हो उनको भी, कोई जो राष्ट्रपति हैं उनको भी बड़ा-से-बड़ा इन्द्र को भी स्वतंत्रता नहीं है। संसार, शरीर और इन्द्रियों का बन्धन उनके ऊपर है। संसार और शरीर में रहते हुए उनके सम्बन्धों और बन्धनों से जीव जकड़ा हुआ है। इन बन्धनों से जब तक कोई छूट नहीं जाता, कोई स्वतंत्र है, कहा नहीं जा सकता। स्वतंत्रता में जो सुख है, वह परतंत्रता में नहीं। घर है, सम्पत्ति है फिर भी और चाहिए। इसके अतिरिक्त दैहिक, दैविक और भौतिक-कष्ट होत हैं, फिर मनोविकार सताते हैं। सुख पाने के लिए दौड़ते हैं फिर भी सुख दूर ही भागता है। संतलोग कहते हैं–इनको छोड़ दो, संन्यासी बन जाओ, फिर भी मनोविकार तुम्हारे साथ है। शरीर का बन्धन, संसार का बंधन तुम्हारे साथ है। इससे छुड़ावे कौन ? गो0 तुलसीदास जी ने कहा है–

"संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, स्रुति पुरान सद्ग्रन्थ।।"

अर्थात् संतों का संग मोक्ष का और कामी-पुरुषों का संग संसार का मार्ग है। सन्त, कवि, पण्डित, वेद, पुराण और सद्ग्रन्थ ऐसा कहते हैं। इसीलिए संतों के ज्ञान का प्रचार है। संतों के ज्ञान को जानने और उसके अनुकूल चलने का यत्न करना चाहिए, तब मालूम होगा कि हम बन्धन से छूटते जा रहे हैं। संत महात्मागण छूट गये, हम भी छूट जायेंगे।

❀ मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है। आप कहेंगे कि गृद्ध शरीर छोड़कर भगवान् के रूप को धरकर बैकुण्ठ चला गया, उसकी मुक्ति हो गयी, तो जानना चाहिए कि यह असली-मुक्ति नहीं है। मुक्ति चार प्रकार की होती है–सालोक्य-मुक्ति, सामीप्य-मुक्ति, सारूप्य-मुक्ति और सायुज्य-मुक्ति। ये चारो मुक्तियाँ असली मुक्तियाँ नहीं हैं। असली मुक्ति वह है, जिसमें किसी प्रकार की देह नहीं रहे। इसके लिए कोशिश कीजिए। एक शरीर में नहीं होगा, तो दूसरे-तीसरे किसी-न-किसी शरीर में अवश्य होगा। भगवान् श्रीकृष्ण की बात याद कीजिये, जो उन्होंने गीता में कही है–योग के आरम्भ का नाश नहीं होता, उसका उलटा परिणाम नहीं होता और वह महाभय से बचाता है।

❀ जीव जो दुःख भोगता है, उससे छूटने की इच्छा तो रहती है,

लेकिन उससे छूटने के उपाय का पता उसे नहीं मिलता। सत्संग तथा सद्ग्रंथों से इसका पता चलता है। ऐसा यत्न चाहिये कि जिससे जीवन का अन्त हो जाये, फिर संसार में नहीं आया जाये। जिस परलोक में जाकर लौटना पड़े, वह नहीं चाहिये। जिस परलोक में जाने से लौटना नहीं पड़े, वह परलोक बहुत ही विचित्र है। वहाँ इन्द्रिय-युक्त शरीर नहीं है। वह ऐसा परम तत्त्व है, जो अपने अन्दर इस संसार को विन्दु-मात्र बनाकर रखता है। वह परमतत्त्व है—परमात्मा।

❀ भगवान् श्री राम ने समझाया कि यह शरीर विषय-भोग के लिए नहीं है। स्वर्ग का सुख भी थोड़ा ही है और अन्त में दुःख है। यह मनुष्य-शरीर नाव है। ईश्वर की कृपा अनुकूल-वायु है। गुरु कर्णधार हैं। मनुष्य-शरीर है ही, ईश्वर की कृपा भी प्राप्त है। बाकी सद्गुरु बच जाते हैं। खोजने पर सदगुरु भी मिल जाते हैं। सद्गुरु मिलने पर भी यदि उनके अनुकूल नहीं चलिये, तो नाव पार नहीं लग सकती। इसलिए संसार से पार होने के लिए ये तीन चीजें हैं। ये तीनों चीज भव-सागर पार करने के लिए सबसे सरल हैं

❀ जिस प्रकार भोजन करने वाले को स्वयं मालूम होता है कि मेरा पेट भर गया या रोग-ग्रसित होने वाले को रोग छूटने से स्वयं मालूम होता है कि मैं रोग-मुक्त हो गया और कैदखाने से छूट जाने पर कैदी को मालूम होता है कि मैं कारागार से मुक्त हो गया, उसी प्रकार जीवन-काल में ही महा भाग्यवान् भजनीक महापुरुष को भजनान्त में निजी प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है कि मायिक आवरणों से छूट गया हूँ—जीवनमुक्त हूँ।

❀ यह स्थूल शरीर क्या है ? हड्डियों का ढ़ाँचा (नगर) बना है जिसपर मांस और लहू का लेप चढ़ा है, जिसमें जरा, मृत्यू, अभिमान, और द्वेष छिपे हैं। इसमें क्या खुशी है ? भगवान् बुद्ध का यह वचन पूर्णरूपेण सत्य है। शरीरों के इस कारागार से छूटने का यत्न सीखो और छूटो। सन्तों का उपदेश इसी कारागार से छूटने का है। और इसी छूटने का नाम मोक्ष है। मुक्ति में नित्यानन्द की प्राप्ति होती है। इसी आनंद की प्राप्ति के लिए मुक्ति का प्रयोजन है।

❀ यह शरीर देखने में एक मालूम होता है। लेकिन एक नहीं है। जैसे

सींक के ऊपर अनेक मूँज होते हैं उसी तरह चेतन आत्मा के ऊपर स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण–ये चार जड़ शरीर हैं। चेतन आत्मा पर ये सब खोल हैं। इन सब खोलों का संग छूटे तब ईश्वर-दर्शन होता है। पहले स्थूल शरीर से छूटे फिर सूक्ष्म, फिर कारण और महाकारण से भी। जैसे एक मकान में कितनी भी कोठरी हों एक-एक कोठरी पार करते-करत सभी कोठरियों को पारकर जाते हैं उसी तरह सब शरीरों को छोड़कर चेतन आत्मा निकल जाती है। साधारण मृत्यु में एक शरीर छूटता है और सब शरीर रह जाते हैं।

❀ जब किसी को शरीर और संसार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है, तो वह स्वयं जानता है कि मैं मुक्त हूँ। जैसे कोई बीमार हो और वह रोग-मुक्त हो जाये, तो वह स्वयं जानता है कि मैं निरोग हूँ। वह मुक्त-स्वरूप परमात्मा को पाता है। वह सारे बन्धनों से छूट जाता है।

❀ ब्रह्मा जी ने शिवजी से पूछा–कोई योग और कोई ज्ञान मोक्ष-प्राप्ति के लिए बतलाते हैं, आपका क्या मत है ? इस पर शिवजी ने उत्तर दिया–ज्ञानहीन योग और योगहीन ज्ञान मोक्षकर्म में समर्थ नहीं होता, इसीलिए मुमुक्षु को ज्ञान और योग; दोनों का दृढ़ता के साथ अभ्यास करना चाहिए।

❀ मोक्ष का अर्थ है–बन्धन से छूट जाना। हम सब लोग बंधन में बँधे हुए कैद हैं। शरीर में कैद हैं ओर जड़-चेतन की गिरह से बँधे हुए हैं। इसलिए सब लोग दुःख उठाते हैं। यह दुःख क्यों होता है ? शरीर रहने पर ही दुःख होते रहते हैं, काम-क्रोध उत्पन्न होते रहते हैं। इसका कारण शरीर है। शरीर और संसार से छूटने से ही दुःख छूटेगा।

❀ योगशिखोपनिषद् में कहा गया है कि "मरते समय जैसी भावना रहेगी, उसी के अनुकूल शरीर होगा।" यदि मरने के समय पाशविक भावना हो तो बड़ा बुरा होगा। इसलिए सचेत रहो कि मरने के समय यह बुरी भावनान आने पावे। जिस आदमी को जाग्रत् अवस्था के काल में जिस ओर विशेष ख्याल लगा रहता है, स्वप्न में भी वही वह देखता है। उसी प्रकार जीवन-काल में जैसी भावना बारम्बार होती रहेगी, मरने के समय

भी वैसी ही भावना होगी। इसलिए जीवन-काल में अच्छी भावना रखो जिससे कि मरने के समय भी अच्छी भावना हो, श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है–

''कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।
प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।''

– श्री मद्भगवद् गीता

अर्थात्–जो मनुष्य भृकुटी के बीच में अच्छी तरह प्राण को स्थापित करके सर्वज्ञ, पुरातन, नियन्ता, सबके पालनहार, अचिन्त्य, सूर्य के समान तेजस्वी, अन्धकार से पर स्वरूप का ठीक स्मरण करता है, वह दिव्य परम पुरुष को पाता है।

❀ यह शरीर वाला जीवन इहलोक और परलोक में कबतक होता रहेगा, ठिकाना नहीं। इस लोक-परलोक से छूटने के लिए जबतक यत्न नहीं किया जाये, तबतक दुःख उठाते रहना होगा। स्वर्ग में भी दुःख नहीं छोड़ता, ऊँचे-ऊँचे स्वर्गलोक में भी समय बाँधा रहता है। जबतक कर्मफल है, तबतक वहाँ का सुख भोगते हैं। फिर वह समय बीतने पर वहाँ से लौटाया जाता है। इस आवागमन का चक्र बहुत लम्बा है। इससे तबतक नहीं छूटते, जबतक शरीर में रहने का जीवन समाप्त न किया जाये। इसलिए सबको चाहिए कि अमर जीवन के लिए कोशिश करें। यह जीवन शरीर-रहित जीवन है। शरीर-रहित जीवन परमात्मा में रहना है। वहाँ से कभी हटना नहीं है। कर्मफलों को पार करके ही कोई वहाँ पहुँच सकता है। इसका यत्न मनुष्य-शरीर में करना चाहिए।

❀ जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन, नित्य और गंध-रहित है, जो अनादि, अनन्त महतत्त्व से भी पर और ध्रुव (निश्चल) है, उस आत्मतत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है।

❀ किसी भी लोक में रहिये, किसी भी शरीर में रहिये, स्वर्गादि लोक में रहिये, ब्रह्मा के लोक में रहिये, सभी जगह कष्ट-ही-कष्ट है। शिवलोक में शिव को भी कष्ट होता है। सभी लोकों में झगड़ा-तकरार, शापा-शापी

होते हैं। गोलोक में भी ऐसा ही होता है। गर्गसंहिता पढ़कर देखिये। कितनाहूँ सुन्दर-से-सुन्दर देहवाला हो; कितनाहूँ ऊँचा लोक हो, सबमें दुःख है। इसलिए अपने उद्धार के लिए सब शरीरों को छोड़ना होगा। जैसे कोई घर से बाहर जाना चाहे तो पहले घर-ही-घर चलना पड़ता है। उसी तरह शरीरों से निकलने के लिए शरीर-ही-शरीर निकलना होगा और सब शरीरों से निकलने पर परमात्मा की प्राप्ति होती है।

❁ परमात्मा से सटकर रहा तो संसार में भी कुशल है और परलोक में भी। इसी से मोक्ष-मुक्ति-निर्वाण मिलता है।

"जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।।
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।"

—श्रीरामचरितमानस

अर्थात् जैसे बिना धरती के जल ठहर नहीं सकता, चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे! गरुड़ जी! सुनिये, उसी प्रकार हरि-भक्ति को छोड़कर मोक्ष-सुख दूसरी जगह रह नहीं सकता।

जहाँ भक्ति है, वहीं मोक्ष है। कोई कहे कि संसार से छूटने का और कोई उपाय है, तो वह हो नहीं सकता। ईश्वर की भक्ति करो, कल्याण होगा। संसार में जो कल्याण है, स्वर्ग में जो कल्याण मिलता है, वह अकल्याण में बदल जाता है।

❁ मुक्ति कहते हैं—दुःखों से छूट जाने को। और जबतक शरीर में रहना नहीं जाये तबतक सब दुःखों से छूटा नहीं जाता। यह जो हाड़-चाम-मांस का शरीर है, यही एक शरीर नहीं है। इसके अंदर सूक्ष्म-शरीर है। इसको कोई आँख से नहीं देख सकता है। जैसे स्थूल-शरीर को, मोटे शरीर को मोटी नजर से देखते हैं, वैसे ही सूक्ष्म-शरीर, सूक्ष्म-दृष्टि से देखने योग्य है। उसके तीसरा शरीर है, उसको कारण शरीर कहते हैं। उसके अंदर एक और शरीर है, जिसको महाकारण शरीर कहते हैं। इन चारों जड़-शरीर से छूटने को मुक्ति कहते हैं। यह सोची-विचारी हुई बात नहीं है। सोचने-विचारने के बाद अनुभव-ज्ञान से जाना गया है।

❁ सन्तों की वाणी में सब मनुष्यों को सदा से यही उपदेश है कि जो मनुष्य कष्टों में पड़े हैं, वे मुमुक्षु बनें। मुमुक्षु का अर्थ है–मुक्ति की इच्छा रखनेवाला। मुक्ति की केवल इच्छा ही नहीं, बल्कि संसार में संयम से भी बरतें। जबतक संसार में संयम से नहीं रहें, संसार के भोग-विलास में फँसे रहते हैं। उसको लालच नहीं छोड़ता है, वे केवल कहते हैं कि मैं मुमुक्षु हूँ। यह उनका कथन मात्र है। सन्तों ने ऐसे मुमुक्षु के लिए कहा है कि जो संसार के भोगों, लालचों को छोड़ना चाहें, उनको ज्ञान और योग दोनों का अभ्यास करना चाहिये। ज्ञान का अर्थ 'जानना' है और योग का अर्थ 'मिलाप' है। चित्त की वृत्तियाँ बिखरी हैं, वे मिलकर एक हो जायें-यही योग है। चेतन-आत्मा ईश्वर से मिलेगी, तभी उसकी मुक्ति होगी।

❁ **"देखेउँ सब करि करम गोसाई।**
सुखी न भयउँ अबहिं की नाई।।"

योग से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष होता है। भक्ति का भी अन्तिम फल मोक्ष ही है। शबरी (जिसको स्वयं भगवान् ने भक्ति में सब प्रकार से पूर्ण कहा है) हरिपद में लीन हुई, जहाँ से कोई भी संसार में नहीं लोटता है। इसी, वर्णित लीनता को मोक्ष कहते हैं। इससे भिन्न दूसरे प्रकार का मोक्ष काल्पनिक वा कथनमात्र है, सत्य नहीं है। और

"अस बिचारी हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादार भगति लोभने।।"

– श्री रामचारित मानस

इस चोपाई को पढ़कर मोक्ष-रस से और कोई विशेष हितकर रस है, ऐसा समझना निरा बालकपन है। अब यदि कागभुशुण्डि अपने पूर्व जन्मों में सुखी हुए थे, तो इसका सत्य-सत्य कारण यही है कि उन जन्मों में वे योगाभ्यास में उन्नति नहीं कर सके थे, जिससे योग का फल ज्ञान और ज्ञान का फल मोक्ष उनको प्राप्त होता और फलतः वे सुखी हो जाते।

❁ एक भिक्षु ने भगवान् बुद्ध से पूछा–"भन्ते! यह संसार कब से हुआ? दुःख कब से हुआ ?"

भगवान् बुद्ध ने कहा–"यदि तुमाको तीर लग जाये और उस समय तुम सोचो कि यह तीर किसने बनाया ? कब बनाया ? क्यों बनाया ? क्या

तब तुम सुखी रह सकते हो ? उस समय उचित यह है कि प्रथम तुम तीर को शरीर से निकाल कर घाव की महरम-पट्टी करो। घाव के छूट जाने पर तुम भले ही सोच सकते हो कि यह तीर किसने बनाया ? कब बनाया और क्यों बनाया ? उसी भाँति काल का तीर तुमको लग चुका है। इस समय इससे छुटकारा पाने के प्रयत्न में लग जाओ। इससे मुक्त हो जाने पर तब तुम संसार और दुःख की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार कर लेना।"

ऋग्वेद-संहिता

अवर्त्या शुन आन्त्राणिपेचे न देवेषु विविदे मर्डिता-रम्।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वाजभार।।

❁ भा0–अध्यात्मदर्शी कहता है, जन्म-मरण के व्यापार से रहित होकर मैं सुखस्वरूप होकर अथवा पुनः इस संसार में न होने के निमित्त से ही सुखकर परमेश्वर के ज्ञान करानेवाले गुह्य साधनों को परिपक्व करूँ। पृथ्वी सूर्यादि एवं विषय के अभिलाषी इन्द्रियों के बीच में मैं किसी को भी परम सुख देनेवाले नहीं पाता हूँ। अथवा मैंने अज्ञानी पुरुष लाचार, अगतिक होकर कुत्ते के समान लोभी आत्मा के भीतरी आँतों के तुल्य इन ज्ञानसाधन इन्द्रियों को ही परिपक्व किया, उनको तपःसाधना से वश किया और उन विषयाभिलाषी प्राणों में से एक को भी सुखप्रद नहीं पाया, अनन्तर महती परमेश्वरी शक्ति के तुल्य नहीं देखा। इतना ज्ञान कर लेने के अनन्तर ज्ञानस्वरूप प्रभु परमेश्वर मुझे परम मधुर ब्रह्मज्ञान प्रदान करता है।।





श्री सद्गुरवे नमः



अद्वैत और सिद्धावस्था



❁ ईश्वर और अपने में से दुई का भाव मिटाओ। यह केवल विचार द्वारा नहीं होता है, प्रत्यक्षता से होता है। **"जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।"** समष्टि रूप में परमात्मा और व्यष्टि रूप में जीवात्मा है। दोनों मिले ही रहते, किन्तु जीव को यह ज्ञान नहीं होता। जब वह ध्यान करता है तब उसकी प्रत्यक्षता होती है और द्वैतभाव मिटता है।

❁ श्रीरामकृष्ण परमहंस भी पीछे चलकर ऐसे ही हो गये थे कि कोई जो कुछ भी काली माई को चढ़ाते थे, वे अपने मुँह में ले लेते थे और खा जाते थे–'कालिकाय्ये नमः' कहकर। केवल कहने से नहीं होगा। इसकी योग्यता होनी चाहिये। श्री रामकृष्ण परमहंस जी को इसकी योग्यता हो गयी थी।

"गिरह उजाड़ एक सम लेखौं भाव मिटावौं दूजा।"

इस कसौटी पर कसकर देख लीजिये कि उनमें द्वैत भाव है कि नहीं।

❁ अद्वैतवाद पर भी ऐसा प्रश्न है कि जिसका उत्तर चुप्पी है। श्रीराम और वशिष्ठ जी का संवाद 'योग-वाशिष्ठ' में पढ़कर देखिये। वहाँ श्रीराम प्रश्न करते हैं तो वशिष्ठ जी कुछ उत्तर नहीं देते हैं, चुप रहते हैं। श्रीराम पूछते हैं कि गुरुदेव! आप रूष्ट तो नहीं हो गये हैं ? वशिष्ठ जी कहते हैं इसका उत्तर ही चुप है। यथार्थतः व्यवहार में अद्वैत कभी सिद्ध नहीं हो सकता, सिद्धान्त में अद्वैत रहता है। शरीर-ज्ञान में अद्वैत नहीं होता, आत्मज्ञान में अद्वैत होता है। सिद्धान्त सुनाने के लिए अद्वैत होता है।

❁ साधक मन की एकाग्रता की दशा में यानी चौथी अवस्था में पहुँच कर सारे ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर में देखता है। वह नींद में नहीं जाता है। वह संसार से सोया हुआ है, इसीलिए कि वह चौथी अवस्था में है। चौथी अवस्था से आगे बढ़ने पर यानी तुरीयातीतावस्था में द्वैत भाव बिल्कुल मिट जाता है। उसको यह भाव नहीं रहता है कि आत्मा अनेक है।

"अतिसय द्वैत वियोगी" यहाँ तक है कि वह ईश्वर को पहचान लेता है। ईश्वर को जानकर वह एक-ही-एक हो जाता है।

"जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।।" की दशा को प्राप्तकर लेता है। इसी को संत कबीर साहब ने कहा–

"जौं जल में जल पैस न निकसै, यौं ढुरि मिला जुलाहा।।"

गुरु नानक साहब ने भी कहा–

"जल तरंग जिउ जलहि समाइआ।
तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ।
कहुनाक भ्रम कटे किवाड़ा,
बहुरि न होइऐ जउला जीउ।।"

यहाँ परम सुख है। परमात्मा ज्ञानमय हैं, सुखमय हैं, शान्तिमय हैं। परमात्मा से एकीभाव को प्राप्तकर भक्त साधक परम शान्ति को प्राप्त करता है।

सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है इसी वास्ते विन्दु-ध्यान है और नाद-ध्यान है। विन्दु-ध्यान दृश्य में और नाद-ध्यान अदृश्य में पहुँचाता है। नाद-ध्यान सृष्टि के अन्त तक पहुँचा देता है। नाद-ध्यान में बहुत दूर तक अनेकता, फिर ऐसी एकता कि द्वैत नहीं रहता।

❁ जाग्रत के ज्ञान में जो देखते हो वह ईश्वर नहीं, स्वप्न की अवस्था में जो देखते हो वह ईश्वर नहीं, सुषुप्ति की अवस्था में ईश्वर नहीं, तुरीय के आरंभ में का ज्ञान ईश्वर का ज्ञान नहीं, तुरीय के अंतिम अवस्था में ईश्वर का ज्ञान होता है लेकिन द्वैतावस्था में। उनकी शिखर पर चढ़कर तुरीय को पारकर ज्ञान होता है। तुरीयावस्था में चेतन का आवरण रहता है, इसलिए द्वैत रहता है। चेतन-अवस्था के लय हो जाने पर द्वैत भी मिट जाता है। वहाँ स्थान और स्थानीय नहीं रहता है।

❁ उस एक ईश्वर की खोज होनी चाहिये। अंधकार से प्रकाश में, प्रकाश से शब्द में जाना होगा। यह शब्द वहाँ पहुँचा देगा, जहाँ आप को अपने प्रभु की पहचान होगी। पहचान कर उनसे मुझको जुदाई हो, ऐसा नहीं। पहचान में मेल होता है, द्वैत मिटता है। मैं अलग, ईश्वर अलग यह नहीं रह जाता है। यह कहने में आने योग्य बात नहीं। कहने से द्वैत मालूम होता है। अगर सिद्धान्त पर विचार करो, चुप रहो तो देखो कि एक-ही-एक परमात्मा रहता है। ठीक-ठीक खोज से उसको ईश्वर की ही स्थिरता मालूम

होती है। और अपनी मौजूदगी या स्थिति का लोप हो जाता है, यही वेदांत का असली सिद्धान्त है। संतमत यही कहता है कि संतों का ज्ञान लो, उनके अनुकूल चलो। चलते-चलते अंत में परमात्मा से एक-ही-एक हो जाओगे। द्वैती भाव मिटकर–

"जौं जल में जल पैस न निकसे, यौं ढुरि मिला जुलाहा।"

अलग नहीं हो सकते हो। जल, जल में मिलकर अलग नहीं हो सकता। जल से बुलबुला होता है, लेकिन बुलबुला भी जल ही है।

❀ अनेकता मिथ्या है, एकता सत्य है। लेकिन कहते-कहते नहीं होगा। चुप बैठेगा, करेगा और तब एकता को आपही आप जानेगा। दूसरे को समझाने के लिए जितनी शक्ति है, समझावेगा, लेकिन द्वैत नहीं मिटेगा। वह कहेगा–गुरु से यत्न लो, करो। साधन करो तो कहना कुछ नहीं रहेगा। ईश्वर से मिलकर एक-ही-एक रहेगा। मैं जितना कहता हूँ, द्वैती भाव में कहता हूँ।

द्वैतीभाव गलत है। द्वैतभाव में बोल-चाल सब है, अद्वैतीभाव में चुप है। अद्वैतभाव को कोई समझा नहीं सकता। चुप हो जाओ, साधना करो। तब अद्वैत पद को पाओगे।

❀ जब तक शरीर है, तब तक संसार में 'मैं' का ज्ञान रहेगा। शरीर नहीं रहेगा–सूक्ष्म, कारण, महाकारण सभी छूट जाते हैं। तब स्वयं अपने को पता है और स्वयं अपने को पाकर फिर नहीं रहता कि ईश्वर कोई दूसरा है। बातचीत करने पर भी कोई नहीं कहेगा कि ईश्वर दूसरा है। लेकिन साधन से ही यह जाना जा सकता है और दूसरी तरह से नहीं।

साधन-भजन करते-करते द्वैतीभाव से अद्वैतीभाव–मोक्ष को प्राप्तकर लो, कल्याण होगा। द्वैतीभाव में संसार में वरतो और अद्वैतीभाव आखिरीपद है। आखिरी पद को पाकर फिर संसार में आना नहीं होगा। गुरु नानकदेव कहते हैं–

"जल तरंग जिउ जलहि समाइआ, तिउजोति संगि जोति मिलाइ।
कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा, बहुरि न होइअै जउला जीउ।।"

फिर दूसरा जन्म नहीं होगा, दूसरी झंझट नहीं होगी। मैंने जो आज तक जाना है, ऐसा ही ज्ञात होता है।

❁ संसार में द्वैतीभाव है और संसार के परे अद्वैतीभाव। लाभ-हानि, दु:ख-सुख, सफलता-असफलता से संसार भरा है। मित्र-शत्रु से संसार भरा है। इस द्वैतीभाव में संसार में चैन नहीं। इसमें उत्तम अद्वैतीपद है। वही शान्ति है। अपने साधन करो, मालूम पड़ेगा। सब साधनों को करो, सब शरीर छूटेंगे।

❁ जितने शरीर हैं, अपरा-प्रकृति जो है, इनके परे परमात्मा है। जो अनीश्वरवादी हैं, वे भी तो अपने को कहते हैं कि मैं हूँ। वे अपने हैं, वे अपने क्या हैं ? केवल शरीर ही वे हैं ? यह मोटा शरीर मर जाने से क्या वे मर गये ? द्वैतीभाव संसार में रह ही गया। तर्क-वितर्क में द्वैतीभाव नहीं छूटता। जो साधन-भजन करते हैं, उनमें अद्वैतीभाव आता है।

❁ जब तक संसार में रहे, द्वैत में रहे और शरीर छूटने पर अद्वैतीभाव को प्राप्त करते हैं। जिन्होंने साधना नहीं कि, उनका शरीर इस तरह नहीं छूटता, जिससे अद्वैतीभाव आवे। पहले तो ज्ञान जानो। ज्ञान जानकर साधन करो। फिर आगे बढ़कर अद्वैतीभाव प्राप्त करो।

❁ कागभुशुण्डि जी कहने लगे कि हे गरुड़जी! जब प्रभु राम ने मुझे भ्रम से घबड़ाया हुआ देखा, तो वे ठेहुनियाँ देते हुए मुझे पकड़ने को दौड़े। मैं भाग चला। फिर रामजी ने पकड़ने को बाँह फैला दी। जैसे-जैसे मैं आकाश में दूर और विशेष दूर उड़ता जाता था, वैसे-वैसे मैं प्रभु की भुजा को अपने पास देखता था। मैं उड़ता जाता और पीछे फिर-फिरकर देखता जाता था। इस प्रकार मैं ब्रह्मलोक तक गया। रामजी की भुजा और मुझमें केवल दो ही अंगुलियों का अन्तर था। सातों परदों को छेदकर जहाँ तक जा सकता था, मैं भागा; पर वहाँ भी प्रभु की भुजा अपने पास देखकर मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

इसका आध्यात्मिक भाव यह है—मूलाधार से सहस्रदल कमल तक ये सातों आवरण हैं; परन्तु ये सातों चक्र रूप-मण्डल के अन्तर्गत हैं, अतः दो अंगुलियों की दूरी यानी द्वैत-ज्ञान के रहने के कारण यहाँ आत्मज्ञान नहीं हो पाता है। राम की भुजा यहाँ रूप का ही प्रतीक है। रूप या दृश्य-मण्डल में अद्वैत ज्ञान नहीं होता।

❁ साधक जिसको परोक्ष रूप में जानता था, उसको तब अपरोक्ष रूप

में पाता है। परमात्मा को प्रत्यक्ष पाकर उसमें विलीनता हो जाती है। 'अहंब्रह्मास्मि' हो जाता है। पहले 'सोऽहमस्मि' होता है। यहाँ द्वैत रहता है। और जब 'अहंब्रह्मास्मि' होता है तब अद्वैत होता है। द्वैत में अनुभूति होती है, अद्वैत में विलीनता होती है।

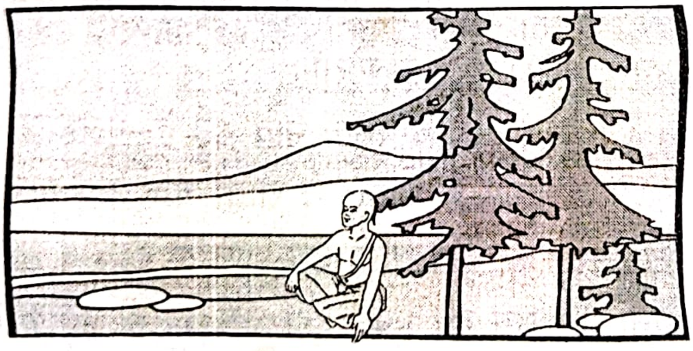
❁ उपासना ऐसी करो कि ज़िसका तुम हो, तुम अपने को उस पर अर्पण करो। मैंने अर्पण किया है, यह भूल जाओ। कुछ माँगने वाले के दिल में हीनता रहती है। उसको याद ही नहीं रहता कि मैंने माँगा था। यह याद तब तक रहता है, जब तक दो था। दो से एक हो गया, तो उसकी याद ही नहीं रही। इसीलिए "अहंब्रह्मस्मि" कहते हैं। "अहं ब्रह्मस्मि" जबान से कहते हैं तो अहं रह जाता है। ऐसा हो कि एक ही हो जाये।

❁ 1977 ई0 में जब आप (महर्षि मेँहीँ परमहंस जी) सत्संग-प्रचार करते हुए एक बार जालन्धर (पंजाब) पहुँचे तो एक भक्त पत्रकार (विजय निर्बाध) ने आपसे पूछा–"अहं ब्रह्मास्मि की उक्ति को आप कहाँ तक सही मानते हैं ?"

आपने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया–पूर्णतः। परन्तु यह स्थिति तब आती है, जब नदी अपने अस्तित्त्व को मिटाकर सागर में मिल जाती है, जीवात्मा 'स्व' को समाप्त करके परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है।"

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाहिं।।"

श्री भगवानुवाच –
सिद्धानां कपिलो मुनिः।
सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।



श्री सद्गुरवे नमः

शरणागति अथवा आत्मसमर्पण



❀ लोग कहते हैं कि आप मनुष्य हैं, आपको ज्ञान होना चाहिये। कहते हैं कि कहते तो ठीक हो, लेकिन मौका आता है, ज्ञान भूल जाते हैं, अज्ञानता आ जाती है और जो नहीं करने का वह भी कर बैठते हैं। माया की सेना हमसे हटती नहीं है। तब ऐसा होता है कि कोई ऐसा जबर्दस्त सहारा मिलता, जिसके द्वारा इन दुष्टों को भगाया जाता। यह माया किसकी है ? यह माया ईश्वर की है। उसके अधीन है। उसके अधीन में इस तरह है कि उसके जरा-सा इशारा पर जैसा वे कराना चाहते हैं, माया से कराते हैं। संतों ने कहा कि उस ईश्वर की शरण लो, उसका आश्रय ग्रहण करो। जो ईश्वर का भजन करता है, वह ईश्वर की शरण में है।

❀ मैंने मनिहारी में एक स्थान बना रखा है। अब से बहुत वर्ष पूर्व वहाँ के एक आदमी पर मुकदमा हुआ था, उसको सजा हो गई। उसने कहा–

"मैं अपने को सर्मपण करने जा रहा हूँ।"

उसके मन में तो था कि छूँट जाऊँ, लेकिन शरीर गया समर्पण करने। 'एलेक्जेंडर दि ग्रेट' की कथा मैंने पढ़ी थी। सिकन्दर ने एक बड़ी नामी डाकू को पकड़ा था। उसने उस डाकू से पूछा–"तुम लोगों को लूटते क्यों हो? सताते क्यों हो ?" डाकू ने कहा–"मेरे शरीर को तुमने बाँधा है, मेरे मन को नहीं। तुम बड़ा डाकू और मैं छोटा डाकू हूँ।" सिकन्दर ने डाकू के शरीर को बाँधा था, उसके मन को नहीं।

"ईश्वर पर अपने को समर्पण करता हूँ।"

केवल कहने से नहीं होता। लाठी की तरह (दण्डवत् प्रणाम) शरीर के गिर जाने से शरीर ही गिरता है, मन शरण में नहीं जाता। मन भाग-भाग कर स्वतंत्र रूप से काम करने लगता है। जैसे शरीर को किसी की शरण में ले जाते हैं, उसी तरह मन को भी किसी की शरण में ले जाना चाहिये, जो माया के दबाव से बचा सके। ईश्वर की शरण लो। शरीर के गिरा देने से सेरेण्डर (Surrender) नहीं होता । माया के दबाव से बचने का यही उपाय है।

❁ अपने को परमात्मा की शरण में ले जाने की बात यह है कि जहाँ दूध रखोगे, वहाँ घीउ रहेगा ही। संसार में कहीं जाने से मन से छूटा नहीं जा सकता। स्वर्ग में जाओ तब भी संसार में ही रहोगे। बाहर संसार में कहीं जाना, ईश्वर की शरण में जाना नहीं है।

❁ ईश्वर की शरण में जाओ। ईश्वर की ओर जाने में शरीर-ज्ञान नहीं होता। शरीर-ज्ञान में ईश्वर-ज्ञान नहीं होता। सिमटाव करते-करते शरीर का ज्ञान छूटता है। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा थ–"सब धर्मो को छोड़कर मेरी शरण में आ जा, तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा।" अर्जुन तो ऐसे शरण में थे कि भगवान् के विचार के विरूद्ध चलने का न उनका इरादा था, न शक्ति थी। अर्जुन और दुर्योधन, दोनों आदमी श्री कृष्ण के पास गये, युद्ध का समाचार बताने और उसे सहायता माँगने। अर्जुन कितनी शरण में था कि सेना न लेकर केवल उनको ही लेते हैं, यद्यपि वे जानते थे कि भगवान् युद्ध नहीं करेंगे। कितनी शरण में वे थे, फिर भी शरण में होने के लिए श्री कृष्ण कहते हैं। और भी शरण में होने के लिए श्रीकृष्ण कहते हैं। और परिभाषा यह कि सब धर्मों को छोड़कर। कोई भी धर्म को कैसे छोड़ेगा ? क्या संतान उत्पन्न करने के लिए वैवाहिक नियम छोड़ देगा ? गरीबों को दान देना, देश की रक्षा करनी और देश को अच्छी हालत में रखना छोड़ देगा ? संसार का धर्म कभी छोड़ नहीं सकता। इसका उत्तर है कि सभी ध र्म तब छूटेंगे, जब सभी कर्मों को छोड़ दे। संसार में रहकर कोई कर्मों से नहीं छूट सकता। चौथी अवस्था में जो जाता है, सुरत की ऊपर में बैठक होती है। वहाँ का ठहराव जिसको होता है, उससे बाहर का कोई कर्म नहीं होता। उसका पिता या पुत्र कोई बैठा रहे, उसको वह नहीं जानता। इस तरह सब कर्मों को छोड़कर, धर्म को छोड़कर वह ईश्वर की ओर रहता है। गो0 तुलसी दास जी ने लिखा है–

"तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त ।
मन क्रम वचन अगोचन व्यापक व्याप्य अनन्त।।"

इस तरह शरण में जाओ। पूर्ण सिमटाव हो, ऊर्ध्वगति हो, तब भगवान् की शरण में जाना होगा।

❁ ध्यान कीजिये, सिमटाव होगा। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होगी तब

आत्मसमर्पण होगा, शरीर समर्पण नहीं। ऐसा सिमटाव हो, ऊर्ध्वगति हो, तब शरण होना होगा।

❀ गुरु नानक देव जी ने कहा है–

"ऐसी सेवकु सेवा करै। जिसका जिउ तिसु आगे धरै।"

यह भागवत की नवधा में का 'आत्म निवेदनम्' है। स्थूल, सूक्ष्म कारण आदि शरीरों से अपने को टपाकर रखो तभी आत्मनिवेदन होगा। शरीर से किसी के सामने साष्टांग गिरना यथार्थ में आत्मनिवेदन नहीं है।

❀ जब शरीर-इन्द्रियों के ज्ञान से चेतन आत्मा ऊपर उठती है, तब ईश्वर की शरण में जाती है। जैसे-जैसे सूर्य के प्रकाश में जाते हैं, वैसे-वैसे अन्धकार छूटता है। जैसे-जैसे ईश्वर की शरण में जाते हैं, वैसे-वैसे माया छूटती जाती है।

श्री भगवानुवाच –



तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

श्री भगवान् ने कहा –

हे भारत! (तू) सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा उस परमात्मा की कृपा से (ही तू) परम शान्ति को (तथा) सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

श्री सद्गुरवे नमः

तुरीय और तुरीयातीतावस्था तथा वहाँ की अनुभूति

❀ तुरीयावस्था में आधा मंजिल कोई पार कर जाये यानी त्रिकुटी में पहुँच जाये, त्रिकुटी उसको कहते हैं जहाँ से प्रकृति के तीनों गुणों के कार्य आरम्भ होते हैं। यह अन्दर की है, बाहर के भौओं के बीच की त्रिकुटी नहीं। यहाँ जो पहुँचता है वह बहुत पवित्र होता है। जब साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति को पार करता है, वह बिल्कुल पवित्र हो जाता है। यहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' रहती है। यह तुरीयावस्था है।

❀ जो अपने को अपने अन्दर अच्छी तरह समेट लेता है, जैसे कछुआ अपने अंगों को, वही योगी है। जो बहिर्मुख रहता है, वह इन्द्रियों में रहकर विषयों में रहता है, जो अन्दर में प्रवेश करे वह इन्द्रियों से सिमटकर-विषयों से छूटकर–उनसे ऊपर हो जाता है। इसके लिए एक विशेष अवस्था होती है–जो न तो जाग्रत्, न स्वप्न और न सुषुप्ति की अवस्था है। परन्तु तुरीय अवस्था कहकर विख्यात है। इसमें रहने वाला अपने अन्दर में रहता है और वही सारे ब्रह्माण्ड को देखता है। इसीलिए **'सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि योगी'** कहा गया है। स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं को छोड़ दिया है तथा जाग्रत् में भी नहीं है। इसलिए नींद छोड़कर सो गया है। वहाँ वह ब्रह्मपीयूष का भोग करता हुआ ब्रह्मानन्द में मग्न होता है तथा 'अतिसय द्वैत वियोगी' पद में अवस्थित हो जाता है।

"सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।" भक्ति करते-करते इस अवस्था तक पहुँचा जा सकता है।

❀ भजन करने के लिए कहते हैं कि तीन अवस्थाओं को छोड़कर भजन करो। अभी जगे हो, फिर सोते हो, गहरी नींद में जाते हो। इन तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भजन करो। यह गम्भीर ज्ञान है। जो अपने को जाग्रत् में स्थिर कर समेट सकता है, वह ऊपर उठेगा; जागने के स्थान से ऊपर उठेगा, वह चौथी अवस्था होगी, तुरीय अवस्था होगी। कोई कहे कि जाग्रत्-स्थान से ऊपर उठकर स्वप्न में जायेगा या सुषुप्ति में, तो वह नहीं

जानता है। स्वप्न और गहरी नींद का स्थान नीचे है। चौथी अवस्था इसमें नहीं होती। चौथी अवस्था में वह जाता है, जो कोई आँख के स्थान से ऊपर जाता है। मस्तक के अन्दर जो तल है, उसको वह प्राप्त करता है। मन के सिमटाव से यह होगा। इसी के लिए ध्यान है।

❁ एक बात बता दूँ—जब आप गहरी नींद में जाते हैं, तो अपने शरीर का ज्ञान नहीं रहता है। आप श्वास लेते हैं, आपको मालूम नहीं होता है कि आप श्वास लेते हैं। इन तीन अवस्थाओं में संसार है। जाग्रत् है, तो स्वप्न नहीं। स्वप्न है, तो जाग्रत् नहीं। जब गहरी नींद है तो जाग्रत् और स्वप्न नहीं। विचारवानों ने विचारते-विचारते विचारा कि और कोई अवस्था है वा नहीं ? तो विचारा कि जैसे जाग्रत् में आँख में, स्वप्न में कंठ में और सुषुप्ति में हृदय में रहता है, वैसे ही तुरीय अवस्था में मुर्द्धा में वासा रहता है। वहाँ जाओ तो उस अवस्था में यह संसार और शरीर कुछ नहीं रह जाता है। उसके परे पहुँचो तो तुरीय अवस्था भी लय हो जाती है। इसके आगे और कुछ नहीं है, ईश्वर-परमात्मा है।

❁ यौगिक-अवस्था, जिसे तुरीयावस्था कहते हैं। तुरीयावस्था में हम-तुम का बोध होता है। इससे भी परे जाना चाहो तो तुरीयातीतावस्था मिलेगी। तुरीयातीतावस्था में कोई जबतक रहेगा, वहाँ संसार नहीं रहेगा। यह अवस्था यही है कि सबमें रहते हुए सबमें रहना नहीं है।

❁ तुरीया या चौथी अवस्था में न तो सोना रहता है, न सपनाना रहता है, न जाग्रत् का दृश्य रहता है। कुछ देखता है या नहीं देखता है, कुछ सुनता है या नहीं सुनता है, इसका जवाब वे ही ठीक से दे सकते हैं, जो तुरीयावस्था में जाते हैं। उस अवस्था में जो जाते हैं, वे कहते हैं कि हाँ, तुरीयावस्था में भी देखा जाता है और सुना जाता है। जो देखा जाता है, उसको दिव्य-ज्योति या ब्रह्मज्योति कहते हैं। यह तुरीयावस्था ऐसी अवस्था है, जहाँ से यह संकेत मिल जाता है कि जो अन्दर में देखा-सुना जाता है, वह बाहर के दृश्य से अत्यन्त भिन्न है।

❁ जब देखना समाप्त हो जाता है और सुनना भी समाप्त हो जाता है। मतलब यह कि वह तुरीयावस्था में भी नहीं रहता है, दिव्यज्योति या दिव्यशब्द खत्म हो जाये, ऐसी वह तुरीयातीतावस्था है। उस चौथी अवस्था

से ऊपर पाँचवीं अवस्था तुरीयातीतावस्था है। उसमें अगर कोई चला जाये, तो उसको शरीर का ज्ञान नहीं रहेगा और चारो अवस्थाएँ भी नहीं रहेंगी। अब ज्ञान होगा कि मैं तुरीयातीतावस्था में रहने वाला हूँ। उस अवस्था में हाथ-पैर अंग-प्रत्यंग कुछ नहीं है। लेकिन जो कुछ है वही कहलाता है–'आत्म-स्वरूप'। वह ईश्वर का अंश जीवात्मा है। वह जीवात्मा मानने लग जाता है कि मैं हूँ। सदा से हूँ और दुरूस्त हूँ। चारो अवस्थाओं का अन्त ध्यान करने से होता है। यह अवस्थाएँ बदलती हैं तब, जब खूब अच्छी तरह से ध्यान करें।

❁ तुरीयातीतावस्था में जाना बहुत आवश्यक है। परन्तु यह सहज नहीं, कठिन है। कठिन इसलिए है कि शारीरिक ज्ञान छूट जाता है। इन्द्रियों का संग छूट जाता है। यहाँ तक कि मन-बुद्धि का भी संग छूट जाता है। अकेलेपन का ज्ञान होता है। तब जो कुछ है, वह न कहा जा सकता है, न समझाया जा सकता है, यह वही है जो आप अपने हैं। हर एक आदमी को चाहिये कि उस आत्म-स्वरूप को जानें।

❁ कोई कहे कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन अवस्थाओं के परे भी अवस्था होती है ? मैं कहूँगा हाँ होती है। लेकिन बहुंतों को पता नहीं है। मैं यह भी कहूँगा, ग्रन्थ में लिखा है, चौथी अवस्था भी है, कोई कहे कि किताब में लिखने से क्या होगा ? प्रत्यक्ष दिखाओ। तो मैं कहूँगा एक दृष्टि बनाकर देखो। तब जो देख सकोगे तो चौथी अवस्था हो जायेगी। एक दृष्टि एक विन्दुता में होगी। सब को एक समान देखना ही एक दृष्टि नहीं है। दृष्टि को इतना समेटो कि एक विन्दुता हो जाये। जब तक एक विन्दुता रहेगी चौथी अवस्था में रहोगे। करके देखो प्रत्यक्ष होगा। बाहर में निशाना करने वाले भी दृष्टि को समेटकर देखते हैं। नहीं तो निशाना कैसे करते हैं ? दृष्टि समेटना तुम्हारे अधिकार में है। दृष्टि को समेटो यह योग की अवस्था है। चौथी अवस्था में रहकर देखो तब जो देखने में आवेगा वह किसी यंत्र से आज तक किसी ने नहीं देखा है।

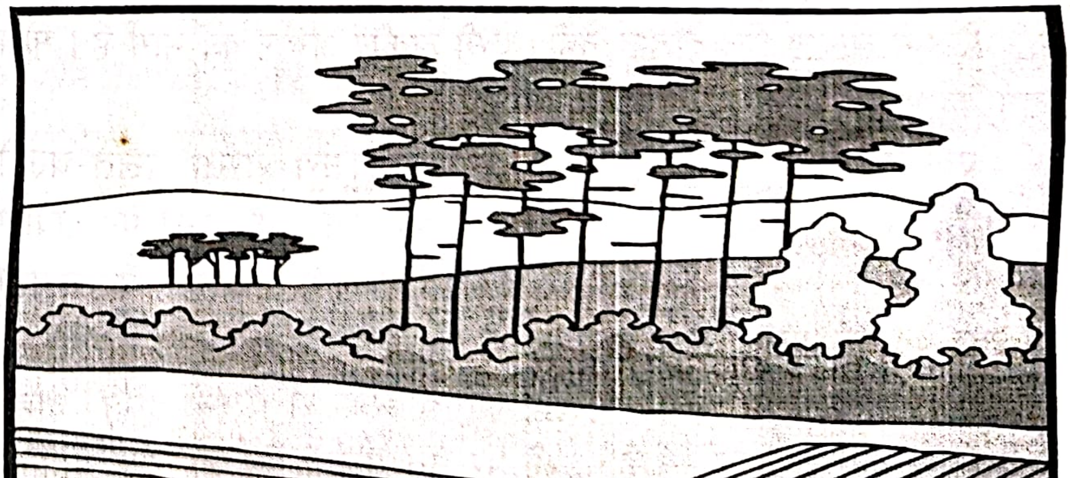
❁ जो साधक ज्ञान की ओर बढ़ रहे हैं, जिन्होंने श्रवण किया है, मनन किया है और निदिध्यासन में रत है, उनको मालूम होता है कि और अवस्था है, वह तुरीय-चौथी अवस्था है। इसमें वैसे नहीं पहुँच जाता। जो कोई गुरु

इसका पता बता दे, उसकी सेवा करके युक्ति जाने और करे, तब उसको पता होगा कि चौथी अवस्था क्या है ? मैंने गुरु से सुना है–उसमें विशेष प्रकाश होता है। साधक विचित्र-प्रकाश को देखता है, तो उसकी अवस्था बदल जाती है। घोर-अन्धकार की अवस्था नहीं रहती।

❀ जो अपनी चेतन-धारा को समेटकर अन्दर कर लेता है, वह सब दृश्यों को अपने अन्दर देखता है; नींद छोड़कर सो जाता है; वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में नहीं रहता, तुरीयावस्था में रहता है।

❀ जाग्रत-अवस्था में माँग-ही-माँग है। स्वप्न में भी उसी प्रकार। सुषुप्ति–गहरी-नींद में केवल अज्ञानता और ठहराव नहीं। ठहराव हो भी जाये, अज्ञानता रहे तो क्या लाभ ? सन्तों ने कहा–इन तीनों अवस्था से आगे जाओ चौथी अवस्था में। उसको तुरीय कहते हैं, उसमें जाओ। यह विद्या अपने से किसी में आ जाये, यह सम्भव नहीं। यह विद्या गुरु से जानें, जो गुरु अपने को चौथी अवस्था में पहुँचाकर माँग को खत्म किये हैं।

❀ अपने अन्दर में जो साधन करते हैं, वे शब्दातीत-पद को पाते हैं। जाग्रत में देखते हैं कि सब कुछ है। स्वप्न में जो कुछ देखते हैं, जागने पर वह असत्य हो जाता है। जो निद्राह-नींद या गहरी-नींद की अवस्था है, वह तो बेहोशी की अवस्था है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से ऊपर तुरीय अवस्था है। तुरीय से परे तुरीयातीतावस्था है। उसी को शब्दातीत-पद कहते हैं।



श्री सद्‌गुरवे नमः



ईश्वर-प्राप्ति या मोक्ष का मार्ग

❀ (एकबार) श्रीविनोबाजी ने कहा–ईश्वर-प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। कोई ज्ञानयोग से, कोई ध्यानयोग से, कोई भक्तियोग से, कोई प्रेमयोग आदि से ईश्वर तक पहुँचते हैं।

आपने (महर्षि मेँहीँ परमहंस जी ने) कहा–"नहीं, ईश्वर-प्राप्ति का एक ही मार्ग है, और उस मार्ग पर चलने के लिए सब-के-सब सहारे हैं। वह मार्ग वाह्य-जगत् में नहीं, अपने अंदर में है और उसपर जीवात्मा ही चल सकता है। जाग्रतावस्था में जीवात्मा का निवास आज्ञाचक्र के केन्द्र में है। जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से चलता है। इस तरह वह मार्ग आज्ञाचक्र से आरम्भ होकर अपने अंदर-ही-अंदर परमात्मा तक लगा हुआ है।"

❀ रास्ता कहते हैं–चिह्न को–लकीर को। चाहे रास्ता चौड़ा हो वा चौड़ाई विहीन लम्बा हो। क्या है ? वह लकीर है। इसी तरह जो मोक्ष का रास्ता है वह लकीर है। लेकिन बहुत लम्बी लकीर है–चौड़ी लकीर नहीं है। रेखा के लिए पढ़े होंगे कि उसमें लम्बाई है, चौड़ाई नहीं। ठीक वैसा ही, जैसे विन्दु का स्थान है, परिमाण नहीं। लेकिन ऐसा विन्दु वा लकीर संसार में कोई देखा है ? वह चश्मा (सूक्ष्मदर्शी-यंत्र) जिसको पहनकर पतले-पतले अक्षरों को मोटे-मोटे रूप में देखता है, कितनी भी पतली लकीर खींचकर उस चश्मा से देखो तो उसमें चौड़ाई मालूम होगी। संसार में ऐसी लकीर नहीं, जिसमें लम्बाई हो–चौड़ाई नहीं। ऐसी लकीर अन्दर का मार्ग है। मोक्ष जाने का रास्ता लम्बा-ही-लम्बा है, चौड़ा नहीं।

एक तो रास्ता बनाते हैं चलने के लिए, दूसरा रास्ता चलते-चलते बनता है। जिस पर चला जाये, वह रास्ता है। संसार के रास्ते पर सवारी और पैर चलता है। मोक्ष के रास्ते पर न सवारी चलती है और न पैर चलता है। उस पर मन चलता है।

❀ मोक्ष-मार्ग पर चलने के लिए जाग्रतावस्था से चलना होगा। बाहर में संत-पंथ नहीं है, अन्दर में है। इसी पर मन चलता है। जो कोई यहाँ से चलना बताता है, ठीक बताता है, यह आज्ञाचक्र है। कोई कहे कि नीचे से

क्यों नहीं चलो ? तो नीचे से हठयोगी चलते हैं। नीचे में वे स्थान मानते हैं, जिसको मूलाधार चक्र कहते हैं। वे वहीं से आगे बढ़ते हैं। कोई कहते हैं कि पैर में भी तुम हो, वहीं से क्यों नहीं चलते ? तो पैर से चलने के लिए कोई नहीं बताते। कोई मूलाधार से, कोई हृदय से और कोई आज्ञाचक्र से चलना बताते हैं। हृदय से चलने वाले को मूलाधार से चलने वाला कहता है कि मूलाधार से क्यों नहीं चलते ? हृदय से चलने वाला अन्य दूसरों से कहता है कि हृदय से क्यों नहीं चलते ? आज्ञाचक्र से चलने वाला कहता है जिस कर्म से तुम अपने को समेटोगे वह कर्म हमारे पास भी है। क्या मूलाधार और क्या हृदय, सबसे समेटकर हम आज्ञाचक्र से चलते हैं। शिवजी ने कहा है कि "पंच पद्मों का जो-जो फल पहले कहा, सो समस्त फल आप ही इस आज्ञाकमल के ध्यान से प्राप्त हो जायेगा।"

"यानि-यानि हि प्रोक्तानि पंच पद्मे फलानि वै।
तानि सर्वाणि सुतरामेतज्ज्ञानादूभवन्ति हि।।"

–शिव संहिता

संतों ने यहीं से अन्तर का रास्ता बताया है। रास्ता ज्योति का है और शब्द का है।

❀ लोग कहते हैं कि सोनबरसा आने के लिए पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से और दक्षिण से भी आते हैं। उसी तरह ईश्वर के पास जाने के अनेक रास्ते हैं। मैं कहता हूँ–हजार बार कहता हूँ कि ईश्वर के पास जाने का रास्ता एक है, जैसे भोजन करने का रास्ता एक है। जिसको ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान नहीं है, अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है, अपने शरीर का ज्ञान नहीं है, उसके लिए अनेक रास्ते हैं। जिनको ईश्वर स्वरूप का ज्ञान है, अपने स्वरूप का ज्ञान है, उनके लिए अनेक रास्ते नहीं, एक ही रास्ता है और वह अन्तमार्ग है। मोक्ष का रास्ता एक है, स्वर्ग-वैकुण्ठ का रास्ता भले अनेक हो।

❀ बिना मोक्ष के संसार में रोना-पिटना होगा ही। रामायण कहती है कि श्रीराम जैसे अवतारी भी इस संसार में आकर रोये। श्रीकृष्ण जैसे हँस-मुख को अन्त में मुख पर मायुसी आई। पाण्डव-जैसे वीरों को भी जंगल-जंगल घूमना पड़ा। यही यह संसार है। इसलिए इस संसार से छूटने के लिए यत्न जानो। जैसे जल को पार करने के लिए जल ही सहारा और

जल ही रास्ता होता है, वैसे ही अपने अन्दर ज्योति और शब्द का सहारा है और वही रास्ता है।

यह रास्ता बहुत बारीक है। ईसा मसीह अच्छे साधु थे, उन्होंने कहा है, "सकेत फाटक से प्रवेश करो; क्योंकि चौड़ा है वह फाटक और चाकर है वह मार्ग, जो विनाश को पहुँचाता है और बहुत हैं, जो उसमें पैठते हैं। वह फाटक सकेत है, और वह मार्ग सँकरा है, जो जीवन को पहुँचाता है और थोड़े हैं, जो उसे पाते हैं।"

भवसागर को पार करने के लिए सूक्ष्म-मार्ग का अवलम्बन करो। स्थूल-रास्ते पर चलकर संसार भर ही रहोगे, बाहर नहीं जा सकते। संसार का मार्ग तो यह है कि यहाँ से कलकत्ते जाओ और कलकत्ते से यहाँ आओ। यह स्थूल-मार्ग है। दूसरा मार्ग है कि शरीर छूटने के बाद–संसार से जाने के बाद आराम से रहना हो। इसके लिए जो उत्तम-उत्तम कर्म हैं, स्थूल दर्जे के ही हैं फिर भी उत्तम हैं, उनको करो। सूक्ष्म-मार्ग बहुत उत्तम है। **"लखे रे कोई बिरला पद निर्वाण।"** यह बाहर में नहीं है, भीतर का रास्ता है। उस पर पैर से चला नहीं जाता। सूक्ष्म अवलम्ब लेकर चलना होता है।

"बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देश।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर संदेश।"

इस मार्ग पर यात्रा करनेवाला कोई थकता नहीं है। इस यात्रा में आनन्द-ही-आनन्द आता है। इसकी साधना का आरम्भ जाग्रत में जो आँख में जीव की बैठक है, वहीं से होता है।

यह अन्तर-मार्ग बनानेवाला परमात्मा है। यह रास्ता मिट्टी आदि किसी मसाले से बना हुआ नहीं है। इस रास्ते पर चलनेवाले को अजीब आनन्द आता है। साधक जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, उसका आत्मबल भी बढ़ता जाता है। इसके लिए सन्तों ने कहा–सिमटी निगाह से देखो, फैली निगाह से नहीं, अपने अन्तर में ज्योति का पसार है। इसके लिए दायीं और बायीं धारों को छोड़कर मध्य में वृत्ति रखो। जो लोग खास तरह से अन्तर साधन का भेद पाये हैं, सो वह भेद यही है। भेद जानो; लेकिन करो नहीं, तो क्या मालूम होगा।

सत्संग में तलाश करो। सत्संग में जिनको समझो कि ये हमको

बता सकेंगे, उनसे पूछो। यदि वे ठीक जानकार होंगे तो बतावेंगे। ठीक जानकार बताते हैं—सूक्ष्म-मार्ग। संसार में जैसी सड़क पर गाय-बैल चलते हैं, वैसा मार्ग नहीं—सूक्ष्म-मार्ग है। गुरु से ही यह रास्ता मिलेगा। तब जो अनेक जन्मों की अटक थी, वह खुल जायेगी। कपाट खुल जायेगा, रास्ता मिल जायेगा। गुरु के उपदेश से मिलेगा। गुरु का सम्मान करना चाहिये और उनसे जानना चाहिये।

❁ जिस रास्ते पर चलकर उन ईश्वर तक पहुँचा जाता है, वह रास्ता बाहर नहीं, अन्दर है। मनुष्य मात्र शरीर के अन्दर है। कहाँ से रास्ता शुरू होता है ? जो जहाँ बैठा रहता है, उसका रास्ता वहीं से आरम्भ होता है। हमलोग इस शरीर में कहाँ हैं ? बाहर कहीं लटके नहीं हैं, अन्दर में हैं। अपने अन्दर देखते हैं तो अन्धकार मालूम पड़ता है। यह अन्धकार कहाँ है ? आँख में है। यहीं हमलोग हैं। इसको योगियों ने आज्ञाचक्र कहा है। यहीं से रास्ता आरम्भ होता है।

❁ लोग कहते हैं, जैसे बाहर संसार में जाने के लिए बहुत रास्ते हैं, वैसे ही ईश्वर के पास जाने के लिए अनेक रास्ते हैं। समझो यह कथा महाभारत की। आचार्य द्रोण ने एक दिन चक्रव्यूह की रचना की। उसमें जाने के लिए एक ही रास्ता था। उसी तरह यह संसार शकट-व्यूह है। इसमें एक ही रास्ता प्रवेश करने का है, जहाँ तुम बैठे हो। आँख से ही रास्ता शुरू होगा। इस रास्ते की जानकारी जो विशेष जानकार हैं—गुरु हैं, उनके पास जाकर प्राप्त करो।

❁ बाहर में ईश्वर के पाने का मार्ग नहीं है, मार्ग अपने अंदर है। अपने अन्दर में चलने की विधि और मार्ग योगशास्त्र बताता है। जीव की बैठक जहाँ शरीर में है, वहाँ से लेकर ईश्वर-स्वरूप की प्रत्यक्षता तक का जो रास्ता है, वही मोक्ष का रास्ता है। यह अन्दर का रास्ता ईश्वर-कृत है। इस रास्ते पर जो चलता है, वह संतमतानुयायी है। जो इस मार्ग पर चलाते हैं, वे संत हैं।

❁ रास्ता घूम-फिरकर नहीं है-सीधा है।

"सीधे चला जाना वहाँ, मुर्शद ने यह फतवा दिया।"

ईश्वर-प्राप्ति का रास्ता एक है, जैसे भोजन करने का रास्ता एक

है—मुँह। रूप-निरीक्षण करने का रास्ता एक है—आँख, शब्द-श्रवण करने का एक रास्ता है—कान; आदि। जो लोग यह कहते हैं कि "गोड्डा जाने के अनेक रास्ते हैं।" वे भूल में हैं, वे जानते नहीं हैं। अभी आप अपने शरीर में जहाँ बैठे हैं, वहाँ से छोर पकड़ने के लिए भिन्न-भिन्न उपासनाएँ हैं, लेकिन ये भिन्न-भिन्न मार्ग नहीं। छोर पकड़ने का एक ही रास्ता है, चाहे किसी देश का वा किसी धर्म का आदमी हो। रास्ता एक है और वह अंतर का रास्ता है।

❀ जो जहाँ कहीं बैठा रहता है, वह वहीं से चलता है। इस शरीर के अन्दर जहाँ जीव की बैठक है, वहीं से वह चलेगा। इसका यत्न गुरु से जाना जाता है, यह अंदाज से नहीं होता है। वहाँ पर जाने का रास्ता नहीं है, सिमटाव होने से उस पर जाना होता है। सन्त कबीर साहब ने कहा है—

"बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देश।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर संदेश।।"

मन और चेतन-आत्मा संग होकर चलते हैं। मन अपनी शक्ति की हद तक जा सकता है, आगे नहीं। आगे चेतन-आत्मा ही चलती है। सन्त तुलसी साहब ने कहा—

"सहस कँवल दल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्रान पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।"

प्राणपुरुष चेतन-आत्मा है। जहाँ केवल चेतन-आत्मा ही जा सकती है, वहीं परमात्मा के दर्शन होते हैं। जहाँ अन्तःकरणों का घेरा छूटा, तब ऐसी कोई बाधा नहीं रहती, जिससे ईश्वर-दर्शन नहीं हो। यह काम अन्दर में चलते-चलते होने योग्य है, कोई और उपाय नहीं है।

❀ लोग समझते हैं कि जैसे एक गाँव में जाने के लिए अनेक रास्ते हैं, उसी तरह ईश्वर के पास जाने के लिए भी हैं। ठीक-ठीक इसको विचारो। कोई राम, कोई गॉड, कोई अल्लाह कहते हैं, तो ये ईश्वर अनेक नहीं होते। ईश्वर एक ही रहते हैं। उसी तरह से कोई शिव की पूजा की सामग्री लेकर शिव जी की पूजा करते हैं। कोई विष्णु की पूजा की सामग्री लेकर विष्णु की पूजा करते हैं। कोई गणेश की पूजा की सामग्री लेकर गणेश की पूजा करते हैं। कोई सूर्य के उपासक पूजा की सामग्री लेकर सूर्य की पूजा करते हैं। इन

भिन्न-भिन्न तरह से पूजा को देखकर लोग कहते हैं कि ईश्वर पाने के बहुत रास्ते हैं। असल में ये रास्ते नहीं हैं। लेकिन ये अनुपयोगी हैं, यह मैं नहीं कहता। जिसको रास्ता कहते हैं, इसके द्वारा उस पर चलने के लिए सहायता मिलती है। रास्ता कहाँ तक है, कहाँ तक पहुँचाता है ? रास्ता पर चलने वाला कौन है ? यह जानेंगे तो कहेंगे कि सब का एक ही रास्ता है।

❀ अपने अन्दर में ईश्वर है और मैं भी इस शरीर में हूँ। इसलिए अन्दर का रास्ता होगा ईश्वर तक जाने के लिए। आँख, कान कुछ नहीं। दोनों का रहना शरीर में है, इसलिए शरीर के अन्दर का रास्ता एक ही है। यह अन्तमार्ग का रास्ता तिरछा-तिरछी नहीं है। बाहर कोई चीज भोजन के लिए लेते हैं, तो मुँह में देते हैं, वह पेट तक जाता है। क्या किसी दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को भोजन करने का दूसरा रास्ता है ? सौर, शैव, गाणपत्य, इस्लाम, ईसाई कोई धर्म का आप क्यों न हों, सब के खाने के लिए—पेट भरने के लिए एक ही रास्ता है—मुँह। डॉक्टर जानते हैं कि सब के अन्दर की बनावट एक है, इसी तरह ईश्वर के पास जाने का रास्ता एक ही है। ऐसा नहीं है कि एक धर्म के लोगों के लिए जीवात्मा शरीर की एक जगह में और दूसरे धर्म के लोगों के लिए जीवात्मा का निवास शरीर की दूसरी जगह पर। जिस तरह शरीर में आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियाँ सभी धर्म के लोगों को एक ही जगह पर है। उसी तरह सब धर्मों के लोगों के शरीर में जीवात्मा के रहने का स्थान एक ही जगह पर है। इसी जगह से चलने का रास्ता आरम्भ है। ईश्वर तक जाने का एक ही रास्ता है, इसी को बताने के लिए संतमत का प्रचार है।

❀ जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से उसका रास्ता आरम्भ होता है। इस शरीर में जीव की जहाँ बैठक है, वहाँ से चलो। अच्छे-अच्छे ग्रन्थों को पढ़कर लोग जानते हैं कि जाग्रत में जीव का वासा आँख में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीय में मूर्धा में होता है।

जाग्रत में आँख में नहीं रहने से बाहर का दृश्य देखा नहीं जा सकता। बिना स्वर के व्यंजन बोला नहीं जाता। स्वर का स्थान कंठ है। उसके नीचे हृदय का स्थान है, वहाँ द्वादशदल-कमल है। यहाँ शब्द है; लेकिन हम बोल नहीं सकते। आँख के स्थान से चलो। वे धन्य थे, जिन्होंने इन बातों को

सोचकर निकाला।

❁ ईश्वर को पाने के लिए रास्ता कैसा है, इसके लिए उपनिषद् में कहा है–

"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।"

अर्थात् वह रास्ता क्षुरे की धार के समान दुर्गम है। यदि रास्ता दुर्गम है और तीक्ष्ण है तो उस पर चलने वाला कट नहीं सकता, उस रास्ते पर चेतन-सहित मन चलेगा। किन्तु संयम से रहो; पापों से बचो और संभलकर उस पर चलो। गुरुनानक देव ने कहा है–

"खन्निअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा"–कितनाहूँ सूक्ष्म और तेज रास्ता हो तो मन और चेतन भी बहुत सूक्ष्म है, वह उस पर चलने से कटेगा नहीं। संयम से रहिये और उस सूक्ष्ममार्ग पर चलने के लिए जानिये।

❁ संतों की दृष्टि मोटी-मोटी चीजों को भी देखती है और झीना-मार्ग को भी देखती है।

"भक्ति का मारग झीना रे।"

–कबीर साहब

"खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।"

–गुरुनानक साहब

"क्षुरस्य धारा निशितादुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयोवदन्ति।"

–कठोपनिषद्

ऐसी दृष्टि हो तो देखा जाये। मन, बुद्धि से आगे जाना होगा ईश्वर-दर्शन के लिए। जैसे गंगा-स्नान के लिए अपने गाँव से बाहर जाना होता है। किन्तु गंगा-स्नान करने से गंगा को लाभ नहीं। स्नान करने वाले को लाभ होता है। वैसे ही ईश्वर-दर्शन के लिए शरीर, इन्द्रिय से बाहर जाना होगा। उसी रास्ते में चलकर ईश्वर की भक्ति होती है। ईश्वर का दर्शन होता है। उसपर चलने से आपको लाभ होगा, ईश्वर को कुछ लाभ नहीं। वह रास्ता बाहर संसार में नहीं अन्दर में है।

"क्षुरस्यधारा वा खन्निअहु तीखी वा झीना-मार्ग"–इस महीन-मार्ग पर चलने के लिए वायुयान से या संसार में किसी तरह से जाना नहीं हो

सकता। जाने वाला कौन है ? शरीर नहीं है। शरीरों से छूटकर जाना है। जाने वाले आप हैं। पहले मन सहित आप जायेंगे। क्योंकि मन का साथ आप को है। जहाँ तक मन जायेगा, वहाँ तक आप जायेंगे। जहाँ मन नहीं जायेगा, वहाँ भी आप जायेंगे। क्योंकि मन से भी आप अधिक सूक्ष्म हैं।

❁ अन्दर-अन्दर आप जायेंगे। कहाँ से आप जायेंगे ? जागने के समय शरीर में आप जहाँ रहते हैं, योगियों ने उसको आज्ञाचक्र कहा है। इसको रहस्यवादी संतों ने कंजाकमल भी कहा है। वहाँ से जाना होगा।

''जानिले जानिले सत्त पहिचानिले, सुरत सांची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिवदृष्टि ताना।।''

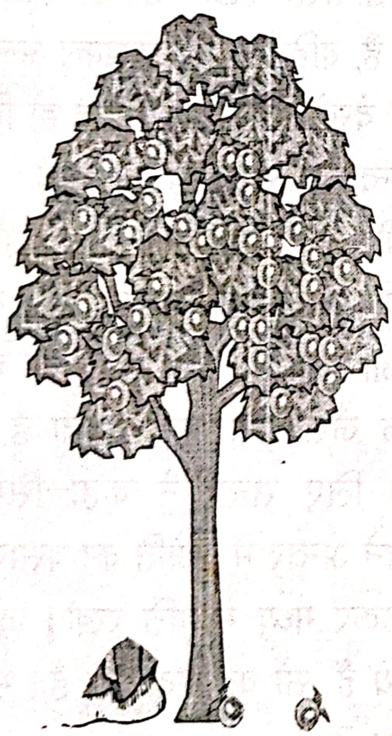
–दरियासाहब

इस वास्ते आप को जो साधन करना है, उसमें मन को बहुत एकाग्र करना है। उसका पहला स्थूल-अवलम्ब जो है, वह है जप। दूसरा अवलम्ब है–मानस-ध्यान। तीसरा अवलम्ब है–जो तुम नहीं देखे हो, उसको देखो। गुरु जिस तरह बतावें उस तरह देखो। उलटा देखो, यह रहस्यमयी वाणी है। उलटा देखने का अर्थ है, बहिर्मुख नहीं देखकर अन्तर देखो। फैली-निगाह से नहीं सिमटी-निगाह से देखो। इतना सिमटाव हो कि एक विन्दुता पर रह सको। तब समझो कि अन्दर के रास्ता पर आ गये। यहाँ से स्थूल से सूक्ष्म में जाने का रास्ता है। धीर-धीरे अभ्यास करने से होता है।

❁ यह अन्तर-मार्ग बनानेवाला परमात्मा है। यह रास्ता मिट्टी आदि किसी मसाले से बना हुआ नहीं है। इस रास्ते पर चलने वाले को अजीब आनन्द आता है। साधक जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, उसका आत्मबल भी बढ़ता जाता है। इसके लिए सन्तों ने कहा–सिमटी-निगाह से देखो, फैली-निगाह से नहीं, अपने अन्तर में ज्योति का पसार है। इसके लिए दायीं और बायीं धारों को छोड़कर मध्य में वृत्ति रखो। जो लोग खास तरह से अन्तर-साधन का भेद पाये हैं, सो वह भेद यही है। भेद जानो; लेकिन करो नहीं तो क्या मालूम होगा ?

❁ यही सन्तमत है कि सब को एक पथ पर लाओ। वह रास्ता एक ही है–अन्तर-पथ। लोग कहते हैं कि एक गाँव में आने के लिए अनेक रास्ते हैं, इसी तरह एक ईश्वर के पास जाने के अनेक रास्ते हैं। मैं कहता हूँ, रास्ता

अनेक नहीं है। उपासनाएँ अनेक हैं, रास्ता एक ही। जैसे भोजन करने का इस देश, उस देश, सभी देश के लोगों का रास्ता एक ही मुँह है। राम की, शिव की, कृष्ण की, देवी की, मसीह की, मुहम्मद आदि की, इन सब की उपासनाएँ हैं। इन अनेक उपासनाओं को लोग अनेक रास्ते कहते हैं। सो ये अनेक रास्ते नहीं हैं। इन उपासनाओं से अन्तःकरण में पवित्रता और मन में एकाग्रता का बल होगा, जिसके कारण उस स्थान पर ध्यान किया जा सकेगा, जहाँ से अन्तर का रास्ता खुलेगा। बड़े-बड़े लोग भी इस बात को नहीं जानते, वे अपनी विद्या-बुद्धि में भूले हैं।





श्री सद्‌गुरवे नमः



आध्यात्मिक जागरण

❀ तुम्हारे निकट परमात्मा विराज रहे हैं; किन्तु तुम सोये हुए हो।

जन्म लेते हो तब सोते हो, मरते हो तब सोते हो, स्वर्ग जाते हो तब सोते हो तुम सभी अवस्थाओं में सोये रहते हो। जगने के लिए सन्त कबीर साहब कहते हैं और इसके लिए कहते हैं "गुरु के निकट जाकर ज्ञान प्राप्त करो।" सुनना, समझना और विचारना जब तक होता रहता है तब तक परमेश्वर याद रहते हैं; सचेतता रहती है; किन्तु तुरन्त ही उसको भूल जाते हैं और अचेतता आ जाती है। केवल समझने में ही नींद नहीं टूटती। आप अभी जगे हैं, कुछ देर पूर्व सोये थे, तो आपको स्वप्न भी हुआ होगा और सुषुप्ति भी हुई होगी फिर जगे हैं। यह सोना-जागना कैसे होता है, इसको समझिये। इस शरीर में आपके रहने का एक केन्द्रीय स्थान है। जाग्रत् में एक स्थान में, स्वप्न में दूसरे स्थान में और सुषुप्ति में तीसरे स्थान में होता है। स्थान-भेद से ज्ञान-भेद होता है। स्वप्न में अचेतता रहती है। अभी जो हमलोग जगे हैं, यह भी सन्त कबीर साहब के ख्याल से सोना ही है। मेरा जाना हुआ है कि जिस तरह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के तीन स्थान हैं, उसी तरह एक चौथी अवस्था और स्थान भी है, जिसमें संसार की ओर से सोया रहता है, और अन्तर में जगता रहता है; लेकिन वह स्वप्न अवस्था नहीं है। उसमें जो रहता है, उसको वह बड़ा विचित्र मालूम पड़ता है। स्वप्न में वाह्य विषय की ओर जैसे मन रहता है, उस समय वैसा नहीं होता। उस समय में वह कुछ आन्तरिक रस पाता रहता है, जिसको कह सकते हैं ईश्वर-सम्बन्धी विशेष वस्तु, जिसको पाते रहने पर ईश्वर की ओर रहता है, विषय की ओर नहीं। उस अवस्था को तुरीय अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में जो जागता है, वह ईश्वर की ओर जाता है।

❀ **"मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिये सपन अनेक प्रकारा।।**
यहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।"

मोह मानी अज्ञानता। असत् ज्ञान में जबतक रहते हैं, तबतक सोये रहते

हैं। यह मेरी चीज है, वह उसकी चीज है, यह ज्ञान स्वप्न का ज्ञान है। अनेक प्रकार में जो विविधता देखते हैं वा शत्रु-मित्र का जो ज्ञान होता है, वह मोह-निशा में सोते-सोते होता है। इसमें जगते हैं कौन ?

"यहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।"

गोस्वामी तुलसीदास जी के ख्याल में योगी जगते हैं। योगी कैसे जगते हैं ? तो वे कहते हैं–

"सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।"

❀ संसार से भागो! लेकिन बाहर संसार में भागकर कहीं जाओ, संसार से बच नहीं सकते। जगो, जगने से मालूम होगा कि किधर रास्ता है? कहाँ से रास्ता आरम्भ होगा ? रास्ता खतम होने पर परमात्मा का दर्शन होगा। हमलोग रोजमर्रा शरीर के अन्दर आते-जाते रहते हैं–तीन अवस्थाओं में। संत बताते हैं–इन तीन अवस्थाओं से ऊपर उठो। तब जो जगना होगा, वह ठीक जगना होगा। अभी जो हमलोग जगे हैं, वह स्वप्न है। लेकिन स्वप्न में स्वप्न मालूम नहीं होता। जगने पर मालूम होता है कि स्वप्न था। इसी तरह चौथी अवस्था में जाओ, तो यह जगना स्वप्न हो जायेगा।

❀ अज्ञानता की नींद में क्या सोते हो ? इस नींद से उठो। जागो। साधारण निद्रा की बात नहीं, मोह की नींद में आप सोये हैं। चाहे आप बैठे रहें, चलते रहें मोह की नींद में हैं। उठो, भजन करो, मोह छूटेगा। लोग कहेंगे–"हम कब सोये हैं ? हम तो चलते फिरते हैं।" लेकिन गोसाईं तुलसीदास जी कहते हैं–

"मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिये सपन अनेक प्रकारा।।"

❀ **"सपने सोया मानवा, खोल देख निज नैन।**
जीव पड़ा बहु लुट में, ना कछु लेन न देन।।"

अगर जग जाओ तो "कोउ काहू का है नहीं" यह प्रत्यक्ष हो जायेगा। यदि समझो कि यह बौद्धिक-जगना है, तो बौद्धिक-जगना मनन में होता है। मनन स्थिर रहता नहीं है। तब क्या तुम जग सकोगे ? जगने में ही, फिर जगने कहते हैं–'खोल देख निज नैन' यह कौन आँख है ? जिससे तुम

भीतर देखोगे, वह आँख है। हाड़, चाम, मांस का शरीर है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे अन्दर अन्धकार है। इसके बाद ज्योति-मण्डल है। बिना ज्योति के आँख में रोशनी कहाँ से आती है ? इस आँख को खोलो, जिससे अन्तःप्रकाश मालूम हो।

अन्तर के नेत्र हैं, उससे देखो। अन्तर में देखने की जो कोशिश होती है, उसी कोशिश से आँख को खोला जाता है। उस आँख के खुलने से तीन अवस्थाएँ नहीं रहती हैं। जैसे सोये थे और जग गये तो संसार को देखने लगे। उसी तरह तीन अवस्थाओं से पार हो गये तो अन्दर में देखते हैं। इसलिए भजन करो। उठो और देखो।

तीन अवस्था से परे चौथी में जाओ तब जगना होगा। आरोहण होगा। इसी को पलटू साहब ने कहा है–

"रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलावा।"

❁ सांसारिक-सुख मिले, यह लोभ है। इस लोभ के झोरे में संसार के सब लोग हैं। असत्य को सत्य मानते हैं, असत्य को ही सत्य समझकर मानते हैं कि इसी से हमको सब सुख मिलेंगे–यह मोह है। तुम लोभ-मोह से छूटकर ऊपर उठो। ऐसी अवस्था प्राप्त करो कि संसार-सुख का लोभ तुमको नहीं हो। असत्य-जगत्, जो सत्य-सा प्रतीत होता है, इस मोह से ऊपर उठकर रहो, यही जागना है।

❁ अभी हमलोग जगे हैं; लेकिन मोह-नींद से नहीं जगे हैं। स्वप्न में भी कुछ ऐसा ही व्यापार होता है, जैसे यहाँ। तीसरी अवस्था होती है, उसमें हम अचेत पड़े रहते हैं। अपने चेतनमय-स्वरूप से मूढ़मय-रूप में रहते हैं, ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। इसमें रहना भी मोह में रहना है। सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत सबमें हम मोह में रहते हैं। इन तीनों अवस्थाओं से छूटकर कैसे भागा जाये ? और बिना मोह से छूटे सुख-शान्ति भी नहीं।

अज्ञान की रात में सभी सोने वाले अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं। मायात्यागी, सारतत्त्वदर्शी योगीजन इस संसाररूप रात में जगते हैं।

❁ **"मेरी सुरत सुहागिन जाग री।"**

–कबीर साहब

सुहागिन उस श्रीमती को कहते हैं, जो अपने पति से प्यार की जाती

है। जो अपने पति से प्यार नहीं की जाती, वह दुहागिन है। चेतन-आत्मा को भी संतों ने स्त्री रूप माना है। वह सदा ईश्वर से प्यार की जाती है। जब यह सोई रहती है, तब अपने पति रूप परमात्मा को नहीं देख पाती है।

"माया मुख जागै सभै, सो सूता कर जान।
दरिया जागै ब्रह्म दिशि, सो जागा परमान।।"

जो माया मुख जागते हैं, वे मोह-निशा में सोये रहते हैं। जो ब्रह्म की ओर जागते हैं उनका असली जागना होता है।

ब्रह्म की ओर योगी के अतिरिक्त और कोई नहीं जग सकते। कोई कितना भी कुछ रटते रहो परन्तु जग नहीं सकते हो। जिसका विश्वास डोलता रहता है, उससे काम नहीं चलता। कितना भी रटोगे पर जगोगे नहीं। शरीर के अन्दर आँख का स्थान जगने का है। आँख में नहीं रहते, तो बाहर संसार को देख नहीं सकते।

❁ जाग्रत में मोह होता है। मोह एक प्रकार की नींद है। यहाँ से जगने के लिए आँख से ऊपर उठना होगा।

"तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनन्त।।"

—गो० तुलसीदास

यह ब्रह्म की ओर का जगना होगा। ईश्वर की ओर जगना उस धार की ओर लगना है, जो हमें नीचे नहीं गिरने दे। इसी को भजन कहते हैं।

❁ चेतन-आत्मा को जिधर नहीं जाना चाहिये, उधर भी जाती है। इसलिए जगने कहते हैं। भजन में लगने से जगना होगा। मोह-लाभ में जगना, जगना नहीं है, सोना है। असार तत्त्व के त्याग का और सार तत्त्व के ग्रहण का सुरत या जीव को ज्ञान होना चाहिये। तब वह उठा और जगा। यह त्याग और ग्रहण केवल विचार से नहीं होगा। स्वप्न में केवल विचार हो कि जग जायें-जग जायें, तो केवल कहने से जगते हो या कोई स्वाभाविक क्रिया होती है ? जाग्रत से स्वप्न में जाने के लिए बाहर के ख्याल छूटते हैं। स्वप्न में इसका ख्याल मन में होता है, तो विविध स्वप्न देखते हैं। जगने और सपने में अन्तर्मुखी होना और बाहर होना स्वाभाविक है। जगने के स्थान से दूसरे स्थान में जाने से दूसरी अवस्था हो जाती है। लोभ-मोह में हम नहीं

रहें, सार को पकड़ें ऐसा ज्ञान होने पर भी भूल-भटक जाते हैं। ऐसा क्यों ? इसलिए कि जगने के स्थान में नहीं हैं।

❁ सोये आदमी को जगने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। जगने पर आवश्यकता मालूम पड़ती है। उसी तरह जो मोह-निशा में सोये हुए मानव हैं, उनको जगना आवश्यक नहीं मालूम पड़ता; लेकिन जगना आवश्यक है। जागकर देखो। जगने के लिए दो तरह से जागो। पहले श्रवण-मनन करके, पीछे साधना करके।

❁ एक यत्न है, इससे जानिये कि जीव की बैठक आज्ञाचक्र में है। आँखों के अन्दर जब रहना होता है, तो जागने की अवस्था में रहते हैं। जागने से स्वप्न में जाने लगते हैं, तब एक अवस्था और होती है, उसको तन्द्रा कहते हैं। उस समय ऐसा लगता है कि हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। जोर करने पर भी बोल नहीं सकते। शक्ति भीतर की ओर खिंची जाती है। होते–होते स्वप्न में चला जाता है। स्वप्न में भी कभी-कभी कोई बोलता है। कभी चीख मारने पर, चिल्लाने पर बाहर के लोग भी सुनते हैं। लेकिन यह बोल आता कहाँ से है ? स्वर और व्यंजन में हम लोग उच्चारण करते हैं। स्वर का स्थान कंठ है। सोलह स्वरों का स्थान कंठ है। इसको षोड़शदल कमल भी कहते हैं। जब हम गहरी नींद में आते हैं, तो बोल नही सकते हैं। फेफड़े के स्थान में होते हैं, शरीर-हृदय में होते हैं। तब हम श्वास को लेते हैं, और अपने से कुछ अनुभव नहीं होता। वहाँ व्यञ्जन है। द्वादश दल कमल है–पाँच कवर्ग, पाच चवर्ग, ट और ठ। षोड़शदल कमल में स्वप्न रहता है। द्विदल में जगना होता है और आँख के ऊपर रहना होता है तुरीय में। वहाँ कैसे जाया जाये ? ध्यानयोग के अभ्यास से।

श्री सद्गुरवे नमः



अन्तर्गमन



इन्द्रियों से छूटने का उपाय सीखो। बाहर पर्वत पर जाओ या मक्का जाओ या पवित्र स्थान में जाओ या जगन्नाथ जी जाओ; कहीं जाओ, इन्द्रियाँ साथ रहेंगी। अपने अन्दर चलो। पहले मोटी इन्द्रियों से, फिर सूक्ष्म इन्द्रियों से छूटोगे। जाग्रत में इन्द्रियों के संग रहते हो। स्वप्न में बाहर की इन्द्रियाँ छूट जाती हैं। नाक में इत्र का फूहा रहने पर भी स्वप्न में उसकी सुगन्ध नहीं मालूम होती। अपने अन्दर में प्रवेश करो।

देह के सब अंगों को आँख से देखते हो, किन्तु आँख को देखने के लिए आँख ही है। वैसे ही परमात्मा को आत्मा से ही पहचानोगे। बाहर से भीतर जाने में सब ख्यालों को छोड़ना होगा। इसके लिए अनेक पीढ़ियों के संस्कार की, दीर्घोद्योग की तथा दृढ़ ध्यानाभ्यास की अत्यन्त आवश्यकता है।

देखने-सुनने के लिए सिनेमा जाना नहीं है। एक साधु को बाबू ने बड़ी जिद्द करके सिनेमा दिखाया। खेल समाप्त होने पर उक्त बाबू ने साधु से पूछा–"क्या देखा?" साधु ने कहा–"जो कुछ खेल देखा, अंधकार में।" सिनेमा देखने में पैसा बर्बाद और समय बर्बाद होता है; ऐसा क्यों करते हो ? इसलिए कि अपने अन्दर देखना नहीं जानते हो। जो अपने अंदर देखना जानते हैं, उनको बाहर में इन सबको देखने में रूचि नहीं होती। देखकर चलो, नहीं तो काँटा गड़ेगा। एक तो इस आँख से देखते हैं, फिर रूह के नैना से देखते हैं।

आप लोग नित्य प्रति सोते हैं। सोते समय जाग्रत से स्वप्न में जाते समय, शक्ति भीतर को खींचती है, हाथ-पैर कमजोर होने लगते हैं। बाहर शरीर कहाँ है कुछ पता नहीं। मुँह में मिश्री रहने पर भी उसका स्वाद नहीं। देह तो मर नहीं गया, श्वास तो चलता ही रहता है। देह के अन्दर ही रहे और बाहरी ज्ञान से शून्य हो गये। बाहरी वस्तु का ज्ञान नहीं रहा। बाहरी विषय उसके पास धर दीजिये, किन्तु उसको उसका ज्ञान नहीं होता। वह

भीतर चला गया है। मानसिक धार–चेतन-धार असली चीज है और उसी से सब इन्द्रियाँ सचेष्ट हैं। वह धारा इन्द्रियों की घाट से सिमट गई, स्वाभाविक ही सिमट गई। हमारे-आप के करने से नहीं। जिस समय अन्तर्मुख होता है उस समय बड़ा सरूर वा चैन मालूम होता है। कोई इन्द्री अपने विषय में नहीं, फिर भी चैन। जिस वक्त उस ओर सरकाव होता है शरीर ढीला होता जाता है। उस समय कोई खट-खुट कर दे नींद टूट जाये तो बहुत दुख होता है। एक विचित्र चैन तन्द्रा में मालूम होता है। खाने-पीने की कोई चीज नहीं, फिर भी आनन्द। सोते समय अन्तर मुखी होते हैं, जब आप सोने लगते हैं तब संकल्प–ख्याल छूटते जाते हैं। छूटते-छूटते सब छूट गये और आप गहरी नींद में चले गये। इससे जानने में आता है कि भीतर जाने के लिए ख्यालों को छोड़ना पड़ेगा। भीतर जाने के लिए बाहरी इन्द्रियों का संग छोड़ना होता है।

❀ सुनिये, समझिये और अपने अन्दर में चलिये। जबतक अपने अन्दर नहीं चलें, तबतक आध्यात्मिकता पूरी नहीं हो सकती। आत्मा की तरफ लोग दो तरह से चलते हैं। एक आत्म-उपासी बनकर अपनी खोज में आप जाते हैं। यह ज्ञान का पथ है। दूसरा भक्ति-मार्गी बनकर; वहाँ भक्त, भक्ति, भगवंत, तीनों यानी त्रिपुटी रहती है।

❀ अंतर्गति में चैन मालूम होता है। कोई जगा देता है तो बुरा मालूम होता है। अन्दर की ओर चलोगे तो शरीर-इन्द्रियों का संग छूटेगा, चैन मालूम होगा। जाग्रत में आपका स्थान कहीं है और स्वप्न में कहीं, सुषुप्ति में कहीं। जाग्रत् में चेतन जहाँ रहता है, स्वप्न में उससे नीचे घसकता है। चाहिये तीन अवस्थाओं से ऊपर जाना। अपने को ऊपर उठाने के लिए बहुत अच्छा यत्न है कि अपना सिमटाव करना। बिस्तरे फैले हुए हैं, समेट लो तो ढेर हो जायेगा। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। मन और चेतन-आत्मा का सिमटाव होता हुआ चेतन-आत्मा चौथी अवस्था में चला जायेगा और बाहर संसार का ज्ञान नहीं रहेगा।

❀ जैसे भूखे को खाने के सुख को समझाने की जरूरत नहीं होती। जो खाता है, उसके सुख का अनुभव वह स्वयं करता है। उसी तरह अपने

अन्दर की ओर होते जाओ, विचित्र चैन मालूम होगा रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श आदि के भोगों में वह सुख नहीं मिल सकता। इन इन्द्रियगम्य सुखों से विशेष अन्दर का एक विलक्षण सुख मालूम होता है, जो सुख प्राप्त करना सबको सुलभ है, लेकिन अफसोस है कि लोग इस पर ध्यान नहीं देते। तन्द्रा में ऊपर नहीं उठा जाता है। तन्द्रा से स्वप्न में नीचे जाना होता है। स्वप्न से गहरी नींद में उससे भी नीचे जाता है। इसमें अवस्था बदलती है। अन्दर चलने की बात यहीं तक नहीं है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से ऊपर चलने की भी बात है। जागने की अवस्था में ही एक ऐसी क्रिया करो, जिससे मन का सिमटाव हो। सिमटाव के कारण मन की स्वाभाविक ही ऊर्ध्वगति होगी। ऐसी ऊर्ध्वगति होगी कि उसमें नीचे नहीं गिरने पाओगे। मन में मजबूती रहेगी। जो कोई इस गति को पाने के लिए यत्न करते हैं, वे इसका साधन करते हैं।

❀ सबके लिए यह सुख पाने का साधन ईश्वर-भक्ति है, अन्तर का मार्ग है। जो इस अन्तर-मार्ग को जानते हैं, उनपर मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। यह ज्ञान सद्ग्रथों, गुरु-ज्ञान द्वारा और तर्क बुद्धि से सिद्ध है। इसके लिए साधन करो अर्थात् अन्तस्साधन करो। अन्दर जाने का भेद गुरु से जानो।

❀ जाग्रत के बाद अधनीनियाँ होती है। कुछ जगा जैसा मालूम पड़ता है और कुछ सोया हुआ। संसार से कुछ-कुछ विस्मृत होता जाता है। साथ-साथ यह भी मालूम होता है कि शरीर के भीतर जा रहा हूँ। होते-होते तन्द्रा छूटती है और स्वप्न-संसार में प्रवेश करते हैं। शरीर में रहते हुए स्वप्न का संसार देखते हैं। उस समय स्थूल इन्द्रियाँ कोई काम नहीं करती हैं। गहरी नींद में चले जाओ तो सूक्ष्म-इन्द्रियों से बाहर हो जायेगा। यद्यपि वहाँ विचार कुंठित है, फिर भी बुद्धि के अन्दर रहते हो। क्योंकि सोकर उठने पर कहते हो कि अच्छी तरह सोया। अपने अंदर-अंदर जाने से यह काम होता है। इतने ही में अंत नहीं है। इससे ऊपर की अवस्था में जाओ। जिसको चौथी अवस्था—तुरीय कहते हैं।

"तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवंत ।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत ।।"

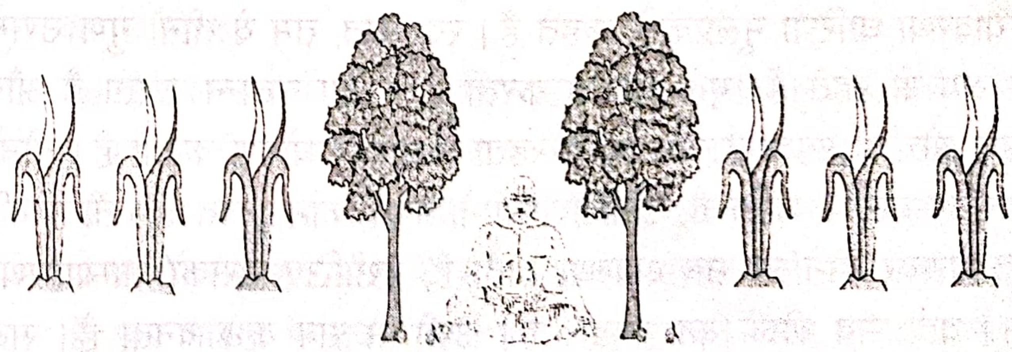
इसकी युक्ति गुरु बताते हैं। तीन अवस्था से आगे बढ़ोगे तो तीन

अवस्था के काम गौण हो जायेंगे। अपने को स्थूल-इन्द्रियों के ज्ञान से उठा हुआ पाओगे। मन-बुद्धि से भी ऊपर उठ सकते हो, जबकि इससे भी आगे बढ़ो। आगे जाने का सहारा मौजूद वहाँ है। वह सहारा है अन्तर्ज्योति वा ब्रह्मज्योति और अन्तर्नाद वा ब्रह्मनाद। इसके सहारे से इतना ऊपर उठता है कि मन-बुद्धि से भी ऊपर उठ जाता है। फिर प्रकृति का झीना आवरण रहता है। उससे ऊपर कौन ले जाता है ? ब्रह्मनाद। यह ईश्वर का असली नाम है। इसके आकर्षण से झीना परदा भी छूट जायेगा और ईश्वर को प्रत्यक्ष पाओगे। कृत-कृत्य हो जाओगे। न संसार में आओगे और न संसार का दुःख लौटेगा।

❀ सूर्य-उदय नहीं हो तो संसार का क्या हाल होगा, समझो। कोई शब्द नहीं हो तो संसार का क्या हाल होगा, समझो। उसी तरह अन्तः प्रकाश और अंतर्नाद के बिना साधक की अंतर्जगत में प्रगति नहीं हो सकती।

❀ देवालय में अपने शरीर को पवित्र करने जाते हैं। आपका शरीर भी देवालय है, उसमें प्रवेश करने के लिए पवित्र होकर जाइये। पवित्र होना कैसे होगा ? झूठ नहीं बोलो। चोरी नहीं करो। नशा नहीं खाओ-पियो। व्यभिचार मत करो। हिंसा नहीं करो। विचार से भी छोड़ो और ध्यान भी करो।

❀ प्रकाश में दाखिल होना चाहिये और भी आगे बढ़ना चाहिये। आगे बढ़ने की बात यह है कि वह जिस तरह से कोई पुकार होती है, उसी तरह चलना है। बारीक रास्ते में कोई पुकार होती है, उससे चलना है, जैसे कोई बाँग दे।



श्री सद्गुरवे नमः



सृष्टि-क्रम और उसका विस्तार

इस संसार को देखकर स्वाभाविक ही प्रश्न होता है कि पहले का कौन पदार्थ है ? यहाँ हम देखते हैं कि एक के बाद दूसरा पदार्थ है। जैसे पहले पृथ्वी फिर पृथ्वी के ऊपर रहने वाले पदार्थ। इससे आगे बढ़ने पर मालूम होता है कि इससे भी पहले सूर्य बना। बिना सूर्य के पृथ्वी बन नहीं सकती। यह स्थूल पृथ्वी है। स्थूल बिना सूक्ष्म के नहीं बन सकता। आपके शहर में बड़े-बड़े मकान हैं। इतना बड़ा ताजमहल पहले मन में नक्शा बनाये बिना बाहर में बन सकता था ? उन दिनों में भी बड़े-बड़े कारीगर थे। महल बनवाने वाले के कहने के अनुकूल मन में नक्शा बनाया होगा वा कागज पर नक्शा बनाया होगा अथवा छोटा-सा मिट्टी का वा पत्थर का बनाया होगा। मन में बने बिना बाहर में नहीं बन सकता। बिना कारण के कार्य नहीं होता। कारण होना चाहिये अर्थात बीज होना चाहिये फिर सूक्ष्म होना चाहिये और तब स्थूल। यह सूर्य और सूर्य के ऊपर जो कुछ भी दूरबीन से देखे जायें, सभी स्थूल हैं। इसलिए स्थूल, सूक्ष्म और कारण मानना पड़ता है। कारण एक ही नहीं हैं इसीलिए कारण की खानि को महाकारण कहते हैं। महाकारण किसको कहते हैं ? इसमें तीन गुण हैं—रज, सत् और तम। इन तीनों के काम संसार के प्रत्येक पदार्थ में होते हैं। इससे पता चलता है कि ये बिल्कुल-के-बिल्कुल एक ऐसे मशाले से बनें है कि जिसमें तीनों गुण मिलते हैं। मूल में ऐसा एक मशाला मानना पड़ता है जिसको त्रयगुणात्मिक साम्यावस्था धारिणी मूलप्रकृति कहते हैं। रज, सत, तम ये तीनों गुण उसमें सम रूप से रहते हैं। एक विनाश करता है, दूसरा उत्पन्न करता है और तीसरा बीच में रहता है, जो थाम्हे रहता है अर्थात् पोषण करता है। तीनों में बराबर-बराबर शक्ति है, इसलिए अपने-अपने काम करते हैं। तीनों की शक्ति बराबर होने से सम अवस्था होती है, इसीलिए उसको साम्यावस्था कहा। वही सब बीजों का भण्डार है। उसी से सब कुछ बनता है। सब कारणों का वह भण्डार है। उसको प्रकृति कहो या महाकारण। अनेक पिण्ड

और अनेक ब्रह्मांड प्रकृति के जिस अंश से बनते हैं, वह कारण रूप है। कुम्हार पृथ्वी से थोड़ी-थोड़ी मिट्टी लेकर वर्तन बनाते हैं। कब से वर्तन बनते हैं, पता नहीं। वर्तन बनते जाते हैं फिर भी पृथ्वी है ही। महाकारण से पिण्ड ब्रह्मांड बनने के लिए जो अंश लिया जाता है वह कारण होता है और महाकारण रहता ही है। इस तरह बाहर ब्रह्मांड की यह बात है।

❁ जड़ में कोई ज्ञान नहीं होता, इसलिए एक ज्ञानमय पदार्थ भी मानना पड़ता है, जिसको चेतन कहते हैं। गीता के पढ़ने वाले जानते हैं कि भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि मेरी दो प्रकृतियाँ हैं–परा और अपरा। यही चेतन और जड़ दोनों प्रकृतियाँ हैं, इसी से सृष्टि होती है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि चेतन कोई भिन्न वस्तु नहीं है। जड़-जड़ के मेल से चेतन हो जाता है, लेकिन इसका बोध नहीं हो सकता। शर्वत बनाने में पानी और चीनी मिलाकर उसमें सौंफ नहीं मिलाया जाये तो सौंफ का स्वाद अथवा गुण उस शर्वत में नहीं हो सकते। इसी तरह जिस मिक्सचर औषधि में जो दवा नहीं मिलाई जाये उस दवा का गुण उस मिक्सचर औषधि में नहीं हो सकता। जड़-जड़ के मेल से ज्ञानमय पदार्थ हो जाये मानने योग्य नहीं है।

❁ संतों ने कहा इस सृष्टि का नियन्ता परमात्मा है। उनकी मौज से यह सृष्टि हुई।

जैसे मिट्टी से हँड़िया गढ़ दो, इस तरह कुछ नहीं था तब सृष्टि बना दी। कबीर साहब कहते हैं–**''प्रथम एक सो आपे आप।''**

❁ परमात्मा ने सृष्टि की, चाहे द्वैत मानो वा अद्वैत। जब उन्होंने सृष्टि की, तो पहले कम्प हुआ बिना कम्प के कुछ नहीं बन सकता। आदि सृष्टि के लिए आदि कम्प अवश्य हुआ। चाहे उन्होंने कम्प बनाया या सृष्टि की, कुछ कहना होगा।

❁ ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान है कि यह संसार ईश्वर-कृत है, अपने आप नही है, ईश्वर की माया है। ईश्वर के संग-संग लगी रहती है, सो नहीं। ईश्वर की मौज से हुई है और जब होती है कि कुछ नहीं रहे तो नहीं रहती है। जैसे बाजीगर लोग तमाशा देखाते हैं। वह तमाशा बाजीगर के साथ नहीं रहता है, जब चाहता है, तब तमाशा होता है। उसकी विद्या उसके पास है। जब चाहता है, तब तमाशा बन्द कर देता है। उसी तरह यह संसार ईश्वर

की माया है। मौज है, तब तक है। नहीं रखना चाहेंगे तो नहीं होगा।

ईश्वर की मौज सृष्टि के लिए हुई तो कम्प हुआ। ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये त्रिदेव ईश्वर-कोटि के देवता हैं। सृष्टि-संभाल के लिए इन तीनों रूपों का धारण हुआ। लेकिन सबसे प्रथम का जो है, वह किसी शून्य में माना जाए, सो नहीं।

आपलोगों को विश्वास हो गया है कि चन्द्रलोक भी पृथ्वी की तरह है। वह भी भूमण्डल है। तारे भूमण्डल में हैं। पृथ्वी की तरह वे सब भी शून्य में लटके हुए हैं। इतना भार फिर लटके हुए हैं, यह ईश्वर की शक्ति है। इनको इतने कायदे पर रखा गया है कि ग्रह चलते हैं और कभी किसी को ठोकर नहीं लगती।

सृष्टि को साजने वाले परमात्मा हैं। किसको कैसे बनाऊँ इसका पूर्ण ज्ञान उसको ही है, इसलिए वह विज्ञान-स्वरूप है। भौतिक-विज्ञान के वैज्ञानिक संसार-भण्डार से कुछ लेकर कुछ निर्माण करते हैं। बिना उपादान के कुछ बना नहीं सकते। जैसे कुम्हार पण्डित वर्तन बनाते हैं, उसका उपादान मिट्टी है। परमात्मा ने सृष्टि को बनाया है, उसका उपादान प्रकृति है। ईश्वर इस उपादान को भी बनाते हैं। भौतिक-वैज्ञानिक मूल-उपादान को नहीं बनाता। प्रकृति से परमात्मा सृष्टि का सृजन करता है—

"तदि अपना आपु आप ही उपाया।
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया।।"

यह शक्ति मनुष्य में नहीं है। भौतिक-वैज्ञानिक उपादान नहीं बनाया। परमात्मा उपादान को भी बनाते हैं।

यह सृष्टि जो देखते हो, इसके उपादान को भी बनाकर ईश्वर ने सृष्टि को साजा। परमात्मा और भौतिक-विज्ञानी की शक्ति बराबर नहीं हो सकती; क्योंकि भौतिक-विज्ञानी बिना उपादान के कुछ बना नहीं सकता। और परमात्मा उपादान को भी बनाता है।

हमलोग सृष्टि को अपने-ही-अपने हो गई सो मानने वाले नहीं हैं। इस पर बहुत बहस भी होती है। एक दूसरे को हरा भी देता है। लेकिन हार कोई मानता नहीं है। सृष्टि के तत्त्वों के साथ-साथ सृष्टि-फैलाव के साथ-साथ ईश्वर रहा। सृष्टि के स्थूल-सूक्ष्मादि भेदों के साथ-साथ ईश्वर हो गया।

सृष्टि के जितने दर्जे और फैलाव हैं, सबके साथ-साथ होकर ईश्वर हैं।

❁ सृष्टि के पूर्व केवल परमात्मा और कुछ नहीं। परमात्मा ने यह संसार बना लिया। कोई कहते हैं कि सब कोई ध्यान करके ईश्वर में मिल जाएँगे, तो संसार कैसे रहेगा। मैं कहता हूँ कि परमात्मा फिर बना लेंगे।

❁ कोई कहे कि सृष्टि नहीं बनी है, यह मानने योग्य नहीं। सूर्य नहीं तो सौर–जगत् नहीं। पहले सूर्य भी नहीं; एक प्रकार का घोर–उष्म–वाष्प, उससे फिर सूर्य। कम्प होने के कारण उस घोर-उष्म-वाष्प के अनेक टुकड़े हुए। सूर्य को हम देखते हैं कि शून्य के अन्दर है। यहाँ तक इस सिलसिले से है कि पहले शून्य, उसके अन्दर घोर-उष्प-वाष्प, उससे फिर सूर्य और सौर--जगत्। पहले सूर्य हो, पीछे शून्य हो; मानने योग्य नहीं है। क्रमबद्धता से एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद फिर और सृष्टि हुई। अवश्य ही इस क्रमबद्धता के आरंभ का काल नहीं बताया जा सकता। हम सृष्टि-जगत् को ही माया कहते हैं। इसके मूलस्वरूप को, जिसमें जगतवत् विविधता नहीं है, त्रयगुणात्मिक-साभ्यावस्था-धारिणी मूल-माया वा प्रकृति कहते हैं।

❁ इस सृष्टि को देखते हैं। यह सृष्टि आप-ही-आप है, यह कहना व्यर्थ है। यह पाँच तत्त्वों का शरीर और पाँच तत्त्वों का संसार है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं देखते हैं। नहीं देखने पर भी कुछ और है, उसको त्रयगुण कहते हैं; क्योंकि बिना तीन गुणों के सृष्टि नहीं हो सकती। रजोगुण-उत्पादक-शक्ति, सतोगुण–पालक-शक्ति और तमोगुण–विनाशक-शक्ति है। रज, सत, तम और पाँच तत्त्व मिलकर यह संसार है।

❁ प्रभु परमात्मा के अधीनस्थ परा और अपरा; दोनों प्रकृतियों में यह सृष्टि का व्यापार उनकी प्रेरणा से होता रहता है। यह विश्व घटमाल (रहट-घरियों) की भाँति घूमा करता है।

श्री सद्गुरवे नमः



मानव-तन और इसकी विशेषता

※ बिना ईश्वर-भक्ति का जीवन असार है। वह मनुष्य शरीर वाला जीवन पशु-जीवन हो जाता है। पशु खाने का उद्योग करता है; चरने जाता है, यह भी उद्यम ही हुआ। चिड़िया दाना-चारा खोजती फिरती है। इस तरह जलचर, थलचर, नभचर सभी अपने-अपने योग्य उद्योग कर्म करते हैं। अपने-अपने भोजन की खोज में सभी रहते हैं। बगुला ध्यान लगाये बैठा रहता है मछली के लिए।

मनुष्य की तरह ही पशु-पक्षियों को काम-क्रोध होता है। कीट-पतंग को भी काम विकार होता है। इनके अन्दर ईश्वरीय ज्ञान का पता नहीं। बगुले को पानी के किनारे मछली के लिए ध्यान लगाते तो देखते हैं; लेकिन सुखी जमीन पर कभी देखा है कि बगुला ध्यान लगाकर बैठा है ? खाना-पीना आराम से रहना-यदि इतना ही मनुष्य में रह गया, तो मनुष्यत्त्व क्या है ?

※ मनुष्य को चाहिये कि ईश्वर की भक्ति को जाने और करे। बिना ईश्वर-भजन का जीवन असार है। दुनिया में सभी अपना-अपना काम करते हैं। कोई ऑफिस में जाकर, कोई खेत आदि में। यह जीवन पशु-जीवन है, यदि इससे ईश्वर-भजन नहीं करे। पशु को अपना अच्छा आचरण रखने का ज्ञान नहीं है, मनुष्य में इसका ज्ञान है। ईश्वर की भक्ति और अच्छा आचरण, ये दो बातें मनुष्य में हैं, तो ठीक मनुष्य है, नहीं तो वह पशुवत् है।

※ आपलोगों को यह बहुत उत्तम शरीर मिला है। इसे पाकर आप साँप, बिच्छू भी बन सकते हैं और देवता भी बन सकते हैं। पाप कर्म करेंगे; अर्धम कर्म करेंगे, तो फिर साँप, बिच्छू बनेंगे और सदाचार का पालन करेंगे; भगवद् भजन करेंगे; पाप नहीं करेंगे, तो देवता-तुल्य हो जायेंगे।

※ पशु-पक्षी भी सुख का जीवन पसंद करता है। वे खाने-पीने, इन्द्रियों के भोग में प्रतिष्ठा में रहते हैं। प्रतिष्ठा के लिए ही साँड़-साँड़ से, बिलाड़-बिलाड़ से लड़ते हैं। यदि मनुष्य भी प्रतिष्ठा के लिए ही जीवन

बितावे तो मनुष्य पशु से क्या श्रेष्ठ हुआ ? जैसे जो घोड़ा अच्छी चाल चलने जानता है, तो उसका विशेष मूल्य होता है। मनुष्य भी जो अधिक विद्या जानते हैं, उनकी अधिक प्रतिष्ठा होती है। किन्तु इतने ही में कोई विशेष नहीं हो जाते हैं। एक शिक्षित पशु अच्छा काम करता है और मनुष्य भी उसी तरह रहता है, तो क्या विशेष है! मनुष्य केवल विद्वान्, धनवान, प्रतिष्ठावान होकर रहे तो यह कोई विशेष बात नहीं है। इन्हीं बातों में अपना काम खतम मानना ठीक नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि अविद्वान्, निर्धन और अप्रतिष्ठित होकर रहे। तात्पर्य यह है कि वह पशु की तरह न रहे। पाशविक वृत्ति न रखे। इन्द्रियों के अधीन न रहे।

❁ एक चिड़िया बहुत अच्छी तरह गाती है। सीटी देती है। चोंचा पक्षी सुन्दर घर बना लेता है। इसी तरह यदि मनुष्य भी कारीगरी जानता है और पढ़ा-लिखा है, तो उसकी विशेषता नहीं। विचारवान् नहीं तो पूरा मनुष्य नहीं। मनुष्य कहते हैं विचारवान् को। मनुष्य को चाहिये कि इन्द्रियों को काबु करके संसार में रहे। संतों ने इसी की विशेष तारीफ की है।

❁ बड़े भाग्य से मनुष्य तन मिला है। यह शरीर देवताओं को दुर्लभ है, ऐसा सद्ग्रन्थों ने भी गाया है। ऊँचे कुल, धनवान, बलवान हैं, इसलिए आपका बड़ा भाग्य है, ऐसा नहीं कहा। बल्कि मनुष्य-शरीर मिला है, इसलिए बड़ा भाग्य है। लोग समझते होंगे कि मनुष्य देवता को पूजते हैं, देवता मनुष्य -शरीर क्यों चाहेंगे। उपनिषद् की एक कथा है। उपनिषद् उसको कहते हैं, जिसमें प्राचीनकाल के ऋषियों ने अपना विचार प्रकट किया था। उपनिषद् की कथा इस प्रकार है—एक समय ब्रह्मा जी के पास देव, दानव और मानव तीनों गये। तीनों ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि हमलोगों को उपदेश दिया जाये। ब्रह्माजी ने तीनों को अपने उपदेश में मात्र 'द' कहा। उसमें ब्रह्मा जी ने देवों को दमन अर्थात् इन्द्रिय दमन-दानव को दया और मानव को दान की शिक्षा दी। मनुष्य से देवता माया की शक्ति अधिक रखतें हैं। किन्तु दमनशील का स्वभाव उनमें नहीं है। इसीलिए मनुष्य का शरीर वे चाहते हैं कि मनुष्य-शरीर से इन्द्रिय दमन होगा।

अर्जुन स्वर्ग गये थे। उनकी सुन्दरता देखकर वहाँ की अप्सरा मोहित हो गयी। उसने एकान्त में अपनी मनोभावना अर्जुन के सामने प्रस्तुत की,

परन्तु अर्जुन अविचल रहे। इस पर उस अप्सरा ने असन्तुष्ट होकर अर्जुन को शाप दिया। देवताओं को इन्द्रिय-दमन की शक्ति नहीं है।

❁ यह शरीर साधन का घर है। जो साधन करना चाहे, इस शरीर में रहकर हो सकता। जिस तरह एक कोई भण्डार हो, उससे जो लेना चाहो, ले लो। उसी तरह यह शरीर साधनों का भण्डार है। इससे जो कीजिये, सो होगा। आप सर्कसवाले को देखते होंगे, कैसा-कैसा खेल दिखाता है यह सब साधन उन्होंने किया है। यह तो स्थूल साधन है। हमारे यहाँ ऋषि-मुनि योगी लोग हो गये हैं। उन लोगों ने इन्द्रियों को दमन किया है, जिनको दमन करना कठिन है।

❁ इस शरीर में मोक्ष का द्वार भी है। शरीर के जितने तल हैं, संसार के भी उतने ही तल हैं। जब हम स्थूल शरीर में रहते हैं, तो हम स्थूल संसार में रहते हैं। उसी तरह से सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदि शरीरों के भी जिस तल पर रहते हैं, संसार के भी उसी तल पर रहते हैं। शरीर के जिस तल को छोड़ते हैं, संसार के भी उस तल को छोड़ते हैं। जो शरीर के सभी तलों से ऊपर उठ जाते हैं, वे संसार के सभी तलों से परे हो जाते हैं। जो शरीर से निकलता है, वह संसार से भी छूट जाता है।

❁ स्वर्ग में भी पुण्य के अन्त में दुःख ही होता है। विषय-सुख से अपने को निवृत्त करो। स्वर्ग-सुख का लालच भी छोड़ो। पशुओं के शरीर में भी इन्द्रियों के सुख का भोग है। मनुष्य भी यदि इन्द्रियों के भोगों में बरते तो पशु से क्या विशेषता हुई! मनुष्य-शरीर पाकर जो विषय में मन लगाता है, वह अमृत छोड़कर विष लेता है।

❁ अण्डज, पिण्डज, अंकुरज, ऊष्मज, इन चार खानियों में 84 लाख योनियाँ हैं। माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण के घेरे में पड़कर अविनाशी जीव सदा घूमा करता है। मनुष्य 84 लाख योनियों को भोगते हुए आया है। इसलिए इससे छूटने का उपाय करो।

❁ सावित्री का विवाह सत्यवान् से हुआ। नारद जी से सावित्री को जानकारी मिल गयी कि सत्यवान् की मृत्यु अमुक तिथि को अमुक समय में होगी। सत्यवान् के माता-पिता अन्धे थे। उनका राज्य भी छिन गया था। इसलिए वे लोग जंगल में रहते थे। सत्यवान् लकड़ी काटकर जीवन-यापन

करते थे। जब सत्यवान् की मृत्यु का समय आ गया, तो सावित्री ने सत्यवान से कहा कि आज आपके साथ मैं भी जंगल जाऊँगी। सत्यवान् ने कहा—यदि तुम मेरे साथ जंगल जाना चाहती हो, तो माताजी तथा पिताजी से आज्ञा ले लो। सावित्री बड़ी नम्रता से सास-ससुर से निवेदन करती है कि आज मैं भी पतिदेव के साथ जंगल देखने जाना चाहती हूँ। दोनों—सास-ससुर की आज्ञा हो गयी। सत्यवान् के साथ सावित्री भी जंगल गयी। जब सत्यवान् गाछ पर चढ़कर लकड़ी काटने लगे, तो ऊपर से ही वे सावित्री से कहते हैं कि मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। सावित्री ने कहा—आप वृक्ष से नीचे उतर आवें। नीचे उतरते ही सत्यवान् बेहोश हो गये। सावित्री अपने पति का सिर अपनी गोद में रखकर बैठी है। सत्यवान को लेने यमदूत आता है। लेकिन सावित्री के पातिव्रत्य के तेज के कारण वह समीप नहीं आ सका। तब यमराज स्वयं आये और सत्यवान् के सूक्ष्म–लिंग शरीर को लेकर चलने लगे। सावित्री भी यमराज के पीछे-पीछे चलने लगी। यमराज ने पूछा—तुम क्या चाहती हो ? यदि कुछ वरदान माँगना है, तो मुझसे माँगो। सावित्री ने कहा—मेरे अंधे सास-ससुर मेरे सौ पुत्रों को भोजन करते देखें और उनका खोया हुआ राज्य वापस मिल जाये। यमराज ने कहा—एवमस्तु। जब यमराज आगे बढ़े, तो सावित्री फिर उनके पीछे चलने लगी। यमराज ने पूछा—"तुमको मैंने वरदान दे दिया, अब क्यों मेरे पीछे आ रही हो ? सावित्री ने कहा— आप तो मेरे पति को लिये जा रहे हैं, मुझे सौ पुत्र होंगे कैसे ? यमराज चकित हो गये और सत्यवान् के सूक्ष्म शरीर को उसके स्थूल शरीर में वापस कर दिया।

इस कथा से जानने में आता है कि स्थूल-शरीर में सूक्ष्म-शरीर या लिंग-शरीर भी है। किन्तु ज्ञान कहता है कि केवल सूक्ष्म शरीर ही नहीं है। कारण, महाकारण और कैवल्य शरीर भी है।

❀ यह शरीर पिण्ड कहलाता है। बाहर विश्व-ब्रह्माण्ड है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड की खोज कोई पक्षी नहीं कर सकता या चार पैर वाला पशु नहीं कर सकता। स्थावर (जो अपने से कहीं जा नहीं सकता), तो यह खोज कर ही नहीं सकता। जो जंगम है, उसमें किसी को कम, किसी को विशेष ज्ञान है। स्थावर में इसके लिए ज्ञान है ही नहीं। जंगम प्राणी में भी मनुष्य के अतिरिक्त दूसरा कोई पिण्ड-ब्रह्माण्ड की खोज कर ही नहीं सकता।

❁ इस मानव-शरीर को देव-दुलर्भ शरीर कहा गया है। इसको पाकर अपने को देवता के पद से ऊपर ले जाना चाहिये। वह पद वही है, जो ईश्वर का पद है।

❁ यह शरीर विचित्र है। विश्व-ब्रह्माण्ड में जो सब तत्त्व हैं, शरीर में भी वे सब ही हैं। यदि अपने अन्दर सूक्ष्म तल पर कोई जाये, तो उसको सूक्ष्म तल पर का सब कुछ वैसा ही मालूम होगा, जैसा स्थूल तल पर रहने से उस तल का सब कुछ मालूम होता है। स्थूल तल पर आप दूर तक देखते हैं और विचरण करते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म तल पर आरूढ़ हुआ दूर तक देख सकता है और विचरण कर सकता है। स्थूल तल पर रहने से आपको मालूम होता है कि स्थूल शरीर में रहता हूँ और स्थूल संसार में काम करता हूँ। उसी प्रकार आप अपने सूक्ष्म तल पर रहें तो मालूम करेंगे कि सूक्ष्म शरीर में हूँ और सूक्ष्म संसार में विचरण करता हूँ, काम करता हूँ और देखता हूँ।

❁ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शरीर में है और सब देवता भी इस शरीर के अन्दर हैं। आँख में चन्द्र-सूर्य का, कान में दसो दिशा का, नाक में अश्विनी कुमार का, मुँह में अग्निदेव का, जिभ्या में वरुण का, हाथ में इन्द्र का और पैर में उपेन्द्र (वामन) का वासा है। पुनः मूलाधार चक्र (गुदाचक्र) में गणेश का, स्वाधिष्ठान (लिंग) चक्र में ब्रह्मा का, मणिपूरक (नाभि) चक्र में विष्णु-लक्ष्मी का, अनाहत (हृदय) चक्र में शिव-पार्वती का, विशुद्ध (कण्ठ) चक्र में सरस्वती का, षष्ठचक्र (आज्ञाचक्र) में शिव का वासा है और परम प्रभु परमात्मा भी शरीर में विराजमान हैं, जो अन्दर के सब मायिक स्थानों के परे केवल चेतन आत्मा के प्रत्यक्ष ज्ञान में आने योग्य हैं।

❁ मनुष्य शरीर के समान कोई भी शरीर नहीं है, जिसको जड़-चेतन सभी चाहते हैं। चलने वाले, नहीं चलने वाले जितने प्राणी हैं, सभी मनुष्य-शरीर चाहते हैं। मनुष्य, पक्षी चलने वाला है। और वृक्ष, पहाड़ चलने वाला नहीं है। सभी चाहते हैं कि मनुष्य-शरीर मिले। किसी मनुष्य से पूछिये कि हाथी बहुत बड़ा जानवर है, वह आप बनना चाहते हैं ? कोई पसन्द नहीं करेगा। गौ की पूजा हम करते हैं, लेकिन गौ या बैल होना कोई पसन्द नहीं करते। मनुष्य-शरीर, उत्तम शरीर है।

❁ मनुष्य-देह ठाकुरबाड़ी है, इसमें सबको सिद्धि मिलती है। हाड़-मांस

को लोग अपवित्र समझते हैं। लेकिन जब तक जीव मनुष्य शरीर में लगा हुआ है तब तक पवित्र है। संसार में जितने जो कुछ प्राणी हैं, सबसे विशेष मनुष्य है। परमार्थ-साधन, देव-पूजन, मोक्ष का साधन इसी शरीर से होते हैं। और ये हैं भी इसी शरीर के लिए। मनुष्य-शरीर ही इस काम को आरम्भ कर सकता है। और धीरे-धीरे करके समाप्त कर सकता है। और किसी शरीर में नहीं। **"सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।"** क्यों ? इसलिए कि यह शरीर सभी साधनों का घर है। जो यत्न करो, सफल होओगे। और जो मुक्ति में जाना चाहें, वे मनुष्य-शरीर में आकर ही जा सकते हैं। और किसी शरीर में नहीं।

❀ हमको चेतना चाहिये, हमको विकारों से बचना चाहिये। बैल की तरह नहीं होना चाहिये। बैल की तरह कैसे होता है ? जैसे जो एक खेत को खाता है, उसको मार लगती है, फिर वह उसी खेत में जाता है। उसी तरह जिस काम से हमको हानि होती है, पुनः उसी काम को हम करने दौड़ते हैं। काम के अधीन होकर हम गधे से भी आगे बढ़ जाते हैं। हमको चाहिये कि हम मनुष्य बनें।

❀ एक नीच कुल का लोग अगर मोक्ष का यत्न करके उसको पाता है, तो उसका सुख जैसा उनको मिलता है, उच्च वर्ण के लोग यत्न करेंगे तो उनको भी वैसा ही सुख मिलता है। आप देखते हैं कि मनुष्य ही बाघ, सिंह और हाथी को भी काबू में करके नाच-तमाशा करवाता है। आप जानते हैं कि आराधना के द्वारा देवताओं को भी मनुष्य वश में कर लेते हैं। इसलिए यह शरीर उत्तम है, जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है। इस शरीर को पाकर यदि आप पशुओं की तरह विषय में लगे रहो तो क्या होगा।

❀ मनुष्य-शरीर ही ईश्वर-भजन करने का शरीर है। किसी ने बहुत अन्न-दान किया है, तो मनुष्य-शरीर के अलावा बैल, गाय, हाथी, घोड़े के शरीर में भी उसका फल भोग सकता है। सोने, चाँदी का दान किया है, तो हमारे गुरु महाराज कहते थे कि हाथी को देखो, कितने वजन का जेवर उसकी देह पर है। लेकिन ईश्वर-भजन करो और अच्छे-अच्छे कर्मों को भी करो, तो बहुत बढ़िया।

❀ लोग ठाकुरवाड़ी और शिवालय को पवित्र रखते हैं, उनको पूजते

हैं। यह ठीक ही है; किन्तु यह शरीर रूप ठाकुरबाड़ी और शिवालय अपवित्र ही है। खेद है कि इस ठाकुरबाड़ी को हमने पवित्र रखने की कोशिश नहीं की और इसको भोग का एक साधन मात्र समझा।

❁ भगवान् श्री राम ने प्रजा को यही शिक्षा दी थी–

"एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदायी।।"

स्वर्ग-सुख वा ऐहलौकिक-सुख मनुष्य-शरीर का फल नहीं है। जो निर्विषय-तत्त्व है, उसको प्राप्त करने के लिए श्रीराम का आदेश था। विषयों का ग्रहण इन्द्रियों से होता है। इनसे जो सुख होता है, वह मनुष्य-शरीर पाने का फल नहीं। विषयों से परे जो सुख है, उसे प्राप्त करना, मनुष्य-शरीर का काम है। यह काम और दूसरे शरीर से नहीं हो सकता।

❁ तुम्हारा शरीर जो हाड़, चाम, मांस का है सो इतना ही नहीं है। अन्दर के पहले भाग में अंधकार भरा है। दूसरे भाग में प्रकाश है ओर तीसरे भाग में ध्वनि-नाद वा शब्द भरा है। विविधता इसमें भी और उन दोनों–अंधकार और प्रकाश में भी है। आखिरी में जो आदिनाद–आदि-शब्द मिलता है, वही परमनाद है। जिसके लिए योगशिखोपनिषद् में **"अक्षरं परमोनादः शब्द-ब्रह्मेति-कथ्यते"** कहा है।

❁ यह शरीर खाने और मल-मूत्र त्याग तथा भोग-विलास के लिए नहीं है। इस शरीर को तुम ठाकुरबाड़ी और शिवालय बना सकते हो और विलासमय भी। विलासी-जीवन बन्धन का जीवन होगा और शिवालय तथा ठाकुरवाड़ी बनाने से ईश्वर की ओर जाओगे। इसका यत्न गुरु से जानो। घर-गृहस्थी में रहकर भी कर सकते हो और घर-गृहस्थी छोड़कर भी।

❁ यह मनुष्य का शरीर ऐसा है कि उसकी बराबरी में देवता का भी शरीर नहीं है। राक्षसों का भी शरीर नहीं है। इसकी बराबरी में और शरीर तो क्या होगा? जिसको मनुष्य शरीर मिलता है, उसका बड़ा भाग्य है। जो साधन करना चाहो, सभी साधन इस शरीर में है। उस साधन से जहाँ तक बढ़ना चाहो बढ़ सकते हो। इस शरीर में साधन का धाम और मोक्ष का द्वार है, पिण्ड-ब्रह्माण्ड से छूट जाने का द्वार है। जो इस शरीर को पाकर परलोक नहीं सँवारता है, वह परलोक में जाकर दुःख पाता है। यह परलोक मोक्ष का

नहीं है।

❁ मनुष्य से उच्च कोई जलचर, नभचर या इतर थलचर नहीं हो सकते। मनुष्य को आत्मा-अनात्मा, सत्य-असत्य का विचार अवश्य होता है, यदि वह उसकी तरफ अपने को जरा भी लगावें; परन्तु मनुष्य के अतिरिक्त और किसी जीव को इस तरह का ज्ञान, जिस तरह का ज्ञान मनुष्य का बतलाया गया है, सम्भव नहीं। मनुष्य विचार करके असत्य की ओर से सत्य की ओर चल सकता है; किन्तु और कोई जीव नहीं।

❁ मनुष्य के अतिरिक्त और सब जीव-जन्तुओं में यह ज्ञान कि विषयों की ओर से मुड़ो और इन्द्रियों के भोगों से अपने को ऊपर उठाओ, असम्भव है। यह ज्ञान इतना विशेष है कि देवताओं को भी दुर्लभ है। इसलिए मनुष्य-देह देवताओं को भी दुर्लभ कहा गया है; यथा–

"बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।"

– श्री रामचरित मानस

इसलिए कहा गया है। शरीर मोक्ष का द्वार है। शरीर यदि एक घर है, तो सम्पूर्ण घर द्वार नहीं हो सकता।

❁ घर में द्वार और खिड़कियाँ होती हैं। बड़े-बड़े छिद्रों को द्वार और छोटे-छोटे छिद्रों को खिड़कियाँ कहते हैं। हमारे शरीर में आँख के दो, कान के दो, नाक के दो, मुँह का एक और मल-मूत्र विसर्जन के दो–ये नौ द्वार हैं और जितने रोम-कूप हैं, ये खिड़कियाँ हैं। अनेक बार जनमने-मरने से छूट जाने के लिए इसमें दसवाँ द्वार है। यह शरीर बड़ा पवित्र है। अभी हमलोगों को वही शरीर प्राप्त है। क्या हमलोगों को पशु की तरह रहना चाहिये ?

❁ शरीर का बहिरंग और अन्तरंग है। शरीर के अन्दर के शून्य में क्या है ? यह न कोई सर्जन जानते हैं, न कविराज जानते हैं। इसको योगी लोग जानते हैं, ऐसा ही सुना है। अन्तरंग के शून्य में क्या है ? वही उसकी खोज करेगा, जो अपने अन्तर में डूबेगा। इसीलिए कबीर साहब ने कहा–

कबीर काया समुँद्र है, अन्त न पावै कोय।
मिरतक होई के जो रहै, मानिक लावै सोय।।

दूसरे सन्त भी कहते हैं–

यह शरीर सागर अवगाहा। यहि कर नहिं कोई पावत थाहा।।

❀ इस शरीररूपी गुफा के अन्दर परमात्मा रहते हैं। इस शरीर में बुद्धि है। आजकल के वैज्ञानिकों ने भी माना है कि बुद्धि से क्या-क्या चीजें निकलती रहती हैं। कितनी चीजें, कितनी बातें और निकलेंगी, ठिकाना नहीं। पता लगाइये कि विज्ञान का छोर किधर है। अपने अन्दर है। भगवान् श्रीराम का राज्य किधर है, आपके अन्दर है। उस रामप्रताप-रूपी सूर्य के दर्शन से अज्ञानता जाती रहती है। काम-क्रोधादिक विकार दमित होते हैं। सुख, संतोष, विराग, विवेक आदि बढ़ जाते हैं।

❀ शरीर को नाशवान् और अपने को अनाश समझकर अपने स्वरूप को जानिये। कितना भी सुन्दर-सुडौल शरीर है, मलमूत्र के अतिरिक्त उसमें कुछ और पदार्थ नहीं है। योगवाशिष्ठ की कथा है—एक राजकुमारी की सुन्दरता पर एक तपस्वी मोहित हुआ। उसको शिक्षा देने के लिए राजकुमारी ने विरेचक औषधि ले ली, जिससे उसे बहुत दस्त हुए। उसने अपने मल को घड़ों में बन्दकर रख लिया। उसके शरीर की हालत बिगड़ गई। तब राजकुमारी ने कहा कि तुम जिस सुन्दरता पर मोहित हुए थे, वह सुन्दरता इसी घड़ों में मलमूत्र के रूप में है। तब तपस्वी को नश्वरता का ज्ञान हुआ। इसलिए कितना भी सुन्दर-शरीर हो, वह नाशवान् है।

❀ मनुष्य-शरीर सबसे विशेष शरीर है, देवता को भी दुर्लभ है। तब फिर बैल, बन्दर, पशु आदि का शरीर विशेष कैसे हो सकता है ? मनुष्य-शरीर से नीचे गिरना महाभय है।

❀ तुलसीकृत रामायण में कथा है कि एक भक्त पूजा कर रहा था। गुरु के आने पर उसने आदर नहीं किया—उठा नहीं, तो शिवजी ने शाप दिया कि तुम अजगर हो जाओगे। गुरु की प्रार्थना करने पर फिर शिव जी ने वरदान दिया। लोमस मुनि से विवाद करने पर मुनि ने शाप दिया कि तुम कौआ हो जाओ ? फिर मुनि ने कृपा करके कहा कि तुम जो शरीर धारण करना चाहोगे, वह हो जायेगा। मनुष्य का शरीर ही है, जिससे मुक्ति मिलती है और ईश्वर मिलते हैं, अन्य किसी शरीर में नहीं।

❀ तुम्हारा शरीर समुद्र है। लम्बा साढ़े तीन हाथ, चौड़ा एक हाथ देखने में आता है; किन्तु यह समुद्र है। इसका अन्त नहीं मिलता। सन्त इस

का अन्त करते हैं। शरीर का अन्त पाकर ही कोई सन्त होते हैं। मृतक होकर रहना—इन्द्रियाँ मृतक-देह में निश्चेष्ट रहती हैं। इसी प्रकार साधना में जिसकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हैं, वह मृतक-वत् है। जो मृतक है, वही इस शरीर-रूपी समुद्र में डुबकी लगा सकता है। कबीर साहब कहते हैं—

"मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ग्यान की, जामें वस्तु अनेक।।"

कबीर साहब कहते हैं—जो शरीर समुद्र के समान गहरा है, मैंने उसमें ध्यान द्वारा डुबकी लगायी। अर्थात् इस शरीर के अन्तर में प्रवेश किया तो वह वस्तु (परमात्मा) प्राप्त हुई, जिसमें अनेक प्रकार की चीजें भरपूर हैं। फिर कहते हैं—

"डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकाश।
गगन मंडल में घर किया, हीरा पाया दास।।"

अर्थात् डुबकी शरीर-रूपी समुद्र में मारते हैं और आकाश में निकलते हैं।

❀ आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करूना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

चार खानियों (अण्डज, पिण्डज, ऊष्मज और अंकुरज) में चौरासी लाख योनियाँ हैं। यह अविनाशी जीव उनमें माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण के घेरे में रहकर सदा भटकता फिरता है।

अकारण ही स्नेह करने वाले ईश्वर कभी दया करके (जीव को) मनुष्य का शरीर देता है।

जीव चार खानि, चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते-करते अन्त में मनुष्य-शरीर पाता है। ऐसे वर्णन से गो० तुलसीदास जी का इशारा जानना चाहिये कि जीव नीचे की श्रेणियों से उन्नति करता हुआ आकर सर्वोत्तम देव-शरीर से भी उत्तम मनुष्य-शरीर को पाता है। इसी ख्याल को उत्क्रान्ति-तत्त्व

या गुणोत्कर्ष तत्त्व (Evolution theory) कह सकेंगे। यदि कहा जाये कि Evolution theory में ईश्वर-कृपा से नहीं, केवल स्वभाव की ही प्रेरणा से उन्नति मानी गई है और गो0 तुलसीदास मनुष्य-देह-प्राप्ति-रूप उन्नति का हेतु ईश्वर की कृपा मानते हैं, इसलिए Evolution theory और तुलसीदासजी के इस विचार में बड़ा अन्तर है, तो जानना चाहिये कि गो0 तुलसीदास जी सरीखे परम आस्तिक, निस्सीम प्रेमी भक्त को यह कभी विश्वास नहीं हो सकता कि ईश्वर की कृपा के बिना भी कोई उन्नति हो सकती है। यदि एक भक्त कहता है कि (Nature) स्वभाव–प्रकृति में जो उत्तरोत्तर उन्नति कराने की शक्ति है, वह ईश्वर की कृपा ही है और इसी ईश्वर-कृपा को (Nature) स्वभाव-रूप जानकर Evolution theory का सिद्धांत निकालने वाले ने ईश्वर-कृपा-रहित, केवल स्वभाव से ही उन्नति होना मान रखा है, तो इस बात में कोई फर्क नहीं आता कि दोनों ख्याल में उन्नति का होना (नीचे से ऊँचे की ओर दरजे-ब-दरजे, उत्तरोत्तर) माना गया। और इसी ख्याल को Evolution theory वा 'गुण विकास तत्त्व' कह सकेंगे। यदि एक ख्याल ने इस तत्त्व को 'ईश्वर-कृपा' कहकर जाना और दूसरे ने केवल (Nature) वा स्वभाव कहकर, तो क्या क्षति, जाना तो दोनों ने एक ही तत्त्व को।

श्रीरामकृष्ण परमहंस जी की वाणी

मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। एक तो मानुष और दूसरे 'मान-होश'। जो मनुष्य भगवान के लिए व्याकुल होते हैं, वे 'मान-होश' हैं और जो कामिनी-कांचन (विषय) में उन्मत्त रहते हैं, वे (साधारण) मानुष हैं।



हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।
साधन धाम विवुध दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हो।।

श्री सद्गुरवे नमः

विप्र-महिमा और वर्ण-विचार



❀ **"प्रथमहिँ विप्र चरन अति प्रीति।**
निज निज धरम निरत श्रुतिरीती।।"

– श्री रामचरित मानस

पहले विप्र (वेद-ज्ञाता) के चरण में अत्यंत प्रेम हो और वेद की रीति से अपने-अपने धर्म में लगा रहे।

विप्र, वेद-विद्या में निपुण को कहते हैं। प्रेम से विप्र की सेवा और सत्संग करने वाले को वेद-रीति और सत् धर्म में लगने का ज्ञान होगा, और उसे वेद का सार तत्त्व वेदान्त–आत्म-ज्ञान का श्रवण और मनन ज्ञान होगा। राम भक्ति प्राप्त करने के अधिकारी ब्राह्मण से डोम-चंडाल-यवन-पर्यन्त सब-के-सब हैं। वेदान्त का श्रवन-मनन ज्ञान प्राप्त किये बिना विषय से विराग होना असम्भव है। विप्र की सेवा करके विषय से वैराग्य प्राप्त करके राम-भक्ति में प्रेम होगा, वही भक्ति के साधन का सुगम पंत है। वेदान्त ज्ञान (चाहे किसी भाषा में हो) प्राप्त करने का अधिकार संसार के सब वर्णों, सब जातियों–बल्कि मनुष्य-मात्र को है।

❀ **सापत ताड़त परुष कहन्ता।**
विप्र पूज्य अस गावहिँ सन्ता।।

– श्री रामचरित मानस

ब्राह्मण शाप देने वाला, मारने वाला और कटुवादी होने पर भी पूज्य है, ऐसा संत लोग कहते हैं।

शिक्षित यथार्थ ब्राह्मण यदि शाप देंगे वा कटु वचन कहेंगे, तो जिसके प्रति ऐसा बर्त्ताव होगा, उसका अहित न होगा।

"गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट।।"

–संत कबीर साहब

इस वचन में शिष्य के लिए जो लाभ प्रकट होता है, वही लाभ उसको

होगा, जिसको सच्चा ब्राह्मण शाप देंगे—मारेंगे वा कटुवचन कहेंगे। इसीलिए सुशिक्षित यथार्थ ब्राह्मण शापदाता होने पर भी पूज्य कहे जाते हैं।

"पूजिय विप्र सील गुन हीना।
सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना।।"

– श्री रामचरित मानस

शील-गुण से रहित ब्राह्मण को पूजना चाहिये, (क्योंकि) ज्ञान के गुणों में निपुण छोटा नहीं होता है।

सील गुन= सच्चाई और नर्मी से बर्त्ताव करने का गुण। सूद्र= क्षुद्र= छोटा= नीच।

इस चौपाई का तात्पर्य यह है कि यदि ब्राह्मण शिक्षित है, उसमें ज्ञान का गुण अर्थात् जानकारी या विद्या है, परन्तु शीलता का गुण नहीं है, तो भी वह पूज्य है; क्योंकि विद्या-रूपी रत्न उस (ब्राह्मण) से प्राप्त किया जा सकता है। जिनका आदर नहीं किया जायेगा, अपूज्य मानकर जिनकी सेवा न की जायेगी, उनसे विद्या नहीं प्राप्त हो सकती है। इसलिए शील-गुण से हीन विद्वान् की भी सेवा करनी चाहिये, उनको पूज्य जानना चाहिये।

पर यदि ऐसा अर्थ किया जाये कि चौथा वर्ण शूद्र यदि ज्ञान-गुण में निपुण हो, तो भी उसे नहीं पूजना चाहिये तो यह रामचरितमानस और धर्मशास्त्र; दोनों के विरुद्ध होगा; क्योंकि रामचरितमानस के सप्तम सोपान—उत्तरकाण्ड में लिखा है कि—

"सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुवीर परायन, जेहि नर उपज विनीत।।"

यह दोहा साफ तरह से कहता है कि जिस कुल में (चाहे वह कुल चाण्डाल ही का क्यों न हो) भक्त पुरुष उपजते हैं, वह (कुल) संसार भर में पूजे जाने योग्य और अत्यन्त पवित्र है। ज्ञान और विज्ञान भक्त के अधीन है। भक्त ज्ञान-गुण में निपुण अवश्य ही होगा। फिर भक्त होने का अधिकार ब्राह्मण से चाण्डाल तक, मनुष्य-मात्र को है। और अध्याय 2, श्लोक 238 और 240 में मनुस्मृति आज्ञा देती है कि उत्तम-विद्या, उत्तम-धर्म शूद्र और चाण्डाल से भी सीखे।

"श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्री रत्नं दुष्कुलादपि।।"

❀ "सुनु गन्धर्व कहउँ मैं तोही।
मोहि न सुहाइ ब्रह्म कुल द्रोही।।"

– श्री रामचरित मानस

हे गन्धर्व! सुनो, मुझे ब्राह्मण-कुल से द्रोह करनेवाला नहीं सुहाता है। चोर, जुआरी, वेद नहीं पढ़े हुए, बहुत-से यजमानों को एक साथ बिठाकर यज्ञ कराने वाले, वैद्य, धन ठहराकर पूजा करने वाले, पुजारी, ब्याज खाने वाले, चरवाहे, आजीविका के लिए नाचने-गाने-बजाने वाले, पर स्त्री से ब्रह्मचर्य नष्ट करने वाले, मजदूरी ठहराकर वेद-शास्त्र पढ़ाने वाले, मजदूरी देकर वेद-शास्त्र पढ़े हुए, कटुवादी, घर जलाने वाले, विष देने वाले, समुद्र-यात्री, झूठी गवाही देने वाले, दूध-दही आदि रस बेचने वाले, चुगलखोर, नक्षत्र बताकर आजीविका करने वाले (जोशी), भूत-पिशाच आदि को पूजने वाले, आचार-भ्रष्ट, धन रहते हुए नित्य भीख माँगने वाले, खेती पर जीनेवाले, और भैंस पालने वाले आदि ब्राह्मणों को ब्राह्मण-पंक्ति से बाहर माना गया है।

वेदाध्ययन के लिए कहे हुए व्रतों को न करने वाले तथा परिवेत्ता आदि और पंक्ति से बाहर के ब्राह्मणों को देव वा पितृकर्म में जो भोजन कराया जाता है, उस भोजन को निस्सन्देह राक्षस खाते हैं। केवल ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने से कोई यथार्थ ब्राह्मण नहीं होता है। यदि वह कुल (ब्राह्मण-कुल) के कर्त्तव्यों के विपरीत चलता है, तो वह राक्षस तक कहलाता है। रामचरितमानस के लंकाकाण्ड में रावण के लिए कहा गया है–

"उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती।
सिव विरंचि पूजहु बहु भाँती।।"

देवों के देव ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य मुनि, उनके पुत्र विश्वश्रवा और उनके पुत्र रावण-कुम्भकर्ण हुए। रावण-कुम्भकर्ण पवित्र ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने पर भी अपने आचरणों से राक्षस कहलाये। अतएव स्वयं श्रीराम भगवान् ने उन्हें मार डाला। ऐसा कर्म करने पर भी रामजी ब्रह्मकुल-द्रोही नहीं, वरन् ब्रह्मकुल-पालक कहलाते हैं। रावण-कुम्भकर्ण ही ब्रह्मकुल-द्रोही थे; क्योंकि

वे ब्राह्मण-कुल के कर्त्तव्यों के विपरीत कर्म करते थे। इसीलिए वे श्रीराम भगवान् को न सुहाये और इसीलिए उन्होंने उनको मार डाला।

कृष्णावतार में भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत के मैदान में ब्राह्मण और गुरु-हत्या के पाप से डरनेवाले पाण्डवों के द्वारा पवित्र ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न द्रोणाचार्य को युक्ति से मरवा डाला। द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा की भी रक्षा श्रीकृष्ण भगवान् ने नहीं की।

अश्वत्थामा का प्राण केवल महारानी द्रौपदी की दया से ही बचने पाया। यद्यपि प्राण बच गया, तथापि उसकी अत्यन्त दुर्दशा श्रीकृष्ण भगवान् के सामने ही—बल्कि उनकी सहायता पाकर पाण्डवों द्वारा की गयी। यद्यपि रावण, द्रोण और अश्वत्थामा वेद-विद्या के बहुत बड़े ज्ञाता थे, तथापि कर्त्तव्यभ्रष्ट होने के कारण इनको मारने-मरवाने में ही भगवान् को अच्छा लगा।

"शूद्रेचैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः।।"

—महाभारत शांतिपर्व

जो ब्राह्मण के गुण शूद्र में दृष्टि पड़े और ब्राह्मण में वर्त्तमान न हों, तो ऐसी दशा में शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं गिना जायेगा। फिर उस गन्धर्व से, जो दुर्वासा के शाप से राक्षस हुआ था, भगवान् ने दुर्वासा का पक्ष लेकर कहा था कि **"मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुल द्रोही"** और जब दुर्वासा भक्त राजा अम्बरीष को सताने लगे, तो स्वयं भगवान् ने ही दुर्वासा के नाश के लिए अपना सुदर्शन चक्र छोड़ा था। इस चक्र से दुर्वासा तभी बचने पाये, जब ये भक्त अम्बरीष की शरण में गये। इन कथाओं से यही प्रकट होता है कि भगवान् ब्राह्मण-कुल के पालक अवश्य हैं, परन्तु रावणादि के समान ब्राह्मणों के कुल की रक्षा करने को ब्रह्मकुल-रक्षण वे नहीं मानते और नहीं करते हैं, क्योंकि ऐसे पुरुष उनको नहीं सुहाते हैं।

यथार्थ तो यह है कि भगवान् देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डाल इत्यादि किसी भी कुल के नाशक नहीं हैं। वे सभी कुल के पालक हैं। हाँ, जिन-जिन कुलों के जो-जो पुरुष दुराचारी और अभक्त होते हैं, उनके लिए वे अवश्य ही नाशक हैं।

❁ **"मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।**
मोहि समेत विरंचि सिव, बस ताके सब देव।।"

- श्री रामचरित मानस

जो मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर ब्राह्मणों की सेवा करता है, उसके वश में मेरे सहित ब्रह्मा, शिव और सब देवता रहते हैं।

"बंदउँ प्रथम मही सुर चरना।
मोह जनित संसय सब हरना।।"

- श्री रामचरित मानस

मैं पहले अज्ञान से उत्पन्न सब सन्देहों को मिटाने वाले भुदेवों के चरणों को प्रणाम करता हूँ।

पहले गणेश आदि स्वर्गीय देवताओं की वन्दना हो चुकी है, अब पृथ्वी-तल के देवताओं की वन्दना की जाती है। इनमें सबसे श्रेष्ठ देवता ब्राह्मण हैं, इसलिए पहले ब्राह्मणों को प्रणाम किया जाता है।

महीसुर= भूदेव= ब्राह्मण= विद्वान् ब्रह्मवेत्ता मोह-जनित संशयों को निस्सन्देह हर सकते हैं।

(इस) से मानना पड़ेगा कि भगवान् के प्यारे ब्राह्मण भक्ति और ज्ञान के गुण से सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार के ब्राह्मणों की सेवा करने से (उपर्युक्त दोहा में) वर्णित फल अवश्य हीं मिल सकता है। मेरे जानते तो ऐसे ब्राह्मणों की सेवा से मुक्ति तक मिल सकती है।

❁ **"पुन्य पुंज बिनु मिलहिँ न सन्ता।**
सतसंगति संसृति कर अन्ता।।
पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा।
मन क्रम वचन बिप्र पद पूजा।।"

- श्री रामचरित मानस

पुण्य-राशि के बिना सन्त नहीं मिलता और सत्संगति ही जन्म-मरण के दुःखों को नाश करनेवाली है।

इस एक पुण्य के समान संसार में दूसरा पुण्य नहीं है कि मन, वचन और कर्म से ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करनी।

ब्राह्मणों की पूजा सबसे श्रेष्ठ पुण्य है, ऐसे पुण्यों के फल से अर्थात्

ब्राह्मणों की पूजा एवं अन्य प्रकार के पुण्यों के पुंज होने से सन्त का दर्शन-लाभ होता है। इससे प्रकट होता है कि सच्चे ब्राह्मण की महिमा से सन्त की महिमा कहीं अधिक है। परन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने इस विचार को ऐसे ढंग से वर्णित किया है कि ब्राह्मण-देव के हृदय में यह बात काँटे की तरह चुभे नहीं, पर सन्त की महिमा छिपी हुई भी न रहे।

❁ **"पन्नगारि असि नीति, सुति सम्मत सज्जन कहहिँ।**
अति नीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज परम हित।।"

– श्री रामचरित मानस

हे गरुड़जी! सज्जन लोग वेद के मत से ऐसी नीति कहते हैं कि अपना परम हित जानकर नीच से भी प्रीति करनी चाहिये।

परमानन्द-दायक प्रभु की भक्ति में लगना परम हितकर है। दुराचारी पुरुष, चाहे वह किसी जाति का हो, नीच है। डोम, चमार आदि नीच वर्णों में गिने जाते हैं, परन्तु वे सब-के-सब नीच नहीं हैं। नीच वर्णों में भी उच्च चरित्र के पुरुष होते हैं। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के द्वारा उनके यज्ञ में काशी से वाल्मीकि डोम को सादर निमन्त्रित कर भोजन कराकर यज्ञ पूर्ण करवाया। परम भक्तिमती राजकुमारी मीराबाई ने अपना परम हित जानकर रविदास को, जो जाति के चमार थे, गुरु धारण किया और भक्तमाल के कर्त्ता डोम जाति के नाभाजी की मान्यता इसी विचार से स्वीकार की जाती है।

❁ **"बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे।..............."**

– श्री रामचरित मानस

क्या द्विज की बुराई करने से वंश रह सकता है ? (कभी नहीं)

योगी पुरुष योगाभ्यास करके अपने अन्तर में सूक्ष्म और कारणादि दूसरे शरीरों में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार अपने अन्तर के एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने को भी दूसरा जन्म कह सकते हैं। इसलिए योगी विलक्षण द्विज कहला सकते हैं। इनका अनहित करने वाले का भला होना सम्भव नहीं है।

❁ युधिष्ठिर के यज्ञ में एक नेवला गया। उसके शरीर का आधा भाग सोने जैसा चमक रहा था। युधिष्ठिर के यज्ञ के पानी का नाला बह रहा था। उसमें उस नेवले ने गोता लगाया; लेकिन उसका शरीर जैसे

का तैसा रहा। नेवले का जो आधा शरीर सोने-जैसा हो गया था, उसका कारण था कि एक उंछवृत्ति के ब्राह्मण के यहाँ एक अतिथि ने भोजन किया था। भोजन के लिए वे सत्तू बनाये थे। अतिथि को ब्राह्मण ने अपना हिस्सा सत्तू दिया। उससे अतिथि का पेट नहीं भरा। तब ब्राह्मणी ने अपना हिस्सा भी सत्तू दिया। फिर भी अतिथि का पेट नहीं भरा। तब ब्राह्मण के पुत्र ने अपना हिस्सा सत्तू दिया। फिर भी कसर रह गयी, तो ब्राह्मण की पतोहू (पुत्र-वधू) ने भी अपना हिस्सा सत्तू दे दिया। अतिथि संतुष्ट हो गये। खाने के बाद जो अतिथि ने हाथ धोया था, उसी पानी में वह नेवला लोट-पोट हो गया था। उससे उसका आधा शरीर सोने का-सा हो गया। नेवले ने सोचा कि जब ब्राह्मण के सतुआ-यज्ञ से मेरा आधा शरीर सोने का-सो हो गया, तो राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के जल से मेरा सम्पूर्ण शरीर स्वर्णमय हो जायेगा। लेकिन वैसा नहीं हुआ। इसीलिए नेवले ने युधिष्ठिर को भरी सभा में कहा कि आपका यज्ञ सतुआ-यज्ञ के बराबर भी नहीं हुआ।

युधिष्ठिर के यज्ञ में एक घंटा लटका दिया गया था। यज्ञ पूर्ण होने पर वह घंटा अपने आप ही बजने वाला था; लेकिन उस यज्ञ में घंटा नहीं बजा था। देवता, ऋषि, मुनि—सभी भोजन कर गए थे। श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि काशी में एक डोम (श्वपच) हैं। वे बड़े भक्त हैं। उनको आदर से बुलाकर लाओ और भोजन कराओ, तो घंटा बजेगा। श्वपच जी आये और जैसे ही उन्होंने भोजन का ग्रास मुँह में लिया कि घंटा टनाक से बज गया। राजा युधिष्ठिर का यज्ञ पूर्ण हो ग़या। यह किस्सा बताता है कि नीच वर्ण के लोगों में भी भक्त होते हैं।

❁ इस कलिकाल में भगवान् बुद्ध हुए, ढ़ाई हजार वर्ष से कुछ अधिक ही हुए। उनके समय में एक ब्राह्मण-पुत्र था। उसको गुरु ने दक्षिणा में एक हजार आदमियों को मारने के लिए कहा था। गुरु के मन में कुछ संदेह हो गया था। इसलिए उसने ऐसी दक्षिणा माँगी थी कि जिससे अनेकों को यह मारेगा, तो इसको भी कोई मार देगा। इसीलिए वह ब्राह्मण-पुत्र गुरु की आज्ञा से लोगों को मार-मारकर उनकी अंगुलियों की माला बना लेता था। इसीलिए उसका नाम ही अंगुलिमाल हो गया। उसके चलते लोगों में आतंक फैल गया, हाहाकार मच गया। सैकड़ों लोगों को उसने मारा। भगवान् बुद्ध

को जब यह सूचना मिली कि अंगुलिमाल नामक हत्यारा बड़ी निर्ममता से लोगों की हत्या कर रहा है, तो वे उसकी ओर चल पड़े। लोगों ने बहुत मना किया कि "भगवन्! उस ओर मत जायें। अंगुलिमाल बहुत बड़ा हत्यारा है। वह आप पर भी प्रहार कर सकता है।" भगवान् ने किसी की बात नहीं सुनी, सीधे अंगुलिमाल की ओर चलते रहे। जब अंगुलिमाल ने भगवान् बुद्ध को अपनी ओर आते देखा, तो जोर से भगवान् को कहने लगा—कौन हो ? ठहरो! भगवान् ने कहा कि मैं ठहरा हूँ, तुम ठहरो। भगवान् बुद्ध धीरे-धीरे चल रहे थे और अंगुलिमाल तेजी से भगवान् की ओर दौड़कर पकड़ना चाहता था, फिर भी वह नहीं पकड़ सकता था। वह दौड़ते रथ को पकड़ लेता था, दौड़ते घोड़े को पकड़ लेता था। जब वह थककर रूक गया, तो भगवान् ने उसे स्पर्श करते हुए कहा—अरे! यह क्या करते हो ? लोगों की निर्ममतापूर्वक क्यों हत्या कर रहे हो ? भगवान् का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि अपना हथियार फेंककर वह भगवान् के चरणों पर गिर पड़ा। भगवान् ने उसको समझाया, तो उसको अपने कर्मों से घृणा हुई और वह संन्यासी बन गया।

अच्छे संग से बुरे लोग भी अच्छे होते हैं और बुरे संग से अच्छे लोग भी बुरे हो जाते हैं। इसीलिए सत्संग अवश्य करो। सत्संग से अच्छे लोगों का संग होता है। अच्छे लोगों का संग दुर्लभ होता है। इसलिए सन्तों की वाणी, सद्ग्रन्थों का पाठ करो। इसीलिए हमारे यहाँ ग्रन्थों का पाठ होता है।

❀ वाल्मीकि ब्राह्मण के पुत्र थे; लेकिन संग-दोष से बटमार (लुटेरे) हो गए थे। वे लोगों का धन हरण करते थे; लोगों को मार डालते थे। अन्त में नारद जी उस रास्ते से जा रहे थे। उनको भी मारना चाहा। नारद जी ने समझाया कि तुम ऐसे नीच काम करते हो, इसका जो फल है, उसका कोई भागीदार है ? वाल्मीकि जी ने कहा कि मेरे माता-पिता, स्त्री-पुत्र भागीदार हैं। नारद जी ने कहा कि उन लोगों से तुम पूछ आओ। वाल्मीकि जी ने कहा कि हाँ! मैं पूछने जाऊँ और तुम फाँकी देकर भाग जाओ तब ? नारद जी ने कहा—तुम मुझे वृक्ष में बाँधकर रखो और परिवार के लोगों से पूछ आओ। वाल्मीकि जी ने वैसा ही किया। वाल्मीकि जी ने अपने घर पर पहुँचकर माता-पिता, पत्नी और पुत्र से पूछा कि आप लोगों के भरण-पोषण करने में

जो मुझे पाप कर्म करना पड़ता है, उस कर्म के भागी आप लोग होंगे? परिवार के लोगों ने कहा कि हम लोग पाप कर्म के भागीदार क्यों बनेंगे? आपका पाप आप जानिये। यह उत्तर सुनते ही उनके मन में चोट लगी और उनको ज्ञान हुआ। वे दौड़कर वापस आए और नारद जी के पैर पर गिर पड़े। नारद जी ने कहा कि ईश्वर-भजन करो। वे ही वाल्मीकि जी भजन करके महाज्ञानी आदि कवि हो गए।

❀ श्रीराम की सभा में सभी लोग बैठे थे। ऊँची-नीची जाति का कोई विचार नहीं। श्वपच के शरीर से उतना ऊँचा काम हो सकता है, जितना ब्राह्मण के शरीर से। नीच-से-नीच वर्ण के लोगों में भी अध्यात्म-पुरुष हुए और ऊँचे-से-ऊँचे वर्ण के लोगों में भी अध्यात्म-पुरुष हुए। नीच वर्ण के लोगों ने भी नीच-से-नीच कर्म किये और ऊँचे-से-ऊँचे वर्ण के लोगों ने भी नीच-से-नीच कर्म किये।

❀ रविदास जी में साधन-भजन का उतना ही बल था, जितना गो० तुलसीदास जी में। उच्च वर्ण के हों वा नीच वर्ण के, दोनों ने साधन किया, लेकिन दोनों पहुँचे वहाँ एक ही स्थान में। स्वरूप में कोई भेद नहीं।

"हरि की भक्ति करै जो कोई
सूर नीच सू ऊँच सो होई।।"

जैसे सोना विष्ठा में पड़ गया तो उसका दाम नहीं घटता। उसी तरह चाहे ब्राह्मण के शरीर में हो; वैश्य के शरीर में हो, चाहे शूद्र के शरीर में हो, इसकी कीमत नहीं घटती। श्वपच भगत डोम थे, रविदास जी चमार थे, किसी भी शरीर में जाने से भक्ति घटती नहीं। बात है कि अच्छे गुरु चाहिये और उनकी सेवा होनी चाहिये।

❀ घोर दुराचारी यदि अनन्य भाव से परमात्मा को भजे, तो उसके अच्छे संकल्प के कारण वह साधु मानने-योग्य होता है। वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है और सदा की शान्ति प्राप्त करता है।

प्रभु परमात्मा के भक्त को भवसागर की नाशवन्त गतियों से मुक्ति मिल जाती है। जब पापयोनि में जन्म लेनेवाली स्त्रियाँ और शूद्र, जो भी परमात्मा की शरण लेते हैं, वे परमगति पाते हैं, तब पुण्ययोनि में जन्म लेकर जो भगवान् के भक्त होते हैं, उनके लिए कहना ही क्या?

❁ प्रचार के सिलसिले में पूज्यपाद महर्षि जी को एक ब्राह्मण पंडित से मुलाकात हुई। उन्होंने आपसे कहा–"महाशय जी! धर्म-प्रचार करना तो हम ब्राह्मण पंडितों का काम है, फिर आप जाति-पेशा छोड़कर यह प्रतिकूल काम क्यों कर रहे हैं ?"

आपने तुरत ही उत्तर दिया–"पंडित जी! सचमुच यह ब्राह्मण जाति का ही काम था, परन्तु आपकी गद्दी खाली देखकर हमलोग उसपर बैठ गये हैं और आपके स्थान पर अब हमलोग आपका काम करने लगे हैं।"

श्रीरामकृष्णपरमहंस जी की वाणी

यह ठीक है कि ब्राह्मण के घर में जन्म लेने से सभी ब्राह्मण होते हैं; किन्तु उनमें कोई तो बड़े पण्डित होते हैं, कोई पुजारी होते हैं, कोई रसोई बनाते हैं और कोई वेश्याओं के दरवाजों पर भटकते फिरते हैं।

शास्त्र वचन

जन्मना जायते शूद्रो संस्कारात द्विजोच्यते।
वेदं पठति स विप्रः ब्रह्मजानाति स ब्राह्मणः।।

जन्म से सभी शूद्र होते हैं, संस्कार होने के बाद द्विज, वेदाध्ययन से विप्र और ईश्वर साक्षात्कार से ब्राह्मण कहलाते हैं।

भगवान श्री कृष्ण की वाणी

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।

शम, दम, तप, शौच, शांति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता–ये ब्रह्मण के स्वभाविक कर्म है।



श्री सद्गुरवे नमः



कर्म और उसका फल



❀ सबलोग बराबर कर्म करते हैं। कर्म दो ही तरह के होते हैं—शुभ और अशुभ। इन दोनों कर्म को करने के लिए लोग लगे रहते हैं। जो अशुभ-कर्म विशेष करते हैं, वे पापी और जो शुभ-कर्म विशेष करते हैं, उन्हें पुण्यात्मा कहते हैं; किन्तु ऐसा नहीं कि पुण्यात्मा से पाप नहीं होता। उनसे भी पाप-कर्म हो जाता है; जैसे महाराज युधिष्ठिर। लोग पाप का फल दुख भोगना नहीं चाहते। पुण्य का फल सुख भोगना चाहते हैं। पाप और पुण्य; दोनों का फल दुख और सुख है; किन्तु पाप और पुण्य; दोनों कर्म बन्धनवाले हैं। एक लोहे का बन्धन है, तो दूसरा सोने का।

❀ पाप-कर्म करके लोग दान-पुण्य-तीर्थ आदि करके चाहते हैं कि पाप नाश हो जायेगा; किन्तु ऐसा नहीं होता। महाभारत के मैदान में द्रोण के तीर से सब व्याकुल हो गये थे, उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। भगवान् ने कहा कि "झूठा हल्ला कर दो कि अश्वत्थामा मारा गया।" क्योंकि द्रोण को था कि वह अपने पुत्र की मृत्यु का नाम सुनने से मर जायेगा। अर्जुन ने भगवान् की बात को सुना ही नहीं। भीम ने अवन्ति देश के राजा के हाथी को, जिसका नाम 'अश्वत्थामा' था, मारकर हल्ला कर दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि यदि राजा युधिष्ठिर कहें, तब विश्वास करूँगा। सब लोगों और भगवान् की प्रेरणा से उनको झूठ बोलना पड़ा कि अश्वत्थामा मरा, मनुष्य या हाथी। 'हाथी' कहने के समय धीमें स्वर में कहा और 'मनुष्य' कहने के समय में जोर से कहा। उसी समय लोगों ने बाजे बजा दिये। द्रोण कमजोर हो गया और मारा गया। इस झूठ के पाप का फल युधिष्ठिर को भोगना पड़ा और नरक देखना पड़ा।

❀ भगवान् कृष्ण के संसार में नहीं रहने की खबर जब पाँचो पाण्डव और द्रौपदी को मिली, तो राज्य छोड़कर चल दिये। व्रती होकर दान देते हुए तीर्थों में भ्रमण करने लगे।

पहाड़ों में पहले घटोत्कच ले जाता था, किन्तु वह तो युद्ध में मारा गया था। ये लोग पैदल ही चलते थे। चलते-चलते द्रौपदी गिर गयी।

चारो भाई के गिरने की बात और भीम का पूछना कि ये सब क्यों गिरे ? द्रौपदी को चाहिये था कि सब भाइयों को बराबर देखना; किन्तु वह अर्जुन का पक्ष करती थी। सहदेव को पण्डिताई का घमण्ड था। नकुल को अपनी सुन्दरता का घमण्ड था। अर्जुन को अपने बल-पौरुष का घमण्ड था। जितना मनसूवा बाँधता था, उतना कर न सका। जितना काम कर न सको, उतना बोलो नहीं; इसी पाप से गिरा। भीम ने अपने लिए पूछा तो कहा कि तुम अपने बल के आगे किसी को कुछ नहीं समझते थे। युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग गये। किन्तु देवदूत उन्हें अन्धकार के मार्ग से–खराब रास्ते होकर ले चले, जहाँ बहुत दुर्गन्ध थी। लौटने लगे, तब देवमाया से अर्जुन, नकुल, भीम, द्रौपदी आदि के मुँह का शब्द सुना। दो मुहूर्त्त के बाद फिर साफ हो गया।

❀ पाप का फल भोगना ही पड़ेगा। स्वर्ग में जाकर फल भोगो। फल समाप्त हो जाये, तो फिर उसी के अनुकूल गरीब-अमीर के घर जन्म लो, दुःख-सुख सहो। मनुष्य पहले मन से कर्म करता है, फिर मन और देह–दोनों से करता है। पहले सूक्ष्म-मन से करता है। फिर सूक्ष्म-मन और स्थूल-देह से करता है। इसलिए स्थूल-जगत् में आकर स्थूल-देह और सूक्ष्म-मन के साथ सुख-दुःख भोगता है।

❀ किसी को लूटकर धन लाते हो। धन लाते समय मन कैसा रहता है ? दूसरे के यहाँ लूटने जाते हो, तब मन कैसा रहता है ? भोगते समय भी हृदय में चैन नहीं रहता। डर सदा लगा रहता है। किन्तु जो गरीब है, एक शाम भूखा ही रहता हो; किन्तु यदि वह लूट-खसोट नहीं करता है, तो वह घर में चैन से रहता है। उसे डर नहीं रहता कि कोई उसे चोर-डाकू कहकर पकड़ेगा। दान, पुण्य, तीर्थ करने से पाप कटा कि नहीं, इसकी जाँच है कि जब तुम्हारे मन में पापवृत्ति उदय न हो, तब समझो कि पाप खतम हो गया। जबतक पापवृत्ति उठती रहे, तबतक समझो कि पापों का नाश नहीं हुआ। भीम, युधिष्ठिर आदि पाँचो भाई जहाँ-जहाँ से आये थे, वहीं-वहीं गये। यह निश्चय है कि कर्मफल नहीं छूटता, सबको भोगना पड़ता है।

"काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सुनु भ्राता।।"

– श्री रामचरित मानस

कर्मफल से कोई नहीं बच सकता। जब श्रीराम और सीताजी भी कर्मफल का भोग करते हैं, तो और लोगों के लिए कहना ही क्या है।

❀ पाप करने के लिए वृत्ति भीतर में नहीं आवे, तो समझो कि पाप छूटा। ध्यानयोग करनेवाला, भगवद्भजन करनेवाला पाप के ख्यालों को छोड़-छोड़कर ध्यान में मन लगाता है। संसार में कर्म करता है, तो पुण्य-कर्म करता है। उसमें भी आसक्ति नहीं रखता; पाप करने की वृत्ति नहीं रहती। यह आजमाइश करने की बात है। ध्यान करनेवाला का मन पाप की ओर नहीं जाता।

❀ कर्म तीन प्रकार के होते हैं–क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। जो कर्म हम वर्त्तमान में करते हैं, वे क्रियमाण कहलाते हैं। क्रियमाण-कर्म ही एकत्रित होने पर संचित कहलाते हैं। उसी संचित में से जिसका भोग करने लगते हैं, वह प्रारब्ध कहलाता है।

ध्यानशील का क्रियमाण-कर्म पवित्र होते हैं, क्रियमाण-कर्म को फलाश छोड़कर करता है।

"करना सही न लेना कुछ भी, बाना झाखर झूरों का।"

मस्त आदमी का यह काम है कि पाप नहीं करे। भला-कर्म करे, तो उसका फल नहीं चाहे। प्रारब्ध-कर्म तबतक भोगेगा, जबतक शरीर रहेगा।

❀ ध्यान में सिमटाव होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। उसकी इतनी ऊर्ध्वगति होती है कि कर्म-मण्डल को पार कर जाता है, जिसके लिए गोरखनाथजी ने लिखा– **'जाता जोगी किनहुँ न पावा'।**

ज़बतक शरीर में रहता है, प्रारब्ध भोगना पड़ता है; किन्तु उसी तरह भोगता है, जैसे नशे में आदमी मस्त रहता है। ध्यानयोगी परमात्मा के पास जाता है; परमात्मा को पहचानता है। जैसे सूर्य के ताप से जाड़ा भाग जाता है, उसी तरह परमात्मा की पहचान में पाप-ताप सभी भाग जाते हैं। इसलिए सभी कोई ध्यान करो।

❀ इतिहास भी कुछ-कुछ सुनना चाहिए। इसलिए कि जो कोई

अच्छे-अच्छे कर्म किये हैं, उनके कर्मों का इतिहास सुनकर अच्छे-अच्छे कर्म करने की इच्छा होती है और इतिहास में ऐसी भी बातें होती हैं कि बुरे-बुरे कर्म करनेवाले भी लोग हुए हैं। उसका परिणाम जो दुःख होता है, उसे सुनकर लोग बुरे कर्म नहीं करेंगे।

❁ गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने फलाशा त्याग करने कहा है। कर्म करके उसको ईश्वर में अर्पण कर दो। कबीर साहब ने कहा–

"जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहिं।
कबहुँ कहैं कि मैं किया, तुमही थे मुझ माहिं।।"

यहाँ अहंकार-भाव का त्याग है। किन्तु किसी को एक लाठी मार दो और कहो कि ईश्वर! तुमने मारा, सो नहीं। संत बनने का जितने अच्छे-अच्छे कर्म हैं उसके लिए–

"जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहिं।"

❁ हमलोगों का जीवन-मन्दिर अपने सुकर्म या कुकर्मरूपी प्रतिदिन की ईंट से बनता या बिगड़ता है। जो जैसा कर्म करता है, उसका जीवन वैसा ही बन जाता है। इसीलिए हमलोगों को भगवद्भजन-रूपी सर्वश्रेष्ठ ईंटों से अपने जीवन-मन्दिर की दीवाल का निर्माण करते जाना चाहिये। जीवनरूपी जिस ईमारत को हमलोग तैयार करते हैं, वह हमलोगों के आज और कल के शुभाशुभ, अच्छे-बुरे, नेकी-बदी, धर्म-अधर्म एवं पाप-पुण्यरूपी उपादानों से ही बना है। हमलोगों के जीवन का वर्त्तमान स्वरूप आज और कलरूपी समय में किये गये कर्मों की ही संहति है या एकत्र संचयों से ही निर्मित हुआ है। इन बहुत-से आज और कल का सदुपयोग करने से ही हमारा जीवन सुन्दर, सुदृढ़ और अमर होगा। जिस भाँति सुन्दर सामान को व्यवस्थित और सुष्ठतापूर्ण श्रृंखला में सजाकर सदुपयोग कर हम सुन्दर, कलापूर्ण, सुदृढ़ स्थायी महल बना लेते हैं, उसी भाँति अपने आज और कलरूपी सामानों का सदुपयोग करेंगे अर्थात् सदा सर्वदा हम उसे पवित्र और पुण्य कर्मों में ही लगायेंगे तो निस्सन्देह हमारा जीवन सार्थक, सफल और सुन्दर बन जायेगा। समय की सदुपयोगिता सत्संग में है और ईश्वर-भक्ति या भजन से श्रेष्ठतर और कोई भी सत्कर्म नहीं है।

❁ आप कहेंगे–हम कमाते हैं, खाते हैं, ईश्वर-भजन का क्या काम

है ? दूसरे कहते हैं–ईश्वर नहीं माने तो नहीं सही; किन्तु दुनिया में प्रतिष्ठा से रहो। तो वे कहते हैं–दुनिया में धन से प्रतिष्ठा होती है। तो धन जैसे-तैसे जमाकर लो। तो कोई कहता है–नरक-स्वर्ग कहाँ है ? खाओ-पियो, धन जमा करो। पाप-पुण्य किसको लगता है ? जब तक जियो, सुख से रहो, नहीं हो तो ऋण लेकर भी घी पियो। मरने पर शरीर जलकर भस्म हो जाता है। यमराज कहाँ है, सब कल्पना है।

किन्तु ऐसा मत समझो। ईश्वर और जीवात्मा दोनों हैं। मरोगे तो जीवात्मा अवश्य रहेगा। पाप करोगे तो शरीर छूटने पर नरक देखना पड़ेगा। युधिष्ठिर जरा-सा झूठ बोले थे तो नरक देखना पड़ा था। यहाँ आप देखते हैं कि कोई बच्चा जन्म लेता है तो हृष्ट-पुष्ट और कोई बच्चा दुबला-पतला रोग लिये हुए। कोई धनी के यहाँ जन्म लेता है, तो कोई निर्धन के यहाँ। ऐसा क्यों होता है ? इसके लिए पूर्व जन्म का संस्कार मानना पड़ेगा। पूर्व जन्म के कोई दानी पुण्यात्मा होंगे, इसलिए श्रीमान् के यहाँ जन्म लेकर वे बचपन से ही सुखी रहते हैं। पाप कर्म का भी फल मिलता है। किसी को तो इसी जन्म में उसका फल मिल जाता है। सिकलीगढ़ धरहरा में एक अंग्रेज रहता था। वह मनुष्य को मनुष्य नहीं समझता था, पशु समझता था। बड़ा बदमाश था, लोगों को बहुत सताता था। कुछ दिनों के बाद वह पागल हो गया। भीख माँगकर खाया। राजदण्ड हुआ। पुलिस उसको खूब पीटती थी। उसी से चाबी लेकर उसी का धन खोल-खोलकर लेता था।

ईश्वर को मानिये। उसमें विश्वास कीजिये। स्वर्ग-नरक है, इसको भी मानिये। कर्म-फल के अनुसार नरक-स्वर्ग और सुख-दुःख भोगना पड़ेगा ही।

❀ अकर्मी में कर्मी और कर्मी में अकर्मी रहो। कर्म करो किन्तु उसके फल में आसक्ति मत रखो, यह कर्म में अकर्म है और चुपचाप बैठा है, बाहर में कुछ नहीं करता है और भीतर में कर्म करता है, यह अकर्म में कर्म है। यह पाखण्ड है। किन्तु बाहर में कुछ नहीं करे और भीतर से ईश्वर-भजन करे तो यह उत्तम है। यदि कोई माँ-बाप को मारता है और दूसरा कोई देखता है, कुछ बोलता नहीं है तो मारनेवाला तो विकर्म (निषिद्ध कर्म) करता ही है, साथ-ही-साथ वह देखनेवाला अकर्मी होते हुए भी उसके दुष्ट कर्म का भागी है।

❁ 'विकर्म' का अर्थ निषिद्ध कर्म है। महात्मा गाँधी जी तथा रामानुजाचार्य जी ने भी बताया है। इससे विपरीत अर्थ कोई करे, तो मानने योग्य नहीं है।

❁ गीता में बताया है कि मोक्ष का अधिकारी अपने को बनाकर कर्मयोग करो। जो सांसारिक वासनाओं को अपने से हटाकर निर्लिप्त रहता है, कर्म करता है, ईश्वर में अर्पण करता है, फलाश को छोड़कर कर्म करता है, वही कर्मयोगी है। आत्मरत होकर कर्म करो। यह बहुत अच्छा कहा। अपनी आत्मा में अपने को संलग्न कर कर्म करने को कहा। आत्मा क्या है ? शरीर यानी क्षेत्र को छोड़ दो, तब जो तुम हो, सो आत्मतत्त्व है। तुम इन्द्रियगम्य नहीं हो। आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है। उसमें संलग्न होकर कर्म कैसे करें ? यह तो अन्त की बात है। आरम्भ कैसे होता है, सो सुनो-अपना निशाना अपने अन्दर है, अपने उस पर लगे रहो। यह आत्मरत होने का अभ्यास करना है।

''कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान।।
सो ध्यानी परमान सुरत से अंडा सेवै।
आप रहे जल माहिं सूखे में अंडा देवै।।
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़े मुख वचन चित्त कलसा में लावै।।''

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–युद्ध भी करो और मेरा स्मरण भी करो। यह कितना कठिन काम है। तीर से तीर को काटना कितना निशाना होता होगा। और फिर ध्यान करने को कहा।

❁ हमलोग जो सत्संग करते हैं, इसका खास अभिप्राय यह है कि हम अपने कर्त्तव्य-कर्म को जानें। हम मायावश होकर कर्म करते हैं। हम कर्त्तव्य कर्मों को जानें और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करके तब कर्म करें, यह उत्तम है। बिना विचारे कर्म करना हानिकारक है। सभी जानते हैं कि कर्म का फल भोगना पड़ेगा। कर्मफल को भोगते-भोगते अनेक जन्म हो गये, फिर भी हम बन्धन में हैं। इस बन्धन से छूटे बिना हम संसार से छूट नहीं सकते। इसलिए अपने कर्म को जानने के लिए सत्संग का सहारा अवश्य चाहिये।

❁ सन्त और भगवन्त ने हमलोगों को जो कर्म की विधि बताई है, उसके अनुकूल चलने से हम कर्म-बन्धन से छूटते हैं और अन्त में संसार-

बंधन से मुक्त हो जाते हैं। जन्म-मृत्यु और इन दोनों के बीच के समय में जो हमलोगों को संसार में कष्ट होता है, उससे हम छूट जायें, यदि हम भगवान् श्री कृष्ण और सन्तों की वाणी के अनुकूल चलें।

❀ ध्यानविन्दु उपनिषद् में है कि कर्म से हम कैसे छूट सकते हैं ? हमलोग कभी सात्त्विक-भाव कभी राजस-भाव एवं कभी तामस-भाव से कर्म करते हैं। जब हम सात्त्विक भाव में रहते हैं, तो राजस और तामस-भाव भी उसमें रहते हैं, लेकिन ये भाव दबे रहते हैं और सात्त्विक की प्रधानता रहती है। इसी तरह राजस की प्रधानता होने से सात्त्विक और तामसभाव दबे रहते हैं और तामस की प्रधानता होने से सात्त्विक और राजस दबे रहते हैं। हमलोग विशेषतः तामस भाव का कर्म करते हैं, उससे कुछ राजस-भाव का कर्म करते हैं। तामस पीछे-पीछे रहता है और सात्त्विक गौण रहता है। ईश्वर कर्म-भोगों में हमको उसी तरह घुमाते हैं, जैसे कुम्हार चाक को घुमाता है या जैसे कोई कुम्हार के चाक पर घूमता हो।

❀ ईश्वर कर्म का फल देता है। वह उत्तम कोटि के सात्त्विक-बन्धन को उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और निकृष्ट तामस-बन्धन को नीचे की जीव-योनियों में भेजकर शिथिल करता है और मध्यम श्रेणी के पाश को विविध योनियों के भोग से शिथिल करता है । शिथिल करने का अर्थ है कि उसकी प्रबलता नहीं रहती है। ऐसा नहीं कि वह कर्म नष्ट हो जाता है। कर्म नष्ट कैसे हो जायेगा ? सन्तों की बताई विधि के अनुकूल चलने से हम परमात्मा को प्राप्तकर परम मोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे।

❀ जैसे श्री कृष्ण भगवान् ने बताये हैं—सात्त्विक भाव में रहने के लिए हम को क्या करना होगा ? उत्तम विचार में रहने के लिए हम को क्या करना होगा ? उत्तम विचार में रहना और साधन करना। साधन की युक्ति सन्त लोग बताते हैं कि जो साधन-भजन अन्तर्मुख होता है, वह करो।

❀ अन्तर्मुख होने के लिए किसी मर्मज्ञ से पूछते हैं तो वे कहते हैं कि तुम्हारे अन्दर तीन वृत्तियाँ हैं; बाई, दाई, और इनके मध्य। जो दाई और बाई ओर की वृत्ति है, वह राजस और तामस है, मध्य की वृत्ति सात्त्विकी है। अपने को मध्यवृत्ति में रखने का कोई यत्न बता दे तो वैसा करो। एक बंगाली योगी कहते हैं:—

"बायें इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला।
रजस्तमो गुणे करितेछे खेला।।
मध्य सत्वगुणे सुषुम्ना विमला, धर-धर तारे सादरे।।"

बहुत अच्छा कहा है। सुषुम्ना में वृत्ति रक्खो तो सात्त्विकता ही सात्त्विकता है, राजस और तामस की दखल नहीं है। जो मध्य में अपने को रख सकता है, वही सात्त्विकता में रहकर सात्त्विक कर्म कर सकता है।

❁ "अकारः पीतवर्णः स्याद्रजोगुण उदीरितः।
उकारः सात्त्विकः शुक्लो मकारः कृष्ण तामसः।।"

अ, उ, म तीनों के मेल से ऊँ बनता है। अभ्यासी अभ्यास करता है तो कभी पीले रंग का, कभी काले रंग का और कभी श्वेत रंग का उदय होता है। कालेपन में तामस-भाव, पीलेपन में राजस-भाव और श्वेतपन में सात्त्विक भाव होता है। लेकिन यह होता किसको है ? जो अन्तर की ओर चलने का अभ्यास करता है—आत्मा की ओर होता है। जो कोई अपने को मध्यवृत्ति में रखने के लिए सुषुम्ना में ठहराने की कोशिश करता है, वही यह देखता है, दूसरा नहीं। उसमें रहते हुए जो कर्म करता है, वह आत्मा की ओर अन्तर्मुखी होकर रहता है।

❁ ध्यानविन्दु उपनिषद् में है—

"यदि शैल समं पापं विस्तीर्ण बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।"

अर्थात् कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है। इसके समान पापों को नष्ट करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है। इसलिए कि ध्यानयोग के अभ्यास से अभ्यासी अपने मन को और किसी ओर नहीं जाने देने में समर्थ होता है, सात्त्विकता के भाव को रख अपने को लक्ष्य में लगाकर रहता है। सारे चिन्तनों को छोड़ता है यदि कोई चिन्तन आता है तो उसको हटाता है। इसका अभ्यास करते-करते वह सात्त्विक-भाव से भी ऊपर हो जात है। ध्यान करते-करते सिमटाव होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। ऊपर की ओर उठना होता है। ऊपर की ओर उठने का अर्थ है स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना। ऊर्ध्वगति में वह कर्म मण्डलों से ऊपर उठता है।

❀ गीता में जो आया है कि कर्मफल त्यागकर कर्म करो–आत्मरत होकर कर्म करो, सो आत्मरत होने के लिए अपना निशाना अपने अन्दर अपने को उस पर लगाये हुए रहने से होता है। यह दृष्टि-साधन है। प्रत्याहार करते-करते अपने लक्ष्य पर स्थिर होते हैं। यह आत्मरत होने का आरम्भ है। संसार में भली तरह रहिये और आत्मरत होने का अभ्यास कीजिये।

❀ श्रीमद्भगवद्गीता सिखाती है कि योगयुक्त रहकर कर्म करो, तो कर्म-बन्धन से छूटोगे, जैसे राजा जनक आदि हुए। कर्म को कोई छोड़ नहीं सकता। घर छोड़ सकता है, विरक्त हो सकता है, लेकिन फिर भी कर्म करना नहीं छोड़ सकता। शरीर के लिए संसार के लिए वह कर्म करेगा। पुरुषार्थी कर्म करे परन्तु उसका फल नहीं चाहे। फल चाहने वाला ईश्वर को नहीं चाहता। जो भोग चाहता है, वह भोग चाहने वाला बन्धन से नहीं छूटता।

❀ श्रीमद्भगवद्गीता के पाठ में आपलोगों ने सुना, भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–कर्मयोगी बनो। कर्म भी करो और उपासना भी। कर्म करने के कौशल को 'योग' कहते हैं। कला यह कि कर्म किया जाये और उसके फल से बचा जाये। इसीलिए कहा कि कर्म करके ईश्वर पर अर्पण करो। आत्मरत होकर कर्म करो। कर्मफल छोड़कर कर्म करो। कर्मफल छोड़कर कर्म करने को, लोग समझते हैं कि यह सरल है, लेकिन यह सरल नहीं है। आदमी ज्ञान तो बहुत कह सकता है, लेकिन आचरण करने में बड़ी कठिनाई होती है। बिना समत्व के ज्ञान कहना और ज्ञानानुकूल आचरण करना; दोनों एक नहीं हो सकता। इसलिए आत्मरत होने कहा। आत्मरत इस प्रकार होना होता है कि अपना निशाना अपने अन्दर, अपने उस पर लगे रहना। शाम्भवी मुद्रा और वैष्णवी मुद्रा से आत्मरत होने का आरम्भ होता है और चलते-चलते अन्त में पूर्ण होता है। ऐसे ही लोग जीवन्मुक्त कहलाते हैं, आत्मदर्शी होते हैं।

❀**"जो-जो करम कीउ लालच लगि,**
तिह-तिह आपु बंधाइउ।"

नवाँ गुरु–गुरुतेग बहादुर का वचन है। जो-जो कर्म फल की इच्छा से किये, उन-उन कर्मों से अपने को बंधा लिया। जो सांसारिक इच्छाओं को

नहीं त्याग सके, वे कर्म में फल-इच्छा से लगे रहते हैं। उनको संतपंथ पर जाने में अटक रहती है। धीरे-धीरे इच्छाएँ छूटती हैं। एक ही बार इच्छा नहीं छूटती। जब तक मन-मण्डल से ऊपर चढ़ाई नहीं हो, तब तक इच्छा रहेगी ही। चाहे वह इच्छा सात्त्विकी ही क्यों न हो ? इच्छा तीन प्रकार की होती है। तामसी, राजसी और सात्त्विकी। सात्त्विकी इच्छा ईश्वर की ओर ले जाती है। संसार में रहकर कुछ-न-कुछ इच्छा रहेगी। सात्त्विक कर्म का भी बन्धन होता है। इसलिए त्रयगुण से परे होने के लिए श्री कृष्ण भगवान् ने कहा था। त्रयगुण से परे तुरन्त होना नहीं होता। क्रमशः तामस इच्छा को छोड़ते हैं, राजस को छोड़ते हैं और सात्त्विक में आते हैं और अन्त में इसको भी छोड़ कर निस्त्रैगुण्य हो जाता है।

❁ संसार में रहकर संसार के सब कामों को छोड़कर रहे, असम्भव है। जैसे जाग्रत् में काम करते हैं, उसके लिए इच्छा होती है। स्वप्न में भी इच्छा होती है, गहरी नींद में इच्छा नहीं होती, लेकिन हाथ-पैर का वा किसी अंग का संचालन गहरी नींद में होता है। किन्तु उस अवस्था में भी हाथ-पैर सिकोड़ने की इच्छा नहीं होती है। इसी तरह कर्म करके उसके फल की इच्छा सन्तलोग नहीं करते। उनसे राजस और तामस कर्म नहीं होगा, सात्त्विक कर्म होगा।

जो मुमुक्षु हैं उनको चाहिये कि इच्छा को रोकें, दमन करें। तामस इच्छा का त्याग करें। इसी तरह राजस कर्म का भी त्याग करें। सात्त्विक कर्म में बरतने पर भी सात्त्विक इच्छा का त्याग करना चाहिए।

❁ कर्म करने के कौशल को योग कहते हैं। कौशल यह कि चित्त तो लगा रहे ईश्वर-परमात्मा में और संसार के कर्त्तव्यों का भी पालन किया जाये। जीवन-भर जो इस तरह के कर्म करते रहते हैं, उनको कर्म-बन्धन नहीं लगता है। जो कर्म-बन्धन से छूट जाते हैं, वे कर्म के अच्छे-बुरे संस्कारों से भी छूट जाते हैं।

❁ घमण्ड और तिरस्कार से किया हुआ पुण्य कर्म तामसी है, मायिक फलों को प्राप्त करने के लिए किया हुआ पुण्य कर्म राजस है। इन दोनों तरहों से बचते हुए किया हुआ पुण्य कर्म सात्त्विक है। जो ध्यान-अभ्यास की ऊर्ध्वगति में अपना बन्धक प्रभाव कुछ नहीं रख सकता है। समझना चाहिये

कि ध्यान में एक ओरता होती है। एकओरता में सिमटाव होता है, सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। आप लोग बिछौने पर बैठे हैं, इसको समेटिये तो एक ढेर हो जायेगा–ऊँचा हो जायेगा। मन के सिमटाव के कारण मन की भी ऊर्ध्वगति होती है। स्थूल से ऊँचे दर्जे में–सूक्ष्मता में प्रवेश होता है। स्थूल में सिमटाव होने से सूक्ष्म में गति होती है, इसी को पिण्ड से ब्रह्माण्ड में जाना कहते हैं। इससे जहाँ तक कर्मफल पाना है यानि प्रारब्ध का भोग है–उस मंडल को पार किया जाता है। जहाँ तक त्रैगुणी माया है वहाँ तक कर्म मण्डल है। इससे पार होने पर माया से उठा जाता है। ध्यानाभ्यास से ऊर्ध्वगति होती है, तब कर्ममण्डल के ऊपर उठा जाता है। यही उपाय है, और दूसरा उपाय नहीं है।

❀ पाप-पुण्य कर्म करते हैं। लोग पाप-कर्म के फल से डरते हैं और पुण्य-कर्म के फल को भोगना पसन्द करते हैं। बन्धन लोहा का हो वा सोना का; दोनों ही बन्धन है। उसी तरह पाप हो वा पुण्य दोनों कर्म के फल बन्धन कारक हैं।

महाराजा अशोक ने स्वयं खून किया था। एक ब्राह्मण न्यायाधीश ने इसका पता लगा लिया, तब उनको बुलाया गया। उसने अशोक की मूर्त्ति सोने की बनवा ली, फाँसी की जंजीर सोने की बनवा ली और उस सोने की मूर्त्ति को फाँसी पर झुला दिया।

❀ स्वर्ग में जाओ, तो वहाँ भी दुःख नहीं छूटता। ऊँच-नीच पद स्वर्ग में भी होते हैं। ब्रह्मा के धाम में भी अपना कर्मफल भोगना पड़ता है। राजा श्वेत अपने पुण्यकर्म के कारण ब्रह्मलोक गये। अतिथि-सत्कार नहीं करने के कारण उनको वहाँ भूख-प्यास सताती थी। ब्रह्मा ने उनको अपने मृत शरीर का माँस खाने की आज्ञा दी। यह कथा बतलाती है कि ब्रह्मलोक जाने पर भी कर्मफल पीछा नहीं छोड़ता, भोगना पड़ता है।

ऐसे ही जितने लोक-लोकान्तर हैं, सबमें यह बात है। वैकुण्ठ से ही जय-विजय गिरे थे। नारदजी मोह लेकर वैकुण्ठ गये; परन्तु वहाँ उनका मोह और बढ़ गया।

❀ परम सुखी होने के लिए बाहर भागने की जरूरत नहीं। अपने अन्दर में चलो। साधन करो। संसार के कर्म निर्लिप्त दशा में रहकर करो।

जो पाप-बुद्धि से काम करता है, उसकी निर्लिप्त दशा नहीं हो सकेगी। निर्लिप्त दशा में रहकर जो कुछ करेगा, उसको परम सुख मिलेगा, और कारागार से छुटकारा मिलेगा।

❀ कर्मफल किसी को नहीं छोड़ता। श्रीराम सीता वन गये। वे गंगा नदी के किनारे ठहरे। पत्तों के बिछौना पर श्री सीता राम लेटे थे और लक्ष्मण पहरा दे रहे थे। वहाँ गुह निषाद भी बैठा और कहा कि कैकेयी ने इनको बहुत दुःख दिया। तब लक्ष्मण जी ने कहा कि–

"काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सुनु भ्राता।।"

– श्री रामचरित मानस

भगवान् श्रीकृष्ण को भी व्याधा ने तीर से मारा। यह भी कर्मफल ही था।

❀ बूढ़ी माँ, बूढ़े पिता को कोई घर से नहीं निकालते, न निकालना चाहिये। मौद्गल्यायन भगवान् बुद्ध के बड़े शिष्य थे। उन्होंने अपने पूर्व-जन्म के किसी एक जन्म में अपने बूढ़े पिता को जंगल में छोड़ दिया था। जिसका बहुत बुरा परिणाम उनको भोगना पड़ा। चोरों ने उनके हाड़-हाड़ को तोड़ दिया। बुद्ध के यहाँ वे पहुँचे अपनी ऋद्धि के बल से; उसके बाद उन्होंने शरीर को ही छोड़ दिया। भगवान् बुद्ध की बात झूठी नहीं है। महात्मा होने पर भी प्रारब्ध अपना भोग छोड़ता नहीं। लोगों को चाहिये कि अपनी बूढ़ी माँ, बूढ़े बाप को कष्ट न दें।

❀ वृक्ष को लगाने, सींचने, निराने और विघ्नों से बचाने से उसका पालन होता है। समय पाकर उससे फल भी अवश्य मिलता है, इसी तरह सुकर्मों का फल भी अवश्य ही मिलता है।

❀ **".....कर्म कि होहिँ स्वरूपहिँ चीन्हे।।"**

– श्री रामचरित मानस

अपना स्वरूप (वह ईश्वर मैं ही हूँ) पहचान लेने पर क्या कर्म (बन्धन-प्रद कर्म) हो सकते हैं ? (कभी नहीं।)

जिस अभ्यासी की गति अहंपद को पारकर क्रम से बुद्धि-पद और साम्यावस्थाधारिणी प्रकृति मण्डल से परे होती है, वही पूरा आत्मदर्शी-स्वरूप

का पहचानने वाला है। ऐसे पुरुष ने प्रकृति-मण्डल को जीत लिया है। प्रकृति इसके अधीन हो गई, इसके चलाये चलेगी। इसी कारण प्रकृति-जनित कर्म ऐसे पुरुष को बन्धनप्रद नहीं हो सकते हैं।

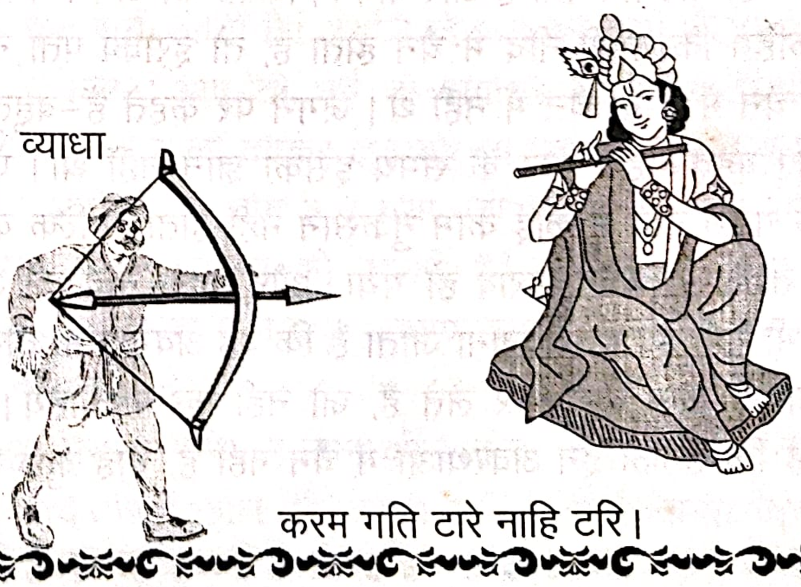
श्री रामकृष्ण परमहंस की वाणी

रेशम के कीड़े जैसे अपनी लार से अपना घर बनाकर आप ही उसमें फँसते हैं, वैसे ही संसार के जीव भी अपने कर्मपाश में आप ही फँस जाते हैं। जब वे रेशम के कीड़े तितली बन जाते हैं, तब घर को काटकर निकल जाते हैं; इसी प्रकार विवेक और वैराग्य के उदय होने पर बद्ध जीव भी मुक्त हो जाते हैं।

भगवान श्री कृष्ण की वाणी

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

कर्म करने मात्र का तेरा अधिकार है, फल (मिलना या न मिलना) कभी भी तेरे अधिकार आर्थात ताबे में नहीं, (इसलिए मेरे कर्म का) अमुक फल मिले, यह हेतु (मन में) रखकर काम करनेवाला न हो, और कर्म न करने का भी तू आग्रह न कर।



करम गति टारे नाहि टरि।

जो पाप-बुद्धि से काम करता है, उसकी निर्लिप्त दशा नहीं हो सकेगी। निर्लिप्त दशा में रहकर जो कुछ करेगा, उसको परम सुख मिलेगा, और कारागार से छुटकारा मिलेगा।

❀ कर्मफल किसी को नहीं छोड़ता। श्रीराम सीता वन गये। वे गंगा नदी के किनारे ठहरे। पत्तों के बिछौना पर श्री सीता राम लेटे थे और लक्ष्मण पहरा दे रहे थे। वहाँ गुह निषाद भी बैठा और कहा कि कैकेयी ने इनको बहुत दुःख दिया। तब लक्ष्मण जी ने कहा कि–

"काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सुनु भ्राता।।"

– श्री रामचरित मानस

भगवान् श्रीकृष्ण को भी व्याधा ने तीर से मारा। यह भी कर्मफल ही था।

❀ बूढ़ी माँ, बूढ़े पिता को कोई घर से नहीं निकालते, न निकालना चाहिये। मौद्गल्यायन भगवान् बुद्ध के बड़े शिष्य थे। उन्होंने अपने पूर्व-जन्म के किसी एक जन्म में अपने बूढ़े पिता को जंगल में छोड़ दिया था। जिसका बहुत बुरा परिणाम उनको भोगना पड़ा। चोरों ने उनके हाड़-हाड़ को तोड़ दिया। बुद्ध के यहाँ वे पहुँचे अपनी ऋद्धि के बल से; उसके बाद उन्होंने शरीर को ही छोड़ दिया। भगवान् बुद्ध की बात झूठी नहीं है। महात्मा होने पर भी प्रारब्ध अपना भोग छोड़ता नहीं। लोगों को चाहिये कि अपनी बूढ़ी माँ, बूढ़े बाप को कष्ट न दें।

❀ वृक्ष को लगाने, सींचने, निराने और विघ्नों से बचाने से उसका पालन होता है। समय पाकर उससे फल भी अवश्य मिलता है, इसी तरह सुकर्मों का फल भी अवश्य ही मिलता है।

❀ **"…..कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे।।"**

– श्री रामचरित मानस

अपना स्वरूप (वह ईश्वर मैं ही हूँ) पहचान लेने पर क्या कर्म (बन्धन-प्रद कर्म) हो सकते हैं ? (कभी नहीं।)

जिस अभ्यासी की गति अहंपद को पारकर क्रम से बुद्धि-पद और साम्यावस्थाधारिणी प्रकृति मण्डल से परे होती है, वही पूरा आत्मदर्शी-स्वरूप

का पहचानने वाला है। ऐसे पुरुष ने प्रकृति-मण्डल को जीत लिया है। प्रकृति इसके अधीन हो गई, इसके चलाये चलेगी। इसी कारण प्रकृति-जनित कर्म ऐसे पुरुष को बन्धनप्रद नहीं हो सकते हैं।

श्री रामकृष्ण परमहंस की वाणी

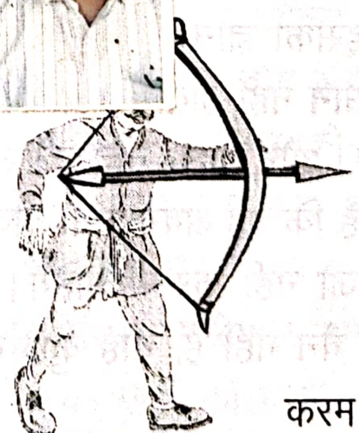
रेशम के कीड़े जैसे अपनी लार से अपना घर बनाकर आप ही उसमें फँसते हैं, वैसे ही संसार के जीव भी अपने कर्मपाश में आप ही फँस जाते हैं। जब वे रेशम के कीड़े तितली बन जाते हैं, तब घर को काटकर निकल जाते हैं; इसी प्रकार विवेक और वैराग्य के उदय होने पर बद्ध जीव भी मुक्त हो जाते हैं।

भगवान श्री कृष्ण की वाणी

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

कर्म करने मात्र का तेरा अधिकार है, फल (मिलना या न मिलना) कभी भी तेरे अधिकार आर्थात ताबे में नहीं, (इसलिए मेरे कर्म का) अमुक फल मिले, यह हेतु (मन में) रखकर काम करनेवाला न हो, और कर्म न करने का भी तू आग्रह न कर।







श्री कृष्ण

करम गति टारे नाहि टरि।

श्री सद्‌गुरवे नमः



जग में जीने की कला



पहली बात यह है कि मनुष्य जहाँ भी हो, जिस हालत में हो, वहाँ वह सोचे कि वहाँ उसका रहना कैसा है ? अच्छा है या अच्छा नहीं है। जिस हालत में वह है, उस हालत में उसको रहना चाहिये वा नहीं। बुद्धिमान लोग कहते हैं कि आपदाजनक स्थान हो, तो वहाँ नहीं रहना चाहिये। जहाँ शान्ति नहीं हो, वहाँ से उसको शान्ति के स्थान में जाना चाहिये।

हमलोग इस संसार में रहते हैं। एक गाँव के लोग जिस हालत में रहते हैं, दूसरे गाँव के लोग भी उसी हालत में हैं। तमाम संसार की यह एक ही बात है। हमलोग जगते हैं, स्वप्न में जाते हैं, गहरी नींद में जाते हैं। पुनः जगते हैं। फिर जिनसे जो काम बन पड़ता है, करते हैं। ऐसा नहीं होता कि किसी देश के आदमी सोये नहीं, जगे नहीं, जगकर काम करे नहीं। बहुत विद्वान्, अविद्वान, धनाढ्य वा निर्धन किसी भी तरह के होने पर सोना और जगना लगा ही रहता है। जगने में, स्वप्न में, गहरी नींद में हमलोग क्या-क्या फल पाते हैं, सबको मालूम है। तमाम संसार की यह हालत है।

हम दूसरों से पूछें कि आपको स्वप्न में, जगने में कैसा होता है ? यह पूछना कठिन है; क्योंकि संसार बहुत बड़ा है। किन्तु इतिहास-पुराणों को पढ़कर ज्ञात होता है कि जितने पहले हुए, अभी हैं और जो होंगे; सभी सोने-जगने में यही परिणाम पाते हैं और पावेंगे। किसी को जगने में चैन नहीं मिलता है। कहिये कि गहरी नींद में चैन होता है, तो इसका पता नहीं कि उस समय वे चैन में थे वा चैन में नहीं थे। जगने पर कहते हैं–बहुत गहरी नींद में सोया। बहुत गहरी नींद के समय इसका ज्ञान नहीं था। ऐसा भी नहीं होता कि गहरी नींद में कोई काम नुकसान नहीं होता। बल्कि कहते हैं कि सो गया तो अमुक काम खराब हो गया। और गहरी नींद की अवस्था बराबर रहती भी नहीं है। इससे जाना जाता है कि वह अवस्था भी ठीक नहीं है। लोग ऐसा भी काम कभी कर लेते हैं, जो नहीं करना चाहिये। इससे जाना जाता है कि हमको इन अवस्थाओं में चैन नहीं है, चाहे कुछ बनकर संसार में रहो।

❁ संसार में रहना ही ऐसा है कि शान्तिपूर्वक रहने का स्थान नहीं है। बिहार राज्यान्तर्गत पुरैनियाँ जिले के फारबिसगंज के एक ब्राह्मण थे, उनको बहुत कम जमीन थी। सर्वेकाल में उनकी जमीन बटाईदारों ने लिखा ली। बेचारे ब्राह्मण बहुत दुःखी हुए। बटाईदारों से मुकदमा लड़ नहीं सकते थे। इसलिए वे तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के पास दिल्ली चले गये। बहुत प्रयास और प्रतीक्षा के बाद उनको कई दिनों के पश्चात् 1 बजे रात्रि में मिलने का समय मिला। जब वे ब्राह्मण प्रधानमंत्री नेहरू जी के समीप गये तो उन्होंने देखा कि नेहरू जी अपने काम में 1 बजे रात होने पर भी बहुत व्यस्त हैं। नेहरू जी ने पूछा–"कहिये! आप क्या कहना चाहते हैं?" इन्होंने कहा–"आपको देखकर लगता है कि आपसे सुखी मैं ही हूँ। इतनी रात तक जगकर काम करने की मुझे कोई जरूरी नहीं रहती। आप इतने बड़े पद पर हैं फिर भी चैन नहीं है।" यह सुनकर पंडित नेहरू बहुत प्रसन्न हुए और इनका काम भी कर दिया। इस लिहाज से दुनिया में रहना अच्छा नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि घरवार छोड़कर गाछ के नीचे रहो। तो गाछ के नीचे रहने पर भी दुनिया कहाँ छूटी ? भूख लगने पर कंदमूल खोजने और प्यास लगने पर कुएँ की ओर जाना ही पड़ेगा। अथवा कंदमूल जंगल में नहीं मिले तो गाँव की ओर, बाजार की ओर जाना ही पड़ेगा।

❁ सबसे आसान काम किसानी है, उसमें भी झंझट है। विद्यालय कितना पवित्र होना चाहिये, उसमें भी सुनने में आता है, आपस में झगड़ा-झंझट होती है। निम्न विद्यालय, उच्च विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय की भी यह बात सुनी जाती है। अंगुलि दिखाने का काम श्रीराम से भी हो गया। बालि ने कहा–"आप तो धर्म के अवतार हैं, आपने छिपकर मुझे क्यों मारा ?" युधिष्ठिर को दबकर झूठ बोलना पड़ा। अर्जुन ने कह दिया–"भाई साहब ! आपको वह दोष लग गया, जो श्रीराम को लग गया था।"

यह संसार काजल की कोठरी है। यहाँ कुछ-न-कुछ दाग लग ही जाता है और उसका फल दुःख अवश्य होता है। इसलिए इस संसार से भाग जाना ही अच्छा है।

❁ संसार से निकल जाने की बात यह है कि जहाँ संसार नहीं है वहाँ जाया जाये। जहाँ काल की चक्की नहीं है, वहाँ जांयाा जाये।

जहाँ काल है, वहाँ देश है। जहाँ देश है, वहाँ काल है। वहाँ Space and time (स्पेस एण्ड टाईम) को कोई अलग नहीं कर सकता। देश-कालातीत हुए बिना कल्याण नहीं।

❀ यह भी विचार लेना अच्छा है कि इस संसार में किसी भी पद पर रहो, कल्याण नहीं। महात्मा गाँधी जी ने पंडित जवाहर लाल नेहरू को मंत्री पद देने कहा, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को राष्ट्रपति बनाने कहा, लेकिन अपने उन्होंने कोई पद नहीं लिया। वे बड़े बुद्धिमान थे।

❀ संसार के ऐश्वर्य को पाकर कोई सन्तुष्ट नहीं हो सकता। पृथ्वीराज सम्राट् थे। उनकी आज्ञा के बिना उनके अधीनस्थ राजा बैठ नहीं सकते थे। लोग एक पाये के निकट खड़े रहते थे। उस पृथ्वीराज की यह दशा हुई कि उसको अन्धा करके यहाँ से ले जाया गया अफगानिस्तान। जब वह कैद किया गया और अन्धा बनाया गया, तब उसकी क्या हालत हुई, विचारें। जब दुर्योधन की सब सेना मर गई, वह तालाब में छिप गया, तब उसकी कैसी दशा हुई, पहले कैसी दशा थी, जबकि वह राजा था ? अर्जुन जब पंजाब में लूट लिये गये, तब उनकी कैसी दशा हुई ? बड़े-बड़े में भी ऐसा उलट-फेर होता है। मामूली आदमी की बात क्या ? भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि आपस में लड़ो-झगड़ो नहीं। लेकिन भगवान् की बात लोगों ने मानी नहीं। एक ही दिन में छप्पन कोटि यदुवंशी समाप्त हो गये। इसलिए यह नमूना है कि यह संसार कुशल का नहीं है। सन्तों ने बताया कि इस संसार को छोड़ो और मोक्ष प्राप्त करो, इसी में कुशल है।

❀ संसार में इसलिए रहते हैं कि हम शरीर में रहते हैं। शरीर में नहीं रहें तो संसार में भी नहीं रहें। जब से जीव-सृष्टि है, तब से हम शरीर में हैं; कभी उदभिद, कभी ऊष्मज, कभी अण्डज और कभी पिण्डज बनकर। कितनी बार हम आये-गये और इनके कितने संस्कार पड़े, ठिकाना नहीं। इनके संस्कार प्रेरित करके हमसे अकर्त्तव्य और पाप कराकर मायाधीन बनाये रखते हैं।

❀ संसार में रहने के लिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार—पंच पापों को नहीं करो। पंच पापों से बचने से ईश्वर की ओर चलने में सहायता होती है। संसार में पूज्य होकर रहोगे और लोगों में प्रतिष्ठा होगी। सब को

सब पर विश्वास होगा, सबका कल्याण होगा, तब स्वराज्य में सुराज्य होगा। सुराज्य लाने के लिए बुराइयों से बचो। जो अनिवार्य रूप से ईश्वर भजन करेगा, वह अनिवार्य रूप से परमात्मा को पावेगा। संतों का संग करो। उनके संग से धीरे-धीरे काम करते-करते खतम होगा। देश में शान्ति से लोग रहेंगे।

❀ लोग भगवान् राम के राज्य का बहुत गुण गाते हैं। हालाकि लोग नहीं जानते हैं, फिर भी देखा-देखी गाते हैं। राम के राज्य में सुख से सभी रहते थे। एक-दूसरे की सहायता करते थे, कटुभाव नहीं रहता था। प्रेमभाव रहता था। खून-खराबी, मुकदमाबाजी का भाव नहीं रहता था। लोग सदाचार-पालन करते थे। सदाचार-पालन और ईश्वर-भजन के लिए जीवन रखना है और अपने जीवन-यापन के लिए उपार्जन करो।

❀ कोई आदमी व्यभिचारी है, उसको कोई व्यभिचारी कहता है तो उसको भी अच्छा नहीं लगता है। संतों के ज्ञान के अनुकूल जीवन बिताओ। कभी-न-कभी शरीर गिरेगा। देखूँ ! कितने दिनों तक मैं रहता हूँ ? दो-चार साल कि सौ साल ? कितने-कितने योगी हुए, वे लोग भी संसार से चले गये। सत्य को असत्य कहना, असत्य को सत्य कहना ठीक नहीं। लेकिन सत्य में रहना कठिन है। कठिन में रहने वाले को पीछे सुख मिलता है।

''जीवन बिताओ स्वावलम्बी भरम भाँड़े फोड़ि कर।''

❀ हम बहुत दिन तक जीयेंगे, बहुत धन उपार्जन करेंगे, यह भ्रम है। जैसा कर्म है, वैसा मिलेगा। चाहे बेटा हो, धन हो वा अपनी तन्दुरुस्ती हो।

❀ संसार में रहने के लिए भला मनुष्य बनकर रहिये। भला मनुष्य वही होता है, जो दूसरे की भलाई करता है। पहले अपने भजन करता है, अपनी भलाई करता है। फिर दूसरे को भजन करने कहता है, दूसरे की भलाई करता है।

आपस में झगड़ा-झंझट छोड़कर रहिये, कल्याण होगा। बड़ा ईश्वर, छोटा ईश्वर नहीं होता। सभी धर्म का एक ही ईश्वर होता है। उसमें विश्वास करके उसकी प्राप्ति का साधन कीजिये।

❀ जबतक शरीर है, तबतक संसार की खबर नहीं रखने से बनता ही नहीं है, और साथ-ही-साथ शरीर की खबर भी रखनी ही पड़ती है। तो

आपस में हमलोगों को जैसा प्रेम है, यह प्रेम छूट जा सकता है अथवा नहीं भी छूट सकता है; क्योंकि अनेक जन्मों के कर्मों का फल हमलोगों को आपस में मिलाता है। इसी कारण से हमलोग आपस में मिल जाते हैं। ऐसा मिलते हैं, जैसे–

"पंथ में पंथी अनेकन, जुरे सरिता घाट रे।
नाव चढ़ि भये पार पैले, गये निज निज बाट रे।।"

तो यह कर्म जिसका जैसा होता है, उधर को ले जाता है। चाहिये कि हम ठीक से समझ लें कि हमको यहाँ कब तक रहना है, कोई अंदाजा नहीं। कोई ज्यादे उम्र तक रहते हैं। कोई कम उम्र तक रहते हैं, कोई जनमते ही मर जाते हैं। परन्तु जिनसे-जिनसे प्रेम रहता है, वे मर जाने पर भी फिर एकत्र होते हैं। आवागमन के चक्र में मिलते-बिछुड़ते रहते हैं।

❀ एक ईश्वर पर विश्वास करो, उसी का पुरा भरोसा करो। ईश्वर की प्राप्ति अपने अन्दर में होगी, इसका दृढ़ निश्चय रखो। त्रिकाल सन्ध्या करो, ध्यान करो, सत्संग करो, गुरुजनों की सेवा करो, अनासक्त भाव से रहकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करो। स्त्री, पुत्र, भाई, भतीजे, परिवार आदि के लिए अपना हृदय खीरा बना कर रखो। अन्दर सब से हटे रहो, बाहर सबसे मिले रहो। नहीं हटोगे तो भी हटना ही पड़ेगा, जबरदस्ती हटना पड़ेगा। यदि पहले से नहीं हटे रहोगे तो बहुत दुःख होगा। इसलिए संसार में अनासक्त होकर रहते हुए कर्त्तव्य पालन और परमात्म-भजन करो तो दुःख नहीं होगा।

❀ समझो कि तुम मुसाफिर हो, इसको समझने की क्या बात ? **"आये हैं सो जाहिंगे, राजा रंक फकीर"** (कबीर साहब) हमलोग यहाँ हैं और कुछ दिन रहेंगे, फिर चले जायेंगे। तो हमलोग मुसाफिर नहीं हैं तो क्या हैं ? यह सारा संसार मुसाफिर खाना है। हमलोग आते हैं और जाते हैं। एक ही मुसाफिर खाने में लोग कितनी बार आते हैं और जाते हैं, उसी तरह हमलोग इस संसार में हैं।

❀ मैंने देखा कि दो मैंने आपस में लड़ रही थीं। एक कचबचिया उधर से आई और दोनों के शिर में चोंच मारकर लड़ाई छुड़ा दी। जब चिड़िया में ऐसी बात है, तब मनुष्य को कैसा होना चाहिये ? यह ईश्वर की

तरफ से प्रेरण है कि एक दूसरे को सुख पहुँचावे।

❁ यहाँ ऐसे बच्चे हैं, जो देखते हैं कि केवल संसार के ही काम हैं। जो संसार के आगे का ख्याल नहीं रखते, वे भी बच्चे हैं। मैं कहूँगा, जिनको जीवन के बाद का ख्याल नहीं है, चाहे वे कितनी अधिक उम्र के हो गये हों, फिर भी वे बच्चे हैं, चाहे वे मेरी उम्र (83 वर्ष) के हों वा मेरी उम्र से अधिक के हों।

❁ संसार में रहता है, संसार का भोग भोगता है और संसार के लिए काम नहीं करता है, तो वह क्या है ? वह कृतघ्न है। संसार में रहता है, संसार का भोग भोगता है और संसार में कर्म करके संसार की रक्षा या संसार में उचित कर्म करके जो इसका बढ़ाना है वही नहीं बढ़ाता, तो वह कृतघ्न है। वह कृतघ्नता का पाप लेता है। इसलिए उचित कर्म करना उत्तम है और उसको छोड़ देना उत्तम नहीं है। उचित कर्म करो, कर्त्तव्य कर्म करो, अनासक्त होकर कर्मों को करो। तब ऐसा बनोगे कैसे ? एक क्षण अनासक्त, फिर आसक्त। यह कैसे छूटे ? तो आत्मरत रहो। इत्यादि उपदेश हैं।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी की वाणी

जैसे जूते पहनकर निःशंक काँटों पर से चला जा सकता है, उसी तरह 'तत्त्वज्ञान' का आवरण पहनकर मन इस काँटेदार संसार में विचरण कर सकता है।



श्री सद्‌गुरवे नमः



स्वावलम्बन और साधक का कर्त्तव्य

❋ मैंने 1904 ई0 में यह फकीरी वेश लिया। 1909 ई0 में सद्‌गुरु बाबा देवी साहब से भेंट हुई। गुरु महाराज ने कहा कि तुम क्या करने चले हो ? उन्होंने पूछा कि तुम साधु बनने चले, तुम्हारे खाने का इन्तजाम क्या है ? कुछ दिन तक टाल-मटोल रहा। पीछे उनके आदेश से इन्तजाम किया। अब जो है, उनकी कृपा से काफी है। भिक्षा मांग-मांगकर द्वार-द्वार का मेहमान बनने से संसार-परमार्थ किसी तरफ के नहीं होओगे। संसार में रहकर संसार के छूटने का काम करो, तब सुखी रह सकोगे।

❋भगवान् बुद्ध संन्यासी हुए, औरों को भी उन्होंने संन्यासी बनाया। भगवान् बुद्ध के समय में जितने संन्यासी हुए, उतने किन्हीं के समय में नहीं। केवल संन्यासी ही नहीं बनाये, राजा और सेनापति भी उनके शिष्य थे। उनको उन्होंने संन्यासी नहीं बना लिया। उनको उस तरह की शिक्षा दी। **"कर ते कर्म करो विधि नाना। सुरत राख जहँ कृपा निधाना।"**

युद्ध भी करो और स्मरण भी करो। "तन काम में, मन राम में।" "करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय।" कबीर साहब कर्म करते थे। उन्होंने अपने जीवन-यापन के लिए किसी दूसरे पर भार नहीं दिया। "थोड़ा बनिज बहुत ह्वै बाढ़ी उपजन लागे लाल मई।" संतोष उनको बहुत था। थोड़ा-सा काम करते थे, अपना जीवन-यापन जिससे हो। मतलब यह कि जो संन्यासी हो जाते हैं, उनका कर्त्तव्य हो जाता है कि वे संसार के पार को बतावें।

❋ समर्थ रामदास ऐसे थे कि वे शिवाजी राव को चलाते थे। राजा को भी अपनी राय देते थे। शिवाजी ने कहा कि मैं तप करूँगा। समर्थ ने कहा–मैं तुम्हारा तप करता हूँ, तुम तलवार लो। गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज कभी अनीति में नहीं गुजरे। बेटे मर गये, लेकिन उन्होंने शोक नहीं किया। उन्होंने समय को देखा। संसार में युद्ध-ही-युद्ध होता है।

❋ गुरु महाराज ने कहा, स्वावलम्बी बनो। जब जैसा हुआ, कमाई

की। अब शरीर उस योग्य नहीं रहा। फिर भी निगरानी करता हूँ। यहाँ आया हूँ, सत्संग-सेवा करता हूँ। यह भी तो काम ही है। गुरु जी ने कहा कि पिता जी के घर पर रहो, काम करके खाओ, नहीं तो खून खराब हो जायेगा। कभी बच्चों को पढ़ाया, कभी खेती का काम किया, चूल्हा-चौका करना, बर्तन मलना, रोटी बनाना, यह सब बहुत किया। हाथ में ठेला है। मैं गुरु महाराज की आज्ञा पालन करने से सुखी हूँ। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि ऐसा न समझो कि भजन करने वाले काम नहीं करते हैं। कबीर साहब जीवन भर अपना ताना-बाना करते रहे। रविदास जी जीवन भर जूते का काम करते रहे। दादू दयाल जी जीवन भर काम करते रहे। बाबा नानक जीवन भर गृहस्थी में रहे। सन्तों ने देश का भार होकर रहने नहीं कहा। भजन करो, काम करो। निठल्ले मत बैठो।

मैं कहता हूँ कि भोजन करो। बिना भोजन के काम नहीं कर सकते हो, ईश्वर-भजन भी नहीं कर सकते। इसलिए जिसको जो पेशा मालूम हो वह करो और ईश्वर-भजन करो। बाबा नानक के वचन में मैं कहूँगा कि–

"नानक सतिगुरु भेटिऐ पूरी होवै जुगती।
हसं दिया खेलं दिआ पैनं दिआ खावं दिआ बिचे होवे मुकती।।"

ऐसी बात नहीं कि किसी तरह से रहो, ईश्वर की ओर से खाने-पीने, पहनने के लिए मिल जाएगा। जो आदमी ऐसा सोचता है कि ईश्वर सब कुछ देंगे ही और वह कुछ करे नहीं, आलसी बनकर रहे तो उसको ऐसा नहीं होगा। गुरु नानक स्वयं हल जोतते थे। होते-होते दसवें गुरु इतने विशेष हुए कि सिक्ख-पलटन उनके हुए।

सिक्खों के अंदर एक सिक्ख राजा हुए थे। वे प्रजा का पालन करते थे। एक लेटर-बॉक्स की तरह एक बक्सा रख दिए थे और कह दिए थे कि जिसकी जो माँग हो, कुछ कहना हो, लिखकर इसमें डाल दो। उसकी चाभी अपने पास रखते थे। सवेरे खोलते थे। जिसको जो देना होता, दे देते थे। वे इतने पराक्रमी थे कि उनके समय में कश्मीर, बलुचिस्तान आदि को अंग्रेज ले नहीं सके। उसकी दाल नहीं गली। जो रणजीत सिंह के कपड़े पहनाने वाले थे, उनको कश्मीर का राज्य दे दिया।

सुस्त नहीं बनें, जीविका कर खाएँ। गवर्नमेंट (सरकार) कितने को

खिलायेगी। स्वयं पुरुषार्थ करो और खाओ। मुझसे कहो कि तुम क्या करते हो ? तो मैं कहूँगा कि कुछ खेती है और साधु जानकर लोग कुछ पैसे भी देते हैं। इस तरह गुजर होता है। सब कोई आराम से रहो, ईश्वर भजन करो। गवर्नमेंट के भरोसे या केवल ईश्वर के भरोसे पर नहीं रहो। **परिश्रम करो, पवित्र जीविका करो और तब खाओ।**

❀ हमारे गुरु महाराज कहते थे कि Self supporter (सेल्फ सपोर्टर–स्वावलम्बी) बनो। अपनी कमाई से खाओ। उनको अपनी कमाई का अपना कुछ था भी। एक बार उनके सिरहाने से एक बिच्छू निकला। साधु-सन्तों की बड़ी बात है।

❀ पहले संसार की आवश्यकता को देखिये। बाबा साहब (परम सन्त बाबा देवी साहब) कहते थे–"साधु हो गये हो, खाओगे क्या ?" नौकरी करो, खेती करो वा व्यापार करो। कोई-न-कोई रोजगार अवश्य करो। खाली पेट न गुरु रह सकते न चेला रह सकते। मेरे कहने का मतलब है–"गुरु हो, चेला हो और रोजगार भी हो। रोजगार नहीं हो तो बैठे-बैठे सब खा जाओगे, पीछे भूखे मरोगे। इसलिए रोजगार करो। भोजन का प्रबन्ध कीजिये।"

❀ कमाओ, खाओ, भजन करो। तुलसी साहब अवश्य ही पहुँचे हुए सन्त थे। लेकिन उनको खाने का इन्तजाम नहीं था। रोटी माँगते थे, खाते थे। चेला माँगते थे, गुरु खाते थे। जमाना के अनुसार काम होता है। आज के जमाना के अनुसार कोई-न-कोई रोजगार अवश्य करो। सब कोई सुस्त होकर बैठा रहो, ठीक नहीं। मैंने पहले बहुत परिश्रम किया है। खुरपी-पसनी चलाई है। कुछ सत्संगी हमारे ऐसे हैं जो न घूस लेते हैं, न घूस देते हैं।

❀ हमलोगों की राजधानी दिल्ली है। इसका पहला नाम था इन्द्रप्रस्थ। उसी के नजदीक में हस्तिनापुर राजधानी थी। वहाँ राजा कुरु रहते थे। राजा होते हुए भी खेती के लिए अपनी जमीन रखते थे, जिसको आज कुरुक्षेत्र कहते हैं। पहले यह रीति थी कि छः मन उपजे तो एक मन राजा को कर-रूप में दे दो। राजा कुरु इस कर को अपने निजी पालन-पोषण मे काम में नहीं लाते थे। स्वयं निज खेत उपजाकर खाते थे, कहते थे कि प्रजा का अन्न प्रजा के लिए है। इसलिए वे स्वयं खेती करके जीवन निर्वाह करते

थे। बादशाह नसीरुद्दीन महमूद भी ऐसे ही थे, जो प्रजा का दिया नहीं खाते थे। वह लिख-लिखकर गुजर करते थे।

❀ संसार में रहने के लिए अच्छी तरह रहें। इसके लिए परिश्रम से धन संग्रह करें। धन संग्रह करने का अर्थ ठगी, बेईमानी या अनैतिक रूप से नहीं। अनैतिक रूप से संग्रह होने पर राजनीतिक दण्ड, सामाजिक दण्ड और दुर्नाम भी होता है। इस प्रकार का दण्ड और दुर्नाम जीवन के लिए बहुत बुरा है। चाहिये कि नैतिकतापूर्वक परिश्रम करके धन का उपार्जन करें।

❀ तुलाधार वैश्य अपने घर में रहकर रोजगार करता था; लेकिन वह बड़ा ही सत्यनिष्ठ था। अपनी माता तथा पिता की सेवा करता था। उसी समय जाजलि मुनि तप करते थे। उनको अपने तप का घमंड हुआ कि मैं बड़ा तपी हूँ। उसी समय आकाशवाणी हुई कि अभी तक तुम तुलाधार वैश्य के समान नहीं हुए हो। जाजलि मुनि जी तुलाधार के यहाँ गये। तुलाधार ने कहा—"महाराज ! आप तप कर रहे थे। आपकी जटा में चिड़िया ने घोंसला बनाया, अंडा दिया और उससे बच्चा हुआ। वह बच्चा उड़ भी गया। इसी को आपको घमंड है।" मुनि ने तुलाधार से पूछा—"तुम घर बैठे मेरे तप की सारी बातें कैसे जान गये ?" तुलाधार ने कहा—"देखिये, मैं लोगों को सौदा देता हूँ, डंडी को सीधा रखता हूँ। तात्पर्य यह कि मैं इस व्यापार में जरा भी असत्य का व्यवहार नहीं करता हूँ और भगवान् का भजन भी करता हूँ। सबों को मैं ईश्वर का रूप मानता हूँ। इसीलिए किसी के साथ मैं बुरा व्यवहार नहीं करता हूँ।"

❀ अपने रहने के स्थान की रक्षा करो। भोजन का प्रबन्ध करो और भजन करो। अपने रहने के स्थान की रक्षा करनी देश-सेवा है। बिना उपार्जन किये अन्न-वस्त्र कहाँ से मिलेंगे। इसलिए उपार्जन करो।

❀ जीवन में—यहाँ इस संसार में बिना वस्त्र तथा भोजन के नहीं रह सकते। इसके लिए खेती कीजिये। व्यापार कीजिये। नौकरी कीजिये; लेकिन साधना में आलस्य नहीं कीजिये। परमार्थ की बातों में आलस्य नहीं करें और फल-प्राप्ति के लिए शीघ्रता के फेर में न पड़ें। कहा है—

"माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।"

अपने देश में प्रधानता खेती की है। खेती करने से अन्न उपजता है।

अन्न का भोजन होता है। भोजन के बिना बिल्कुल अस्त्र-शस्त्र बेकाम। भोजन के बिना जो कुछ द्रव्य है, सब बेकार। इसलिए भोजन का इन्तजाम अपने आप करो।

संसार में आप सम्पन्न होकर रहिये। धन, प्रतिष्ठा, खाने-पीने में अच्छे रहते हैं तो कहते हैं कि ये सम्पन्न लोग हैं। यह किस तरह होगा ? भोजन पर सभी निर्भर हैं। आपकी बड़ी प्रतिष्ठा हो और देह पर बहुत सुन्दर वस्त्र हो, लेकिन भोजन नहीं हो तो क्या होगा ? समझिये। पानीपत की तीसरी लड़ाई में यदि मरहठे जीत जाते तो भारत में फिर वैदिक राज्य हो जाता। लेकिन उनके दुश्मनों ने ऐसा प्रबन्ध किया कि उनके पास खाना जाना रोक दिया। उनके लिए जो भोजन जाये, उसको वे लोग लूट लेते थे। हिटलर को आप जानते हैं। उनको भी भोजन के बिना चढ़ाई काम नहीं आई इसलिए भोजन उपार्जन करो। बिना खेती के भोजन नहीं।

चाहे गृहस्थी बनो, चाहे संन्यासी बनो। लेकिन अपने हाथ से कमाओ खाओ। स्वीडीस लोग मुझसे भजन-भेद लेकर गये। वे वहाँ प्रचार करते होंगे। उनमें एक विशेषता है कि बिना काम किये नहीं खाता है। जापान की एक महिला मेरे पास आई। मुझसे दीक्षा लेकर उसने भजन किया और देर तक बैठी। विदेशी लोग ठीक काम करते हैं। महिला ने कहा कि-(वेरी ईजी एण्ड वेरी हार्ड) Very easy and very hard.

मैं मनुष्य-जीवन पर कहता हूँ। मनुष्य-जीवन में सबसे पहली बात यह है कि भोजन दो। बिना भोजन के कीट, पतंग, पशु-पक्षी किसी का रहना संभव नहीं है। भोजन दो, वस्त्र दो। भोजन चाहिये, भोजन कहाँ से आवेगा ? खेती करो, नौकरी करो, डॉक्टरी करो। बिना पेशा के कैसे जीवन रहेगा। ठग-ढुग कितने दिन करोगे ? विशेष दिन चलने को नहीं।

"उघरहिं अन्त न होइ निवाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।।"

अन्त में उघर जायेगा कि यह ठग है।

लंका में जब लक्ष्मण जी मेघनाद के शक्तिवाण से मूर्च्छित हो गये तो उन्हें सचेत करने के लिए सुषेण वैद्य को बुलाया गया। सुषेण ने कहा–

"धवलागिरि पर संजीवन बूटी है, जिसके नीचे प्रकाश होता रहता है, वह बूटी जब लक्ष्मण जी को पिलाया जाये तो सचेत हो जायेंगे।" हनुमान

जी संजीवन बूटी लाने चले। रावण को यह बात ज्ञात हो गई। उसने हनुमान जी को ठगने के लिए कालनेमि को भेजा। कालनेमि हनुमान जी के रास्ते में साधु-वेश बनाकर कुटिया में बैठा था। हनुमान जी को प्यास लगी। कालनेमि कहने लगे कि आओ-आओ तुम संजीवन बूटी लाने जा रहे हो, तुम्हारी यात्रा सफल हो। हनुमान जी को हुआ कि ये साधु बहुत बड़े योगी हैं। योगबल से ये हमारी यात्रा की सारी बातें जान गये। इसलिए उनको गुरु बनाने के लिए उद्यत हो गये। लेकिन जब हनुमान जी पानी पीने सरोवर में प्रवेश करते हैं तो उनका पाँव एक मकरी पकड़ लेती है। हनुमान जी ने उसे ज्योहिं मारा, वह गंधर्व रूप में आ गई। वह शाप-वश मकरी हो गई थी। उसने हनुमान जी से कहा—"ये साधु नहीं राक्षस है। यह आपको ठगने के लिए ही साधु का वेश बनाया है।" हनुमान जी को ज्योंहि यह बात मालूम हुई, उन्होंने कालनेमि से कहा—दीक्षा तो आप से मैं पीछे लूँगा, लेकिन पहले आप मुझसे गुरु-दक्षिणा ले लीजिये। यह कहकर हनुमान जी ने कालनेमि को अपने लँगूर में लपेटकर पटक मारा। कालनेमि मर गया।

रावण वेश बदल कर संन्यासी-रूप धरकर सीता-हरण करने गया था। मारीच को मृगा बनने कहा। मृगा का रूप स्वर्णमय था। सीता जी ने भगवान् राम से मृगा लाने कहा। भगवान् राम मृगा के पीछे चल पड़े। मृगा मारा गया। लेकिन मृगा रूप मारीच ने मरते समय लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा। सीता जी को समझ में आया कि भगवान् किसी संकट में पड़ गये हैं। इसीलिए उन्होंने लक्ष्मण जी को भगवान् के पास जाने कहा। लक्ष्मण जी के जाने पर रावण ने सीता का हरण किया। वह वहाँ कपट-वेश बनाया था। श्री राम से युद्ध हुआ। उसमें रावण मारा गया।

कपट-वेश से कुछ संसार में काम करेगा। कपट खुल जायेगा तो उसकी जीविका बिल्कुल बर्वाद हो जायेगी। इसीलिए जीविका के लिए ठगा-ठगी, चोरी-डकैती को छोड़कर, सत्य-मार्ग से जो मिले वही कीजिये। उपवास हो तो कर लीजिये, लेकिन ठगी से काम नहीं कीजिये। जीविका मिलेगी, बच्चा भी माँ का दूध पीने के लिए चाहता है। ईश्वर के ज्ञान में हमलोग भी बच्चे हैं। कुछ काम करो।

❀ हम अपने हाथ-पैर से कोई काम नहीं करते हैं। लेकिन हमारे

विश्वासी आदमी हमारी खेती करते हैं, वह हमको देते हैं। अपनी जमीन के आमदनी से जीवन निर्वाह हम करते हैं। जमीन खरीदना वा बेचना पड़ता है अथवा कोई कागज लिखना पड़ता है तो पेशा खेती लिखवाते हैं। एक समय था, जब मैंने अपने हाथ से खेती की है, रोटियाँ बनायी है। अपने हाथ से अपनी रसोई बनायी है। काम करते-करते मेरे हाथ में ठेले पड़ गये थे, अब मिट गये। पूर्व गुरु के पास भैंस थी, उसको भी चराने गया। भाई ! काम करके खाओ।

"जीवन बिताओ स्वावलम्बी भरम-भाँड़े फोड़ि कर ।
संतों की आज्ञा हैं ये 'मेँहीँ' माथ धर छल छोड़ि कर।।"

–महर्षि मेँहीँ पदावली

❀ गुरु के वचन के अनुकूल ध्यान करो और कोई खाने देंगे तो खायेंगे, ऐसा ख्याल मत करो। स्वयं अपना कुछ रोजगार करके खाओ।

गुरु नानक देव कुछ दिन एक नबाब के अन्न के भंडार में काम करते थे और लोगों को तौल-तौलकर अन्न दिया करते थे। पीछे घूम-घूमकर उन्होंने ज्ञान का प्रचार किया। उन्होंने तो राजनीति में मन नहीं लगाया, लेकिन उनके अनुयायियों ने राजनीति में मन लगाया और उस समय जो पंजाब मुसलमानों के हाथ में था, उसको छुड़ाया।

❀ इसके लिए संयम है–सदाचार का पालन करना, कदाचार का त्याग करना। स्वावलम्बी-जीवन बिताओ।

"जीवन बिताओ स्वावलम्बी भरम भाँड़े फोड़िकर।"

(महर्षि मेँहीँ–पदावली)

"खुश खाना है खीचड़ी, माँहि पड़ा टुक लोन।
मांस पराया खायकर, गला कटावे कौन ।।"

–कबीर साहब

कबीर साहब जीवन भर ताना-बाना करते रहे। यही विद्या उन्होंने सीखी थी ? जीवनभर यही कमाई करते रहे। जो मिल जाता, उसी में वे खुश रहते थे। सन्तमत गृहस्थ-आश्रम छोड़ने नहीं कहता। कोई गृहस्थ-आश्रम छोड भी देता है, तो स्वावलम्बी-जीवन बिताता है।

❀ उन्होंने अपने को भी गृहस्थ-आश्रम में रखा, कौन? गुरु नानक

साहब। और कबीर साहब के लिए है कि गृहस्थ बनकर उन्होंने सन्तान पैदा किया कि नहीं, कहना कठिन है। कबीर-पंथी लोग कहतें हैं कि ब्रह्मचारी बनकर वे ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते थे। लेकिन बहुमत है कि वे गृहस्थ थे। असली बात कौन जानता है? आज से छः सौ वर्ष पूर्व हो गये। उनकी जीवनी ठीक कोई नहीं कह सकते।

जो कहते हैं कि **"गृह कारज नाना जंजाला।"** जिसने अपने को इसमें रखा उनके के लिए कुछ कहना नहीं है। चाहे वे कबीरपंथी हों वा दूसरे। वे जो काम करते थे, उसमें उनका मन लगता था। कपड़ा बिनते थे, रोजगार करते थे। उसी से अतिथि सत्कार भी करते थे। आपलोगों को जैसा विचार आवे सो मानिये। चाहे बालब्रह्मचारी कहिये। बालब्रह्मचारी तो वे थे ही। आज भी उनकी डीह को लोग देखने जाते हैं। उसको नीरु का टीला कहते हैं। नीरु के काम को ही कबीर साहब ने अपनाया। कितने संत गृही-काम करते रहे, कितने संत गृही-काम छोड़कर अपना साधन-भजन भी करते थे और सदुपदेश भी संसार को देते थे।

❀ आपलोगों ने देखा होगा कि इस पार से उसपार जाने के लिए सरयू-नदी पर एक पुल बन्धा हुआ है। वह पुल माँझी का पुल कहलाता है। वहाँ एक संत मुंशी रहते थे। उनका नाम था धरनी दास जी। वे मुंशी आदमी थे। एक क्षत्रीय बाबू के यहाँ क्लर्क या मुहीर का काम करते थे। मुशहरा पाते थे–नौकरी करते थे। उन्होंने बड़े अच्छे-अच्छे पद्य कहे हैं–

"धरनी अधरे ध्यान धरु, निसिवासर लौलाइ ।
कर्म कीच मगु बीच है, (सो) कंचन गच हवै जाइ ।।"

बहुत अच्छे-अच्छे पद्य कहे।

एक दिन उन्होंने पागल की तरह किया। स्याही को कागज पर उलट कर हाथ से लेपने लग गये। बाबू ने देखा तो कहा कि "मुंशी जी आप पागल हो गये?" उन्होंने कहा–"नहीं ! जगन्नाथ के पट में आरती करते आग लग गई और मैंने उसी में पानी डाल दिया।" उसको ठीक से जाँच करने के लिए बाबू ने जगन्नाथ में घुड़सवार को भेजा। वह दिन, वह तिथि बतायी। लोग वहाँ गये तो बताया। तो लोगों ने कहा कि "हाँ! ठीक ही एक आदमी आये थे और पानी डालकर बुझा दिये। जगन्नाथ जी के पट में आग

लग गई थी।'' संत धरनी दास जी जाति के कायस्थ थे। लिखा-पढ़ी करते उन्होंने सिद्धि पायी।

❁ संत पलटू दास जी दूकान पर बैठकर ही भजन करते थे, सत्संग करते थे। फिर वे दूकान छोड़कर भजन-सत्संग करने लगे। साधु बनकर भिक्षाटन करें, ऐसा वे नहीं करते थे। कितने संत भिक्षाटन किये, कितने भिक्षाटन का काम नहीं किये। इस तरह संत लोग हुए हैं।

आपलोग भी देखते हैं कि हमारे गुरु महाराज ने पहले डाकखाने का काम किया, पीछे उन्होंने छोड़ दिया। मेरी अपनी बात सुनिये। मेरा छोटा-मुँह, छोटी-बुद्धि यही बात कहती है कि मैंने अवश्य ही घर का काम छोड़ दिया। लेकिन अपने पालन-पोषण के लिए खेती का काम किया। अभी भी मेरा खेत है। सत्संगी के जिम्मे है। वे उपजा कर देते हैं। वे मेरे बेटे और मैं उनका बाप।

❁ कुछ दिन ऐसा भी था कि मैं पूजा ग्रहण करता था, पैसे लेते थे। उस बात को मैंने छोड़ दी। इस तरह बनते-बनते मैं नहीं ऐसा कहता कि कबीर साहब या गुरु नानक साहब के जैसा बन गया हूँ। मैं तो उनकी चरण-धूल लेने योग्य भी नहीं हूँ।

❁ संतमत नहीं सिखलाता है कि घर का काम गृहस्थी यानी बाल बच्चों का संग छोड़ दो और ध्यान-भजन करो। यह बताता है कि स्त्री, बाल-बच्चों के साथ रहो, परिश्रम से उपार्जन करो और ईश्वर-भजन भी करो। गुरु नानकदेव ने कहा है—

''राज महि राज,जोग महि जोगी।
तप में तपीसुर, गृहस्थ महि भोगी।
ध्याय ध्याय भक्तः सुख पाया।
नानक तिस पुरुष का किन अन्त न पाया।।''

साधु-सन्त जो बतावें, वह साधन-भजन भी करो। जो ऐसा करते हैं, उसको संसार के किसी काम में कोई झंझट नहीं होता है और परलोक भी बनता है। यह काम चार खानि , चौरासी लाख योनियों में और किसी से नहीं होगा, केवल मनुष्य-शरीर में ही होगा। हमलोगों को ईश्वर की कृपा से मनुष्य-शरीर मिला है। बड़ा भाग्य है। इससे कुछ-न-कुछ साधन-भजन करते रहना

चाहिये और करते-करते यह काम तमाम करना चाहिये। न संसार के काम को छोड़ो, न मोक्षदायी काम को, जो सबसे उत्तम काम है। इस काम को करने में कभी भूल न कीजिये। इससे संसार भी अच्छा और परलोक भी बन गया।

❁ अन्तर के शून्य में खोजना, यह ज्ञानवान का काम है, **भीख माँगने वाले का काम नहीं है।** घर में भी योगी, बाहर में भी योगी।

❁ हमारे गुरु महाराज कहते थे कि self sporter (सेल्फस्पोटर–स्वावलम्बी) बनो। जो self sporter (सेल्फस्पोटर) नहीं बनता, वह भजन नहीं कर सकता। उपार्जन करो खाओ। दुष्टकर्म नहीं करो। जो स्वावलम्बी होगा, पापों से बचेगा, दुष्ट-कर्म से बचेगा, कितना कल्याण देश में होगा ? धन कमाने के लिए दुष्ट-कर्म करके भी कमा सकते हो। लेकिन ईश्वर की भत्ति में दुष्ट-कर्म करने से आगे नहीं बढ़ सकते। जिसको संतमत कहते हैं, संसार में लाभ पहुँचाने के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है। केवल भारत को नहीं, सम्पूर्ण संसार में कुशल होगा। एक राष्ट्र दूसरे को ठगेगा नहीं। इसलिए भक्ति सब कोई करो। भक्त सब बनो। अपने संगी-साथी को भी भक्त बनाओ। जो भजन अपेक्षित है, उसको करो। भजन नहीं करते हो, केवल वचन कहते हो तो उससे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। उपार्जन करो, भजन करो।

❁ जितने हमारे संग के लोग हैं, सब ब्रह्मचारी हैं। किन्हीं का विवाह नहीं हुआ है। जो कोई उचित काम करने योग्य है, ये लोग करने से बाज नहीं आते हैं। शुरू में हमारे हाथ का भी चमड़ा मोटा हो गया था, क्योंकि हमने भी खुरपी चलायी है। कुदाल भी चलायी है। अब यह अवस्था है। ये लोग हमको खिलाते हैं, तो हम खाते हैं।

❁ जीवन में–यहाँ इस संसार में बिना वस्त्र तथा भोजन के नहीं रह सकते। इसके लिए खेती कीजिये। व्यापार कीजिये। नौकरी कीजिये; लेकिन साधना में आलस्य नहीं कीजिये। परमार्थ की बातों में आलस्य नहीं करें और फल-प्राप्ति के लिए शीघ्रता के फेर में न पड़ें। कहा है–

"माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।"

अपने देश में प्रधानता खेती की है। खेती करने से अन्न उपजता है।

अन्न का भोजन होता है। भोजन के बिना बिल्कुल अस्त्र-शस्त्र बेकाम। भोजन के बिना जो कुछ द्रव्य है, सब बेकार। इसलिए भोजन का इन्तजाम अपने आप करो।

लड़कपन से ही ऐसी शिक्षा चाहिये, जिस शिक्षा से मोक्ष की ओर, परमार्थ की ओर भी आदमी बढ़े और संसार में कमाकर खाने के लिए भी बढ़े। संसार में कमाकर खाने के लिए नहीं जानने से संसार में गुजर कैसे होगा ? अगर कोई साधु-महात्मा हैं, वो कमाते नहीं हैं, तो उनको भिक्षा लेनी पड़ती है। अच्छे महात्मा हैं भिक्षा लेते हैं, तो संसार को शिक्षा देते हैं। उनके काम में योग है। वे संसार को शिक्षा देते हैं। और जो संसार को शिक्षा देने में असमर्थ और भिक्षा लेने में समर्थ, यह कैसे हो सकता है ? महर्षि मेँहीँ हम कभी नहीं। महर्षि नाम से हम बहुत डरते हैं। अगर मुझे कोई महर्षि कह देते हैं, तो मैं अपने को बहुत लज्जा मानता हूँ।

मोक्षार्थी को अपने ध्येय की प्राप्ति में कर्मयोग के यथार्थ स्वरूप को अपनाकर संसार में रहना अत्यन्त आवश्यक है।

कबीर साहब और गुरु नानक साहब तो कर्मयोग के उदित प्रखर सुर्य की तरह प्रकट होकर और संसार में आदर्श की पराकाष्ठा होकर शिक्षा दे गयें हैं। इन सन्तों ने और इनके अनुयायी तथा परवर्त्ती सन्तों ने राष्ट्र के आध्यात्मिक, चारित्रिक, सामाजिक और राजनैतिक सेवाकर्म में नाना प्रकार के कष्ट सहन किये। मौके-मौके पर आवश्यकतानुकूल अपने प्राण भी उस सेवाग्नि में हवन कर दिये और अमर जीवन को प्राप्त किया।

श्री सद्‌गुरवे नमः

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता और उसका कर्त्तव्य

❀ एक अच्छे योगी थे। भागलपुर आये थे।

उन्होंने कहा–"आप संन्यासी हैं, मै गृहस्थ हूँ।" मैंने कहा–"आप अच्छे हैं, मैं अच्छा नहीं।" उन्होंने कहा–'क्यों ?'मैंने कहा–"आपके नमूने से लोग समझ सकेंगे कि गृहस्थ आश्रम में रहकर भी योग किया जा सकता है और मुझे देखकर लोग समझेंगे कि योग घरवार छोड़ने से होता है।" ध्यानयोग स्त्री से होगा, पुरुष से होगा, लड़कों से होगा, सबों से होगा।

❀ राज्य करते हुए राजा, योग करते हुए योगी, तप करते हुए तपस्वी और घर में रहते हुए गृहस्थ, सभी कर सकते हैं। गृहस्थाश्रम भोग का आश्रम है। भोग में योग राजा ने किया और मामूली गृहस्थ ने भी किया। आज भी राजा जनक का नाम हमारे यहाँ है।

❀ घर-द्वार छोड़ने की जरूरत नहीं। घर में रहो ईश्वर-भजन करो। यह बात भगवान् श्रीकृष्ण भी कहे हैं, और-और संत भी। श्री कृष्ण भगवान् ने यह नहीं कहा कि घर छोड़ो। बल्कि अर्जुन को उपदेश किया है–"संसार के कामों को भी करो और परमार्थ साधन भी करो जिनसे संसार का भार नहीं चलता है, ऐसा भी है। वह संन्यासी कहलाता है। लेकिन ये थोड़े हैं। संसार का भार सम्हालते हुए ईश्वर-भजन करने वाले अधिक हैं।"

❀ गृहस्थ-आश्रम में रहकर संतान-विहीन रहे, धन-विहीन रहे–ऐसी बात नहीं। संयम से रहें, अपना रोजगार करता रहे और संतान भी उत्पन्न करे। आप कहेंगे कि हम साधारणजन से यह संयम नहीं होगा, तो आपको ऐसा नहीं कहना चाहिये। आपके यहाँ ऐसे बहुत लोगों का इतिहास है, जो गृहस्थ रहते हुए खेती करते-करते, मूंशी का काम करते-करते संत हो गये हैं।

कबीर साहब ताना-बाना करते-करते सन्त हो गये। आज कितना उनका नाम है, विद्वानों से पूछिये। प्रथम-कक्षा से लेकर ऊँची-कक्षाओं तक

उनकी वाणी पढ़ायी जाती है। कबीर साहब ने दिखला दिया कि घर में रहकर अपना काम करते हुए भी लोग संत होते हैं। कबीर-पंथ के लोग उनका गृहस्थ होना नहीं मानते; किन्तु और लोग उनका गृहस्थ होना मानते हैं। खैर, जो हो। गुरु नानक देव जी के लिए तो यह प्रसिद्ध है कि वे गृहस्थ थे। उनके दो पुत्र थे। श्री शंकराचार्य जी बिना गृहस्थ-जीवन बिताये सन्त हुए। किन्तु सर्वसाधारण के लिए कबीर साहब और गुरु नानक साहब का नमूना अच्छा है। आज भी मंदार पहाड़ के नजदीक श्री भूपेन्द्रनाथ सान्यालजी बड़े भारी विद्वान् मौजूद हैं, जो बड़े संयमी हैं और साधु-संत से कम दर्जा नहीं रखते हैं। आज जो राधास्वामी मत प्रचलित है, उसके लोग भी गृहस्थ हैं। जो कोई कहे कि गृहस्थ से भजन-साधन नहीं होगा, तो जानना चाहिये कि वे स्वयं इसको नहीं जानते हैं, अपने नहीं करना चाहते और न दूसरे को करने देने का उत्साह देते। इसलिए सब कोई ईश्वर का भजन कीजिए और शरीर रहते ही यानी जीवन-काल में ही उस परम पुरुष को प्राप्त कीजिए, मुक्ति लाभ कीजिए।

❁ घर में रहे, घर में खाने-पीने पहनने की वस्तु है और ब्रह्म-तत्त्व जो कि लेना है, वह भी घर में ही लेना है। जैसे का तैसे घर में ही रहो। उसका नमूना कबीर साहब स्वयं थे। वे घर छोड़े नहीं थे। बाबा नानक भी ऐसे थे। रविदास जी, श्वपच भगत, जगजीवन साहब, शिवनारायण स्वामी, दादू दयाल जी, ये सभी इसी तरह के थे। ये सब इतने ऊँचे थे कि वे संसार को चेताने आये थे या थोड़ी कमी थी तो पूरा करने भी आये थे।

❁ अपने घर में रहकर भी बारम्बार जन्म लेने के कारण को मिटा सकते हैं। ऐसा बहुतों ने किया है, अब भी लोग कर रहे हैं। ईश्वर की कृपा से आपको जैसा घर मिले, उसमें रहिये और साधना कीजिये। आपका शरीर भी ईश्वर-कृत घर है। आप अपने से घर बनाकर या पुस्तैनी घर बना हुआ मौजूद है, उसमें रहकर यत्न कर सकते हैं। परन्तु यदि अपने शरीर को घर नहीं माने तो फिर यत्न क्या करेंगे ? अपने शरीर के अन्दर यत्न करेंगे, तो साधन हो सकता है। यह साधन शरीर-रूपी घर में ही होगा।

❁ धनीयों के घर की नौकरानी की तरह संसार में रहना सीखो। नौकरानी मुँह से तो हमेशा यही कहा करती है, कि लड़के-बच्चे, घरवार सब

मेरे हैं, पर उसका मन जानता है कि मेरा यहाँ कुछ भी नहीं है; सभी मेरे मालिक के हैं। इसी तरह बाहर में सब काम अपना जानकर करते रहो; किन्तु मन से हमेशा जान रखो—तुम्हारा यहाँ कुछ भी नहीं है, सभी मालिक के हैं। उसका हुक्म होते ही सब छोड़कर चला जाना पड़ेगा। इसके सिवा काम में त्रुटि होने पर मालिक की धमकी का भी डर रहता है।

❀ घर-गृहस्थी छोड़कर रहने की अपेक्षा घर-गृहस्थी में रहकर भजन करना अच्छा है। घर-द्वार छोड़ने से खाने की चिन्ता होगी। कहाँ जाओगे ? घर-घर घुमोगे। खाने के लिए कष्ट होगा। संन्यासी में भी और गृहस्थी में भी ; दोनों तरह से भजन करो। भजन तुरत ही समाप्त नहीं हो जाता। विद्या थोड़ा-थोड़ा पढ़ते-पढ़ते विद्वान् होते हैं। विद्या का आरम्भ करो और उसको छोड़ दो, तो भूल जाओगे। गोया नष्ट हो जायेगी। लेकिन योग के बीज का नाश नहीं होगा। थोड़ा भी करोगे, भूल जाओगे तब भी वह नष्ट नहीं होगा।

❀ **"अबधू भूले को घर लावै। सो जन हमको भावै।"** तथा **"मांगि न खाय न भूखा सोवै, घर अँगना फिरि आवै।"** अर्थात् घर आँगना को नहीं छोड़ो, कर्म करके खाओ और नादानुसंधान करते रहो।

❀ घर छोड़ने नहीं कहा—घर में योग-भोग और घर ही में युक्ति-मुक्ति बतलाया; लेकिन शर्त है—'जो गुरु अलख लखावै।' अलख कैसे लखावे ? तो कहा—'सहज सुन्न में रहे समाना'—आसानी के साथ शून्य में समाधि लगावे। गुरु ऐसा अलख लखावे। शून्य में समाओ, हम लोग स्थूलाकाश में हैं, सूक्ष्माकाश में मेरी गति हो, इसकी युक्ति गुरु बता दें।

❀ दस गुरुओं ने संसार के बहुत काम किये। इसमें दूसरे और तीसरे गुरु गृहत्यागी हुए। और बाबा नानक तो घर में रहते हुए त्यागी थे। दसवें गुरु ने तो इसकी पराकाष्ठा को दिखा दिया। उन्होंने बहुत कष्टों को सहा। सन्तमहात्मा घर छोड़ने नहीं कहते।

❀ यह भूल है कि गृहीवासी से साधन नहीं होगा। जिस देश में गीता जैसी पुस्तिका है, जहाँ संतवाणी मौजूद है, वहाँ ऐसा नहीं कहना और जानना चाहिये। अर्जुन युद्ध छोड़कर संन्यासी बनना चाहता था, उससे भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध करवाया और योगस्थ रहकर कम करने की शिक्षा

दी। श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं गृहस्थ थे। कितने संतों ने गृहस्थी को छोड़ा और कितनों ने गृहस्थी में रहकर ही जीवन बिताया। कबीर साहब के लिए कोई कहते हैं कि उन्होंने गृहस्थ जीवन बिताया और कितने कहते हैं कि वे गृहस्थ नहीं थे। खैर ! जो कुछ भी हो, फिर भी वे संत थे और घर में रहकर ही संत हुए।

महात्मा गांधी जी कहाँ तक पहुँचे थे सो तो वे जानें। किन्तु उन्होंने बड़ा भारी काम किया। राजनैतिक काम का अपने ऊपर बड़ा भारी बोझ लिया और देश को स्वतंत्र किया। इतने पर भी किसी पद का उन्होंने जरा भी ख्याल नहीं किया और यह सब कुछ उन्होंने गृहस्थ बनकर किया, संन्यासी बनकर नहीं। और यदि लोग कहें कि घर-गृहस्थी में रहकर ईश्वर का भजन ध्यान नहीं होगा तो यह ऐसी बात है जो प्रत्यक्ष उदाहरणों के विरुद्ध है। अतएव मानने लायक नहीं।



श्री सद्गुरवे नमः



आहार-भेद और उसकी तासीर

❀ "खान पान को प्रथम सँभारो।
तब रस रस सब अवगुण मारो।।"

—महर्षि मँहीँ पदावली

सब इन्द्रियों का बलदाता जिह्वा को समेटो, सब इन्द्रियाँ ठीक हो जायेंगी, यही कहना है।

❀ आहार से मन बुद्धि पर असर पड़ता है। बकरे का मांस और हिरण का मांस दोनों का एक ही गुण नहीं होता। सोना भस्म खाने से और गोइठा भस्म खाने से दोनों एक समान नहीं होता। रजोगुणी भोजन में चंचलता और तमोगुणी भोजन में मूढ़ता उत्पन्न होती है। सात्त्विकी भोजन में सात्त्विक ज्ञान, मनोनिरोध और शान्ति का गुण उपजता है। आजकल के कुछ नये ख्याल के लोग जिनके यहाँ पहले अण्डा नहीं खाया जाता था, अण्डा खाने लगे हैं। सुनकर दुःख होता है। मानव शरीर का उच्च गुण जलचर, थलचर और नभचर आदि पशु-पक्षियों के शरीर में नहीं है। अपने उच्च गुण वाले शरीर में नीच गुणवाले शरीरों का मांस और अण्डा देकर अपने बुद्धि को नीच गुण वाले शरीरधारी की बुद्धि की तरह मत बनाओ। क्योंकि भोजन का प्रभाव मन-बुद्धि पर अवश्य होता है। यदि कोई बड़े कह दें कि अण्डा खाने में हर्ज नहीं, तो जानना चाहिये कि उस बड़े से भी भूल हो गई है। यदि डॉक्टरी ख्याल से दूध और अण्डा में एक ही शक्ति है तो भी राजसी, तामसी और सतोगुणी ख्याल से वह भोजन के योग्य नहीं।

❀ कोई कहते हैं कि जिस अंडे में बच्चे नहीं होते वह खाने में हिंसा नहीं है। लेकिन समझिये उसके खाने से आप में चिड़िया का गुण होगा। चिड़िया की देह में बहुत गर्मी है। उसके भोजन से आप में चिड़िया वाली तमोगुणी गर्मी आयेगी। मुर्गी क्या-क्या खाती है, देखो। निषिद्ध-से-निषिद्ध चीजें खाना उत्तम नहीं। हमारा देश ऐसा नहीं है कि बिना मांस-मछली खाये नहीं रह सकते। मूल,फल, कंद आदि खाओ। एक पशु का मांस जो खाता है वह एक प्रकार का मांस खाता है। जो मछली खाता है वह सभी प्रकार

का मांस खाता है।

❁ खान-पान सात्त्विक होना चाहिये। जो सात्त्विकता के लिए यत्न नहीं करता, रजोगुण-तमोगुण में फँसा रहता है और परमार्थ की ओर चलना चाहता है, तो वह वैसा ही होगा, जैसे **'भूमि पड़ा चल छुअन अकाशा'** कहा गया है। इसलिए खान-पान को पवित्र रखो। खान-पान का असर मन पर पड़ता है। यदि खान-पान का असर मन पर नहीं पड़ता, तो भाँग खाने और शराब पीने से मस्तिष्क क्यों गड़बड़ा जाता है। खान-पान को पवित्र रखो।

❁ हमलोग जितना चावल खाते हैं, अंग्रेज लोग उतना मांस खाते थे। लेकिन अपने राज्य को वे बचा न सके। महात्मा गांधी जी अंडा, मांस, मछली कुछ नहीं खाते थे। उनका मस्तिष्क साग-सब्जी मक्खन आदि से बना हुआ था। बुद्धि की लड़ाई हुई। अंग्रेज पार पा न सके। महात्मा गांधी जी जीत गये और अंग्रेज हार गये। बंदूक, तोप, गोले से लड़ाई नहीं हुई, बुद्धि से लड़ाई हुई और अंग्रेज हारकर भाग गये। महात्मा गांधी ईश्वर-भक्त थे। उस भक्ति का बल भी उनको था। वे झूठ नहीं बोलते थे। वे बड़े अच्छे थे। वे भारत के अगुआ थे। उन्होंने जैसा कहा, हमारे देश के लोगों ने वैसा किया और अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये।

❁ रामायण में राम-रावण का युद्ध क्या है ? एक तरफ राम और दूसरी तरफ रावण। राम के दल में बन्दर-भालू थे। वे फल-पत्ती खाते थे सभी शाकाहारी, फलाहारी थे। और रावण के दल में शराब, मछली, मांस आदि खाते थे। रावण के लिए है कि "महिष खाय और मदिरा पाना।" फल क्या हुआ ? रावण हार गया और राम की जीत हुई।

❁ हिंसा मत करो। मत्स्य मांस भी मत खाओ। जो मछली मांस खाते हैं उनकी हिंसा की ओर रुचि रहती है। जिस देश में मछली मांस खाये बिना नहीं रहा जाता, वहाँ के भी लोग-साधन कर सकते हैं। फल यह होगा कि जिस देश में बिना खाये रह सकते हैं, वहीं उनका पुनर्जन्म होगा। अब विदेशों में भी लोग निरामिष भोजी होते जा रहे हैं।

❁ नशाओं से बचने वाले फाजिल खर्च से बचता है। उसका मस्तिष्क ठीक रहता है। मांस-मछली जो भोजन नहीं करते हैं, वे जीवों पर दया करते

हैं। सात्त्विक-भोजन भी अधिक लेने से वृत्ति तामसी होती है। वह ईश्वर को भूलता है। आहार गुणानुसार होते हैं और उनका प्रभाव भी आहार करनेवाले पर होता है। आयुष्य, सात्त्विकता, बल, आरोग्य, सुख और रुचि बढ़ानेवाले, रसदार, चिकने, पौष्टिक और मन को प्रिय—ऐसे आहार सात्त्विक लोगों को प्रिय होते हैं। चरपरे, विशेष लवणयुक्त, बहुत गरम, नीमवत् तीते, रूखे और दाहकारक आहार राजस लोगों को प्रिय होते हैं। रोटी, भात आदि बनकर पहर भर पड़ा हुआ, उतरा हुआ अर्थात् सड़ने पर आया हुआ फल, दुर्गन्धयुक्त, वासी, जूठा आदि आहार तामसी लोगों के हैं। उन्हें ऐसे ही भोजन प्रिय लगते हैं।

❁ मछली और मांस नहीं खाओ, क्योंकि मछली और मांस खाना बिना हिंसा के नहीं हो सकता। अपने से नहीं मारे लेकिन वह किसी-न-किसी तरह किसी से हिंसा करवाता है। मनुस्मृति में आठ घातकों का वर्णन है।

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोप हर्ता च खादकश्चेति घातकाः।।"

अर्थात् (1) वध की आज्ञा प्रदान करने वाला (2) शस्त्र से मांस काटनेवाला (3) मारने वाला (4) बेचने वाला (5) खरीदने वाला (6) मांस को पकाने वाला (7) परोसने वाला, (8) खानेवाला; ये आठो घातक हिंसा करनेवाले ही कहलाते हैं।

❁ खाने का बन्धन रखो। खाने का बन्धन नहीं रखने से लोग जो नहीं खाना चाहिये, वह भी खा लेते हैं। जितना नहीं चाहिये, उतना खा लेते हैं। इससे शरीर भी बिगड़ जाता है और धर्म भी बिगड़ जाता है। धर्म बिगड़ने से दुनिया में भी हँसी होती है और दुनिया छोड़ने पर नरक जाना पड़ता है।

साधु-सन्त जो भोजन करने के लिए बतावें, वह भोजन करो। जितना भोजन ठीक-ठीक पच जाए, उतना भोजन करो। जीभ के स्वाद के लिए धर्म का नाश मत करो। जीभ का स्वाद क्या है ? वह तो आदत है, उसको अच्छा लगता है; किन्तु जो नहीं खाता, उसे पसन्द नहीं होता।

❁ हमारे यहाँ दो धर्म हैं—एक धर्म में मांस-मछली नहीं खाने की बात है और दूसरे में मांस-मछली खाने की बात है। मांस-मछली खाने में कोई

दोष भी लगा सकता; किन्तु नहीं खाने में कोई दोष नहीं लगा सकता। इसलिए जिसमें दोष नहीं लगावे, वही अच्छा है। जो लोग मांस-मछली नहीं खाते हैं, उनको दूसरे लोग जो मांस-मछली खाते हैं, नहीं कहते कि तुम नहीं खाते हो, इसलिए तुमको दोष लगेगा; बल्कि जो नहीं खाता है, वह उसे जो मांस-मछली खाता है, कहता है कि तुमको दोष लगेगा। उसको अधर्मी कहता है। खाने वाले को एक अच्छा कहता है, दूसरा अच्छा नहीं कहता। इसके लिए जिसको अच्छा नहीं कहता, क्यों खाया जाये ?

❁ मुसलमानों के धर्म में है कि जब तक शगल (साधनाभ्यास) करते रहो, कोई चिकनी चीज नहीं खाओ। मांस-मछली नहीं खाओ। शगल करना एक-दो दिन की बात नहीं है। शगल करते-करते सालों लग जाते हैं। जो साल-साल, कई सालों तक नहीं खायेगा, उससे फिर आप ही वह खाना छूट जायेगा। इस तरह उसमें भी मांस-मछली आदि का खाना मना है।

❁ मछली की देह अधिक पवित्र है या तुम्हारी देह ? चिड़िया की देह मनुष्य-देह से उत्तम नहीं है। इसलिए अपने से नीच-शरीर के मांस को अपनी ऊँची और पवित्र-देह में डालना ठीक नहीं।

❁ हिंसा के सिलसिले में मत्स्य, मांस, अंडा मत खाओ। शरीर से ,मन से से हिंसा छोड़ दो। लोग बहुत प्रश्न किया करते हैं कि अनिवार्य-हिंसा होती ही रहती है। तो अनिवार्य-हिंसा के विषय में समझो, वार्य-हिंसा को छोड़ो। खेती करने में हिंसा होती है। राष्ट्र पर कोई चढ़ाई करे तो उससे हिंसा होती है। यह अनिवार्य-हिंसा है। घर में चोर-डाकू आए तो उससे लड़ना होगा। अपने को बचाना होगा, यह अनिवार्य-हिंसा है। साँस लेने में हिंसा होती है। औषधि खाने से कीटाणु मरते हैं, इसमें हिंसा होती है। लेकिन यह अनिवार्य-हिंसा है। युद्ध करके राजा लोग यज्ञ करते थे; क्योंकि युद्ध में भी हिंसा होती थी। अनिवार्य-हिंसा से नहीं बच सकते; किन्तु वार्य-हिंसा से बचो। कितने लोग रोग से पीड़ित होते हैं तो डॉक्टर उन्हें मछली, मांस और उसका शोरवा खाने-पीने के लिए कहते हैं, किन्तु नहीं खाते हैं, फिर भी संसार में स्वस्थ रहते हैं। महात्मा गांधी जी की पत्नी बीमार हुई, डॉक्टर ने मांस का शोरवा और अंडा लेने को कहा। उन्होंने लिया नहीं, संयम और पथ्य जैसा महात्मा गांधी ने बताया, किया ठीक हो

गई; स्वस्थ हो गयी। संयम और पथ्य से ऐसा हो जाता है। जोर देकर ऐसा कहना कि मत्स्य-मांस के बिना तुम नहीं बचोगे, झूठी बात है, गलत बात है।

❀ यक्ष्मा-रोग में बहुत अंडे खिलाये जाते हैं। मेरा एक सत्संगी बीमार हुआ। पटना में उसका इलाज हुआ। उसने मत्स्य-मांस नहीं खाया। आज भी उसका शरीर है और वह स्वस्थ है। जिस भोजन से अपनी वृत्ति खराब होती है, मन का सात्त्विक रहना असम्भव हो जाता है, वह मत खाओ। अपने धर्म की हानि मत करो। मनुष्य-शरीर में पशु-शरीर का मांस डालकर पशुवृत्ति मत लाओ।

❀ कबीर साहब मुसलमान घर में पाले-पोसे गये थे। नूर अली और उसकी पत्नी नीमा को संतान नहीं थी। उनलोगों को बच्चे की ख्वाहिश थी। एकदम तुरत का जन्मा हुआ बच्चा मिल गया। नूर अली ने उसको पाला, जहाँ मांस-मछली का खाना ही प्रधान था। किन्तु कबीर साहब मांस-मछली नहीं खाते थे और लोगों के लिए उन्होंने कहा है–

"मांस मछरिया खात है, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी की खेत।।
तिल भर मछली खाय के, कोटी गौ दे दान।
काशी करवट ले मरे, तौहू नरक निदान।।
यह कूकर को खान है, मानुष देह क्यों खाय।
मुख में आमिख मेलता, नरक पड़े सो जाय।।"

उन्होंने इतना मना किया है, तो स्वामी रामानन्द और स्वामी रामानुज क्यों नहीं मना करते ? महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर की पुकार है–'अहिंसा परमो धर्मः।

❀ हमारे यहाँ नियम है कि पहले छः महीने तक मांस-मछली खाना छोड़िये, तब भजन-भेद लीजिये। हमारे वासे में लहसुन-प्याज कुछ नहीं चलता है। जिभ्या को वश में कीजिये, इन्द्रियाँ वश में होंगी।

❀ खाने-पीने का बन्धन उत्तम है। इसलिए सात्त्विक-भोजन होना चाहिये। राजसी-भोजन मन को चंचल करता है। तामसी-भोजन मन को नीचे गिराता है। सात्त्विक-भोजन में भी जैसे गाय का दूध है, गाय के दूध को बेसी औटने से राजस हो जाता है। मांस-मछली-अण्डा आदि तामस-भोजन

है। साधक को राजस और तामस-भोजन छोड़कर सात्त्विक-भोजन करना चाहिये।

❀ मांस-मछली भोजन मत करो। मांस-मछली खाने से केवल हिंसा ही नहीं होती है, उसकी तासीर भी कुछ और है। गाय के दूध में जो गुण है, भैंस के दूध में वैसा गुण नहीं है। बकरी के दूध में फिर दूसरा ही गुण है। उसे आप पी सकते हैं, किन्तु गदही का दूध नहीं पी सकते। दूध-दूध में भी गुण है। गदही के दूध को अपवित्र समझते हैं। आप अपनी देह को समझिये और एक मछली की देह को समझिये। दोनों पर विचार कीजिये। मछली की देह में कितनी गंध रहती है? मछली खाने वाले मछली को धोकर खाते हैं। मछली क्या खाती है, सो विचारिये। वह निकृष्ट से निकृष्ट वस्तु को खा लेती है। "जैसा अन्न, वैसा मन।" उस खराब को खाने से मन कैसा होगा, विचारिये। मछली को छूने पर हाथ धोते हैं। उसके शरीर के गुण और अपने शरीर के गुण में अन्तर है। इसलिए अपने उत्तम शरीर में नीच गुण वाले शरीर को देकर अपने को नीचे गिराना है।

❀ तामसी-राजसी भोजन नहीं करो। सात्त्विक भोजन करो। सात्त्विक भोजन भी हल्का करो। विशेष खाने से आलस्य विशेष आता है. उससे भजन बन नहीं सकता। कम खाने से ऐसा नहीं होगा कि शरीर में बल नहीं रहेगा।

❀ मांस-मछली खाने से बलवान होंगे, यह बात मानने योग्य नहीं। मथुरा के चौबे मत्स्य-मांस नहीं खाते। उनका थप्पड़ किसी को कान में लग जाये, तो बहरा ही बना देगा। मारवाड़ी लोग आपके यहाँ हैं। वे मत्स्य-मांस नहीं खाते, कितने अच्छे-अच्छे शरीर वाले हैं। बिना मत्स्य-मांस के ही उनके रोगों का इलाज होता है।

❀ कृषि-कर्म, घर की सफाई और औषधिखाना में, दूसरे देश के लोग चढ़ाई करे तो उसको रोकने में, चोर-डकैत को भगाने में हिंसा होती है। यह अनिवार्य हिंसा है। जिभ्या-लालच में, मजबूत होने के ख्याल में जो हिंसा करते हो, वह वार्य हिंसा है। इसलिए मांस-मछली, अंडा नहीं खाओ।

❀ जिभ्या में बन्धन दो। स्वाद और बोलने का बंधन जिभ्या में दो। जिससे सतोगुण की वृद्धि हो, वह खाओ। स्वाद की चीज को विशेष मत खाओ। रजोगुण और तमोगुण वाला भोजन नहीं खाओ।

❁ हमारे यहाँ का ऐसा जलवायु है, जहाँ मांस-मछली का कोई काम नहीं है। अन्न, दुग्ध और गुड़ तीनों हो गये तो और कुछ पौष्टिक नहीं चाहिये। मछली-मांस की कोई जरूरत नहीं।

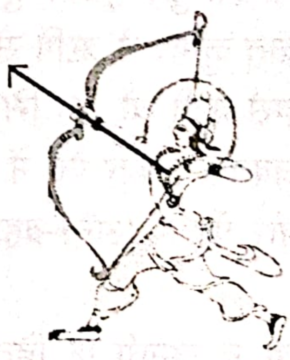
❁ मिट्टी का सार गंध है, पानी का सार रस है। खट्टा, मीठा इत्यादी सबमें रस है। हमलोग जितनी चीजें खाते हैं, उनका जिह्वा से रस लेते हैं। जो जिह्वा को जीत लेता है, वह सबको जीत लेता है। अगर जिह्वा को नहीं जीता जाये तो कोई भी इन्द्रिय काबू में नहीं आयेगी। जिभ्या के जितने रस हैं, कहा नहीं जा सकता। खाने का परहेज कीजिये। खट्टे-मीठे को जीतिये।

❁ सभी भोजन में अपनी-अपनी तासीर होती है। अपनी-अपनी तासीर नहीं हो, तो भाँग पीने से उसका असर नहीं होता। शुद्ध भोजन की जड़ है—अपनी कमाई का खाओ। और मांस-मछली नहीं खाना, तो उसका डाल-पात है। यदि भोजन का असर नहीं होता, तो डॉक्टर रोगी को क्यों बताते कि यह खाओ और वह न खाओ।

❁ सात्त्विक आहारों में भी अल्प-अल्प छहो स्वाद होते हैं। परन्तु ये जब विशेष मात्रा में होते हैं, तब सात्त्विक नहीं रहते हैं। विशेष औंटा हुआ गाय का दूध, भैंस का दूध, मत्स्य, मांस और पक्षी एवं कछुए, मुर्गी आदि सब प्रकार के अण्डजों के अण्डे गुण में बहुत गर्म हैं। ये उत्तेजक और वीर्य-रक्षा के बाधक हैं। ये सात्त्विक आहार नहीं हैं।



रावण (मांसाहारी)
पराजय



राम (शाकाहारी)
जय



श्री सद्‌गुरवे नमः



अन्नब्रह्म

सब कोई रुपये का मूल्य जानें, पैसे का मूल्य जानें और नोट का मूल्य जानें। हीरा, मोती, जवाहर, अस्त्र-शस्त्र बहुत हों और अन्न नहीं हो, तो आपकी क्या गति हो? पानीपत की तीसरी लड़ाई में खाने के बिना मरहठे के लगभग एक लाख आदमी मर गये।

उपनिषद् में एक कथा आई है, जिसमें लिखा है कि एक ऋषि-कुमार को अपनी विद्या का बहुत घमण्ड था। एक दिन ऋषि ने अपने कुमार को बुलाकर पूछा–"वत्स! तू ऐसी विद्या जानता है, जिसके बिना अन्य सभी विद्याएँ फीकी पड़ जाती हैं?" पुत्र ने कहा–"जी नहीं।" पिता ने कहा–"तो जा, एक सप्ताह-पर्यन्त तू उपवास कर मेरे पास आ, फिर मैं तुझको विद्या सिखाऊँ।" ऋषि-आज्ञा पा कुमार सप्ताह–पर्यन्त उपवास कर पिता के निकट उपस्थित हुआ। ऋषि ने कहा–"पुत्र! अमुक-वेद के अमुक-ऋचा की व्याख्या करके मुझे सुनाओ।" पुत्र ने उत्तर दिया–"पिता जी ! अभी मैं भूख से पीड़ित हूँ। अन्न बिना मैं बहुत कमजोरी मालूम कर रहा हूँ। उक्ति नहीं आ रही है, बोलने में असमर्थ हूँ। जीवन-धारण करना कठिन हो रहा है। कोई भी ऋचा अभी सूझ नहीं रही है।" पिता ने कहा–"अच्छा तो जाओ, भोजन कर स्वस्थ हो मेरे पास आओ।" ऋषि-पुत्र ने वैसा ही किया। भोजन कर स्वस्थ हो पिता के सम्मुख उपस्थित हुआ। पिता ने पूर्व-कथित वेद की उसी ऋचा की व्याख्या पुनः पूछी। कुमार ने बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से उसकी व्याख्या की। पश्चात् कुमार ने ऋषि से प्रार्थना की–"पिता जी! आपने जिस विद्या के लिए मुझसे कही थी, वह सिखलाइये।" ऋषि ने कहा–"पुत्र! वह है 'अन्न-ब्रह्म'। जबतक तुम्हारे पेट में अन्न नहीं था, तबतक तुम सारी विद्या भूल से गये थे और पेट में 'अन्न-ब्रह्म' के पहुँचते ही तुम्हे सारी विद्या की स्मृति हो आई।"

आपलोग ने जर्मनी के हिटलर का भी नाम सुना होगा। तमाम दुनिया को जीतने चला था। उसने अपने देश में खेती नहीं की। दूसरे देश

ने उसको अन्न नहीं दिया। अन्न के बिना उसकी लड़ाई खतम हो गयी। वह कहाँ चला गया, पता नहीं। हिटलर के बारे में कोई कुछ, कोई कुछ कल्पना करते हैं। मेरे कहने का मतलब है कि केवल विद्या ही नहीं सीखो, खेती भी करो।

❀ अपने शरीर में और हृदय में बल हो, तो आप कुछ कर सकते हैं। यदि शारिरिक बल को कम समझिये तो आपके हृदय में भी बल कम होगा।

शरीर में बल होता है खाने से। केवल पौष्टिक दवाओं का सेवन करें और अन्न नहीं खायें तो औषधी क्या कर सकेगी ? इसलिए दोनों चाहिये।

भोजन के लिए अन्न की आवश्यकता होती है; और अन्न के लिए परिश्रम की आवश्यकता होती है। संसार का पथ और परलोक का पथ–दोनों पथ देने वाला अन्न है। इसीलिए अन्न को ब्रह्म कहते हैं।

श्री सद्गुरवे नमः



अहिंसा का वास्तविक अभिप्राय

हिंसा दो प्रकार की होती है–वार्य और अनिवार्य। श्वास लेने, खेती करने और अपना राज्य बचाने के लिए युद्ध करने में जो हिंसा होती है वह अनिवार्य हिंसा है। गुरु गोबिन्द सिंह गुरु भी और हथियार रखने वाले भी थे। वे उदार भी बहुत थे। एक बार युद्ध के समय उन्होंने एक सिक्ख सिपाही से कहा कि जो सिपाही युद्ध करते-करते गिर जाये उसे पानी पिलाया करो। सिक्ख ने उस आज्ञा को सिरोधार्य कर गिरे हुए सिपाहियों को पानी पिलाना शुरू किया। यहाँ तक कि वह शत्रु-पक्ष के गिरे सिपाहियों को भी पानी पिलाता था। किसी दूसरे सिपाही ने कहा कि ऐ सिक्ख! यह क्या कर रहा है ? दुश्मनों को पानी क्यों पिलाता है ? सिक्ख ने उत्तर दिया–मैं अपना काम कर रहा हूँ, तू अपना काम कर। सिपाही ने गुरु गोबिन्द सिंह जी से जाकर यह बात कही, और कहा कि पानी पीकर दुश्मन स्वस्थ होकर फिर हमसे युद्ध करने लगता है। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने उस सिक्ख को बुलाकर पूछा–"क्या तुम ठीक ही दुश्मनों के गिरे सिपाहियों को भी पानी पिलाते हो ?" उन्होंने कहा–"जी हुजूर !" गुरु गोबिन्द सिंह ने कहा–"ऐसा क्यों करता है ?" सिपाही ने कहा–"हुजूर ने ही तो कहा कि गिरे सिपाहियों को पानी पिलाया करो। हुजूर ! जब तक वह लड़ता है तब तक वह मेरा दुश्मन है, किन्तु जब वह गिर गया, तब वह मेरा दुश्मन कहाँ रहा?" गुरु गोबिन्द सिंह ने उसकी पीठ ठोकते हुए कहा–"तू पानी पिलाया कर, तेरा विचार बड़ा पवित्र है।" एक बार सिक्ख सिपाहीगण दुश्मनों की कुछ स्त्रियों को कैदकर ले आये। गुरु गोबिन्द सिंह जी को जब यह मालूम हुआ तो बहुत बिगड़े और बोले "तुमको किसने सिखलाया कि दुश्मनों की स्त्रियों को कैद करो।" सिक्खों ने कहा–"दुश्मन तो ऐसा करता हैं!" गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा–"दुश्मन यदि पाप करे तो हम भी पाप करें ? जाओ, इन सब स्त्रियों को अच्छी तरह उनके घर पहुँचा दो।" और फिर उन्होंने सख्त हिदायत की कि आइन्दे कभी ऐसा काम मत करना। सिक्खों

ने उन स्त्रियों को उनके घर पहुँचा दिया।

इस प्रकार इनके सम्बन्ध में और ऐसी कितनी ही घटनाएँ हैं। गुरु गोबिन्द सिंह जी गुरु नानक देव की गद्दी के दसवें गुरु थे। शरण में आये की रक्षा करनी, स्त्रियों पर हाथ नहीं उठाना, कैद स्त्रियों को छुड़ाना आदि इनके काम थे। हाँ, तो मैं हिंसा के विषय में कह रहा था। सन्तमत नामर्द नहीं बनाता चोर-डकैत आवे उस पर वार करो, दुश्मन चढ़ आवे तो उससे युद्ध करो। यह अनिवार्य हिंसा है। किन्तु जिह्वा के लालच के लिए मांस खाओ, निशाना ठीक करने के लिए चिड़िया मारो, यह ठीक नहीं। प्रत्येक भोजन अपना-अपना गुण रखता है। बकरे, पशु-पक्षी आदि सभी की देह के गुण अलग-अलग होते हैं। जहाँ मनुष्य शरीर को देवताओं के शरीर से भी विशेष कहा गया है, वहाँ निम्नश्रेणी के जीव-जन्तुओं के मांसों को अपने अन्दर डालना अच्छा नहीं। निम्नश्रेणियों के जीव-जन्तुओं का मांस खाने से तुम्हारी बुद्धि दूषित हो जायेगी, उससे भजन नहीं बन सकता। मांस-मछली खाने से बुद्धि तामसी हो जायेगी, इसलिए इसका त्याग करो। यदि कहो कि मांस-मछली खाने की आज्ञा नहीं देते, और युद्ध करने के लिए आज्ञा देते हो, यह कैसी बात? तो इसके लिए रामायण की प्रसिद्ध कथा है। रावण के दल में सभी **"महिष खाय अरु मदिरा पाना"** वाले थे, और श्रीराम के दल में शाक, सब्जी और पत्ते खाने वाले। दोनों में लड़ाई होने पर शाक-सब्जी खाने वाले ही जीत गये। हाल में महात्मा गांधी जी और अंग्रेज की उपमा से भी जानिये। मस्तिष्क का बल देखिये–निरामिषाहारी महात्मा गांधी जी जीत गये और मांस-मछली खाने वाले अंग्रेज हार गये। कितने गुरु ढ़ीले होते हैं, वे कहते हैं कि "मांस-मछली खाना धीरे-धीरे आपही छोड़ देंगे।" तो मैं कहता हूँ भाई! मांस-मछली खाना चाहो तो उनके पास जाओ। किन्तु मेरी रुचि इसमें नहीं है और न मेरे गुरु महाराज की ही आज्ञा है कि मांस-मछली खाया जाये।

❀ जैनी लोग अहिंसा की तरफ बहुत कड़ाई रखे, जिससे भारत के बाहर उनका ज्ञान नहीं फैल सका। धनराज मुनि एक जैन साधु मुझसे मिले थे। मैंने उनसे पूछा था कि आपके यहाँ तो हिंसा का बड़ा परहेज है। नाक पर पट्टी बांधते हैं, हाथ में चँवर रखते हैं कि चींटी पर पैर नहीं पड़े........।

उन्होंने उत्तर दिया–यदि कोई आततायी, आक्रमणकारी हमला करे तो उससे मुकाबला करना चाहिये। एक जैनी राजा थे। उन्होंने एक आक्रमणकारी से युद्धकर उसे परास्त किया था, जिसमें करीब एक लाख लोग मारे गये थे।

कश्मीर पर दुश्मनों ने चढ़ाई की तो महात्मा गाँधी ने कहा–"रोको।" 'रोको' का अर्थ हुआ युद्ध करो।

सभी राष्ट्रों का एक पंचायत है। उसने कहा–"जो जहाँ तक है वहाँ तक रहो।" इस तरह देश की रक्षा में, घर की रक्षा में और खेती करने में अनिवार्य हिंसा होती है। अनिवार्य के लिए शास्त्रों में मनाही नहीं है। बल्कि उसके लिए पुण्य कर्म करने के लिए कहा गया है। राजा लोग यज्ञ करते थे जिससे परोपकार होता था। अनिवार्य हिंसा का पाप नहीं होगा, ऐसा तो नहीं कहा, लेकिन उसका प्रायश्चित्त बता दिया। मांस-मछली खाये बिना लोग रहते हैं और रह सकते हैं। इसलिए सन्तों ने इसके खाने की मनाही की है।

एक व्याधे से एक मुनि ने कहा था कि, "तू दूर रह।" व्याधे ने पूछा–"तुम भी मनुष्य हो, मैं भी मनुष्य हूँ, फिर दूर रहने क्यों कहते हो ?" मुनि ने कहा–"तेरे शरीर से हिंसा की गन्ध आती है।" व्याधे ने अलग बैठकर कहा कि "मुझे बताओ कि मैं शुद्ध कैसे होऊँगा ? ऐसा साधन बताओ, जो सरल हो पूर्ण फलप्रद भी हो।" मुनि ने बता दिया कि शम–दम करो। व्याधे ने कुछ दिनों तक शम-दम का साधन किया। उसका ज्ञान ठीक हो गया। और जो प्रत्यक्ष होना चाहिये, वह हो गया। फिर जब वह मुनि के पास गया, तो मुनि ने निकट में आदर से बैठाया और कहा कि तुम्हारी मलिनता छूट गई। बिना शम-दम के भक्ति नहीं होती।

जिस समय भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ था, उस समय लोग हिंसात्मक यज्ञ में अधिकाधिक रत रहा करते थे। उस घोर हिंसात्मक समय में भगवान् बुद्ध ने 'अहिंसा परमो धर्मः' की घनघोर पुकार लगाई थी और उस समय की हिंसात्मक प्रवृत्ति को यज्ञों से फेरकर अहिंसा और दया की ओर पलट दिया था।

किसी के घर में चोर-डाकू आवे तो उससे लड़ना चाहिये। देश के

काम के लिए हमारे योग्य बल वाले उस दुष्ट को रोके। जिस हिंसा की मनाही है, वह वार्य हिंसा के लिए है, अनिवार्य हिंसा से बचने के लिए नहीं। शौक से हिंसा मत करो। बकरे मारने वाले को देखा कि मरने के छः महीने पूर्व उनको ऐसा भ्रम होने लगा कि बकरी सींग से मारने आती है। एक शौकीन हिंसा करने वाले के लिए दो लाख रूपये खर्च किये गये, लेकिन वे बचे नहीं।

❀ लोग कहा करते हैं कि बिना मत्स्य-मांस खाये शरीर स्वस्थ नहीं रहता; लेकिन इस विचार को महात्मा गाँधी ने नहीं माना। एक बार कस्तूरवा गाँधी बीमार हो गयी थीं। उनको इतनी कमजोरी आ गयी थी कि जिसके लिए डॉक्टर ने गोश्त का शिरवा खाने के लिये कहा था। गाँधी जी ने कहा–"कस्तूरवा स्वतन्त्र है, वे अपनी जीवन-रक्षा के लिए गोश्त का शिरवा लेना चाहें, ले सकती हैं।" लेकिन जब महात्मा गाँधी ने उनसे पूछा तो कस्तूरवा गाँधी ने कहा–"मैं आपकी गोद में मर जाऊँगी, लेकिन गोश्त का शिरवा नहीं खा सकती।" गाँधीजी ने स्वयं कस्तूरवा का प्राकृतिक इलाज किया, जिससे वे बहुतांश में स्वस्थ हो गईं। लेकिन भोजन में नमक का छोड़ना आवश्यक था। कस्तूरवा गाँधी छोड़ने म असमर्थ थी। महात्मा गाँधी ने कहा–"अब मैं भी नमक नहीं खाऊँगा।" उन्होंने स्वयं नमक खाना छोड़ दिया। लाचार होकर कस्तूरवा ने भी नमक खाना छोड़ दिया। फिर वे पूर्ण स्वस्थ हो गईं।

श्री सद्‌गुरवे नमः

धर्म की परिभाषा और उसकी गुह्यता

❋ जिस मनुष्य को धर्म का ज्ञान होता है और उस धर्म के अनुकूल चलता है, तो वह उत्तम-पुरुष कहलाता है। वह संसार में सुखी रहता है, पूज्य हो जाता है। शरीर छोड़ने पर ऊँचे-स्वर्ग में जाता है। धर्म में पूरा होता है, तो मुक्ति प्राप्त करता है। धर्म उस कर्म को कहते हैं, जो पवित्रता और ऊँचाई को पहुँचाता है।

❋ धर्म में दो तरफ हैं। एक तरफ है सदाचार और दूसरी तरफ है ईश्वर-उपासना। सदाचार ठीक है और ईश्वर-उपासना ठीक है, तो पूर्ण-धर्म है।

❋ मनुस्मृति हम लोगों का वैदिक धर्म-शास्त्र है। उसमें यह बात है जो हिंसा से, नशा से, व्यभिचार से, चोरी से, झूठ से बचता है वह सत्-आचरण करनेवाला होता है। और साथ-ही-साथ जो ईश्वर-उपासना करता है, वह धर्म में पक्का है।

❋ हमलोग माता-पिता, गुरु के द्वारा सीखते हैं। विद्यालय-कॉलेज में जाकर सीखते हैं। जहाँ कुछ सीखना है, वहाँ गुरु हैं। इसी तरह धर्म-ज्ञान के लिए भी गुरु होते हैं। जो धर्म-ज्ञान की अवहेलना करते हैं, वे मनुष्य-शरीर में पशु-जीवन बिताते हैं। इस बड़ी-हानि से बचना चाहिये।

❋ धर्म में संकीर्णता उपयुक्त नहीं, ठीक नहीं। धर्म में उदारता ठीक है। उदारता यह कि पहले हम अपने देश को देखें। "यह सम्प्रदाय, वह मत" आदि बहुत हैं, इनको हम देखें। यदि हम किसी एक सम्प्रदाय के अनुयायी होकर हम इस प्रकार रहें कि हमारा धर्म उदार नहीं हो और हम यह समझें कि हमारा ही सम्प्रदाय उत्तम है, और का नहीं; ऐसा अनुदार-भाव हमको नहीं रखना चाहिये। हमको जानना चाहिये कि बहुत-से धर्म-सम्प्रदायों में सार क्या है ? सबका समन्वय कहाँ है ? मिलावें, इस मिलान के ज्ञान में उदारता आती है, नहीं तो संकीर्णता आती है। आपका ख्याल संकीर्ण नहीं होना चाहिये।

मनुष्य-जीवन में धर्म ही जीवन है। जिस मनुष्य के जीवन में धर्म-ज्ञान नहीं है, उसका जीवन यदि पाशविक कहा जाये तो कुछ अति-उक्ति और हानि नहीं, क्योंकि पशु धर्म का ज्ञान नहीं रखते। धर्म कर्म से होता है। बिना कर्म के धर्म नहीं होता। परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया है फल के लिए नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने को धार्मिक जानने में अच्छा समझते हैं। कोई धार्मिक-सिद्धान्त नहीं जानकर धार्मिक बनना चाहे तो उसकी आशा-ही-आशा रहेगी, आशा पूरी नहीं होगी ; इसलिए धर्म की परिभाषा जानो। धर्म में पहली बात यह है—ईश्वर में अडिग-विश्वास। जिस धर्म में ईश्वर का विश्वास नहीं, वह धर्म ऐसा है जो विषाक्त है, जो देखने मात्र का शुभ है, लेकिन वह अशुभमय है। इसलिए ईश्वर की स्थिति का और उसके स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। ईश्वर-स्तुति होनी चाहिये। स्तुति से उसके स्वरूप और उसकी स्थिति का ज्ञान होता है। इससे श्रद्धा होती है। श्रद्धा से प्रेम होता है। ईश्वर का प्रेमी धर्म से विचलित नहीं होता।

धर्म से विराग होता है। दान-पुण्य भी धर्म है। धर्म-कर्म करने वाले की आसक्ति धन से छूटती है। ध्यान करने में उसका मन लगता है, उसको पहले से ही विरक्ति है।

अपने धर्म को मत छोड़ो। चाहे कितना भी कुबोल सहना पड़े, दुःख भोगना पड़े और अपमान हो। इस देश के गुरु गोबिन्द सिंह जी के छोटे-छोटे दोनों पुत्रों ने इसे करके दिखला दिया।

मनुष्य को धर्मात्मा होना चाहिये। अधर्मी—धर्म-त्यागी नहीं होना चाहिये। धर्म कर्म से होता है। अगर कर्म नहीं किया जाये, तो धर्म नहीं हो सकता। जिस कर्म के करने से यहाँ भी सुख-आराम हो और शरीर छूटने के बाद परलोक में भी सुख-आराम हो, उसको धर्म कहते हैं।

अपने देश में झूठ बहुत हो गया है, इसको हटाओ। इसको हटाने कौन कहेगा ? अधर्म तो थरथरा गया है। वह यदि आदमी होता तो कहता कि लोगों ने हमारी रीढ़ को तोड़ दिया है—अंग को खण्ड-खण्डकर दिया है। इसलिए सब कोई धर्म से बँधो। जिससे शरीर ठीक रहे—रीढ़ ठीक रहे, वह है धर्म। पीठ की रीढ़ टूट जाये तो समझो क्या हालत हो ? पीठिया घाव

होता है तो बड़ा खराब हो जाता है। कितने मर ही जाते हैं। इसलिए सत्य बोलो। धर्म को अपनाओ। ईश्वर को मानना, ईश्वर की भक्ति, यही धर्म का सार है। जिस धर्म में ईश्वर की भक्ति नहीं, वह असार धर्म है।

❀ इस्लाम और क्रिश्चियन धर्मावलम्बी हमको कहते हैं कि हिन्दू धर्म तुम्हारा है। मैं कहता हूँ कि हिन्दू धर्म तुमने कहाँ सुना ? वे कहते हैं कि तुम अपने को हिन्दू कहते हो, इसीलिए मैं भी हिन्दू कहता हूँ। हिन्दू का अर्थ बड़ा खराब है, फारसी के शब्द-कोश में देखो। हमारा धर्म वैदिक धर्म है। हम वैदिक आर्य हैं–ऐसा कहो। 'हिन्दू' शब्द हमको अपमानित करता है। वैदिक धर्म को जो हिन्दू धर्म कहते हैं, यह अनुचित है।

❀ सत्य ही धर्म का मूल है। सबको एक साथ धर्म बाँधता है; क्योंकि इसकी जड़ में सत्य है। वह एक धर्म कौन-सा है ? अध्यात्म-धर्म है। अध्यात्म-धर्म में सब मिल जाओ। चाहे वैदिक, ईसाई, इस्लाम कोई होओ। नाम चाहे कुछ दे दो। अध्यात्म-धर्म कहो वा और कुछ कहो। हमलोग सन्तमत कहते हैं। सभी सन्तों का धर्म है। सभी सन्तों का ज्ञान लेते हैं। यही सन्तमत है। सन्तमत किसी एक महात्मा के नाम पर का मत वा धर्म नहीं है। सारे संसार में सबको एक करके रखने के लिए सन्तमत है। सभी एक धर्म से मिलो। जैसे किसी का नाम रामदास, किसी का नाम कृष्णदास है, लेकिन सभी मनुष्य हैं। इसी तरह ईसाई, वैदिक, इस्लाम अलग-अलग धर्म के नाम हैं; लेकिन सबका मूल सत्य है। जो सत्य में रहता है, वह अध्यात्म में रहता है। जो अध्यात्म में नहीं रहता है, वह सत्य में नहीं रहेगा। जो सत्य धर्म को छोड़ेगा, वह गिरता-पड़ता रहेगा। सब कोई एक धर्म को स्वीकार करो। वैदिक, बौद्ध, ईसाई वा इस्लाम कोई हों, सबके भोजन का एक ही रास्ता है, उसी तरह ईश्वर पाने का सबका रास्ता एक है। और वह रास्ता है अन्दर का। स्वराज्य है, बड़ी खुशी है। इसमें सुराज चाहिये। सुराज के लिए एक धर्म को स्वीकार करो। अन्तर्मुख चलो। अन्तर्मुख धर्म सबका एक है।

❀ **"देखदेखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।**
विपति पड़े यों छाँड़सी, ज्यों केंचुली भुजंग।।"

–सन्त कबीर साहब

भुजंग-साँप केंचुली छोड़ता है, उसे वह उलटकर देखता भी नहीं है,

उसी तरह जिसने ठीक से समझ नहीं लिया है, एक धर्म को पकड़ लिया है, दूसरा सुनता है तो उसी ओर कूद पड़ता है, ऐसा नहीं करना चाहिये। धर्म को अच्छी तरह समझ लो।

यदि भूल से धर्म के बदले अधर्म पकड़ा गया हो, तो वह छोड़ देने योग्य है।

❀ सब दानों में धर्म का दान उत्तम है। धर्मदान ज्ञानदान है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि सब यज्ञों में ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। धर्म के प्रचार में तन-मन-धन से सेवा करनी चाहिये।

❀ दूसरों से कष्टों को पाकर भी, अपमान पाकर भी, धर्म नहीं छोड़ो। धर्म के लिए कोई कष्ट देता है, अपमान करता है, तो उसको सह लो।

❀ ईसा मसीह हमारे देश से बहुत दूर में हुए। उनके धर्म का प्रचार युरोप, अमेरिका आदि देशों में हुआ। ईसा मसीह को गुजरे अधिक वर्ष हो गये। फिर भी उनके धर्म का प्रचार सारे संसार में हुआ। इनके अनुयायी सब एक सूत्र में उनके धर्म के कारण बँध गये। इसी तरह इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ। पढे-लिखे लोग जानते हैं। भगवान् बुद्ध अपने देश में हुए। उनके धर्म का भी प्रचार बहुत दूर देशों में हुआ। उनके अनुयायी भी एक धर्म के सूत्र में बंध गये। वैदिक-धर्म का प्रचार बहुत दूर देशों में बहुत कम है। बौद्ध काल में भी लोग एक सूत्र में बँधे थे। एक सूत्र में बाँधने के लिए धर्म ही एक मात्र महत्त्वपूर्ण साधन है। वेद में सारे संसार के लिए इसका उपदेश है। सभी लोगों को अपने धर्म में बँध जाना चाहिये।

❀ परमात्मा सबमें रहकर सबके अनुरूप होते हुए सबसे बाहर भी हैं। क्या उपनिषद् क्या संतवाणी—सबका मेल है। सबसे परे जो परमात्मा हैं, वे ही परम पुरातन, परम सनातन हैं। उन ईश्वर-परमात्मा में विश्वास रखने वाले सनातन धर्म को पकड़े रहेंगे। उन परमात्मा का जो भजन, पूजन, आराधना या उपासना है, वही सनातन धर्म है।

यह तर्क यदि रखिये कि जो सबसे पहले का होगा, वह अनादि-अनन्त होगा। जो अनादि-अनन्त होगा, वही सबसे पहले का होगा और वह एक-ही-एक होगा। वही सर्वत्र होगा, सर्वव्यापक होगा। ऐसे ही तत्त्व को परमात्मा कहते हैं। इस ज्ञान को संतों की वाणी बतलाती है। इस ज्ञान को

वेद मानता है।

"धर्म तें बिरति जोग ते ग्याना।
ग्यान मोक्षप्रद वेद बखाना।
जातें वेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई।।"

धर्म से विरक्ति होती है। गोस्वामी जी ने लिखा है–"धर्म न दूसर सत्य समाना।" अर्थात् सत्य के बराबर कोई धर्म नहीं है। धर्म सबसे बढ़कर है। सत्य को पकड़कर रहना धर्म है। एक साँच के बोलने से सभी पाप निकल जाते हैं और झूठ के रखने से सभी दुर्गुण आ जाते हैं। इसलिए सन्तमत कहता है, सत्य बोलो। सत्य बोलने पर जो धर्म होता है या सत्यरूपी जो धर्म है, उससे वैराग्य होता है। क्यों वैराग्य होता है ? इसलिए कि हम सत्य ही बोलेंगे, असत्य नहीं–यह जो टेक है, इसके मारे वह कोई दुष्कर्म नहीं करेगा, क्योंकि दुष्कर्म करेंगे तो झूठ बोलना पड़ेगा कि हमने नहीं किया है। सत्य सभी दुर्गुणों को निकाल देता है और असत्य सभी दुर्गुणों से भर देता है। इसलिए धर्म से वैराग्य हो गया। इसीलिए सारे दुर्गुणों का त्याग हो गया।





अन्तर्मुखी धर्म सबका एक है।





श्री सद्गुरवे नमः



सुसंस्कारिता और सदाचरण

❀ भजन करने के लिए हमको वैसा बनना पड़ेगा, जिससे हम भजन करने के योग्य होंगे। अतरदान में अंगुलि देनी हो, तो गोबर जिस हाथ से फेंके हो, उस हाथ की अंगुलि को धो लो, तब इत्र की सुगन्ध मालूम होगी। उसी तरह ईश्वर-भजन करने के लिए अपने मन-हृदय को शुद्ध करना होगा। इसके लिए पाँच पाप मत करो। पहला पाप है झूठ। झूठ मत बोलो। यदि गाँव भर के लोग झूठ नहीं बोलेंगे तो किसी से किसी को लड़ाई-झगड़ा आदि नहीं होगा। झूठ में सब पाप छिपे हैं। झूठ छोड़ा तो सब पाप भाग जायेंगे।

❀ आजकल हमलोग स्वतंत्र हैं। अपने प्रभु आप हो, पंचायत का राज्य है। जनता का राज्य है। राज्य सुखदायी होना चाहिये; किन्तु सुख कहाँ है ? इसका कारण है कि हमलोग पाप बहुत करते हैं। झूठ बहुत बोलते हैं। यदि झूठ बोलना छोड़ दें, तो सुख-ही-सुख होगा। झूठ गया, तो घूस गया। और झूठ-फूस चला गया, तो मुकदमेबाजी नहीं होगी।

❀ पुण्य का फल सुख होता है; लेकिन इसमें पहले थोड़ा कष्ट होता है। इसको सहो। महात्मा गाँधी जी को अफ्रीका में इतना मारा कि उनका दाँत तोड़ दिया। उनसे मैला फेंकवाया। उन्होंने इन कष्टों को सहन किया। पीछे उन्हीं महात्मा गाँधी जी की इतनी इज्जत हुई कि कहा नहीं जाये। अपने देश की तो बात ही क्या, दूसरे देश के लोगों ने भी इनकी बहुत इज्जत की। धनोपार्जन पाप करके भी होता है; किन्तु परमार्थ पाप करने से नहीं हो सकता। इसलिए पाप मत करो। सत्संग-ध्यान करते रहो। संसार और परमार्थ–दोनों ठीक-ठीक चलेंगे।

❀ झूठ नहीं बोलें, एक शब्द छिपा लेने से भी झूठ है। बात मत चुराइये। एक बात से किसी को लाख रूपये मिल जाते हैं और किसी को लाख रूपये की घटी हो जाती है। हिंसा नहीं करें। मन से, वचन से और कर्म से–तीनों प्रकार की हिंसा से बचें। किसी भी नशीली चीज का सेवन न

करें। व्यभिचार न करें।

❀ जिसका मन सत्संग में जाने से कतराता है तो समझिये कि उसका मन पापी है। जिसके मन में लगा रहे कि सत्संग में कब जायें, कब जायें तो उससे पाप नहीं होगा। यदि उससे पाप हो भी जाये और वह कह दे कि भाई! मुझसे यह पाप हो गया तो उससे फिर पाप नहीं होगा। जो गलती से झूठ बात आपमें आ गयी है, उसको छोड़ दीजिये। अपने को पाप में मत डुबाइये।

❀ बहुत विद्याओं को जानें, यह ऊँची बात है। किन्तु विद्वान् होते हुए सदाचारी बनें, इन्द्रियों को वश में करके रखें, यह विशेष ऊँची बात है। विद्वान् होने से संसार में प्रतिष्ठित होते हैं और सदाचारी होकर रहने से ईश्वर के यहाँ प्रतिष्ठित होते हैं। हमारे यहाँ के ऋषियों ने इसी को विशेष प्रतिष्ठा दी है।

❀ वैवाहिक सम्बन्ध जिस देश में गड़बड़ होगा, वह देश एकदम खराब हो जायेगा और जहाँ राज्य-प्रबन्ध ढ़ीला हुआ, वहाँ दूसरे आकर बैठ जायेंगे। वैवाहिक सम्बन्ध के लिए अपने कुल में जैसा व्यवहार है, उस तरह बरतें। इस तरह जो बरतते हैं, वे ही ठीक सत्संगी और सत्संगिनी हैं। वैवाहिक सम्बन्ध का जो नियम है, उसके अनुकूल जो रहे, तो व्यभिचार नहीं होगा।

❀ सांस्कृतिक कार्य मनुष्य को सुधारकर उसके उदात्त गुणों को विकसित करता है। हमलोग सुधरे हुए कम हैं। कभी देखनें में आता है कि सुधरे हुए नहीं हैं। इसलिए हमको सीखना होगा कि सुधरें कैसे ? अच्छे आचरण से चलें, यही सुधार है। यदि अच्छे आचरण से नहीं चलें, तो सुधार नहीं है। अच्छा सुधार बिना अच्छे संग और अच्छी विद्या के नहीं हो सकता। अच्छे आचरण से संसार में रहें, इसके लिए विद्या की बड़ी आवश्यकता है। साथ ही यह भी देखें कि हमारे यहाँ जो महान् हुए, उनका आचरण कैसा था ? उनके आचरण के मुताबिक चलें तो हमारा कल्याण होगा।

❀ एक साधुवेशी हैं, वे मिड्ल स्कूल तक जाकर आसन सिखलाते हैं। एक जगह वे गये और जाकर विद्यार्थियों से पूछा कि प्रातःकाल उठकर आप क्या करते हैं ? सबों ने उत्तर में बताया कि वे सुबह उठकर क्या करते हैं।

किन्तु प्रश्नकर्त्ता किसी के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए। यही प्रश्न उन्होंने अध्यापकों से भी पूछा और उनके उत्तर भी संन्यासी को ठीक नहीं जँचे। उन्होंने कहा कि आपलोग तुलसीकृत रामायण नहीं पढ़ते हैं, इसलिए आपलोग नहीं जानते हैं कि प्रातःकाल क्या करना चाहिये।

"प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।"

यह ! यह नहीं कि एक दिन, बल्कि प्रत्येक दिन। हमारे देश में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम आदर्श पुरुष हुए। उनके नमूने पर हम चलें तो हमारा सुधार हो। यह देखिये कि उपर्युक्त आचरण् अपने में है कि नहीं। भगवान् बुद्ध का वचन है–**"जो बूढ़ों को प्रणाम और आदर करते हैं, उनकी चार चीजें बढ़ेंगी– आयु, सुख, सुन्दरता और बल।"** आप पूछेंगे कि भगवान् बुद्ध ने यों ही कहा या होना भी सम्भव है, तो कहूँगा, होना सम्भव है। जिनको आप प्रणाम कीजियेगा, उनकी शुभेच्छा आपके प्रति होगी, यह सम्भव ही है। आज के वैज्ञानिक विद्वान् भी कहते हैं कि मनोबल में भी कुछ बल है। शुभेच्छा में भी मनोबल है। जिसके लिए शुभेच्छा की गयी, उसकी भलाई हो, पूर्णतया सम्भव है। भगवान् बुद्ध महान् व्यक्ति थे। वे विशेष अवतारों में गिने गये हैं। उनका वचन मिथ्या नहीं है।

❀ हमारा सुधार माता की गोद से ही होना चाहिये अथवा माता के पेट से ही सुसंस्कारित करने का प्रयत्न होना चाहिये। इसका अर्थ है–माता-पिता स्वयं समुचितरूपेण सुसंस्कृत हों। आपको आश्चर्य होगा कि बच्चा पेट में भी वेद पढ़ता है। पराशर मुनि शक्ति मुनि के पुत्र थे और शक्ति मुनि वशिष्ठ के पुत्र थे। वशिष्ठ के सौ पुत्र थे, वे मारे गये थे। उन्होंने देखा कि पतोहू के गर्भ में बालक है, इसीलिए उसकी किसी तरह रक्षा की जाये। उसको सुरक्षित स्थान में रखने के लिए वे कहीं ले जा रहे थे। वशिष्ठ आगे और पतोहू पीछे थी। शक्ति मुनि की तरह कण्ठ-स्वर से वह पेट का बच्चा वेद ऋचा गाता था। वशिष्ठ ने कहा–"पुत्री, यह कौन गा रहा है ?" पतोहू बोली कि आपका पोता है, जो मेरे गर्भ में है।

❀ प्रह्लाद अपनी माता के पेट में था। नारद ने जो ज्ञान प्रह्लाद की माता को सुनाया, वह ज्ञान प्रह्लाद को मिल गया और गर्भ से ही ज्ञान–ध्यान लेता आया। चक्रव्यूह का भेदन करना कोई नहीं जानता था, एक

अर्जुन जानता था; किन्तु वह दूसरी जगह युद्ध करने के लिए चला गया था। जिस समय अभिमन्यु पेट में था, उसी समय उसकी माता ने अर्जुन से जिज्ञासा की थी कि चक्रब्यूह में कैसे प्रवेश किया जाता है ? उन्होंने वर्णन किया और उस विद्या को अभिमन्यु ने गर्भ में ही सीख ली। संस्कृति का आरम्भ माता के पेट से होता है। इसके लिए चाहिये कि माता-पिता दोनों सुसंस्कृत हों और जन्म होने पर माता-पिता उसको अच्छे आचरण से रखें। घर का आचरण अच्छा हो। पाठशाला में जब वह जाये तो अध्यापक के उत्तम आचरण को देखकर बच्चे भी अच्छे आचरण सीख सकें। मुहम्मद साहब के पास एक बुढ़िया अपने पोते को ले गयी, जिसको सर्दी हुई थी। मुहम्मद साहब बोले, "इसे कल ले आना।" दूसरे दिन बुढ़िया फिर अपने पोते को लेकर मुहम्मद साहब के पास गयी। मुहम्मद साहब बोले, "आज जाओ, इसे कल ले आना।" बुढ़िया फिर मुहम्मद साहब के पास आयी। इस प्रकार कई दिनों तक लगातार उस बुढ़िया को मुहम्मद साहब बुलाते रहे और बुढ़िया आती रही। अन्त में मुहम्मद साहब बोले कि बच्चे को शक्कर नहीं खिलाओ, सर्दी छूट जायेगी। बुढ़िया भिन्नाई और बोली–"आपने पहले ही दिन यह बात क्यों नहीं कही, जो आज लगातार कई दिनों तक हैरान कर लेने के बाद आपने यह बात कही है।" मुहम्मद साहब बोले–"मुझे भी सर्दी लगी थी और मैं भी शक्कर खाता था। किन्तु शक्कर छोड़ देने पर मेरी सर्दी छूट गयी। यदि मैं शक्कर खाता और दूसरों को शिक्षा देता कि शक्कर मत खाओ तो इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मैंने शक्कर खाना छोड़ दिया है, तब आज मैंने तुमसे कहा है।" इसी तरह हमारे आचार्यगण, अध्यापकगण अपने में अच्छे आचरण लावें तो लड़के भी अच्छे आचरण से रहेंगे।

❀ **"प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।"**

यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो आपने भारतीय आर्य के संस्कारों को छोड़ दिया है, यदि करते हैं तो भारतीय आर्य हैं। यों तो कई देश के लोग अपने को आर्य कहते हैं, किन्तु हम भारतीय आर्य हैं। यदि हम नम्र नहीं होते हैं तो हम अपनी सुसंस्कृति छोड़ते हैं। आजकल विद्यालयों और महाविद्यालयों में लोग ऐसे बरतते हैं, जिससे अन्य लोग कुछ कहने लग गये हैं। लोगों को विद्यार्थी और अध्यापक दोनों के पक्ष में संशय हो गया है। जितने विद्यालय

और महाविद्यालय हैं, उनमें नम्रता तोड़कर व्यवहार करते प्रायः देखा जाता है। ये ऐसे संस्थान हैं, जहाँ से हम उत्तम संस्कार लेकर सुसंस्कृत होते हैं। यदि हम यहाँ भी नहीं सीखें तो फिर कहाँ जाकर सीखेंगे ? यहाँ से शिक्षा प्राप्तकर लेने के बाद आप जहाँ कहीं भी रहें, वहाँ इतनी उत्तमता से रहें कि देश का कल्याण हो।

❀ कोई सदाचार का पालन करना चाहे और ईश्वर भक्ति नहीं करे, तो बिना ईश्वर-भक्ति के अवलम्ब के सदाचार का पालन नहीं कर सकता।

❀ यदि कोई सदाचारी हैं तो उनको देखकर दूसरे भी सदाचार-पालन में लगते हैं। सदाचार को केवल वाक्य-ही-वाक्य में नहीं रखें, उसको चरितार्थ भी करें।

❀ सदाचार-पालन में योग है। सदाचार-पालन में ज्ञान है। सदाचार-पालन में प्रेम है। बिना सदाचार-पालन के न योग है, न ज्ञान है, न प्रेम है।

❀ संसार में किस आचरण से रहा जाये ? वह सदाचार का विचार मैंने मजबूती से धारण किया है। सदाचार का ज्ञान भी इतना अच्छा है कि इस लोक में आराम से रहिये, परलोक में आराम से रहिये और रहते-रहते मोक्ष पा लीजिये। इससे राजनीति भी पवित्र हो जाती है। राजनीति में इसको लेने से उसमें बड़ा आराम मिलता है।

❀ जिस देश में लोग सदाचार का पालन करेंगे, आपस में प्रेम होगा, शांति होगी। लेकिन जो कहते हैं कि बिना ईश्वर-भक्ति का सदाचार-पालन करेंगे, तो ऐसा नहीं होगा। कहने वाले कितने गिरे। इसलिए ईश्वर-भक्ति करो, तो सदाचार का पालन होगा। सदाचार-पालन करोगे तो ईश्वर-भजन होगा, सदाचार का पालन नहीं करोगे तो ईश्वर-भजन नहीं होगा। महान दुख में पड़े रहोगे। यही संतमत का ज्ञान है।

❀ ईश्वर-दर्शन के लिए, नजात के लिए और संसार के लिए भी सदाचार अच्छा है। सदाचार किसी जाति विशेष में है, और किसी में नहीं, सो नहीं। महात्मा, संत, फकीर, औलिया, पीर-पैगम्बर अपने देश में हुए और दूसरे देश में भी। सभी सदाचार बता गये हैं।

❀ सदाचार के बिना ध्यान-अभ्यास की कमर टूटी रहती है। सदाचार

ही तो बल है। ध्यान करने में अवश्य ही मस्तिष्क में बल लगता है। सदाचार से ध्यान में बल मिलता है और ध्यान से सदाचार में दृढ़ता आती है। अपवित्र ब्रह्मचर्य में पूर्ण फल नहीं मिलता। इन बातों का ख्याल सत्संगियों को चाहिये।

❁ सन्त जो शान्ति पाये हैं, चाहे वे किसी धर्म के हों, उनमें सुचलन का—उत्तम आचरण की बहुत ही आवश्यकता है। जहाँ सुचलन है, वहाँ भजन होगा। जहाँ भजन होगा, वहाँ सुचलन होगा। कोई भजन करे और सुचलन नहीं रहे, सम्भव नहीं है। अपने मन को सत्य पर टिकाकर रखो, चाहे जो हो जाये।

❁ पाप बुद्धि से भजन नहीं कर सकते।

"तुलसी दया न छाड़िये, जब लगि घट में प्राण।"

हमारा किसी ने अपकार किया है, हम उसका अपकार नहीं करें। जिसने अपकर्म किया—पाप किया, वह दया का पात्र होगा; उस पर दया करो; उसका अपकार मत करो। अभी कुछ दिन जियोगे; किन्तु जीव का जीवन अनन्त है। इसलिए अनन्त जीवन के लिए पाप कर्म क्यों करो, जो दुःख-ही-दुःख भोगते रहो। इसलिए पाप कर्म छोड़ो और भजन करो।

❁ जब एखलाक (शील) वा सदाचार ऊँचा होगा तब आत्म-ज्ञान में ऊँची गति यानि रूहानी तरक्की होगी। संसार में सदाचरण में बरतते हुए परलोक में भी ठीक-ठीक कुशल से रहा जायेगा। विषयी सदाचरण में बरतकर आत्मोन्नति पथ में नहीं चल सकता।

❁ नैतिकता के पतन से दुःख पाओगे। सदाचार-हीन होने से नैतिक पतन होगा। सदाचार का पालन करो। सदाचार का पालन करना, बिना आध्यात्किम ज्ञान के नहीं होगा। केवल आधिभौतिक पदार्थों को लेते रहो, तब तुम सदाचारी बनोगे, यह नहीं होगा। संसार का पदार्थ येन केन विधि से ले सकोगे, किन्तु जो रूहानी चीज है, उसको जिस-तिस तरह से नहीं ले सकोगे। दुरूस्त और ठीक एखलाक व त्रृटि-विहीन सदाचार से ही अध्यात्मतत्त्व का पाना हो सकता है, जिसमें शान्तिदायक सुख है। सदाचार के पालन में लगे रहने से नैतिकता का पतन नहीं होगा और जनता में नैतिकता का पतन नहीं होगा और जनता में नैतिकता की बढ़ती से संसार

सुखी हो जायेगा। यदि सदाचार से गिरे, तो नैतिक पतन वालों को संसार में चैन कहाँ ?

❀ पाप उसे कहते हैं, जिस काम से लोक-परलोक में निन्दा होती है। एक झूठ बोलने वाला कोई बड़ा आदमी है, धन से बड़ा है, विद्या से बड़ा है; लेकिन झूठ बोलता है, उसकी धन-सम्पत्ति के कारण लोग उससे झुकते हैं; लेकिन झुकने वाले का हृदय जानता है कि यह झूठा आदमी है, इसलिए उसके हृदय में उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती। अतः झूठ मत बोलो। झूठ के थैले में सभी पाप समाते हैं।

❀ भागलपुर में एक साधु पहुँचा। उसने कहा चमत्कार के बिना नमस्कार नहीं। मैंने पूछा—महाराज चमत्कार क्या ? वे कुछ न बोले। मैंने कहा चमत्कार, सदाचार पालन है। सिद्धि से बढ़कर शुद्धाचरण है। रावण ने बहुत चमत्कार दिखाया, लेकिन उसका नाम दुष्टों के लिस्ट में है। तबके और अबके भी साधु सिद्धि वगैरह दिखाये हैं और नीचे भी गिरे हैं।

"रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई।
बुद्धिहि लोभ दिखावइ जाई।।
होइ बुद्धि जौं परम सयानी।
तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।"

– श्री रामचरित मानस

जिसका आचरण सुधरा हुआ नहीं है, वह ईश्वर का भजन नहीं करता, संसार का भजन करता है। कोई कहते हैं, कि फलाना साधु चमत्कार दिखाते हैं। उस चमत्कार के फेर में नहीं पड़िये। उनका आचरण देखिये। आचरण देखकर किसी पर विश्वास कीजिये।

"कहै कबीर निज रहनि सम्हारी।
सदा आनंद रहैं नरनारी।।"

इसके बिना न संसार में कोई भला रह सकता है और न मोक्ष के योग्य हो सकता है, इसको ठीक-ठीक समझिये।

❀ महात्मा गाँधी भक्त लोग थे। वे कितने सच्चे थे। जिस समय वे वकालत करते थे तो लोग जानते थे कि गाँधी जी झूठा मुकदमा नहीं लेते

हैं। संयोगवश एक मुकदमें की झूठाई गाँधी जी को मालूम हो गई, उन्होंने हाकिम को कहा कि हमने जो इस केस में बहस किया था, सो सब झूठा है। कहने का मतलब यह है कि भक्ति के पक्ष में आने से देश से दुष्ट कर्म भाग जायेगा। सदाचार के पालन से ही अध्यात्म-पथ में गमन होगा।

❁ अध्यात्म-ज्ञान द्वारा, बिना कानून के, केवल ज्ञान-उपदेश के द्वारा लोग सदाचार का पालन करेंगे। राज्य की ओर से इसमें लोगों को बहुत प्रोत्साहन मिलना चाहिये। ज्ञान, ध्यान और सदाचार पालन का अधिक प्रचार होना चाहिये। केवल ईश्वर-भक्ति नहीं होती, उसके साथ सदाचार का पालन होता है। इसलिए इसका प्रचार बहुत अच्छा होना चाहिये।

❁ सदाचारी होने के लिए पंच पापों—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार को छोड़ना होगा। सदाचार-पालन से सभी अनैतिकता दूर हो जाती है। सदाचार में पंचशील का पालन है। पंच पापों को छोड़कर रहना सदाचार में रहना है। पंच पापों में रहना अनैतिकता और दुराचार में रहना है। सदाचार का पालन करने से ईश्वर-दर्शन के मार्ग में सहायता मिलती है और ईश्वर-भजन से सदाचार-पालन में मदद मिलती है। दोनों एक दूसरे के सहारे हैं।

❁ जो ईश्वर-भक्त होता है, उसके लिए सदाचार-पालन अनिवार्य हो जाता है। जो पंचशील का पालन करता है, संसार-परमार्थ दोनों में वह कल्याण पाता है।

❁ यदि समाज के लोग ऐसे हो जायें कि पंच पापों से बचकर रहें, तो संसार में भी आराम होगा और परमार्थ भी सुखद होगा, संतों ने जो बताया है, उससे कल्याण होगा। ईश्वर-भक्ति का सहारा लो। मैं आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि आप ईश्वर का भजन करें। आप साधन कीजिये, सदाचार का पालन कीजिये।

❁ ईश्वर के भजन से जीवन सुखमय होगा। अपने को भला बनाना ईश्वर-भजन से होगा। बहुत पढ़-लिख लिए इससे अपनी पूरी भलाई हो ऐसी बात नहीं। संसार में तुम अपने को सम्हाल कर रखो कि तुम्हारी कोई निन्दा न करे। यदि तुम्हारा आचरण ठीक है और लोग तुम्हारी निन्दा करें, तो परवाह मत करो। और यदि तुम से उस तरह का काम हो गया है, तब

जो तुमको कोई कुछ कहे तो उसको अपना मित्र मानो। ईश्वर की ओर चलने के लिए पवित्र-भाव से रहना होगा। संसार की कमाई में पाप-पुण्य का कोई विचार नहीं होता, लेकिन ईश्वर-भजन में पाप-पुण्य का विचार करके चलना होगा। कोई चाहे कि ईश्वर-भजन भी करेंगे और पाप भी करेंगे, तो उससे ईश्वर का भजन नहीं होगा।

❁ संयमी होकर रहो। जो संयमी होकर रहते हैं वे संसार में भी सुखी होते हैं और ईश्वर की ओर बढ़ते-बढ़ते सुखी होते जाते हैं। ईश्वर को पाकर परम-सुखी हो जाते हैं। फिर संसार की कोई इच्छा नहीं रह जाती। चाहिये ऐसा सत्संग किया जाये। संयमित होकर रहना तप है। इसके लिए क्या करना होगा ? पहली बात है–झूठ को छोड़ देना। दूसरी बात है–किसी किस्म की चोरी नहीं करनी। तीसरी बात है–व्यभिचार नहीं करना। चौथी बात है–नशा नहीं लेना। पाँचवीं बात है–हिंसा नहीं करनी। इस सिलसिले में निरामिष-भोजी बनो। यह देश तो ऐसा है कि निरामिष-भोजी होकर रहना सरल है। संसार में ऐसा भी देश है जहाँ निरामिष होकर रहना कठिन है। आमिष में पाशविक-गुण रहता है। पाशविक-गुणों को बढ़ाने से अन्तर्साधना, ईश्वर में प्रेम होना असम्भव है। इसलिए ईश्वर के प्रेमी को पंच पापों से छूटकर रहना आवश्यक होता है। जो पंच पापों से छूटकर रहता है, संसार में वह पूज्य होता है।

❁ संसार में आचरण कैसा होना चाहिये ?

"निरत निरन्तर सज्जन धर्मा।"

झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार का करने वाला सज्जन नहीं। इनसे जो छूटे रहते हैं, वे सज्जन कहलाते हैं। उनका संग करो। पढे-अनपढ़े, धनी-निर्धन, ऊँचे-कुल, नीचे-कुल; आदि की इसमें कोई बात नहीं। जो अच्छी चाल-चलन में रहते हैं, ध्यान करते हैं, वे अच्छे हैं। सदाचार का पालन कीजिये। सत्संग कीजिये और ध्यान कीजिये।

❁ सदाचारी ईश्वर का भक्त बनता है। भक्त बनने से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। ईश्वर की भक्ति करो, तो मुक्ति मिलेगी। विद्वान् बनो और सदाचारी होकर ईश्वर की भक्ति करो, तो संसार में ऊँचा-पद प्राप्त करोगे और मुक्ति भी प्राप्त करोगे।

❀ **"नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः।**
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।"

–कठापनिषद्

अर्थात्–जो पापकर्म से बचा हुआ नहीं है। वह ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए सबको चाहिये कि पापकर्मों से बचें। पाप कर्मों से बचने पर केवल ईश्वर ही नहीं मिलते, बल्कि पाप कर्मों से बचने वाले अपने अन्दर में शान्ति से रहते हैं। संसार में पूज्य होते हैं। देवता के समान लोग उनकी वन्दना करते हैं। वे स्वयं भी शान्त रहते हैं और शान्ति-स्वरूप परमात्मा को भी पाते हैं। दुश्चरित्र को इन्द्रियों में आसक्ति रहती है, वह इन्द्रियों में बंधा रहता है। इन्द्रियों से ऊपर नहीं उठ सकता।

❀ पवित्रता से रहो, ईश्वर-भजन करो। श्रवण, मनन और साधन होना चाहिये। इसमें बल पाने के लिए सदाचार का पालन आवश्यक है। सदाचार-पालन के बिना अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद को कोई नहीं पा सकता।

❀ अपने शरीर को शौच से पवित्र करो। किन्तु इतने से ही यह पवित्र नहीं होता है। हृदय की पवित्रता असली पवित्रता है। हृदय में पाप विचार न आने से हृदय पवित्र होता है। हृदय में पाप-विचार आने से पाप करते हैं। इस पाप-विचार से लोगों को डरना चाहिये। पाप-विचार करने से बाहर में लोग नहीं देखते हैं, किन्तु परमात्मा सभी जानते और देखते हैं। यदि कोई पाप करता है तो परमात्मा के सामने करता है, क्योंकि परमात्मा सब जगह है। बाहर में भी यदि कोई किसी को पाप करते देख लेता है तो लोग उसे दुरदुराते हैं। इसलिए पाप नहीं करना चाहिये। पाप करने वाले को लोग लजाते भी हैं।

❀ गुरु नानकदेव ने कहा–

"सूचै भाड़ै साचु समावै विरले सूचाचारी।"

पवित्र-वर्तन में ही सत्य अँटता है। ऐसे बहुत कम लोग हैं। यह शरीर वर्तन है। शरीर को बाहर में कितना भी पवित्र कर लो; लेकिन इसके भीतर में मन कैसा है। सो समझो। जिसका मन सत्य में लैलीन है, वह अपने वर्तन–शरीर को पवित्र रख सकता है।

❀ एक फकीर थे। रामानन्द स्वामी के समय की बात है। फकीर ने

अपने चेले को रामानन्द स्वामी के पास भेजा। फकीर के चेले ने रामानन्द स्वामी से पूछा कि आपने कुछ हराम खाया है। यों मुसलमान लोग सुअर को हराम कहते हैं। लेकिन सो बात यहाँ नहीं है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि ये ही हराम हैं। ये सब जल्द वश में नहीं आते। रामानन्द स्वामी ने जबाब दिया कि "सुअर हराम नहीं है, काम, क्रोधादि विकार ही हराम है। धीरे-धीरे लोग इनको खाते हैं यानि वश में करते हैं। और खाते-खाते अर्थात् वश में करते-करते जो इन विकारों को अपने वश में पूर्णरूपेण कर लेते हैं, वे कृत-कृत्य हो जाते हैं।"

❁ पवित्रता से रहो। इतनी पवित्रता होगी कि उसका सूर्य भी स्पर्श नहीं कर सकता। केवल स्नान से कोई पवित्र नहीं होता और स्नान नहीं करो तो रोग होगा। केवल स्नान करके पवित्र समझना भूल है। अन्तःकरण को पवित्र रखो। दरिया साहब ने कहा है–

"भीतर मैल चहल की लागी, बाहर तन का धोवै है।"

❁ पवित्रता स्नान करके हो, इतना ही नहीं, भीतर भी पवित्र होना चाहिये। जप और ध्यान से भीतर पवित्र होता है। सत्य बोलो। सत्य नहीं बोलो तो कभी हृदय-साफ नहीं होगा। कोई बात छिपाने की हो, तो कहो–इससे अधिक नहीं कहूँगा अथवा चुप हो जाओ। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से शरीर और मन में अपवित्रता होती है। इससे पवित्र होने के लिए सत्य बोलना चाहिये। किसी से सत्य बोलना है और छिपाना है, तो चुप हो जाओ।

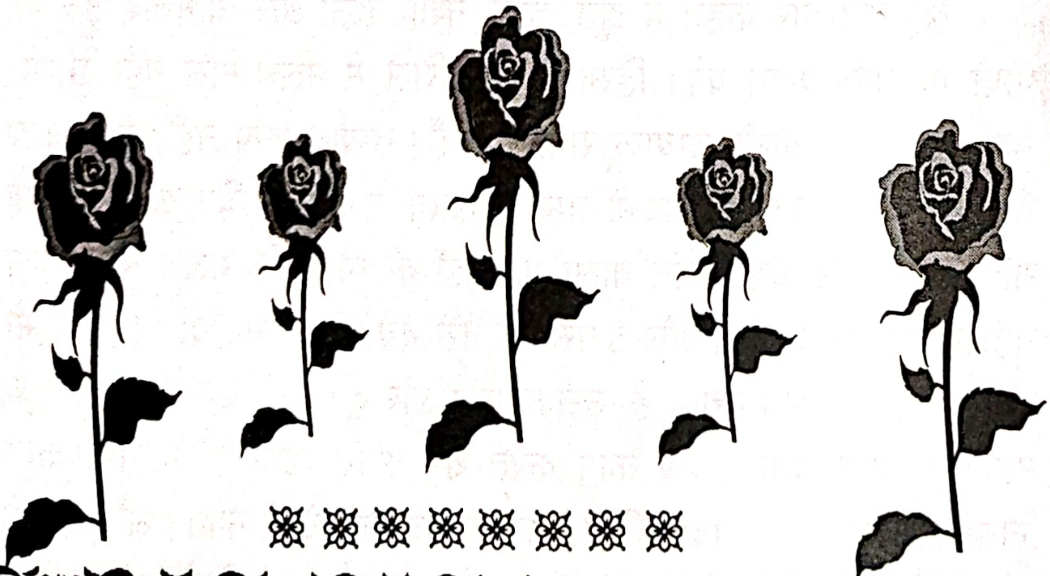
❁ सदाचार कहते हैं झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार, इन पंच पापों के नहीं करने को। हिंसा के सिलसिले में मत्स्य-मांस नहीं खाओ। नशा नहीं लो। बीड़ी, तम्बाकू सभी नशा है। तम्बाकू साँप नहीं सह सकता है, इतना विष है। जो आदमी तम्बाकू खाता है, वह तो विष खाता है। सो नहीं खाओ। उपदेश करने वाला यह नहीं कहता है कि मत्स्य-मांस, नशा नहीं खाओ, नहीं पीओ और इससे जो पैसे बचे, सो हमको दो या आधा भी दो। अरे ! जो पैसा बचता है, उसका फल और दूध तुम्हीं खाओ। हमारे गुरु महाराज बाबा देवी साहब कहा करते थे–"सबसे ऊपर में आध्यात्मिकता लिखो। उसके बाद सदाचारिता। उसके बाद समाजिक-नीति। और उसके

बाद राजनीति। जहाँ की आध्यात्मिकता उत्तम होगी, वहाँ सदाचारिता अच्छी होगी। जहाँ की सदाचारिता अच्छी होगी, वहाँ की समाजिक-नीति अच्छी होगी। जहाँ की समाजिक-नीति अच्छी होगी, वहाँ की राजनीति बुरी हो नहीं सकती।" इसलिए देश में आध्यात्मिकता का अधिक प्रचार हो, ऐसा करना चाहिये। इससे देश को बहुत लाभ होगा।

परम संत बाबा देवी साहब की वाणी

❀ आज यह कैसा उलट फेर है कि जिस भारतवर्ष में पहले श्रीराम चन्द्रजी, श्री कृष्ण, गौतमबुद्ध, रामानुज, कबीर साहब, नानक साहब और अन्य योगी, योगीश्वरों ने जन्म धारण किया और जीवन पर्यन्त प्रेम, भक्ति तथा अहिंसा की शिक्षा देते रहे, आज उसी भारत में पिता–पुत्र, पति–पत्नी, गुरु–शिष्य, भाई–भाई और राजा–प्रजा में संग्राम छिड़ रहा है। स्थान–स्थान पर बम और अग्निमय सामग्री का प्रयोग किया जाता है। सम्बन्धी और मित्रों के साथ सद्व्यवहार का अभाव है। यह सब हमारे अनाचारों और पापों के फल है।

❀ जुआ खेलना, मद्य पीना, कृतघ्नी होना, बड़ों का सम्मान और छोटों की सँभाल न करना, दिन चढ़े सोकर उठना; ये मनुष्य के लिये सर्वनाश के लक्षण है।



श्री सद्गुरवे नमः



स्त्री और पातिव्रत्य-धर्म

❀ वेद में पति-पत्नी कैसे रहो, राज्य-प्रबम्ध कैसे हो, इसका विशेष वर्णन है। योग, ज्ञान, ध्यान, आध्यात्मिक-विषय भी है; किन्तु कम। किन्तु संसार-प्रबन्ध बहुत है। मनुस्मृति में पति पत्नी के साथ रहे और पत्नी पति के साथ रहे, इसके लिए भी बहुत वर्णन है; क्योंकि इसमें गड़बड़ होने से संसार का काम कैसे चलेगा ? पति के प्रति कैसा ख्याल होना चाहिये, गोस्वामी जी ने बहुत अच्छा वर्णन किया है। जैसे एक स्त्री को पतिव्रता होना चाहिये, उसी तरह पुरुष को भी एकपत्नीव्रत होना चाहिये श्रीराम की तरह। सीता-वनवास होने पर या सीता के पाताल-प्रवेश करने पर भी श्रीराम ने दूसरी शादी नहीं की। यज्ञ में सोने की सीता बनायी गयी थी। आजकल पिता-पुत्र में वैमनस्य है, क्यों ? इसी कारण से कि पुत्र के सयाने रहने पर भी पिता दूसरी शादी करते हैं। शाहजहाँ के समय में एक लड़की ने मन-ही-मन एक क्षत्रिय को वरण कर लिया। वह बूढ़ी हो गयी, किन्तु उसने दूसरे की ओर नहीं देखा। क्षत्रिय भी बूढ़ा होने चला, किन्तु विवाह नहीं किया। अन्त में शाहजहाँ ने बूढ़े और बूढ़ी की शादी करा दी। यह एक अच्छा नमूना है कि वह बूढ़ी हो गयी, किन्तु एक को वरण करके दूसरे को पति रूप में नहीं देखा। संसार में कैसे रहो ? पति-पत्नी मिलकर रहो, सुख से रहोगे। आगे के सुख के लिए दोनों मिलकर ईश्वर का भजन करो, सुखी होओगे।

❀ स्त्री को पातिव्रत्य-धर्म का पालन करना चाहिये। वह लोक में भी यश पाती है और परलोक में भी सुखी रहती है। विपरीत चलने वाली को दुःख और नरक होता है। पातिव्रत्य-धर्म से मोक्ष नहीं मिलता, मोक्ष तो ईश्वर की भक्ति से होता है। किन्तु पातिव्रत्य-धर्म पालन करने से इहलोक और परलोक दोनों में सुखी रहती है।

❀ जिस प्रकार पत्नी के लिए एक पातिव्रत्य-धर्म है, उसी प्रकार पुरुष को भी एक पत्नीव्रत-धर्म का पालन करना चाहिये। श्रीराम भगवान् विष्णु के अवतार थे। वे चक्रवर्ती राजा थे। वे जितनी शादी करना चाहते कर सकते

थे, किन्तु एक सीता ही उनकी पत्नी थीं।

पुरुष एक पत्नीव्रत-धर्म का पालन करे और स्त्री एक पातिव्रत-धर्म का पालन करे, साथ ही भजन-अभ्यास करे, इससे स्वर्ग को कौन कहे, मोक्ष भी मिल जायेगा।

❁ जो पुण्यवती-स्त्री होती है, उसको पुण्यवान्-पति मिलते हैं। सावित्री के पातिव्रत्य-धर्म के पालन के कारण सत्यवान् जीवित हुआ, उसका राज्य लौटा।

❁ किन्हीं का कहना है कि भगवान् को गुरु मानकर चलना बहुत उत्तम है। श्री रामचरित मानस में भगवान् श्री राम ने परम भक्तिन- शबरी जी के प्रति जो नवधा भक्ति का उपदेश दिया है उसमें–**''गुरु पद पंकज सेवा; तीसरि भगति अमान''** का कथन करके अन्त में शबरी जी को कहा कि **''सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।''** इससे विदित होता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को उपर्युक्त नवधा भक्ति की विधि से भक्ति की साधना करनी चाहिये। यह प्रसिद्ध है कि शबरी जी मातङ्ग मुनि की शिष्या थीं। सहजोबाई तथा दयाबाई के गुरु श्री चरण दास जी महाराज थे। शिक्षा और दीक्षा सबको चाहिये, परन्तु कान फूँकना कोई दीक्षा नहीं है और न अध्यात्म-पथ में इसका कोई अर्थ है। भक्तिन सिस्टर निवेदिता श्री स्वामी विवेकानन्द जी की शिष्या थी। श्री समर्थ रामदास जी महाराज (क्षत्रपति श्री शिवाजी राव के गुरु) की भी शिष्याएँ थीं। जिससे विदित होता है कि स्त्रियों के वास्ते पति सेवा और पातिव्रत्-धर्म के पालन के सहित अध्यात्म-धर्म (मोक्ष-धर्म) के पथ में योग्य गुरु से शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता अनिवार्य रूप से है। तभी तो भक्तवर श्री जयदयाल जी गोयन्दका महाराज अपने परमार्थ पत्रावली में गुरु मंत्र जपने कहते हैं और पुरुषों तथा महिलाओं के समाज में भी बैठकर उन्हें शिक्षा देते हैं। जब भगवान् श्री राम स्त्री-पुरुष सभी के लिए गुरु-सेवा की विधि त्रेतायुग के प्राचीन काल में ही दे गयें हैं, तब संतों का स्त्रियों को शिक्षा-दीक्षा देकर गुरु बनाना भगवान् के उपदेश के अनुकूल ही है और युक्ति संगत भी है। यदि स्त्री के पति स्वयं ही योगीवर भूपेन्द्र नाथ सान्याल के सदृश अध्यात्म-पथ के पथिक हों तो स्त्री अपने पति के द्वारा गुरु ही वह पथ पा सकती है।

उसको दूसरे गुरु की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जो विद्या और गुण जिनको हों, उनके द्वारा उनकी विद्या और गुण दूसरे को मिले यह पूर्ण संभव है। परन्तु इसके विरुद्ध, अर्थात् जो विद्या और गुण जिनमें नहीं हो वह विद्या और गुण उनके द्वारा किसी को मिले असम्भव है। पत्नी को पति का गुण-स्वभाव, पवित्रता-अपवित्रता का ज्ञान भली भाँति अवश्य होता है; तदनुकूल वह अपनी श्रद्धा अवश्य रखेगी। इसके अतिरिक्त किसी दबाव से उसकी श्रद्धा अपने पति में हो, यह सम्भव नहीं जँचता। किसी भी अध्यात्म-पथ के गुरु में पवित्रता, ज्ञान और कर्म के कारण ही उनमें श्रद्धा हो सकती है।

❀ कतिपय लोग श्री मीराबाई जी को केवल मोटि भक्ति-उपासना की ही भक्तिन समझते हैं; परन्तु उनका जो शब्द पहले कहा गया है और इस दूसरे शब्द–

"ऊँची अँटरिया लाल किवड़िया, निर्गुण सेज बिछी।। टेक।।
पँचरंगी झालर सुभ सौहै, फूलन फूल कली।
बाजूबन्द कडूला सौहे, माँग सिन्दूर भरी।।
सुमिरण थाल हाथ में लीन्हा, शोभा अधिक भली।
सेज सुखमणाँ मीरा सोवै, शुभ है आज घड़ी।"

से विदित होता है कि वह योगय गुरु संत रविदास जी की कृपा से अन्तर्मार्ग के योग-सम्बन्धी योग-साधनाओं को भी करती थीं। अर्थात्, वह सूक्ष्म उपासना में भी अपनी अच्छी गति रखती थीं। यह नहीं कि केवल पति की ही उपासना किया करती थीं।

अध्यात्म-पथ में पुरुष और स्त्री सबको बराबर अधिकार है। स्त्रियों में भी योग्यता विशेष की साधिकाएँ हुई हैं और अब भी जहाँ तहाँ हैं। श्री राम कृष्ण परमहंस देव को तान्त्रिक शिक्षा-दीक्षा एक भैरवी ब्राह्मणी से मिली थी, यह प्रसिद्ध है। तंत्रशास्त्र में स्त्रियों के लिए पति के अतिरिक्त शुद्ध आचरणी अध्यात्म-पथ के दाता योग्य गुरु से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने की विधि तो है ही, और तुलसीकृत रामायण के अनुकूल श्री राम का भी यही उपदेश है। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज तो यहाँ तक कहते हैं कि–

"बिन गुरु भवनिधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि शंकर सम होई।"

महारानी द्रौपदी के वस्त्र-हरण के समय उनकी करुण पुकार पर, भगवान् श्री कृष्ण की कृपा से, उनका वस्त्र बढ़ा था, लोगों में यह विख्यात है। इसी हेतु उन्हें भी बहुत लोग भक्तिन मानते हैं। महाभारत आदि पर्व के पढ़ने से विदित होता है कि पति हेतु उन्होंने कई जन्मों तक तपस्या की थी। एक जन्म के उनके तप के अवसर पर उनका धर्म, इन्द्र, पवन और युगल अश्विनी कुमार देवों के दर्शन हुए तथा उन्होंने पति रूप में पाँचो को मानस और मौन इच्छा से वरण किया था। उन पाँचो ने उनकी इच्छा पूर्ण करने का वरदान दिया था। पाण्डवों ने जब द्रौपदी के पिता द्रुपद राज के सामने 'हम पाँचो भाई द्रौपदी से विवाह करेंगे', यह कहा था, तब राजा द्रुपद और उसके पुत्र धृष्टद्युम्न दोनों ने मिलकर इसका प्रतिवाद भी किया था। द्रोपदी ने भी इसका प्रतिवाद किया था, ऐसा महाभारत में कहीं भी नहीं लिखा है। महाभारत के वन पर्व में लिखा है कि अपने पाँचो पतियों और भगवान् श्री कृष्ण की उपस्थिति में, द्रौपदी ने अपने मन की सच्ची बात नहीं बतलायी, झूठ बात कह दी थी। जब अर्जुन ने उसे प्राण-दण्ड देने की धमकी दी, तब उसने अपने दिल की सच्ची बातें कही थीं। वह अपने मन में वीर कर्ण को भी पति रूप में पा जाती, यह स्मरण करती रहती थी। इस गोपनीय विषय को जानकर वीरवर भीमसेन ने उसको बहुत डांटा और उसकी बड़ी भर्त्सना भी की थी। महाभारत स्वर्गारोहण पर्व में लिखा है कि पाण्डवों के महाप्रस्थान के समय वह भी पाँचो भाई पाण्डवों के साथ-साथ चलती थी। वह उन सबके पीछे-पीछे चलती थी। उस पहाड़ी यात्रा में पहले द्रौपदी गिरकर परलोक सिधार गई। उस समय भीम ने युधिष्ठिर से पूछा कि यह इस तरह क्यों गिर गई ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि यद्यपि हम पाँचो भाई द्रौपदी के लिए समान थे, परन्तु यह अर्जुन का पक्षपात बहुत करती थी, इसलिए वह इस तरह गिर गई। परलोक में उन्हें नरक की यातना देखनी पड़ी, फिर वह स्वर्ग की लक्ष्मी होकर विराजी।

द्रौपदी के विषय में उपर्युक्त बातों की जानकारी के बाद विद्वान् एवं बुद्धिमान स्वयं विचारें कि द्रौपदी की पातिव्रत् विषयक एवं परमात्म-भक्ति

विषयक योग्यता उसमें कितनी और कैसी थी ? तथा अन्य स्त्रियों को इसका अनुकरण करना चाहिये या नहीं ?

रामचरित मानस में श्री अनुसूया देवी ने श्री सीता जी को पातिव्रत् धर्म की शिक्षा इस प्रकार दी थी–

"जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं।
वेद पुरान सन्त सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।
मध्यम पर पति देखइ कैसें।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसें।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई।
सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई।।"

उपर्युक्त विवेचन के अनुकूल बुद्धिमान् स्वयं ही विचार सकते हैं कि द्रौपदी अपने यथाकथित विवरणाकूल किस कोटि की नारी कही जा सकती है ?

परन्तु महाभक्तिन शबरी के लिए तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि–**"तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भई जहँ नहिं फिरे।"** उपर्युक्त साधिकाओं के कथित कर्मों से लोग इनकी विशेषताओं को समझ सकते हैं और निर्णय कर सकते हैं कि भक्ति पथ में स्त्रियों और पुरुषों को किस प्रकार चलना चाहिये ? स्त्रियों के लिए जिस प्रकार पातिव्रत् धर्म का पालन उनकी पवित्रता की श्रेष्ठता है, उसी तरह भगवान् श्रीराम के सदृश एक स्त्रीव्रत् का पालन करना पुरुष की भी पवित्रता की श्रेष्ठता है। परन्तु दोनों को सद्गुरु कर्णधार का आश्रित हों, अध्यात्म-पथ का पथिक बन, परमात्म-भक्ति का साधनकर भव-सिन्धु को पार करके अपना-अपना कल्याण बना लेना परम कर्त्तव्य है। यह कल्याण न केवल एक स्त्रीव्रत् धारण से और न केवल पातिव्रत् के पालन से मिल सकता है। इन व्रतियों के अनुसार अपने-अपने व्रतों के सहित कही गई रीति से परमात्म-भक्ति अवश्य करनी

चाहिये। कोई-कोई परम ज्ञानवती विशेष साधिका बहुत-से पुरुषों की पथप्रदर्शिका थीं। और अब भी हैं। उन पर उनके शिष्यगण धर्म मातृभाव श्रद्धापूर्वक रखकर उनके आश्रित रहते हैं। उसी तरह पतिव्रता स्त्रियाँ भी अपने सद्गुरु पर धर्म-पिता का भाव रखकर उनके आश्रित रह परमात्म-भक्ति का साधन करती हैं।

"धर्म पिता गुरु जानि जो दृढ़ता लावई।"

—चरणदास जी।

जैसे किसी स्त्री के पिता, ज्येष्ठ भ्राता और श्वसुर उसके लिए पर पुरुष तो हैं ही, परन्तु वे उसके लिए गुरुजन भी हैं। वैसे ही सद्गुरु भी उसके लिए गुरुजन ही हैं। पिता, ज्येष्ठ भ्राता और श्वसुर आदि निकट सम्बन्धी गुरुजनों से सम्भाषण और सदुपदेश आदि ग्रहण करने से, उनकी समयोचित सेवा से, स्त्रियों के सती-धर्म-पालन में हानि नहीं होती। उसी तरह सद्गुरु से ज्ञान-लाभ हेतु सम्भाषण से तथा उनकी समयोचित सेवा से स्त्रियों के सती-धर्म-पालन में हानि नहीं होती। पाण्डवों की माता कुन्ती देवी ने दुर्वासा मुनि की अधिक दिनों तक बड़ी सेवा की थी। दुर्वासा मुनि जी ने कुन्तीदेवी जी को उस मंत्र की दीक्षा दी थी, जिससे वह देवताओं को अपने पास बुला सकती थी। किन्तु दूषित बुद्धि वालों के लिए तो पवित्र और उच्च सम्बन्धों में भी नीच भाव उपजे और तदनुकूल वे कर्म करें, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? गुरुडम जैसा किसी को सदोष झलकता है, उपदेशक डम और प्रचारडम भी वैसे ही सदोष झलकना चाहिये। परन्तु सद्शिक्षा और सद्दीक्षा का प्रचार अनिवार्य है, नहीं तो संसार की बड़ी हानि होगी। इसी तरह असद्शिक्षा और असद्दीक्षा के प्रचार का भी पूर्ण निवारण अत्यन्त वांछनीय है। नहीं तो इससे भी संसार की बड़ी हानि होगी। इसके लिए सदाचार का पालन करो। सदाचार पालन करने के लिए पंच पापों—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा तथा व्यभिचार से बचो।

❁ जो स्त्रियाँ अपने में तेज नहीं रखती, गोया पातिव्रत्-धर्म का पालन नहीं करती, उससे निस्तेज संतान पैदा होगी और संसार में उसका कल्याण नहीं होगा। स्त्रियाँ एक पातिव्रत्-धर्म का पालन करें और पुरुष एक स्त्रीव्रत् धारण करें। राजा विराट् के यहाँ उसका साला कीचक महा बलवान था।

किन्तु वह एक स्त्रीव्रत् का पालक नहीं था, इसीलिए वह भीम से मारा गया। यदि द्रौपदी पर कुदृष्टि नहीं डालता तो उसका बलक्षय नहीं होता और वह भीम के द्वारा मारा नहीं जाता। पृथ्वीराज के विवाह के शौक के कारण यह देश पराधीन हुआ, इतिहास बताता है। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराढ़े जीत सकते थे और तब सारे भारत में स्वराज्य फिर हो सकता था, किन्तु विवाह के शौक में अपने घर में पेशवा अपना दूसरा विवाह करने चला, यद्यपि उसको जवान लड़का था। दिल्ली की ओर सेना भेज दिया, पीछे से उसे बल पहुँचाने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। अन्त में प्रचण्ड हार के शोक में वह मर गया। जो पुरुष एक से अधिक विवाह के शौक में चलते हैं, वे अच्छा नहीं करते। आप तेजधारी बनें। जो एक स्त्रीव्रत् का पालन करता है वह काम के वेग को रोकता है, काम के वेग को रोकने वाले वीर होते हैं। उनका शरीर खिन्न भी हो, फिर भी आत्मबल उनमें अधिक होता है। उनमें इतना आत्मबल होता है कि वे ईश्वर को भी प्राप्त करते हैं।

❀ यदि कोई कहे कि स्त्री को पुरुष हो गया, तब परमात्मा की उपासना नहीं करे, वह पुरुष की ही आराधना करे, तो यह ठीक नहीं। ईश्वर की भक्ति स्त्री-पुरुष सबके लिए है। किन्तु हाँ, कोई-कोई ऐसे भी पति हैं; जैसे भूपेन्द्रनाथ सान्याल जी हैं। मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। पहले उन्होंने अपनी स्त्री को दीक्षा नहीं दी। बहुत दिनों के बाद सुनता हूँ कि उन्होंने अपनी स्त्री को दीक्षा दी। किन्तु अब पहले जैसे स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध नहीं रहा। किन्तु फिर भी साथ-साथ रहते हैं। लेकिन ऐसे कितने आदमी हैं।

❀ एक सती स्त्री (सावित्री) के प्रभाव से कितना लाभ हुआ कि सौ पुत्र हुए। राजा का राज्य लौट गया, अंधे-अंधी को फिर आँखे मिल गयीं। इसलिए स्त्रियों को पातिव्रत्य-धर्म धारण करना चाहिये और पुरुष भी एक पत्नीव्रत् धारण कर रहें, तो उनका बहुत कल्याण होगा, किन्तु कह सकूँगा कि इससे बिल्कुल कष्ट छूट नहीं जाते। बिल्कुल दुःख तो ईश्वर-भजन से छूट सकता है।

❀ अपने बहुत बुरे हों और वे चाहें कि पत्नी पतिव्रता मिलें, ईश्वर की सृष्टि में ऐसा होना तो असंभव नहीं है, लेकिनसाधारणतया यह असंभव है।

श्री सद्गुरवे नमः

पुनर्जन्म और आवागमन तथा उससे छूटने का उपाय

❀ जीवन जन्म से शुरू होता है और मृत्यु में जाकर समाप्त होता है। जन्म होते ही शिशु रोता है। रोना कष्ट की निशानी है। शिशुकाल में कोई बोल नहीं सकता, अपने भाव को प्रगट नहीं कर सकता; परन्तु उसकी रुलाई प्रगट करती है कि उसे दुःख है। जन्म और मृत्यु-काल दुःख से भरा रहता है। इस तरह का जीवन हमलोगों ने कितनी बार भोगा है, ठिकाना नहीं।

जबसे संसार उत्पन्न हुआ, हमलोग जन्म-मृत्यु के अन्दर रहते हुए चले आ रहे हैं। बुद्धिमान मनुष्य जानते हैं कि जन्म से मृत्यु के अन्दर का समय एक जीवन होता है। मृत्यु के बाद क्या होता है ? यह प्रत्यक्ष नहीं है। इसका ज्ञान शास्त्र से होता है। मृत्यु के बाद जीव कर्म के फल भोगने के स्थान में जाता है। इस तरह जीव आवागमन के चक्र में रहता है।

❀ जीव दुःख भोगता है, उससे छूटने की इच्छा तो रहती है; लेकिन उससे छूटने के उपाय का पता उसे नहीं मिलता। सत्संग तथा सद्ग्रन्थों से इसका पता चलता है। ऐसा यत्न चाहिये कि जिससे जीवन का अन्त हो जाये, फिर संसार में नहीं आया जाये। जिस परलोक में जाकर लौटना पड़े वह नहीं चाहिये। जिस परलोक में जाने से लौटना नहीं पड़े, वह परलोक बहुत ही विचित्र है। वहाँ इन्द्रिय-युक्त शरीर नहीं है। वहाँ पाँच तत्त्व नहीं हैं। पंच विषयों का जो महान् स्थान है, वहाँ कुछ नहीं है। वह ऐसा परमतत्त्व है, जो अपने अन्दर संसार को विन्दुमात्र बनाकर रखता है। वह परम तत्त्व है–परमात्मा। ऐसा वह एक-ही-एक है। परमात्मा में जन्म-मृत्युयुक्त कष्टवाला स्थान नहीं है।

❀ अपने कर्मों के अनुसार नरक, स्वर्ग भोगकर उसके यहाँ जाकर जन्म लेता है, जिसके यहाँ उसका सम्बन्ध रहता है। इसी प्रकार आवागमन जीवात्मा पर लगा रहता है। यह कब तक लगा रहेगा, ठिकाना नहीं। इस प्रकार के जीवन में पड़ा रहना यदि आनन्ददायक होता तो इसको कोई नहीं छोड़ना चाहता।

❀ जहर खाने से अर्थात् मरने से शरीर में पुनः पुनः आना नहीं छूटता है। अपने घर-ही-घर चलो यानी अपने शरीर के अन्दर-ही-अन्दर चलो। दृष्टियोग से अन्दर में प्रवेश होना होता है। शब्द-ध्यान से अन्तर की अन्तिम तह में पहुँच जाता है। इसमें योगशास्त्र की भी आवश्कता नहीं, अन्तर-साधना की आवश्यकता है।

❀ जिसने जीवन-काल में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह का ज्ञान प्राप्त किया, वही आवागमन से छूटता है। जिसने नहीं प्राप्त किया, वह जन्म-मरण के चक्र में रहता है। इसका अर्थ हुआ कि जीते जी मुक्ति प्राप्त करने कहा।

❀ अपने घर में रहकर भी बारम्बार जन्म लेने के कारण को मिटा सकते हैं। ऐसा बहुतों ने किया है अब भी लोग कर रहे हैं। ईश्वर की कृपा से आपको जैसा घर मिले, उसमें रहिये और साधना कीजिये। आपका शरीर भी ईश्वरकृत घर है। आप अपने से घर बनाकर या पुश्तैनी घर बना हुआ मौजूद है, उसमें रहकर यत्न कर सकते हैं। परन्तु यदि अपने शरीर को घर नहीं माने, तो फिर यत्न क्या करेंगे ? अपने शरीर के अन्दर यत्न करेंगे, तो साधना हो सकती है। यह साधना शरीररूपी घर में ही होगी। यह शरीररूपी घर अपवित्र भी बहुत है और पवित्र भी बहुत है। सन्तों ने बताया है कि अपवित्रता को छोड़ना चाहो तो अपनी वृत्ति को अगल-बगल नहीं रखकर मध्य में रखो। पवित्र बनते-बनते महान् बन जाओगे। मध्य के वास्ते सन्तों ने सुषुम्ना का वर्णन किया है। अगल-बगल यानी इड़ा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना का वर्णन किया है। जितना अधिक अपने को सुषुम्ना में रख सकोगे, उतना अधिक पवित्र हो सकोगे। यह मध्य में वृत्ति रखनेवाला होने के लिए जो यत्न है, वह सच्चे गुरु से सीखो।

❀ कोई एक शब्द जपने को गुरु बताते हैं। गुरु के बताये शब्द-मन्त्र को स्थिर होकर जपो। अर्थात् मन की स्थिरता के लिए जपो। लेकिन इतने से ही काम खत्म नहीं होता है। इससे जन्म-मरण के चक्र से नहीं छूटोगे। इससे आगे का काम ध्यान है। मोटा ध्यान मन की एकाग्रता के लिए बहुत अपेक्षित है। लेकिन इसके आगे का भी ध्यान करो। इसके लिए वृत्ति को मध्य में रखो।

❁ जिस भक्ति में केवल बाहर-ही-बाहर दर्शन है, उससे जो मुक्ति मिलती है वह यथार्थ मुक्ति नहीं है। उससे जो स्वर्ग मिलता है, उससे आवागमन का चक्र नहीं छूटता। किसी भी जड़ शरीर में रहना आवागमन का कारण है। जिसने शरीर और इन्द्रियों से अपने को अलग किया, उसने अपने को पाया, ईश्वर को पाया, मुक्ति पायी। इसके अतिरिक्त कितनाहू कुछ दर्शन हो, पूर्ण कल्याण नहीं। इतिहास-पुराण पढ़कर देख लीजिये। आवागमन से छूटने के लिए अन्दर के रास्ते पर चलिये। मिट्टी पर रहने से मिट्टी-मार्ग है। उसी तरह ज्योति में रहने पर ज्योति का रास्ता और शब्द में रहने से शब्द का रास्ता मिलता है। जैसे चिड़िया आकाश में उड़ती है, वैसे ही आकाश में गमन होता है। यह विहंगम-मार्ग ज्योति-मार्ग है। फिर मीन-मार्ग है, वह है शब्द मार्ग।

❁ असली एकादशी व्रत करना है—मन को वश में करना। इस व्रत का फल यह होता है कि आवागमन से रहित हो जायेगा।

❁ बहुत सुख-सामग्री के इन्तजाम को भोगते-भोगते शरीर थक जाता है, भोग-वासना शांत नहीं होती। सुख चाहते हैं, पाँच विषयों के भोग में सुख है, ऐसा लोग समझते हैं। शरीर छोड़ने पर जो स्वर्ग जाते हैं, वहाँ भी यही सुख है। यह पौराणिक कथा है—वहाँ के भोग से भी तृप्त नहीं होते। वहाँ का भोग समाप्त होता है, पृथ्वी पर आते हैं। यहाँ से स्वर्ग, स्वर्ग से यहाँ, इसी तरह करते-करते कितने युग बीत गये, ठिकाना नहीं। कितने शरीर छूटे ठिकाना नहीं, लेकिन जीवात्मा कभी तृप्त नहीं होता। अब उसको कुछ नहीं चाहिए, इतनी सन्तुष्टि कि तृष्णा को समाप्त कर दे, इच्छा को समाप्त कर दे सो नहीं होता है। यह चक्र कब तक चलेगा ठिकाना नहीं।

❁ यदि बादल में जल रहता है, तो वहाँ रह नहीं सकता है, जमीन पर बरस जाता है। फिर भाफ होकर ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार आता-जाता रहता है। इसी प्रकार मनुष्य मरता है, जन्म लेता है, आता-जाता रहता है। आवागमन का चक्र बना रहता है। जिस धर्म में है कि हमेशह के लिए दोजख और हमेशह के लिए वहिस्त हो अथवा किसी को दायें, किसी को बायें या मसीह के कहने पर कि यह हमरा आदमी है उसको मोक्ष होता है, इसमें हमें विश्वास नहीं है। मैंने लिख दिया है कि—

"आवागमन सम दुक्ख दूजा है नहीं जग में कोई।
इसके निवारण के लिये प्रभु भक्ति करनी चाहिये।।"

–महर्षि मेँहीँ पदावली

❁ आवागमन नहीं होता है, ऐसी बात नहीं। क्योंकि एक पिता के दो पुत्र होते हैं। दोनों के ख्याल दो तरह के क्यों होते हैं ? इसका उत्तर बिना आवागमन के माने–पूर्व-जन्म को माने नहीं होता। ईश्वर की भक्ति करके आवागमन का चक्र छुड़ावें।

❁ जो नहीं जानते हैं, वे राम-राम वा कृष्ण-कृष्ण वा रब्ब-रब्ब आदि कहते हैं। उसको मुखस्थ भी कहते हैं। उपांशु भी कहते हैं, फिर मानस भी कहते हैं। जो मुँह-मुँह जपा जाये उसे वाचिक-जप कहते हैं। जिसे केवल अपने कान सुने, दूसरे नहीं सुने, उसे उपांशु-जप कहते हैं। जो केवल मन-ही-मन जपा जाये, जिसमें होंठ और जीभ नहीं चले, उसे मानस-जप कहते हैं। इसके बाद ताकीद है–नादानुसंधान की। नादानुसंधान का गोड़ा या स्थान विन्दु है–

"विन्दु में तहँ नाद बोले रैन दिवस सुहावनं।"

–पलटू साहब

इसी तरह जीवन भर करके अपने को आवागमन के चक्र से बचाओ। जितना हो सकेगा, बाकी बचेगा जो, दूसरे जन्म में होगा। कितने लोग कहते हैं कि "सब कोई मोक्ष पा ले तो फिर संसार कैसे रहेगा ?" इसकी चिन्ता तुमको क्यों ? इसकी चिन्ता तो परमात्मा को होनी चाहिये, जिसने संसार बनाया है।

❁ इसके लिए जप करो। किसी अवतारी महापुरुष का ध्यान करो या अपने गुरु का ध्यान करो। इससे भी आगे बढ़ो। जैसा कि पहले बताया गया है, उस तरह करते-करते संसार के आवागमन से छूटोगे।

कितने धर्मवाले ऐसे हैं, जो आवागमन नहीं मानते हैं। लेकिन वे मुझको सन्तुष्ट नहीं कर सकते। गुरु महाराज ने जो ज्ञान बताया है, वह ठीक है। सबका मैं आदर करता हूँ और सबको प्यार करता हूँ।

❁ गुरु जो राह बतावें, उस पर चलो। गुरु में विश्वास करो। गुरु के बताये मार्ग पर चलने से आवागमन से छूटोगे, जो आवागमन सबसे बड़ा

दुःख है। गो० तुलसीदास जी महाराज ने कहा है–

"नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।"

संसार में आवे ही नहीं, फिर दरिद्रता किसको हो ! गुरु में श्रद्धा रखो। गुरु की बड़ी बड़ाई है।

❁ हमारे देश के ज्ञान में सबसे बढ़कर दुःख और सबसे बढ़कर सुख क्या है ? आवागमन से बढ़कर कोई दुःख नहीं। संसार में आना और जाना नहीं होता तो दुःख क्यों होता ? इसी की निवृत्ति हो जाये, इसके लिए ईश्वर-भजन है।

❁ सदग्रन्थों से विदित होता है कि हमारे बहुत-से जन्म हुए हैं। कितने जन्म हुए, यह संख्या में बतलाने योग्य नहीं है। किसी भी संख्या–करोड़ अरब में बताने योग्य नहीं है; क्योंकि यह पृथ्वी, यह सूर्य, चन्द्र–सब बहुत पुराने हैं। इनकी रचना कब हुई, कोई ठीक-ठीक बता नहीं सकता। आज के लोग कुछ बताते हैं; लेकिन यह निश्चित नहीं है। हमलोग चार युगों की बात सुनते हैं। चार युग एक बार समाप्त होने पर एक चौकड़ी होती है। फिर कल्प और महाकल्प होते हैं। यह पुराणों के अनुकूल है। सृष्टि हुई है, लेकिन कब हुई है, कोई बता नहीं सकता। जबसे सृष्टि है, तब से जीव-जन्तु हैं।

हमलोगों के भी कितने जन्म हुए, ठिकाना नहीं। अन्दाज करके मालूम होता है कि हमारे बहुत जीवन गुजरे हैं; क्योंकि हमारे मन में बहुत संस्कार है।

❁ इस जन्म में कितने प्रकार के संस्कार में हम बरतते हैं–यह भी अन्दाज से बाहर है। फिर भी भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न संस्कार के देखे जाते हैं। जब लोग कुछ सयाने होते हैं और उनके संस्कार उदित होते हैं, तो इसी जन्म के सभी संस्कार हैं, कहा नहीं जाता।

जो संस्कार इस जन्म में नहीं हुआ, उसके भी कर्म देखे जाते हैं। हमारे मन में बहुत प्रकार के संस्कार भरे हैं। इसीलिए हमारे बहुत जन्म हुए।

❁ हमारे अन्दर जितने संस्कार उदित हुए, वे सब संस्कार सुख के लिए ही। सुख की खोज में पड़े उसी के अन्दर दौड़े। जो ज्ञानवान् हैं, उनके अन्दर में ज्ञान का उदय होता रहता है। यह ज्ञान का संस्कार पहले से ही

है। कहा जाता है कि इस ज्ञान के पक्ष में बहुत जन्मों से रहे। शंकराचार्य, भगवान् बुद्ध बड़-बड़े महात्मा हुए हैं। कबीर साहब, गुरु नानक साहब–ये सब ऐसे हुए कि बचपन से ही ज्ञान के पक्ष में चले। इसलिए कहना पड़ता है कि कई जन्मों से इनके अन्दर ज्ञान चला आता था, जो इस जन्म में उदित हुआ।

❀ ढाई हजार वर्ष से कुछ पहले भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ। राजा शुद्धोधन हल जोतने गए थे। उस दिन बड़ा उत्सव हुआ था। भगवान् बुद्ध को भी लेकर दाई वहाँ गई थी। दाई खेमे से बाहर निकली और फिर भीतर गई तो भगवान् बुद्ध को ध्यानावस्थित उसने देखा और लोगों को भी दिखाया। ऐसा क्यों हुआ ? बहुत-से जन्मों से वे ध्यान करते चले आते थे।

❀ हम साधारण मनुष्य विषय-भोग का संस्कार लेकर आते हैं। इसलिए उस ओर बचपन से ही जाते हैं। कितने कुछ ज्ञान-चिन्तन और कुछ विषय-चिन्तन करते हैं। कितने बिल्कुल विषय-चिन्तन ही करते हैं, ज्ञान-चिन्तन नहीं। कितने में ज्ञान-चिन्तन की मात्रा अधिक और विषय-चिन्तन की मात्रा कम रहती है। अनेक जन्मों से लेकर आज भी हम सुख की ओर दौड़ते हैं।

❀ बारम्बार जनमना और मरना इन बन्धनों में वे नहीं पड़ते। संसार में बड़े-से-बड़ा दुःख यही है कि जन्म लेना और मरना।

यह आवागमन का दुःख बहुत बड़ा है। इसी आवागमन में सभी दुःख भरे हैं।

❀ इस पृथ्वी पर रहो, छोड़कर जाओ, फिर आओ। पृथ्वी पर आते और जाते लोगों को देखते हैं। आने का कारण यदि विदित है तो आना निश्चित है। आने का कारण है–दुःख में अनाशक्ति और सुख में आसक्ति। कैसा सुख जैसा सुख इस संसार में मिलता है। इस संसार में मन और इन्द्रियों का सुख है। और यही सुख स्वर्ग में भी मिलता है, यह पुराणों से विदित है। परलोक का सुख समाप्त हो गया, तो फिर कहाँ जायेगा ? जिधर आसक्ति है, उधर जायेगा। संसार में आवेगा, क्योंकि संसार में आसक्ति है और संसार में वह सुख मिलता है। यही आवागमन का चक्र है।

❀ जो जीवन भर खुश रहने के लिए कोशिश करते हैं। जब वे जानते हैं कि शरीर छोड़ कर चला जाना है तो संसार के सुख में कैसे शान्ति

मिलेगी। शरीर छोड़ने के बाद कहा गया है कि स्वर्ग जाओगे, पितृलोक जाओगे वा बुरे कर्म हैं तो नरक जाओगे, जो विशेषज्ञ हैं वे जानते हैं कि इस चक्र से भी पार हो सकते है। वे कौन हैं जिनका सहारा लेकर आवागमन के चक्र को पार किया जाये। वे हैं ईश्वर।

सुरत को बाहर से भीतर समेटो, नौ दरबाजे से दसवें दरबाजे में समेटो तो आवागमन से छूट जाओगे।

परम संत बाबा देवी साहब की वाणी

ऐ मनुष्य! न जाने तुझकों कितनी योनियाँ भुगत कर यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है। क्या तू अब भी भूल में पड़ा रहेगा! याद रख कि यदि तूने अब भी सन्तों की शरण न ली और उनके बताये हुए आन्तरिक मार्ग पर न चला तो फिर तेरे लिये 84 का चक्र सामने तैयार है।



पुनरपि जननं पुनरपि मरनं पुनरपि जननि जठरे शयनम्।
खलू संसारे अति दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे।।

श्री सद्‌गुरवे नमः

विषय-विवेचन और उसका त्याग



❀ विषय कहते हैं चीज को। कितनी चीजें हैं, कौन गिना सकता है ? सबको समेट लो तो गिन लो। संसार में देखने के लिए जितनी चीजें हैं, सबको रूप कहते हैं–राग-रागिनी जो सुनते हैं। सुनते-सुनते रह गये, लेकिन तृप्त नहीं हुए।

बादशाह अकबर गान-विद्या के बड़े शौकिन थे। उनके पास तानसेन जैसा गवैया था। एक दिन बादशाह ने कहा कि तुम्हारे जैसा गवैया नहीं। तानसेन ने कहा हमारे गुरु का सुनेंगे तो आपको होश नहीं रहेगा। उनका नाम था हरिदास। बादशाह ने कहा–उनको ले आओ। तानसेन ने कहा–वे किसी के कहने पर आ नहीं सकते। उनका पता लगाया जाये, उनकी मौज हो तो वे भले सुना दें। फिर भी उन पर हुकूमत आपका नहीं चलेगा। होते-होते पता लगाया गया। यमुना जी के किनारे एक जगह वे थे। बादशाह और तानसेन ने अपना-अपना वेश बदल लिए। तानसेन ने कहा–आप मेरा चेला बनिये और मैं आपका उस्ताद बनूँगा। मेरा तानपूरा लेकर आप मेरे पीछे-पीछे चलिये। बादशाह ने वैसा ही किया। दोनों जाते-जाते उनकी कुटिया पर पहुँचे। हरिदास जी महाराज आँख बन्दकर चुपचाप बैठे हैं और ये दोनों वहाँ खड़े हैं। बादशाह ने तानसेन से कहा–देखो ! कितनी देर हुई ? कितनी देर इस तरह रहना होगा ? कुछ उपाय करो। तानसेन ने कहा–मैं गाऊँगा और गलती कर दूँगा। तब वे उसको सुधारने के लिए कहेंगे, तब सुन लीजियेगा। तानसेन ने गाने में गलती कर दी तो हरिदास जी महाराज ने कहा–बेटा ! ऐसे नहीं, इस तरह गाओ। तो गाने से उनकी तान उनका स्वर सुनकर अकबर बहोश हो गये। फिर होश होने पर दोनों वहाँ से चले गये। तानसेन ने कहा–अच्छा हुआ कि उन्होंने आँख नहीं खोली।

बात यह है कि कान का रस भी बड़ा रस है। राग-रागिनी में भी यह गुण है कि बीमार बना दे, बीमारी छुड़ा दे। वर्षा बरसा दे। यह भी एक प्रकार

की ऋद्धि-सिद्धि है। लेकिन इससे मोक्ष नहीं मिलता।

नाक का विषय गन्ध है। इसमें भी तृप्ति नहीं आती। त्वचा कहते हैं चमड़ा को। इसका भी जो भोग है, इससे भी कोई तृप्त नहीं हुआ। इन पंच विषयों के अलावे कोई विषय नहीं है। इसमें तृप्ति नहीं है।

❁ पशु की तरह विषय-भोग ही को यदि हम जानें तो पशु से उच्च कैसे हो सकते हैं ? ईश्वर की भक्ति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन्द्रियों के भोगों से हम अपने को ऊपर उठाकर उसका भजन करें। जो अपने को भोगों में लगाकर रखता है, वह उस ओर बढ़ नहीं सकता। जिस ओर जाने से भव-बन्धन छूटता है; मुक्ति मिलती है, उस निर्विषय की ओर चलो। अर्थात् विष के ग्रहण से यानी खा जाने से मृत्यु होती है; किन्तु उसी विष को वैद्य के बताये यत्न से सेवन करते हैं, तो रोग का नाश होता है। इसी तरह से संसार में जब तक जीवन है, संसार में से कुछ भी न लेना असम्भव है। जिस प्रकार वैद्य के बताये प्रयोग से विष को दवाई के रूप में लिया जाता है, उसी तरह संतों के बताये अनुकूल विषय को सहायक बनाया जा सकता है। इसलिए साधु लोग मितभोगी होते हैं। बिना कुछ खाये-पिये, साँस लिए रह नहीं सकते। जलपान करना, खाना, साँस लेना भी भोग है, इसके बिना आप जी नहीं सकते। इसलिए इसे दवाई के रूप में लीजिये। किसी के ज्ञान में ऐसा नहीं आ जाये कि विषय से छूटा नहीं जा सकता; संत लोग विषयों से अलग रहने के लिए कहते हैं, इसलिए सन्तों का उपदेश झूठा है। सन्तों ने यह बतलाया कि भक्ति करते-करते ऐसे तल पर अपने अन्दर पहुँच सकते हो, जिस तल पर पहुँचने से तुम संसार के भोगों से बिल्कुल छूटे हुए रहोगे। वहाँ हरिरस प्राप्त करते रहोगे।

❁ यदि मन उस ब्रह्म-पीयूष को प्राप्तकर जाये, तो विषयों की ओर क्यों दौड़े ? यदि विषय-रस से अधिक रस मालूम हो, तो विषय आप ही छूट जाये। जो अमृतधारा को प्राप्तकर सकता है और प्राप्त करके उस तल से नीचे आता है अर्थात् तुरीय-अवस्था से पिण्ड में आकर बरतता है, तो उसको उसका ख्याल रहता है। जैसे आप परसाल जो खाये थे, उसका स्वाद अभी तक याद है, उसी तरह तुरीय-अवस्था के ब्रह्म-रस को जो प्राप्त करेगा, उसको सदा वह रस याद रहेगा और यहाँ के विषय-रस को कुरस मालूम

करेगा। सन्तों के मत में वह यत्न बताया जाता है, जिसमें चौथे तल के हरिरस को साधक प्राप्तकर सकता है।

❀ पहले जो विषय से मुड़कर तुरीय पर अवस्थित होता है, उसको हरिरस मिलता है। तुरीय-अवस्था में जाने वाले के लिए विषय-रस कुछ मूल्य नहीं रखता। तुरीयावस्था के रस का विस्मरण नहीं होने के कारण संसार के विषय का रस तुच्छ-से-तुच्छ हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होता, तो आजतक कोई सन्त-महात्मा नहीं होते।

❀ जो विषय-सुख है, उसको सब कोई जानते हैं–भोगते हैं। विषय पाँच हैं–रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। इन विषयों का भोग सभी को होता है। इनमें फँसे हुए तथा इनमें सुख खोजने वाले तमाम-संसार के लोग हैं। परन्तु यह सुख ऐसा है कि कभी तृप्ति होती नहीं। जीवन भर भोगते-भोगते कभी तृप्ति नहीं। इन विषयों को कोई कम और कोई अधिक भोगते हैं। कम भोगने वाले वा अधिक भोगने वाले, कोई भी तृप्त नहीं हो सकते। जैसे भोजन करने पर मिलती है तृप्ति, फिर पच जाने पर भूख लगती है, फिर भोजन करने की इच्छा होती है। इसी तरह प्रत्येक भोग के लिए है। जैसे भोजन से क्षणिक-तृप्ति आती है, उसी तरह और भोग भी क्षणिक तृप्तिदायक है।

❀ ज्ञानियों ने कहा कि इस जीव के अनेक जन्म हुए। प्रत्येक-योनियों में रहकर इन पाँच विषयों को भोगते चला आ रहा है, लेकिन तृप्ति नहीं होती। बिना तृप्ति के सुख कहाँ ? इसलिए विषय की ओर मत दौड़ो। दूसरे शरीरधारी जीव इस बात को नहीं समझता, लेकिन मनुष्य समझता है। स्वर्ग भी यदि प्राप्त हो सके, तो वह भी थोड़ा है। पुण्य-भोग के बाद फिर इस संसार में आना पड़ता है। स्वर्ग में भी पाँच प्रकार के ही विषय हैं। वहाँ के सुख भी प्रत्येक को बराबर-बराबर नहीं है। स्वर्ग में सबसे विशेष सुख इन्द्र को है, लेकिन इन्द्र भी उस सुख से तृप्त नहीं है, इसका इतिहास है। उससे ऊपर विशेष सुख में ब्रह्मा हैं, लेकिन उनको भी उस भोग से तृप्ति नहीं है।

❀ जो अन्दर-अन्दर चलता है, वह बाहर विषयों से छूट जाता है। जैसे आप सो जाते हैं तो बाहर इन्द्रियों का संग छूट जाता है। बाहर की इन्द्रियों के संग छूटने से जो सुख होता है, वह इन्द्रियों के संग दौड़ने से

नहीं होता। संसार में कहीं जाओ, किसी तारे पर चढ़ जाओ, मंगल ग्रह में चले जाओ, लेकिन विषय नहीं छूट सकता। विषयों से छूटता कौन है ? पहले मन के साथ चेतन-आत्मा, पीछे केवल चेतन-आत्मा।

❀ किसी चीज को समेटो, तो वह चीज उसके विपरीत ओर को हो जाती है। मन पंच विषयों में लगा है, संसार में घूमता है। इसमें मन का सम्हाल करेगा, तो स्थूल-पंच-विषय छूट जायेंगे। पीछे पंच सूक्ष्म-विषय भी छूटेंगे। हमारे यहाँ इसीलिए 'योग-विद्या' है। 'योग-विद्या' को किसी ने बनाया नहीं, खोज निकाला। जैसे-मिट्टी तेल को बनाया नहीं, मिट्टी खोदकर निकाल लिया।

❀ जागने से स्वप्न में जब जाते हो, बिस्तर पर आप पड़े रहते हो। यदि आपके चारो ओर विषय हों, तो आप उन्हें ग्रहण नही कर सकते। उस समय हाथ, पैर आदि कोई इन्द्रिय कुछ काम नहीं करतीं। स्वप्न-काल में मुँह में मिश्री रहने पर भी उसका स्वाद मालूम नहीं होता। स्वप्न में बाहर की इन्द्रियों से हम काम नहीं ले सकते। अन्दर की ओर जो चलता है, विषयों से छूटता है। जो कोई अपने अन्दर प्रवेश करते हैं, उनकी इन्द्रियाँ विषयों में नहीं जाती।

❀ जिसको विशेष पदार्थ मिल गया, वह विषयों में क्यों दौड़ेगा ? जो कोई कहे कि मुझे हरि-रस मिल गया तो उसको देखिये कि वह विषय-रस की ओर दौड़ता है या नहीं। यदि मन विषय-पदार्थ की ओर दौड़ता है और वह कहता है कि मुझे हरिरस मिला है तो वह झूठा आदमी है, वह झूठ कहता है।

❀ जैसे दवाई की मात्रा के अनुसार दवाई सेवन करते हैं, इसी तरह संसार में रहने के लिए दवाई के रूप में विषयों का उपभोग कीजिये, उसमें आसक्त नहीं होइये।

❀ यहाँ जब तक संसार में कोई रहता है, पाँच विषयों का भोग भोगता रहता है। तृप्ति कभी होती नहीं है। इससे जितना सुख पाते हैं, सुख पाने की इच्छा बढ़ती जाती है। तृष्णा दौड़ती फिरती है। यह सुख वहाँ मिलेगा, वह सुख वहाँ मिलेगा। इच्छा की प्रेरणा से लोग जीवन भर दौड़ते हैं, जब नहीं दौड़ सकते हैं, बैठे रहते हैं, फिर भी तृष्णा चलती ही रहती है। इच्छा

को लिए-तृष्णा को लिए लोग समाप्त हो जाते हैं। मतलब यह कि विषय-सुख की जो इच्छा है, उससे जो कुछ मिलता है, उसमें तृप्ति नहीं। किसी को कम मिलता है, किसी को बेसी मिलता है, किसी को और बेसी मिलता है, लेकिन तृष्णा नहीं जाती है।

वैसे सुख भी है, जिसके पाने पर पूर्ण सन्तुष्टि होती है और तृष्णा का अंत हो जायेगा। जिसको पाँच विषय कहते हैं, उसके द्वारा वह सुख नहीं मिलता। इन्द्रियों का भोग कभी तृप्त नहीं कर सकता।

"एही तनकर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।"

इस शरीर (मनुष्य-शरीर) का यह फल नहीं कि विषय में लगे रहो। आँख से रूप देखने का सुख, जिह्वा से रस का सुख, त्वचा में स्पर्श–कड़ा गरम, नरम, मुलायम, ठंडा का सुख, कान में शब्द सुनने का सुख, नाक से गन्ध लेने का सुख होता है। इन इन्द्रियों के भोगों में सुख नहीं है। तृप्तिदायक सुख नहीं। संतों ने देखा कि ये पाँचो विषय क्या हैं ? मायामय संसार की वस्तु है, मायामय संसार के अंग हैं। मतलब संसार के भोगों से–माया से कोई संतुष्ट नहीं होता। संतों ने विचारा–माया को धारण करनेवाला कोई है, उसी को परमात्मा-सत्साहब कहते हैं। संतों ने विचारा–माया को धारण करनेवाला कोई हैं, उसको पकड़ो। जो ईश्वर को पकड़ता है, वह पूरा-पूरा सुखी हो जाता है।

सुख जिसमें मानते हैं वह विषय अनस्थिर है और भोगने की इन्द्रियाँ स्वल्प शक्तियुक्त हैं। तब इन दोनों के योग से तृप्तिदायकपूर्ण सुख कैसे मिल सकता है ? भूख लगी, भोजन किया; कुछ काल सन्तुष्ट हुए, सुखी रहे। पच गया, फिर भूख लगी और वही भूख लगी और वही भूख का दुःख लौटा। विषय भोगों का सुख-दुखात्मक चक्र उसी तरह अनवरत घूमा करता है। भला, इन भोगों में तृप्ति, शान्ति और सुख कहाँ ?

श्री सद्गुरवे नमः

सुखदुःख-समीक्षा और वास्तविक सुख की प्राप्ति

❀ आपलोग अपने-अपने अन्दर से पूछिये या अपने को पूछिये कि आपकी प्यारी चीज क्या है ? मुझसे पूछिये, तुम्हारी प्यारी चीज क्या है ? मैं कहूँगा कि मेरे लिए प्यारी चीज है सुख। कहीं इस संसार में या इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य पदार्थों में सुख मिला ? मैंने अपने से पूछा। उत्तर आया–नहीं, कहीं नहीं। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख होते रहते हैं। जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन अनवरत-रूप से होते रहते हैं, इसी तरह दुःख-सुख होते रहते हैं। सुख तो वह होना चाहिये कि जहाँ माँग कुछ न रहे।

❀ ज्ञानियों ने कहा है कि यह संसार ईश्वर की माया है। ईश्वर की माया को सबलोग पकड़े हुए हैं। सब इस माया के अन्दर में सुख पाना चाहते हैं। परन्तु कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो ईश्वर की माया को पकड़ना पसन्द नहीं करते। ईश्वर को ही पकड़ लेना पसन्द करते हैं। परन्तु दोनों की एक ही चाह है कि सुख हो। ईश्वर की माया को पकड़ कर सुख पाना चाहते हैं। उसी तरह ईश्वर को पकड़कर भी सुख पाना चाहते हैं।

जो माया को पकड़ कर सुख पाना चाहते हैं, वे नहीं समझते हैं। जो ईश्वर को पकड़ कर सुख पाना चाहते हैं, वे समझते हैं।

❀ भोजन करते हैं स्वाद अच्छा लगा, सुख मालूम हुआ। भोजन करना छोड़ दिया, भोजन की रुचि नहीं है, तब जो सुख भोजन करते समय होता था सो रहा नहीं। इसी तरह संसार का सुख है। स्वाद-सुख के लिए भोजन की ओर लोग चलते हैं और भोग करते चले जाते हैं, कभी तृप्ति नहीं। सब दिन इच्छा बनी रहती है–तृष्णा बढ़ती जाती है। सुख करके भोजन के पीछे चले थे; लेकिन मिलता दुःख है।

❀ माया के पदार्थों में खोजने पर सुख नहीं है। माया के अतिरिक्त परमात्मा या ईश्वर बच जाते हैं। इनकी निस्बत जो ख्याल करते हैं तो कहते हैं कि वे सुख-स्वरूप हैं–शान्ति-स्वरूप हैं। उन शान्ति-स्वरूप को ही पकड़ा जाये। माया की स्थिति नहीं है, ईश्वर की स्थिति है। क्योंकि संसार में सब

पदार्थों पर ख्याल करने पर ऐसा मालूम होता है कि सभी सान्त हैं। ईश्वर की माया इन्हीं सान्त-पदार्थों में बँटकर है। यह बाँट लोगों को इन्द्रियों में मालूम पड़ता है। जिभ्या में रस का स्वाद, नासिका में गंध का स्वाद, कान में केवल मीठे-शब्द का स्वाद वा कड़ुवा-शब्द का कड़ुवा-स्वाद, नेत्र में केवल रूप का स्वाद ये बँट-बँटकर स्वाद मालूम पड़ते हैं। रूप-रंग देखो तो और भी बाकी रह जाता है। रूप भी भिन्न है। इसी तरह बाजे-गाजे का शब्द है। किसी में तृप्ति नहीं। इच्छा बढ़ती जाती है, तृष्णा बढ़ती जाती है। इसी तरह घ्राण-शक्ति में है। तृप्ति नहीं होती। त्वचा में नाना प्रकार का स्पर्श हो लेकिन स्पर्श-सुख भी शान्तिदायक नहीं। वहाँ भी तृष्णा बढ़ती जाती है। इसके वास्ते लोगों की दुर्दशा-दुर्दशा हो गई है। माया के अन्दर यही सुख है–रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। और तो जान पाते नहीं।

❀ परमात्मा को पाओ तो परमात्मा में जो सुख है, उसको पाओगे। परमात्मा में जो नित्यानन्द है–परमानन्द है, वही आप को भी मिलेगा। परम-तृप्ति होगी। भक्त सूरदास जी ने कहा है–

"परम स्वाद सबही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।"

वह स्वाद कैसा है ? किसी को पता नहीं। वह स्वाद जबसे लगता है, कभी छूटता नहीं। परन्तु यह इन्द्रिय के द्वारा जानने योग्य सुख नहीं है। केवल आत्मा के द्वारा ही जानने योग्य है। ईश्वर का दर्शन, ईश्वर की प्रत्यक्षता, ईश्वर में जो आनन्द है, सभी आत्म-गम्य है, इन्द्रिय-गम्य नहीं है। यह बात ज्ञानी लोग कहकर समझा देते हैं। इसलिए कहते हैं कि उधर चलो। ईश्वर की माया में लगे नहीं रहो। ईश्वर की प्राप्ति में ऐसी तृप्ति होगी, कि दुःख का पता नहीं रहेगा। संसार में किधर चलो ? उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम ? संसार में किसी तरफ जाओ इन्द्रिय-ज्ञान में ही रहना पड़ेगा। इन्द्रिय-ज्ञान में कभी तृप्ति होती नहीं। ज्ञानी लोग कहते हैं अपने अन्दर जाओ। अपने अन्दर में हो सही, लेकिन जितने अन्दर में हो उससे और अन्दर में जाओ।

❀ जाग्रत में रहते हो, स्वप्न में रहते हो, सुषुप्ति में रहते हो, इनसे ऊपर जाओ। तीन अवस्था में सोया रहता है। सोने की अवस्था में अपनी

चीज को नहीं जानता, अपने को नहीं जानता। इसलिए चौथी अवस्था में चलो। तब पता लगेगा कि ब्रह्मानन्द उसका स्वभाव ही है। तृष्णा से छुड़ाकर, पूर्ण सन्तुष्ट रखता है। ऐसा सुख ईश्वर की खोज में चलते-चलते ईश्वर को पाकर होगा।

❁ धन चिन्ता-ही-चिन्ता देता है। धन नहीं रहे तो चिन्ता; धन रहे, तो उसकी रक्षा के लिए चिन्ता। जहाँ चिन्ता है, वहाँ दुःख है। कितना भी सुख संसार में पाओ, दुःख होगा ही। मन कहता है कि चिन्ता नहीं रहे, दुःख कभी पास नहीं आवे। ऐसा सुख हो कि जिसमें उकताना नहीं हो, जो कभी छूटे नहीं।

❁ परमात्म-प्राप्ति का सुख मन-इन्द्रियों वाला नहीं है। मन-इन्द्रियों का सुख संसार में मिलता है। अपने तई का सुख अपने स्वरूप में रहने से होता है। आप बाहर की चीजों को लेकर उसमें सुख पाते हैं; लेकिन गहरी नींद में आप सुख से सोते हैं, यह बाहर की बात नहीं, भीतर की बात है। इसमें बाहर की कोई चीज नहीं रहती ,फिर भी सुख से रहते हैं। हमलोगों को विषयानन्द मिलता है, यह क्षणिक है। अपने-आपमें रहो, यह नित्यानन्द है, आत्मानन्द है।

❁ संसार के सब प्राणी सुख पाने की इच्छा रखते हैं। इस सत्संग के द्वारा मैं आपको सुख का पता बताऊँगा। उस सुख को कैसे प्राप्त करें, इसके बारे में कहूँगा। साधारण तरह से लोग सुख उसको कहते हैं, जो मन को और इन्द्रियों को सुहाता है। इससे कोई विशेष सुख है तो लोग समझते हैं–बौद्धिक-सुख है। परन्तु बुद्धि को मन और इन्द्रियों से ऐसा सम्बन्ध है कि मन, इन्द्रियों के सम्पर्क में नहीं है तो ऐसे को बुद्धि नहीं समझ सकती। मतलब यह कि बुद्धि, मन और इन्द्रियों की संगिनी है। इतना ही फर्क है कि सभी इन्द्रियाँ मन से स्थूल, मन उससे सूक्ष्म और बुद्धि मन से भी सूक्ष्म। परन्तु तीनों को मेल है। मन-इन्द्रियों से जहाँ मेल नहीं, उसको बुद्धि नहीं जानती। मन-इन्द्रियों से प्राप्त सुख को लोग जानते हैं। मन, इन्द्रियों से परे मानने योग्य कोई और सुख है, उसको बहुत अधिक लोग नहीं जानते। पहले आप देखिये कि मन और इन्द्रियों से जानने योग्य सुख से क्या फल आपको मिलता है। क्षणिक-सुख मिलता है। दुःख से मिश्रित सुख मिलता है। उसके

बाद फिर दुःख आता ही है।

भगवान श्रीराम संसार में रोने की लीला करते हैं। जब वे ही रोते हैं, तब औरों की बात ही क्या ? बालक जन्म लेते ही रोता है। राजराजेश्वर का पुत्र भी रोते ही जन्म लेता है। श्रीराम ने प्रकट होकर कौशल्या जी को दर्शन दिया चतुर्भजी रुप में। माता कौशल्या बोली, यह रुप छोड़िये और साधारण बच्चे का भेष धरकर रोइये।

"सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना"

संसार में जाओगे, तो संसार में रोना पड़ेगा। संसार दुःखमय है। इसमें जो आवेंगे, उनको राना ही पड़ेगा। हिमालय के शिखर पर जाने से भी दुःख नहीं छुटेगा। शारीरिक, दैविक, भौतिक और मानसिक कोई-न-कोई कष्ट होगा ही।

संसार का जो सुख है, उससे आजतक कोई तृप्त नहीं हुए। लज्जा छोड़कर बर्ताव किये, लेकिन तृप्त नहीं हुए। सन्तोष करने पर ही तृप्त हुए। पुराणों की कथा पढ़नेवाले को मालूम होगा कि शुक्राचार्य के श्राप से ययाति बूढ़ा हो गया। फिर उन्होंने कहा कि तुम्हारा पुत्र तुमको अपनी जवानी दे तो फिर तुम जवान हो जाओगे। अपने पुत्र की जवानी लो और अपना बुढ़ापा पुत्र को दो और जवानी का सुख लूटो। इसमें लज्जा कहाँ रही ? तृप्ति नहीं हुई। तृप्ति तब हुई जब सन्तोष हुआ। फिर अपनी जवानी पुत्र को देकर पुत्र का बुढ़ापा लेकर वह बूढ़ा हुआ। यह कथा बताती है कि विषय-भोग से कोई तृप्त नहीं होता।

रावण को विष्णु, ब्रह्मा और शिव का भी दर्शन हुआ था, किन्तु जब क्लेश का समय आ गया, तब रोना-पीटना भी किया, दुःखी हुआ। इसके अलावा रावण एक रुप से अनेक रुप बन सकता था। अनेक राम, अनेक लक्ष्मण, अनेक हनुमान आदि का शरीर बना-बनाकर युद्ध में लड़ता था। ऐसी माया भी वह जानता था। श्रीराम के अतिरिक्त सभी योद्धा चकित हो गये। इस तरह शक्तिशाली होते हुए भी वह दुःखी हुआ। अर्जुन को इन्द्र का दर्शन हुआ था, शिव का दर्शन हुआ था और श्रीकृष्ण उनके मित्र ही थे; किन्तु फिर भी उसने दुःखों को भोगा। युधिष्ठिर ने धरातल पर और स्वर्ग में जाकर भी कर्मफल को भोगा।

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।"

इस आँख से जो कुछ देखिये, वह माया है। इस माया में जो हानि-लाभ, दुःख-सुख का गुण है, वह तो होगा ही। जैसे लवण-समुद्र में रहकर आप कहें कि पानी खरा नहीं लगे, कब संभव है ? उसी प्रकार माया में जो गुण है, उससे कैसे छूट सकते हैं ? किन्तु परमात्मा जो इन्द्रियों से परे है, उसमें ऐसी बात नहीं। उसे इन्द्रियों से नहीं पकड़ सकते। शुद्ध-सुरत से पकड़ सकते हैं। वहाँ माया नहीं, फिर मायिक दुःख कैसे हो ?

याज्ञवल्क्य मुनि बड़े ज्ञानी थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। उनको वस्तुएँ भी बहुत थीं। उनके मन में वैराग्य हुआ। सोचा कि ससांर की वस्तुओं से तृप्ति नहीं होती। इससे मन को अलग रखना अच्छा है, इसमें अनुरागी होना ठीक नहीं। हरि-भजन करना ठीक है। ज्ञान लेना, ज्ञान देना, सत्संग करना, सत्संग कराना ही ठीक है। ऐसा निश्चय करके दोनो पत्नियों यानी कात्यायनी और मैत्रेयी से कहा कि आपलोग वस्तुओं को आपस में बराबर-बराबर बाँट लें। मेरे घर से जाने के बाद घर में झगड़ा हो ठीक नहीं। कात्यायनी ने मंजूर किया। मैत्रेयी ने पूछा–"पतिदेव! इन वस्तुओं को छोड़ देने से अपको बेसी क्या मिलैगा ? यदि इनको छोड़ने पर बेसी कुछ मिलेगा, तो मैं भी वही क्यों न लूँ ? जैसे आप छोड़ते हैं, वैसे मैं भी छोड़ती हूँ।" आखिर में यही बात हुई। बड़ी पत्नी की सब वस्तुएँ हुईं। मैत्रेयी और मुनि याज्ञवल्क्य; दोनों ने उन वस्तुओं को छोड़ दिया।

बेसी वस्तु क्या है ? याज्ञवल्क्य ने कहा–ज्ञान है। ज्ञान जिसको बताता है, वह साधन-विशेष के द्वारा प्राप्त होने योग्य है। और उस साधन से जहाँ पहुँचा जाता है, वहाँ और भी बहुत विशेष है। मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य दोनों का सारा जीवन सत्संग और साधन-भजन में व्यतीत हुआ। दोनों को उसी में आनन्द मालूम होने लगा। सुख मिलने लगा।

तन्द्रा-अवस्था होती है, उसमें एक प्रकार का सुख है, पंच विषयों में से किसी विषय का सुख नहीं है, अपने अन्दर रहने का सुख है। उसमें ऐसा सुख है कि जो सुख बाहर के विषयों में नहीं है। तन्द्रा में किसी प्रकार का दुःख होता तो कोई सो नहीं सकता। गहरी-नींद में जाने से अपने अन्दर ही ऐसा सुख मिनता है कि उसको कुछ खबर नहीं रहती, लेकिन अफसोस है

कि वहाँ अपना ज्ञान नहीं रहता। निजसुख पंच विषयों से विलक्षण है। वहाँ अपने को पाकर सुख होता है। मान लो वहाँ सुख है, ऐसा नहीं।

इन्द्रियों के साथ से छूटकर अन्दर चलने से सच्चा सुख होगा। जिस सुख से छूटा नहीं जाये, वह आत्मसुख है। अन्दर-अन्दर चलने से होगा। यही सुख ईश्वर की प्राप्ति से होता है। जैसे मिश्री देखी जाती है और चखी जाती है। मिष्टान्न देखा भी जाता है और चखा भी जाता हैं। उसी तरह ईश्वर देखा जाता है और चखा जाता है। 'चखा जाता है' का अर्थ है– उसको पाने से तृप्ति होती है। संसार के सुख का लोभी तो क्या बनना, स्वर्ग के सुख का भी लोभी नहीं बनो।

दैहिक-ताप–शरीर में से जो रोग उत्पन्न होते हैं। दैविक-ताप–अकस्मात् होता है, जैसे गाछ से गिर जाना या फिसलकर गिर गये, हड्डी टूट गयी आदि। भौतिक-ताप–प्राणियों के द्वारा जो कष्ट प्राप्त हो, जैसे बिच्छू का डंक या सर्प का दंश आदि। ये तीनों होते ही रहते हैं। एक आदमी ने सीता जी के प्रति घृणा-भाव का कुछ शब्द कहा था। गो0 तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है–

"सिय निन्दक अघ ओघ नसाये।
लोक बिसोक बनाय बसाये।।"

भगवान् राम को दुःख हुआ कि हमारी प्रजा सीता जी से प्रसन्न नहीं है। उन्होंने सीता जी को छोड़ दिया। सीता जी वन में चली गई। यह सीता जी के लिए दैविक-ताप हुआ। इन तापों से छूटने का उपाय करो। यही संतों का उपदेश है, बिना ईश्वर-भजन के इन त्रयतापों से छूट नहीं सकते।

❀ इहलौकिक और पारलौकिक सुख का पाना प्रत्येक का काम है। पारलौकिक सुख के लिए ध्यान करो, तब दोनों तरफ सुखी रहोगे। शरीर-सम्बन्धी सुख आत्मसाक्षात्कार होने पर होगा। यह असंभव नहीं, संभव है।

शिशुपन में कुछ ज्ञान नहीं, भूख लगती है, देह में दर्द है, किन्तु व्यक्त नहीं कर सकते; केवल रोते रहते हैं। अपना अख्तियार नहीं, मल-मुत्र पर पड़े रहे। जवान हुए, कुछ अच्छा कुछ बुरा ज्ञान हुआ। कभी विहित कभी अविहित कर्मों को किया। वही शरीर है बूढ़ा हो गया है, शरीर में शक्ति नहीं है, विषयों की ओर मन दौड़ता है। किंतु उनका संग्रह और भोग नहीं कर

सकते; बहुत दुःखी रहते हैं। काम, क्रोधादिक विकार मन में उपजते रहते है, जिनसे अनेक कष्ट मन में होते रहते हैं। जो समझते हैं उनको कष्ट होते हैं। इन्हीं मनोविकारों को साधुओं ने मानस रोग कहा है।

ब्रह्मा का देश, इन्द्रलोक, गोलोक आदि–सभी लोक संसार के अन्दर हैं। इन सब स्थानो में भी चारो ताप लगे रहते हैं। वैकुण्ठ और गोलोक में भी कष्ट आता है। भृगु जी ब्रह्मा, विष्णु और महादेव जी को जाँचने के लिए गये कि देखें इन तीनो में कौन बड़ा है? ब्रह्मा और शिव तो आवेश में आ गये; किन्तु उन्होंने भगवान् विष्णु की छाती में लात मारी, तो लात मारने पर भृगु जी को विष्णु की गम्भीरता मालूम हुई। इनमें से किसी स्थान में पूर्ण शान्ति नहीं है।

महात्मा बुद्ध को भी पेचिश का रोग हुआ। वे पहुँचे हुए महात्मा थे। समाधि में सुखी रहते थे। समाधि से उतरने पर दुःखी होते थे, उन्होंने यह अपने शिष्य आनन्द से कहा था। जो पिण्ड में रहता है, स्थूल संसार में रहता है। इससे ऊपर उठता है तो उसके कष्टों से बचता है। उस तल से ऊपर उठकर भगवान बुद्ध रहते थे तब कष्ट नहीं होता था। इस संसार में कोई भी सुखी नहीं रह सकता।

समाधि-सिद्ध वाले से जहाँतक हो सकता है, समता का व्यवहार करते हैं। बहुत बड़े-से-बड़ा दुःख आता है, किन्तु समाधि-सिद्ध महापुरुष उसको सुख से सहते हैं और साधारण जन उसको दुःख से सहते हैं। दुःख को लोग सहते है, किन्तु सुख को सह नहीं सकते। सुख पाकर साधारण लोग उसमें मस्ता जाते हैं।

भगवान् श्रीराम त्रेतायुग में राज्य करते थे। उनका इतना सुन्दर प्रबन्ध था कि प्रजा सुखी थी। किन्तु वहाँ दुःख नहीं थी, ऐसी बात नहीं। इतना अधिक सुख था कि उस सुख में दुःख बिला जाता था। इन सुखों को ही भगवान् श्रीराम ने पूर्ण नहीं समझा। इसलिए उन्होंने सबलोगों को बुलाकर शिक्षा दी।

कोइ धनवान्, विद्वान्, प्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित-संसार में कोई हों, दुःख से कोई छूटता नहीं है। इसके लिए बड़ी-बड़ी कथाएँ हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा, पैगम्बर जो आये–सबको दुःख हुआ। इस संसार

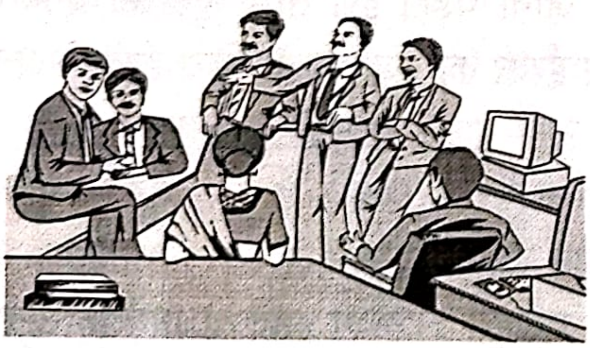
में जबतक ठहरते हैं, कुछ-न-कुछ दुःख सबको होता है।

किसी को खाने-पीने को नहीं मिलता है, इससे दुःख होता है। किसी को बीमारी से दुःख होता है, किसी को दैवात् कष्ट आ जाता है। पंचम जार्ज फ्रांस में एक परेड देखने गये थे। बड़ी भारी फौज कतारों में खड़ी थी। एक घोड़ा पर ये सवार थे। सिपाहियों ने इन्हें सालामी देने के लिए हाथ उठाये, तो घोड़ा भड़क गया। वे घोड़े पर से गिर गये। उनकी कमर में दर्द हो गया। उन्हीं की गद्दी पर पहले अल्फ्रेड दि ग्रेट हुआ था। दुश्मनों की सेना ने जब उनको घेर लिया तो वे डर के मारे भाग गये और अपने ही देश में एक किसान के यहाँ जाकर छिप गये और कहा कि मैं तुम्हारे यहाँ रहूँगा। किसान ने पूछा कि तुम बोझा बाँधना, रोटी बनाना जानते हो ? जब राजधानी दिल्ली के पृथ्वीराज राजा थे, मुहम्मद गौरी ने उनको जीत लिया था। तब वे पकड़े गये और अन्धे कर दिये गये। कई मन लोहे की जंजीर में बाँधकर रखे गये। तो देखो संसार कैसा है? छोटे-छोटे कोही दुःख नहीं होता, बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को भी दुःख होता है। शाहजहाँ के बड़े लड़के का नाम था दारा शिकोह। शाहजहाँ बीमार हुआ और तीनों पुत्रों को खबर दी। सभी आपस में लड़ने लगे कि मैं बादशाह होऊँगा। आपस में लड़ाई हो गई। औरंगजेब की जीत हुई। दारा शिकोह भाग गया। होते-होते वह पकड़ा गया और बेरहमी के साथ मार डाला गया। कहाँ तो बादशाह का बड़ा लड़का होने के कारण भारत का बादशाह होता, कहाँ बेइज्जती के साथ मारा गया। अँग्रेज को देखो, जिसका राज्य यहाँ था। इसको छोड़कर यहाँ से जाना पड़ा। इस तरह कुछ भी बनकर रहो, कष्ट नहीं छूट सकता। इसीलिए ईश्वर का भजन करो। बिना ईश्वर-भजन के और ईश्वर को पाये बिना कोई सभी दुःखों से नहीं छूट सकता।

इहलोक और परलोक में दो तरह से रहते हैं–एक तो ऐसा कि जैसा शरीर, वैसा लोक में रहना–सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म लोक में रहना। दूसरा किसी शरीर में न रहना। शरीर के अनुकूल लोक में रहने से कर्म के अन्त होने पर फिर संसार में आना होगा। यहाँ तक कि भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण भी यहाँ आये। जय-विजय को शाप हुआ, तो जन्मों तक वे लोग राक्षस शरीर में रहे। किसी विशेष शरीर में रहने पर भी आना-जाना लगा

ही रहता है और रोना पड़ता है। भगवान् श्रीराम भी जन्म लेने पर शिशु-लीला में रोये। शिशुकाल के बाद लड़ाई-झगड़ा हुआ। राक्षसों से लड़ाई हुई। फिर उनका विवाह हुआ। फिर सीता-हरण हुआ। वहाँ राक्षसों से लड़ाई हुई। और फिर कुछ दिनों तक सुखपूर्वक राज्य किया। किन्तु इसके बाद फिर दुःख हुआ। सीता जी का वनवास हुआ। भगवान् श्रीराम ने श्रीसीता जी की फिर से परीक्षा लेनी चाही, तो वह पाताल प्रवेश कर गयीं और फिर वे लोग भी संसार से चले गये।

एक राजा था। वह भगवान् बुद्ध का संन्यासी शिष्य हो गया था। वह कभी–कभी बोलता था कि "यह सुख है, यह सुख है।" अन्य भिक्षुओं ने भगवान् से जाकर कहा कि जो राजा भिक्षु बन गया है, वह जब-तब बोलता रहता है कि "यह सुख है, यह सुख है" भगवान् ने उसको बुलाकर उसके इस तरह बोलने का कारण पूछा। इस पर उसने उत्तर दिया, भगवन्! जबतक मैं राज्य में रहा, तब तक मैं कैद में रहा। पहरे में रहा; सशंक रहा। सोने में सशंक। जगने में सशंक, घर में सशंक, बाहर में सशंक, तमाम सशंक रहता था। अब वृक्ष के नीचे रहता हूँ। किसी तरफ से सशंक नहीं और अन्दर में वह सुख मिलता है, जो सुख खाने-पीने व राज्य-सुख भोगने में कभी नहीं मिला।





संत कबीर वाणी – काल पुरुष

झूठे सुख को सुख कहे मानत है मनमोद।
जगत् चवेना काल का कुछ मुख मे कुछ गोद ।।

श्री सद्‌गुरवे नमः



संध्या-वदन



❀ उपनिषद् की एक कथा है कि एक ब्राह्मण थे। वे संध्या-वन्दन कुछ नहीं करते थे। उनकी पत्नी जब कभी पड़ोस में जाये, तो पड़ोस की महिलाएँ उन्हें कहतीं कि आपके पति कैसे ब्राह्मण हैं, जो संध्या-वन्दन नहीं करते। पत्नी जब आकर पति से आग्रह करती कि आप संध्या-वन्दन क्यों नहीं करते हैं, ब्राह्मण कोई उत्तर नहीं देते। एकदिन उनकी पत्नी को पड़ोस की महिलाओं ने उनके पति के लिए बहुत दुत्कारा। पत्नी ने ब्राह्मण से कहा कि, "आप कैसे ब्राह्मण हैं, कभी संध्या नहीं करते। पड़ोस की महिलाएँ मुझे दुत्कारती हैं।" तब ब्राह्मण ने कहा-"तुम नहीं जानती हो, मेरे हृदयरूपी आकाश में सूर्य बराबर उगा रहता है, वह कभी न उदय लेता है, न कभी अस्त होता है। अब बताओ कि मैं संध्या कैसे करूँ ?"

किन्तु इस अवस्था को पाकर भी सन्तलोग संध्या करते हैं, संसार के सामने नमूने के लिए।

भगवान् श्रीकृष्ण के लिए श्रीमद्भागवत में पढ़िए। वे नित्य ध्यान करते थे। यदि हम कहें कि सब कोई संध्या के समय ध्यान करते थे और श्रीकृष्ण घोड़े की परिचर्या करते थे, कितनी बुरी बात है! ऐसा कहना कि केवल काम ही करो, ध्यान नहीं करो; कितना आश्चर्य है। पाखाने के लिए, बोलने के लिए और गप-शप करने के लिए समय मिलता है और भजन करने का समय नहीं मिलता है! पाखाना जाने से शरीर के भीतर का मल निकलता है और ध्यान करने से चित्त का मल निकलता है। देश का काम करते हो और पाखना भी जाते हो। इसी तरह देश का काम भी करो और ध्यान भी करो। ऐसा नहीं समझो कि ध्यान करने लगेगा, तो देश का काम नहीं करेगा। जो ऐसा समझते हैं, उनकी भूल है।

❀ जग-जगकर भी ध्यान करो। हमारे ऋषियों ने त्रयकाल संध्या बतायी है। भैंस चराने जिस समय जाते हो, उस समय भजन करो। यदि कहो कि भैंस चरावेंगे कि ध्यान करेंगे ? तो भैंस चराने के कुछकाल पहले

उठो, भजन करके फिर भैंस चराने जाओ। भैंस चराने जाओ तो किसी दूसरे के खेत मत चराओ। नहीं तो सब ध्यान उसी में खतम हो जायेगा। दोपहर में स्नान करके, फिर शाम में ध्यान करो। समय तो बहुत रहता है। किन्तु लोग गप-शप में बिता देते हैं। कुछ नींद को जीतो और गपशप छोड़ो तो भजन कर सकोगे।

❁ हमलोग ध्यान करें-प्रातःकाल में, दिन में स्नान के बाद और संध्या समय। हम तारीफ करते हैं कि मुहम्मद साहब ने पंच वक्ती नमाज सिखाया। अब वे लोग करें वा नहीं, वे लोग जानें।

हमारे यहाँ कहा कि हमेशा करो। कम-से-कम त्रयकाल संध्या अवश्य करो। बाकी बचे हुए समय में अपने बाल-बच्चों के पालन के लिए कोई रोजगार अवश्य कीजिये।

❁ रात में सोते समय भी कुछ करके सोओ। त्रैकालिक सन्ध्या अवश्य करो। सोना क्या है ? गहरी नींद में जाना एक प्रकार से मरना है। मरने के पहले राम-राम कहो। इसलिए सोने के पहले कुछ जप-ध्यान करके सोओ।

❁ भगवान् कृष्ण संध्या किया करते थे–भागवत में लिखा है, जो आप सब लोगों ने सुना है। वे ब्राह्ममुहूर्त्त में जग जाते और उस वक्त संध्योपासना में लग जाते। उनका शरीर आनन्द से खिल जाता था, रोम-रोम खिल जाता था। ये क्या करते थे ? धर्मवृत्ति में शारीरिक ज्ञान में अवश्य रहते थे। उपासना के समय में सारी शारीरिक वृत्ति को संभालकर केवल आत्मा में रत होकर रहते थे। बड़ी प्रसन्नता उनको आती थी। उस प्रसन्नता का भोग जो उनको अपने विषय में होता था, अपने में हो जाता था। वह भोग फैलता हुआ शरीर तक आता था और शरीर को भी प्रफुल्लित कर देता था। यह भगवान् इसलिए करते थे कि वह अगर यह करना छोड़ देंगे तो, दूसरे लोग भी नहीं करेंगे। बड़े लोग जिस काम को धारण करते हैं, वही काम नीचे के लोग जो अनुशरण करने वाले हैं, करते हैं। बड़े लोगों से अगर कोई त्रुटि हो जाती है, तो त्रुटि को लोग धारण करने लग जाते हैं। बड़े लोग अगर ऊँचे कर्म करते हैं, तो ऊँचे कर्म को लोग धारण करने लग जाते है। भगवान् कृष्ण इसीलिए संध्या करते थे कि सब कोई संध्या करें, कोई नहीं छोड़ें।

❁ त्रयकाल सन्ध्या बहुत प्राचीन है। ब्राह्ममुहूर्त्त में दिन में स्नान के बाद और सन्ध्या काल। त्रयकाल सन्ध्या अवश्य करो, अगर आर्य हो। वेद में भी त्रयकाल सन्ध्या की आज्ञा है–

''ओऽम् श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।।5।।''

–ऋग्वेद

अर्थात् ''हम प्रातःकाल में, उस सत्य से जगत् को धारण करनेवाले प्रभुशक्ति की प्रार्थना करते हैं। दिन के मध्यकाल में उस सत्य-धारक प्रभु का ध्यान करते हैं। सूर्य के अस्तकाल में भी हम उसी श्रद्धामय प्रभु की उपासना करते हैं। हे श्रद्धे! सत्यधारणवति देवि ! तू हमें इस जगत् में सत्य ही को धारण करा।

जो त्रयकाल सन्ध्या नहीं करते, वे आतमहन गति में जाते हैं।



संध्या-वंदन करते हुए श्री राम-भक्त हनुमान जी

कुर्यात् परिचयं योगे त्रैकाल्ये नियतो मुनिः।
गिरि श्रृंगे तथा चैत्ये वृक्षाग्रेषु च योजयेत्।। (महाभारत)

नित्य नियम से रहकर योगी–मुनि किसी पर्वत के शिखर पर, किसी देववृक्ष के समीप या एकान्त में, मंदिर में अथवा वृक्षों के सम्मुख बैठकर तीन समय योग का अभ्यास करे।

श्री सद्गुरवे नमः



मेल से लाभ और अनमेल से हानि

॥ मैंने गुरुजी से सीखा है कि देखो, घर में कलह होता है। जिस गाँव में रहो, आपस में मेल नहीं रहने से वहाँ भी कलह होता है। इसी तरह देश-विदेश की बात भी समझिये। इस कलह में कोई चैन नहीं पाता। इन कलहों को दूर करने के लिए धर्म की शरण लेते हैं। इस देश में धर्म के नाम पर बहुत-से सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न नामों से आज हम पाते हैं। और नये-नये सम्प्रदायों की स्थापना भी हुई और हो रही है। जब कोई अपने ज्ञान से अपना सम्प्रदाय स्थापित करना चाहते हैं, तो वह यह कोशिश करते हैं कि मेरे सम्प्रदाय की बात विशेष है और दूसरे सम्प्रदाय की कम। यह बात भी कलह पैदा करती है। गुरुजी ने कहा था कि भाई! कुछ ऐसे ख्याल रखो कि सभी सम्प्रदायों के अन्दर जो सार-सार उपदेश की बातें हैं, उनको लो और देखो कि उसमें क्या रोचक है, क्या भयानक है और क्या यथार्थ है ? उन्होंने मिलाकर देखा कि बाहरी तौर पर सभी सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन सार-विचार पकड़ो तो किसी से अनमेल नहीं है। धर्म की शरण में ज़ाकर उसकी सार बात को ग्रहण करो तो कलह, क्लेश, झंझट से बच जायें।

॥ शिव के उपासक कहते हैं कि सबसे श्रेष्ठ शिव हैं। गाणपत्य गणेश को सबसे श्रेष्ट कहते हैं और वैष्णव विष्णु को । इसी तरह सभी उपासक अपने-अपने इष्ठ को प्रभु मानते हैं और औरों को उनसे कम वा उनके आश्रित कहते हैं। इस तरह साम्प्रदायिक भावना होती है। इस तरह इस भावना के अंदर रहते संघर्ष भी होता है, हानि भी होती है तथा यथार्थ ज्ञान भी नहीं होता। इस संघर्ष में हम नहीं रहें। मनोमालिन्य और कलह से बचें। गो0 तुलसीदास जी ने इसको हँटाने की बड़ी कोशिश की। उन्होंने रामचरित मानस में वर्णन किया कि कहीं शिवजी राम की स्तुति करते हैं, तो कहीं राम शिव की स्तुति करते हैं। किसी एक इष्टदेव के लिए जैसी स्तुति है, उसी तरह दूसरे इष्ट के लिए भी स्तुति करते हैं। इस तरह गो0 तुलसीदास जी ने बताया कि ये पृथक्-पृथक् देखने में आते हैं, लेकिन है एक ही।

❀ वेद की आज्ञा है कि परस्पर मिलकर रहो। मिलकर उपासना करो। मेल एक तरह चित्त होकर रहने से होता है। सत् वचन में मेल रहता है। कितनी भी प्रेमभरी वाणी बोलो, लेकिन कपट बात रहे, तो मेल नहीं होगा। सत्य हो, सुहाता हो और एक तरह मन मिलाकर बोला जाये, तब मेल होगा। सामूहिक उपासना बहुत मेल मिलाता है। यहाँ इस जिले भर के और इससे भी बाहर के लोग एकत्र हैं। यह सामूहिक उपासना है। यह एक मेल में बाँधता है। ईश्वर-उपासना और धर्म इन दोनों के सूत्रों में गुँथे हुए, बँधे हुए लोग अवश्य एक हो जाते हैं। ईश्वर की सामूहिक उपासना और धर्म में बल है कि दूर-दूर के लोगों को एक सूत्र में बाँध देते हैं। ठाकुरवाड़ी में घड़ीघंट बजता है। इसमें देवता प्रसन्न होते हैं, यह तो मानी हुई बात है। लेकिन बात तो यह है कि उस आवाज को सुनकर बहुत-से लोग इकट्ठे होंगे और सामूहिक उपासना होगी। मुसलमानों को आप देखते हैं कि शुक्रवार को मस्जिद में सभी जमा होते हैं। किसी-किसी पर्व में ईदगाह में भी इकट्ठे होते हैं। व्यक्तिगत एकान्त उपासना भी हो और सामूहिक उपासना भी होनी चाहिये।

❀ अपने समाज में मेल से रहो, अपने देश के सभी लोग मिल-जुलकर रहो, तो बड़ा सुख उपजेगा। जहाँ आपस में मेल नहीं, वहाँ कैसा परिणाम होता है, इसे जानने के लिए अपने देश में रामायण और भागवत ग्रंथ प्रसिद्ध है, उनका अवलोकन करके सीख ले सकते हैं।

रावण को अपने भाई से बनाव नहीं था। उसके भाई ने समझाया; लेकिन उसको अहंकार बहुत था। उसने अपने भाई विभीषण को लातों से मारा, भरी सभा के बीच अपमान किया। विभीषण जानता था कि राम से रावण पार नहीं पावेगा। वह राम की शरण में चला गया। भाई से मेल नहीं रहने के कारण लंका राज्य का जो नतीजा हुआ, सभी जानते हैं। अपने परिवार-सहित रावण मारा गया। आपस में मेल नहीं रहने के कारण बड़े-बड़े बलवान लोग नाश को प्राप्त हुए। श्रीमद्भागवत पढ़कर देखिये।

महाभारत ग्रंथ में कौरव और पाण्डव की कथा पढ़िये। पाँचो भाई पाण्डव में बड़ा मेल थ। एक सौ एक भाई कौरव थे। उनलोगों को आपस में मेल नहीं था। दुर्योधन के अन्यायपूर्ण व्यवहार के कारण आपस में मेल नहीं

था। उससे उनकी बड़ी भारि हानि हुई। अपने चचेरे भाई पाण्डवों से मेल नहीं रहने के कारण अपने सभी भाइयों तथा पुत्रों के साथ मारा गया। आपस में मेल नहीं होने से ऐसा ही होता है।

एक कहानी है। एक आदमी था। वह बहुत गरीब हो गया। उसके पास भोजन भी नहीं रहा। उसको चार पुत्र थे। चारो में मेल था। एक दिन विचार किया कि चलो जंगल। चारो पुत्र के साथ वह गरीब आदमी जंगल चला। साथ में मूँज, लोटा और हंडी ले ली। जब जंगल पहुँचा तो वह एक गाछ के नीचे बैठ गया। लड़कों को कहा-साफ सुथरा करो इस जगह को। सभी लड़कों ने साफ किया। अपने मूँज की रस्सी बनाने लगा। एक लड़के को कहा कि आग लाओ। वह लड़का तुरत आग के लिए चला गया। दूसरे लड़के को कहा कि पानी लाओ। वह तुरत पानी के लिए चला गया। तीसरे लड़के को कहा, लकड़ी काटकर लाओ। तीसरा लड़का भी पिता की आज्ञा से तुरत लकड़ी के लिए चला गया। एक लड़के को कहा, चूल्हा बनाओ। चूल्हा भी बन गया। गाछ पर एक प्रेत रहता था। प्रेत सूक्ष्म शरीर में रहता है। जबतक उसकी ममता सांसारिक वस्तुओं में और परिवारों में लगी रहती है, तबतक वह प्रेतयोनि में रहता है। अपने कर्मानुसार भोग भोगकर अन्य योनि में जाता है। प्रेत से डरना ठीक नहीं। जीवात्मा की अमरता निश्चित है। इसलिए प्रेत से डरने की बात नहीं। अपने कर्म के मुताबिक जीव हानि-लाभ उठाता है। वृक्ष से प्रेत ने देखा कि बूढ़े के पास खाने को कोई सामान नहीं है, खायेगा क्या ? उस बूढ़े से पूछा–"ऐ पुरुष ! हंडी में क्या पकाकर खाओगे ?" बूढ़े ने पूछा–"तुम कोन बोलते हो, तुमको यह पूछने की क्या जरूरत है ?" प्रेत ने कहा–"मैं प्रेत हूँ।" बूढ़े ने कहा–"मैं तुमको इस रस्सी से बाँधूगा। हमलोगों को आपस में मेल है, इसलिए तुमको ही पकड़कर इस हंडी में पकाऊँगा।" प्रेत ने कहा–"तुम्हारे अंदर बहुत मेल है। तुमलोग मुझे पछाड़ सकते हो। मैं तुमलोगों के मेल पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमको धन चाहिये। यहाँ गाछ के नीचे धन गड़ा हुआ है, तुम ले जाओ।" वह बूढ़ा अपने पुत्रों के साथ मनचाहा धन लेकर घर वापस चला आया। यह तो मेल की बात हुई। बूढ़े के पड़ोस में एक दूसरा आदमी था। उसको भी चार पुत्र थे। उसने उस बूढ़े से पूछा कि आपको यह धन कैसे प्राप्त हुआ ?

बूढ़े ने जंगल के प्रेतवाला सारा वृत्तांत कह सुनाया। वह आदमी भी अपने पुत्रों के साथ उसी जंगल में उसी वृक्ष के नजदीक पहुँचा, जहाँ पर वह प्रेत रहता था। उसने अपने बेटों को कहा–"लकड़ी लाओ, आग लाओ, पानी लाओ।" बेटे ने कहा–"आप पागल हो गये हैं, इन सब चीजों की क्या जरूरत है ?" किसी बेटे ने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया। प्रेत ने कहा–"तुम जल्दी भागो, नहीं तो सबको पछाड़-पछाड़कर मार डालूँगा। तुमको आपस में मेल नहीं है।" वह बूढ़ा भाग गया।

यह तो दन्तकथा है। कोई प्रमाणिक नहीं है। लेकिन इसमें मेल का उपदेश है। मेल में बल है, मेल में बहुत लाभ है।

❀ भगवान् कृष्ण के सामने ही आपस में मेल नहीं रहने के कारण छप्पन् कोटि यदुवंशियों का नाश हो गया।

आपस में मेल से रहने के लिए झुठाई से अलग रहो। सत्य बोलो। सत्य के बिना मेल खत्म हो जायेगा। सत्यता को ग्रहण करो तो आपस में मेल खूब रहेगा। सत्य को जो ग्रहण करते हैं, वे ईश्वर को पाते हैं।

"साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाका हिरदय सांच है, ताके हिरदाय आप।।"

–संत कबीर साहब

इसलिए आपस में सत्य का वर्ताव करो। राजा बिम्बिसार को बेटे ने मरवा दिया। अजातशत्रु के समय लिच्छवी वंश के राजालोग राज्य करते थे। उस समय जनतंत्र का राज्य था। अजातशत्रु राज्य प्राप्त करने का लोभी था। दूसरे राजा लोग मेल से रहते थे। उनलोगों का मेल देखकर अजातशत्रु साहस नहीं कर पाता था। भगवान् बुद्ध उस समय मौजूद थे। भगवान् बुद्ध से जब पूछा गया तो उन्होंने कहा–"मैंने उन सबों को जनतंत्र राज्य करने का उपदेश दिया है। जबतक वे लोग मेल से रहेंगे, तबतक कोई उन सबों पर विजय नहीं प्राप्त कर सकेगा।"

अजातशत्रु ने अपने मंत्री से कहा–"उनलोगों पर कैसे विजय मिलेगी ?" मंत्री ने कहा–"बिना मेल तोड़े वे लोग हार नहीं सकते। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं मेल तोड़ दूँगा।" राजा ने कहा, "वैसा ही करो।" मंत्री ने कहा–"आप एक हुक्म निकाल दीजिये कि राज्य से मंत्री को निकाल

दिया।” राजा ने वैसा ही किया। तमाम राज्य में ढोलहा पिटवा दिया कि मंत्री को राज्य से निकाल दिया है। वह मंत्री भी उस राज्य से निकल गया। घूमते-फिरते वह मंत्री लिच्छवी के पास पहुँचा। उनलोगों ने उस मंत्री का बड़ा सम्मान किया। उसका आदर होने लगा। मंत्री ने ऐसा विश्वास दिलाया कि सही माने में उसको राजा ने अपने राज्य से निकाल दिया है। मंत्री ने ऐसा विश्वास दिलाया कि लिच्छवी लोग मंत्री पर पूर्ण विश्वास करने लगे। वे लोग मंत्री की ओर से बेखबर हो गये। मंत्री अपनी कपट बुद्धि से लिच्छवियों का मेल तोड़ने में लग गया। सबको फुटा-फुटाकर उनलोगों के मेल को बिगाड़ दिया। अब राज्य का काम करने में गड़बड़ी होने लगी। जब इन लोगों में मेल नहीं रहा तो उस मंत्री ने राजा अजातशत्रु को गुप्त रूप से खबर दी और उसने लिच्छवियों पर चढ़ाई करके उसे जीत लिया। अगर लिच्छवियों में आपसी मेल रहता तो कभी भी अजातशत्रु उनलोगों पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता। अनमोल से बहुत नुकसान होता है। यदि आपस में झूठ का व्यवहार होगा तो कभी मेल नहीं होगा। आपस में बिल्कुल सत्य का ही व्यवहार करो। एक दूसरे के साथ सदा सत्य का ही व्यवहार करो।

❁ ईश्वर एक हैं। उनकी भक्ति करो। ईश्वर के भक्त को एक मेल में रहना चाहिये। संत कबीर साहब को लोग जानते हैं। वे काशी में रहते थे। वे वैदिक और मुसलमान को एक ही उपदेश करते थे। वे दोनों के लिए एक थे। ईरान में एक फकीर रहते थे, उनको कबीर साहब के सम्बन्ध में मालूम हुआ कि भारत में एक बहुत बड़े संत हैं। वे फकीर और कबीर साहब बूढ़े हो गये थे। फकीर साहब और कबीर साहब सूरत में एक जहाज पर मिले। दोनों ने आपस में हाथ मिलाये। दोनों एक दूसरे के हाथ पकड़े हुए रातभर बैठे रहे। मुँह से कोई बोल-चाल नहीं। जब सबेरा हुआ तो दोनों अलग-अलग हो गये। जहाज पर से उतरकर जब वापस चलने लगे तो दोनों के साथ के अनुयायियों ने पूछा कि “आपलोग इतना कष्ट उठाकर इतनी दूर मिलने आये और कोई बातचीत नहीं की ?” फकीर साहब ने अपने अनुयायियों तथा कबीर साहब ने अपने साथ के अनुयायियों को समझाया कि हमलोगों ने बहुत बड़ी बातचीत की। अरे! हमारी आत्मा और उनकी आत्मा एक है इसलिए हमालोगों की आत्मा-आत्मा से बातचीत हुई।”

दोनों महात्मा दो देश में रहते थे। दोनों को आपस में ईश्वर की भक्ति ने मिलाया।

❀ जो पंच पापों से बचेगा। वह किसी से लड़ेगा-झगड़ेगा नहीं। सत्य बोलेगा। दूसरे से प्रेम होगा। प्रेम से मेल होगा। मेल से बल बढ़ेगा। बल बढ़ाने की बड़ी आवश्यकता है देश को।

❀ वेद मंत्र में आया है–"आपस में सब मेल से रहो।" घर के अन्दर, जितने लोग हैं मेल से रहो। एक पड़ोसी के साथ दूसरा पड़ोसी मिलकर रहो। एक गाँव के लोग दूसरे गाँव के लोगों से मेल करके रहो। एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त से मेल करके रहो। एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों से मिलकर रहो। यह मेल कौन करावेगा ? सत्य का व्यवहार। सत्य के व्यवहार से आपस की प्रीति रहेगी। कबीर साहब ने कहा है–

"साँचे को साँचा मिले, अधिका जुड़े सनेह।
साँचे को झूठा मिले, तड़ दे टूटे नेह।।"

सब सत्य-सत्य रहो, तो सुखमय संसार हो जाये। यह बहुत बढ़िया ज्ञान है। सत्य ही धर्म का मूल है। सबको एक साथ धर्म बांधता है क्योंकि इसकी जड़ में सत्य है। वह एक धर्म कौन-सा है ? अध्यात्म-धर्म है। अध्यात्म धर्म में सब मिल जाओ। चाहे वैदिक, इसाई, इस्लाम कोई होओ। नाम चाहे कुछ दे दो, अध्यात्म-धर्म कहो वा और कुछ कहो। हमलोग सन्तमत कहते हैं। इसमें सन्तों का धर्म है, सभी संतों का ज्ञान हम लेते हैं। यही सन्तमत है। सन्तमत किसी एक महात्मा के नाम पर का मत वा धर्म नहीं है। सारे संसार में सबको एक करके रखने के लिए सन्तमत है। सभी एक धर्म से मिलो। जैसे किसी का नाम रामदास, किसी का कृष्ण दास है, लेकिन सभी मनुष्य है। इसी तरह इसाई, वैदिक, इस्लाम अलग-अलग धर्म के नाम हैं, लेकिन सबका मूल सत्य है। जो सत्य में रहता है, वह अध्यात्म में रहता है। जो अध्यात्म में नहीं रहता है, वह सत्य में नहीं रहेगा। जो सत्यधर्म को छोड़ेगा, वह गिरता-पड़ता रहेगा। सब कोई एक धर्म को स्वीकार करो। वैदिक, बौद्ध, ईसाई, वा इस्लाम कोई हो, सबके भोजन का एक ही रास्ता है, उसी प्रकार ईश्वर पाने का सबका रास्ता एक है, वह रास्ता है अन्दर का। स्वराज्य है, बड़ी खुशी है; इसमें सुराज चाहिए। सुराज के लिए एक धर्म

स्वीकार करो। अन्तर्मुख चलो। अन्तर्मुख धर्म सबका एक है।

❀ आप द्वैत, अद्वैत, त्रैत आदि कुछ मानिये, किन्तु ईश्वर की ओर चलिये। ईश्वर की भक्ति कैसे करें–यह जानना और करना अत्यन्त आवश्यक है। आपस में फजूल झंझट-झगड़ा करना ठीक नहीं है।

एक कथा है–एक राजा किसी पुण्यकाल में तीर्थ-स्नान करने गया। स्नान करने के पश्चात् उन्होंने दानादि सत्कर्म किये। उनके सत्कर्म के प्रभाव से वहाँ स्थित एक वृक्ष फट गया। उससे दो विद्वान् निकलकर आपस में द्वैत, अद्वैत, त्रैतादि विषयों पर शास्त्रार्थ करने लगे। वाद-विवाद करते-करते जब वे किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँचे तो उनका क्रोध बढ़ने लगा–यहाँ तक कि मारपीट की नौबत आ गयी। इतने में एक देवी प्रकट् हुई और उन्होंने दोनों से कहा कि इसी पाप के कारण तुम दोनों इस वृक्ष में बन्द थे। राजा के पुण्य-प्रभाव से तुमलोग इससे निकल सके हो और पुनः वही पाप करने में लगे हो ? इस तर्क का अन्त नहीं है। इसका प्रत्यक्ष ज्ञान पाने के लिए साधना करो, तभी तुम्हारा उद्धार होगा। देवी का उपदेश सुनकर दोनों साधना करने के लिए चले गये।

❀ आज विविध-धर्म विविध तरह से फैलाये जा रहे हैं। असल में धर्म तो वह है कि जिससे ईश्वर से मिला जाये।

"जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।।"

राम ही ईश्वर है। राम को हाथ भी और नहीं भी हाथ। राम व्यक्त भी और अव्यक्त भी। राम विराट् भी–अंग-प्रत्यंग बहुत भी और वह एक-ही-एक है। अंग-प्रत्यंग को देखो और उसमें व्यापक एक को नहीं देखो, यह कितना मोटा ज्ञान है ? उस एक को मानने वाला, उस एक तक जाने वाला सभी हो जाओ, यही "सनातन धर्म" है। इस परम सनातन को भूल जाओ और केवल प्रचलित पूजा में लग जाओ, कितनी गलत बात है ? इस गलती को भूल जाओ। सब कोई मिल-जुल कर उपासना करो–यह वेद-आज्ञा है। इसी अनुकूल मैंने आपलोगों से कहा।

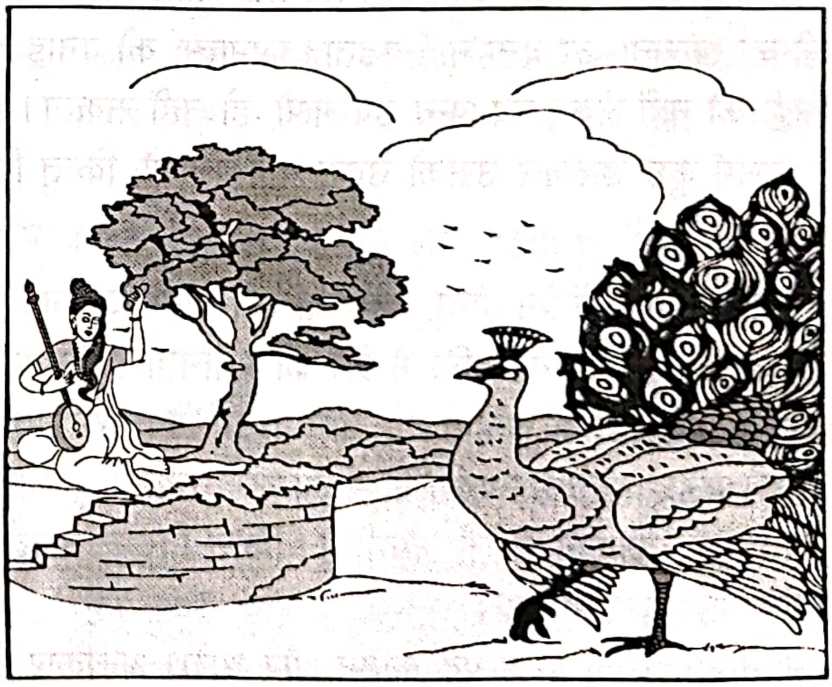
❀ सब मिल जुलकर जिस देश का समाज रहता है, वह देश पराधीन नहीं होता। जिस देश में भिन्न-भिन्न नियम और भिन्न–समाज बनता है, वह देश पराधीन हो, इसका खटका बना रहता है। पहले घर, फिर समाज, फिर

देश एक मेल से रहो। अपने देश में एक विचार हो जाये, फिर समूचे संसार में एक विचार, एक मेल हो, फिर कोई झगड़ा-झंझट नहीं। इसके लिए क्या चाहिये ? वेद कहता है कि सामूहिक उपासना करो। सामूहिक उपासना एक बन्धन में बाँध देती है। इसलिए ईश्वर-उपासना कोई मत भूलो।

ऋग्वेद–संहिता

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।2।।

भा0–हे मनुष्यो ! आपलोग परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो। परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो, विरोध छोड़कर एक समान वचन कहो। आपलोगों के सब चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार पूर्व के विद्वान् जन सेवनीय और भजन करनेयोग्य प्रभु का ज्ञान सम्पादन करते हुए अच्छी प्रकार उपासना करते रहे, उसी प्रकार आपलोग भी ज्ञानसम्पन्न होकर सेवनीय अन्न और उपास्य प्रभु का सेवन और उपासना करो।



श्री सद्गुरवे नमः

प्रेम और प्रेम-प्राप्ति का साधन



※ मन उधर अधिक लगता है, जिधर प्रेम होता है। इसीलिए भक्ति को प्रेम प्रधान कहा गया है।

"प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ विचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार।।"

—संत कबीर साहब

प्रेम उत्पन्न उसके लिए होता है, जिससे अपना कुछ लाभ होता है। परमात्मा सबसे बड़ा लाभ देते हैं। ईश्वर की महिमा, उनकी स्थिति के लिए ज्ञान होता है तब श्रद्धा होती है। श्रद्धा होने से भक्ति होती है। परमात्मा की महिमा को समझाने के लिए थोड़ी-सी बात यह है। आप किसी भी हालत में रहते हों: किन्तु बिना हवा के, भोजन के नहीं रह सकते हैं, श्वास नहीं लेने से हम जीवित रह नहीं सकते। गर्मी से हम जीते हैं। यह ईश्वर की दी हुई है। लोग कहते हैं यह गर्मी सूर्य की है। किन्तु ईश्वर के बनाये हुए सूर्य, चन्द्र हैं। सारी सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई है। हवा मुफ्त मिलती है। इसके लिए किसी को खजाना-कर देना नहीं पड़ता। परमात्मा की बनाई हुई मिट्टी है। इस मिट्टी को नहीं लेकर तब अन्न उपजाओ, हो नहीं सकता। हाँ, मिट्टी को लेकर, उसमें कुछ डालकर उसको उर्वरा भले बनाओ; किन्तु मिट्टी नहीं बना सकते।

※ जिसको ईश्वर में प्रेम होगा, वह सदाचारी होगा, जो जप-ध्यान है, उसको वह करेगा ? ईश्वर की भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। सबको ईश्वर में प्रेम करना चाहिये। उनकी महिमा को जानना चाहिये। परमात्मा की ओर से हमारी बहुत भलाई होती है। परमात्मा में लौ लगाने के लिए कोई जरिया चाहिये। कीर्तन से, पूजापाठ से लौ लगती है। किन्तु दिखलानेवाला कीर्तन और पूजापाठ नहीं होना चाहिये।

※ अपने अन्तर का प्रथम पट कठिन और अछेद्य अन्धकार है। दृष्टि-साधन के अभ्यास से सुरत इससे पार हो सकती है। अन्धकार से पार

होकर सुरत जब अपने शरीर में ब्रह्म के चमत्कारों को देखेगी, तब परमप्रभु के प्रेम में सदा सराबोर रहेगी।

❁ योग के साथ प्रेम करो ईश्वर को पाने का । यही भक्ति है। ईश्वर से मिलने के लिए विकलता होनी चाहिये।

"कैसे मिलूँगी पिया से जाय, मिलना कठिन है।"

—सन्त कबीर साहब

चित्तवृत्ति को ईश्वर की ओर लगाने के लिए प्रेम है। ईश्वर की ओर चलने में भक्तिमयी साधना होती है। प्रेम के बिना रूखे योग से भटकने का डर रहता है। जैसे लोहे का सम्बन्ध चुम्बक से होता है, वही योग का और प्रेम का सम्बन्ध चाहिये। प्रेम सुन्दर मिष्टान्न-नैवेद्य है। इसमें भगवान् परम—सन्तुष्ट हो जाते हैं।

❁ जैसे पिता पुत्र का काम देखकर प्रसन्न होता है, उसी तरह आपकी श्रद्धा जो परमात्मा की ओर है, उससे वे प्रसन्न होते हैं। केवल भोग ही लगाया जाये कि और कुछ भी है ? भोग लगाइये। भोग लगाने में आप अपना प्रेम अर्पित करते हैं। बहुत दाम का प्रसाद या कम दाम का प्रसाद या केवल तुलसीदल—जहाँ विशेष प्रेम है, वहीं परमात्मा को भोग लगा।

"भाव अतिसय विसद प्रवर नैवेद्य सुभ, श्री रमन परम सन्तोषकारी।
प्रेम ताम्बूल गत सूल संसय सकल, विपुल भव वासना बीज हारी।।"
"रामही केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।।"

—गो0 तुलसीदास जी

आपका प्रेम जहाँ है वहीं मन लगा रहता है। जिस ओर जिसका प्रेम बहुत होता है, किसी काम को करते हुए भी उस ओर उसका ख्याल लगा रहता है। यही है—'तन काम में, मन राम में।'

❁ प्रेम मन को बहुत समेटता है। उस ओर आसक्त करता है। जैसे विषय में मन आसक्त होता है, उसी तरह ईश्वर-प्रेम में मन आसक्त होता है। तब योग करो तो ठीक है। भक्ति करो तो ठीक है। ईश्वर-भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। ऊपरी-भाव में प्रधानता नहीं है। प्रधानता प्रेम में है।

❁ प्रेम इतना हो कि उसके मिलने की इच्छा बराबर लगी रहे। घूमते-फिरते, कुछ काम करते हुए भी उस ओर मन को घुमाते रहना चाहिये।

इसके लिए तो रोना चाहिए कि अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। विवेकानन्द के लिए कहा जाता है कि वे इतना रोते थे कि तकिया भींग जाता था।

किसी भी जाति के शरीर में प्रेम हो, छोटे-बड़े की बात नहीं। श्री राम शबरी के यहाँ जाते हैं, वहाँ और भी बड़े-बड़े तपस्वी लोग थे। लेकिन उन सबों के यहाँ नहीं गये। वशिष्ठ मुनि ने निषाद को अपने हृदय से लगाया। भगवान् श्री राम ने शबरी के जूठे बेर खाये, यह प्रसिद्ध है। भगवान् श्री कृष्ण विदुर जी के घर पहुँचे। विदुर जी घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी ने प्रेमपूर्वक भगवान् को केला खिलाया। यह भी लोग जानते ही हैं। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास जी थे। समर्थ रामदास जी की सेवा में एक शिष्य थे। वे बड़े गुरु-भक्त थे। समर्थ रामदास जी भोजन करने के बाद पान खाते थे। दाँत नहीं रहने के कारण वे पान को चबा नहीं पाते थे। इसलिए उनके शिष्य पान को कूटकर देते थे। जिस पात्र में पान कूटा जाता था, उस पात्र को समर्थ रामदास के अन्य शिष्यों ने छिपा दिया। जब पान कूटकर देने का समय हुआ तो उस पात्र को नहीं पाने पर वे शीघ्रता में अपने मुँह से ही पान चबाकर समर्थ रामदास जी को दिया। यह बात विपक्षियों ने शिवाजी से कहा। शिवाजी को बहुत बुरा लगा। वे समर्थ के भोजनोपरान्त के समय पहुँचे। पान चबाकर जब समर्थ को दिया गया, तो शिवाजी ने कहा–"जिस पात्र में पान कूटा जाता है, वह पात्र कहाँ है, सामने लाइये।" यह सुनते ही पान चबाकर देने वाले ने अपने मुँह का जबड़ा उखाड़कर समर्थ के सामने रखा। यह देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गये। उस शिष्य की ऐसी भक्ति थी, कि उनका चबाया पान भी समर्थ रामदास जी खा गये।

प्रेम लगाकर रहो। बिना प्रेम की भक्ति पाखण्ड है।

"प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ विचार।
उद्र भरन के कारने, जन्म गँवायो सार।।

प्रेम से मन उधर जाता है, जिधर प्रेम है। ईश्वर को प्रत्यक्ष करने के वास्ते जो साधन है, उसमें प्रेम हो तो मन लगेगा।



श्री सद्गुरवे नमः

विश्वास



❀ यह मैं जो कुछ कह रहा हूँ, अपने गुरु से युक्ति प्राप्तकर जो साधन कर पाया हूँ, तो मुझको विश्वास हो गया है कि गुरुजी ने ठीक बतलाया है। मुझे बड़ा विश्वास है। अपने गुरु के उपदेश के कारण मैं बहुत दृढ़ हूँ।

❀ महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया तो युधिष्ठिर ने कहा–"सबलोग मारे गये। अब राज्य किसके लिए किया जाए ?" वे बहुत दुःखी हुए। व्यास जी ने सोचा, इसका मन ऐसे नहीं फिरेगा। इसलिए उन्होंने युधिष्ठिर से कहा– "तू यज्ञ कर।" युधिष्ठिर ने कहा–"महाराज ! युद्ध में सब धन समाप्त हो गया। यज्ञ कैसे किया जाये ?"

व्यास जी ने कहा–"पहाड़ में बहुत धन गड़ा हुआ है।" युधिष्ठिर जी ने कहा–"वह धन कैसे मिलेगा ?" तो व्यास जी ने उसका अनुष्ठान बताया। युधिष्ठिर जी ने अनुष्ठान किया और उनको धन प्राप्त हुआ। इस कथा से यह बोध होता है कि व्यास जी के वचन पर युधिष्ठिर जी ने विश्वास किया तो धन मिला। इसीलिए सन्तों के वचन पर भी विश्वास होना चाहिये।

❀ मेरी इस बात को तब विश्वास करोगे, जब तुम स्वयं करोगे। यदि तुम मेरे लिए यह समझो कि रोचक बात कहकर ईश्वर-प्राप्ति के कर्म में लगाना चाहते हैं, तो मैं कहूँगा कि आपको अनुभूति इसकी नहीं है–जानकारी नहीं है। मैं क्या कहूँ ? यदि आप मुझको इसमें कुछ भी सच्चा मानो, मेरी उम्र को समझो, तो मैंने इतनी उम्र तक क्या किया ? या तो विद्या लाभ किया और यही काम करता रहा। इतने में मुझको कुछ भी अनुभूति नहीं हुई, यह विश्वास करने योग्य नहीं है। यदि मेरी तहकीकात करना चाहो, तो मिल सकती है। विद्याभ्यास, सत्संग और उपासना, जो-जो कर्म इसके लिए अपेक्षित है, उसी में मैंने अपने को लगाया है। मैं अपने साधन के बल से कहता हूँ–बिल्कुल ठीक है। सुनने में कठिन, करने में कठिन, पर मन लगाते-लगाते इतना सरल हो जायेगा कि इसके बिना रह नहीं सकोगे।

आपके ख्याल में होगा कि सो जाऊँ, तो भी यही बात ख्याल आवे। और दूसरी बात मिट जायेगी, जो उपासना में खलल पहुँचाती है, वह भी नाश हो जायेगी, जो उपासना में बाधा पहुँचाती है।

हे साधक ! घबड़ाओ मत। श्रीमद्भगवद्गीता के इस उपदेश को मत भूलो कि भक्त का 'योगक्षेम' स्वयं भगवान करते हैं। साधन में साधक को सहायता देनी और उसके अभ्यास-बल की रक्षा करनी भी योगक्षेम के ही अन्दर है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने 'विनय-पत्रिका' ग्रन्थ में कहा है कि–

"जौं तेहि पंथ चले मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।"

क्या भक्तियोग के किसी भी साधक को चाहिए कि भगवान् की कृपा का विश्वास नहीं करे ? ऐसा कदापि नहीं चाहिए।

ऐसे लोगों से भी भेंट हुई जिन्होंने कहा कि किस ख्याल में तुम हो, जिसको लोग ईश्वर कहते हैं, वह हई नहीं है। किन्तु इस बात का विश्वास मुझे कभी नहीं हुआ। ईश्वर की स्थिति पर आक्षेपात्मक कितने ही प्रश्न उनके हुआ करते थे जिनका उत्तर देना कठिन होता था। किन्तु वे मेरे विश्वास को डिगा नहीं सके। कैवल्य-शास्त्र नाम की एक पुस्तक मैंने पढ़ी, जिसमें है कि एक आदितत्त्व ऐसा है जो अनादि-अनन्त है।

गुरु वाक्य हो, सद्ग्रन्थ-वचन हो और विचार का मेल हो; तो उस पर पूरा विश्वास कर लो।

तर्क बुद्धि ऐसी भी है कि ईश्वर की स्थिति में भी विश्वास नहीं करती और कहती है कि ईश्वर की भक्ति क्या ? ईश्वर-भक्त कहते हैं कि मुझे ईश्वर में बड़ा विश्वास है। महात्मा गांधी ने कहा कि मुझे तर्क में कोई हरा दे, फिर भी मैं ईश्वर को मानता रहूँगा। जैसे कोई सात बहनें थीं। उन सात बहनों में एक मर गई। लोग उनको छह बहनें कहते, लेकिन वह कहती–मैं सात-की-सात हूँ।

श्री सद्गुरवे नमः



अभ्यास और उसकी जाँच

※ पुरैनियाँ में एक रंगलाल मुंशी थे। वे भी मुझसे भजन-भेद लिये हुए थे। भागलपुर में बाबा देवी साहब के वे दर्शन करने गये। उनसे बाबा देवी साहब ने पूछा– "कहो जी! तुम्हारे भजन का क्या हाल है ?" तो उन्होंने कहा कि **"हनोज रोज अव्वल"** अर्थात् आज भी पहला दिन है। बाबा साहब ने कहा–"ठीक ही कहते हो। अपने में जाँचो कि तुम्हारा भजन अभ्यास कहाँ तक बढ़ा है ?"

※ जो जिस विद्या में कुशल हो जाता है, वह उसके लिए सुलभ और सुखदाई हो जाती है। कुशल कैसे होता है ? बारम्बार कोशिश करने से। ज्ञान को सीखने के लिए जो रगड़ करना पड़ता है, यही कठिनाई है। विद्या के अभ्यास के लिए, अक्षर-अक्षर सीखने के लिए हाथ रगड़ना पड़ता है, उच्चारण करना पड़ता है, होते-होते सीखता है। इसी तरह भक्ति का जो अभ्यास करेगा, वह भक्ति को सीख लेगा। स्थूल-भक्ति में भी बिना बारम्बार अभ्यास किये नहीं सीखता। सूक्ष्म-भक्ति का जो अभ्यास नहीं जानते, वे कहते हैं कि हमसे नहीं होगा। बिना किये कल्याण भी नहीं होगा। जिस काम को किये बिना कल्याण नहीं, वह कितना भी कठिन हो करना ही पड़ता है और करते-करते फिर कुशल हो जाता है। जब वह कुशल हो जाता है, तब वह विद्या उसको सुख देने वाली होती है। जैसे जो मछली सबसे छोटी हाती है, उसको सफरी कहते हैं। सफरी मछली पानी में तो रहती ही है, लेकिन उलटे प्रवाह में चलती है। इसका उसको अभ्यास है। वह छोटी है, फिर भी वह जल के प्रवाह के विरुद्ध चलती है। हाथी बहुत बड़ा जानवर है। उसको पानी का प्रवाह बहा देता है। हाथी को बहा देता है, लेकिन सफरी को बहा नहीं सकता।

※ ऐसा जप करो कि सब भूल जाओ, जप रहे और तुम हो। ऐसा होता है तो बहुत अच्छा होता है। नहीं हो तो बारम्बार कोशिश करते रहो। Try and try again (ट्राइ एण्ड ट्राइ अगेन) होते-होते हो जायेगा।

※ जो सुना उसको याद रखा, वे ही मेधावी पुरुष हैं। जो याद नहीं

करे वे क्या करेंगे ? शुरू करो, कभी-न-कभी खतम होगा। हमारे गुरु जी कहते थे कि "लोटा में डोरी डालकर सौ हाथ के कुएँ में डाल दो, छोर पकड़े रहो। छोर छूट जाये तो कुछ नहीं मिलेगा। छोर पकड़े रहेंगे तो लोटा, पानी सभी मिलेंगे।" जापानी महिला लगभग दो घंटे तक बैठी और ध्यान करने पर जैसा देखा, कागज पर उसका दृश्य दिखा दिया और बोली- **VERY EASY AND VERY HARD** (वेरी ईजी ऐण्ड वेरी हार्ड) अजमा कर देख लीजिये, ऐसा होता है कि नहीं। केवल सुनकर रखना नहीं है, काम करके देख लीजिये।

❀ युक्ति नहीं जानने के कारण लोगों को होता है कि हमसे होगा कि नहीं। कठिन लगता है। जैसे कोई लिखा-पढ़ा नहीं है, तो उसको पढ़ने-लिखने में कठिन मालूम होता है। लेकिन लिखने लगता है तो सरल हो जाता है। एक हरवाहा था, एक-एक अक्षर सीखने लगा। सीखते-सीखते सीख गया। एक-एक अक्षर सीखते-सीखते महा विद्वान् होते हैं। उसी तरह थोड़ा-थोड़ा ध्यान करते-करते पूर्ण हो सकते हैं। स्त्रियाँ कर सकती हैं, पुरुष कर सकते हैं, केवल थोड़ी समझ-बोध होना चाहिए।

"करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर पड़त निशान।।"

❀ संत कबीर साहब की वाणी में है—

"मन तू थकत-थकत थकि जाई।
बिन थाके तेरो काज न सरिहैं, फिर पाछे पछिताई।।"

हे मन ! बिना थके तेरा काम पूर्ण नहीं होगा। मन कैसे थकेगा ? एक सेठ थे। उनको काम बहुत था। एक साधु ने पूछा—"सेठ जी ! आप बड़े उदास हैं, क्या बात है ?" सेठ जी ने कहा—"बात यह है कि मुझे इतना काम है कि करते-करते थक जाता हूँ।" साधु ने कहा—"अच्छा! आपको मैं एक भूत देता हूँ। जैसे आप उसको काम बतावेंगे, वह तुरत करके चला आवेगा। यदि आप काम नहीं देंगे, तो वह आपको मार डालेगा। जब आपको एक ही काम बच जाये, तब मुझे याद कीजियेगा।" सेठ जी का काम होते-होते जब एक ही काम बच गया, तो वे घबड़ाये। तब उन्होंने साधु को याद किया। साधु आये। सेठ जी ने अपनी कठिनाई सुनायी। साधु ने

कहा–"जब भूत आवे तो उससे एक बाँस कटवाकर मठवा लीजियेगा और उसको जमीन में गड़वा दीजियेगा। जब भूत काम माँगे तो कहियेगा कि इसी बाँस पर चढ़ो और उतरो। उस बाँस पर चढ़ते-उतरते वह थक जायेगा और आपको छोड़कर भाग जायेगा।" सेठ जी ने वैसा ही किया। जब भूत काम माँगने आया तो सेठ जी ने कहा–"एक बाँस काटकर लाओ।" वह बाँस काटकर ले आया। फिर सेठ जी ने कहा–"उसे काटकर जमीन में गाड़ो।" जब भूत ने बाँस को जमीन में गाड़ दिया तो सेठ जी ने कहा–"अब तुम इस बाँस पर चढ़ो और उतरो। जबतक तुमको दूसरा काम नहीं दें, तबतक यही करते रहो।" बाँस पर चढ़ते-उतरते वह भूत थक गया और सेठ जी को छोड़कर भाग गया। मन वही भूत है। यह ख्याल, वह ख्याल करता रहता है। इसको एक पर लगाओ। लगते-लगते मन थक जायेगा।

❀ एक-एक कदम चलने से लम्बा मार्ग पारकर जाते हैं। इसी तरह थोड़ा-थोड़ा भजन कर प्राप्त करते हैं। जो पूर्णतः प्राप्त करने में ऐसा समझते हैं कि हमसे मुश्किल है, तो वे भी अभ्यास करते रहें तो करते-करते हो जायेगा।

❀ ईश्वर का सुमिरण करने के लिए और ईश्वर की ओर जाने के लिए ध्यानयोग का बारम्बार अभ्यास करते रहो। मन को संसार के विषयों से हटाकर उस एक ईश्वर में लगाने का अभ्यास करते रहना चाहिये। जीवन-भर भी अभ्यास करेगा तो वह ऐसा भक्त होगा कि उसका संस्कार उसके मन पर बैठेगा और उसको मनुष्य-योनि में लायेगा।

❀ भजन-साधन आरंभ में एकान्तों में बैठ-बैठकर करना चाहिये। रामकृष्ण परमहंस देव जी का वचन है–"पहले कुछ दिन तक एकान्त में बैठकर ध्यान करना सीखो। पूरा अभ्यास हो जाने पर फिर जहाँ-तहाँ बैठकर भी ध्यान कर सकोगे। पेड़ जब छोटा रहता है तब उसको घेरा लगाकर रखना पड़ता है, नहीं तो गाय, बकरियाँ चर जायें। जब वह पेड़ पूरा बढ़ जाता है तब फिर उसमें दस-दस गाय-बकरियाँ बंधी रहने से भी उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता।" गुरु नानक देव जी ने कहा है–

"रहहिं एकान्ति एको मनि बसिआ आसा माहिं निरासो।
अगमु अगोचरु देखि दिखाए नानक ताका दासो।।"

मेरे पास गुरु महाराज की बहुत-सी चिट्ठियाँ हैं। एक चिट्ठी में लिखते हैं–"रोजाना अभ्यास करो, चाहे कुछ देखो या न देखो" अभ्यास के समय देखते जाओ, चाहे कुछ दृश्य देखने में आवे या नहीं। बाबा साहब कहते थे–"जिस प्रकार लाह से लपेटी हुई लकड़ी को अग्नि के तेज में रखो तो पिघलते-पिघलते लाह गिर जायेगी और केवल लकड़ी रह जायेगी, उसी तरह ध्यानाभ्यास से सब आवरण उतर जायेंगे और तुम अकेले रह जाओगे।" यह गुरु महाराज की आज्ञा है।

जब लोग इस ध्यान-अभ्यास में पड़ते हैं तो संकल्प-विकल्प को छोड़कर रहता है। जैसे पानी के बहाव में मैली-कुचैली गड़बड़ चीजें आती हैं, परन्तु स्नान करने वाला मलिन चीजों को टालकर जल में स्नान करता है उसी तरह ध्यान में होता है, लेकिन अभ्यासी सबको हटाकर ध्यान करता है। जो बारम्बार अभ्यास करता रहता है, उसका मन विषयों से छूटता है। रजोगुण-तमोगुण से छूटकर सतोगुण की ओर वृत्ति होती है। उससे फिर पाप नहीं होता।

ईश्वर की भक्ति में अभ्यास है। बराबर अभ्यास करते रहने से भक्ति होती है। केवल कहने से नहीं होगा। एक दिन के साधन से नहीं कुछ मिलता है तो **Try Again** (ट्राइ अगेन–पुनः कोशिश) बराबर करते रहो।

भक्ति का छोर नहीं छूटना चाहिये। सौ हाथ का गहरा कुआँ हो, सौ हाथ की रस्सी हो, कुएँ में डाल दो, छोर पकड़े रहो तो पानी मिलेगा। छोड़ दो तो लोटा, रस्सी पानी कुछ नहीं मिलेगा।

तुम्हारे साधन में कसर नहीं हो , तो तुम देखोगे कि गुरु ने जो कहा, ठीक कहा। करके देखने का काम है।

भक्त उस स्वरूप के लिए यत्न क्यों न करे ? बड़ा परिश्रम लगेगा तो क्या होगा ? संसार में सुरक्षित रहने के लिए, देश की रक्षा के लिए झुण्ड-के-झुण्ड सैनिक जान गँवाते हैं। कितना बड़ा काम है! शरीर नहीं रहेगा, प्राण छूटेंगे। हमको मारेगा वा हम मारेंगे; इतना बड़ा काम करने को लोग तैयार होते हैं। इसी तरह भगवान् के सगुण-रूप की भक्ति और निर्गुण-स्वरूप की भक्ति के लिए कोई कड़ा काम हो तो क्या है ? करना चाहिये। बहुत समय लगेगा , तो क्या होगा ? सोते हैं, तो बहुत समय मालूम

पड़ता है। नींद टूटती है, तो कहते हैं कि अभी तो सोया था।

❀ गुरु जिसमें मन लगाने कहें, जिसका ध्यान करने कहें, जिधर मन को रखने कहें ; उधर लगाओ। मन भागे, समेटकर लाओ। जो प्रत्याहार करने के डर से भागेगा, उसकी धारणा नहीं होगी। प्रत्याहार के श्रम से भागना नहीं है। अभ्यास करते-करते क्या नहीं होता है ? बड़े-बड़े विद्वान् एक-एक अक्षर का अभ्यास करते-करते हो गये हैं। थोड़ा-थोड़ा ब्रह्मचर्य का पालन करते-करते ब्रह्मचारी हो गये हैं। थोड़ा-थोड़ा परिश्रम करके बलवान हो गये हैं।

❀ रामायण में की सारी बातों को समझा जाये तो "रघुपति भगति करत कठिनाई" ही मालूम होगी। कुनैन की गोली पर मीठी लेप करते हैं, लेकिन विचारिये तो कुनैन कडुवी है। 'सुगम' कुनैन पर मीठी लेप है। कहने के लिए सुगम है, किन्तु करने में अपार मालूम होता है। इसको वही जानता है, जिससे भक्ति बन आई है। कोई कठिन जानकर इसको छोड़ दे, तो गोसाईं तुलसीदास जी कहते हैं–

"जो जेहि कला कुशलता कहँ सो सुलभ सदा सुखकारी।"

किसी कला में कोई कैसे कुशल होता है ?

"करत-करत अभ्यास के,जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिलपर पड़त निशान ।।"

रस्सी का चिह्न पत्थर की दीवार पर हो जाता है। जो बारम्बार अभ्यास करता रहेगा, वह उसमें अवश्य कुशल हो जायेगा।

❀ कोई किसी के लिए यह काम कर दे, सो नहीं हो सकता। आनन्द भगवान् बुद्ध के साथ बहुत रहते थे, उन्होंने उनकी अन्त तक बड़ी सेवा की थी। इतने प्यारे शिष्य थे कि बिना उनके आये भगवान् कुछ उपदेश-वाक्य नहीं कहते थे, ऐसा उनको वरदान मिला था। "अपनी चिराग आप बन" भगवान् ने कहा था। पहले जाँच लो कि गुरु ठीक है वा नहीं, विश्वास हो तो उनसे यत्न जानो और करो। कोई कहता है कि मैं तुम्हारे बदले कर दूगाँ तो वहाँ जाओ और उसकी सच्चाई देखो। लोग कहते हैं कि स्वामी विवेकानन्द जी को परमहंस जी ने पूरा कर दिया था। यदि वे पूरे ही थे, तो वे रामकृष्ण परमहंस देव के शरीर छूटने के बाद पौहारी बाबा के शिष्य बनना

क्यों चाहते थे ? मैं साफ-साफ कहता हूँ, कोई करा नहीं देगा, स्वयं करना होगा। एकान्त-बैठकर ध्यान-अभ्यास बराबर करो। ऐसा करते-करते अपने को ऊपर पाओगे। भजन करना आवश्यक है। भक्ति का बीज तुम्हारे साथ रहेगा—जब तक मुक्ति न मिल जाये।

(एक बार महर्षि मेँहीँ परमहंस जी) देवघर पधारे। वहाँ बालानन्द ब्रह्मचारी की प्रशंसा सुनकर आप उनके दर्शन करने गये। अपराह्न-काल में उनके दर्शन के बाद वार्त्तालाप होने लगी। बातचीत के सिलसिले में ब्रह्मचारी जी बोले—"जब बालक को ओष्ठ में मधु लगा दिया जाता है, तो एकवार उसकी मिठास जान लेने पर वह स्वभावतया ही उस ओर प्रवृत्त हो जाता है।" यह सुनकर आपने महर्षि मेँहीँ परमहंस जी ने "कहा—यह तो आपने ठीक ही कहा महाराज! किन्तु फिर भी बालक को मधु चाटने के लिए अपनी जीभ स्वयं ही निकालनी पड़ेगी।"

सभी संतों की एक ही बात है। इस तरह ईश्वर-प्राप्ति के लिए यत्न करना होगा। यह यत्न ऐसा नहीं है कि किसी से नहीं हो । हाँ, जो पापाचारी है, उससे नहीं होगा। जो कोई साधन में जितनी विशेष मेहनत करता है, उसको उतना ही जल्दी प्राप्त होता है। किन्तु जो वस्तु जितने विशेष मूल्य का होता है, उसके लिए उतना ही विशेष परिश्रम करना होता है। और विशेष समय भी लगता है। किन्तु थोड़ा-थोड़ा सबको अभ्यास करना चाहिये, अभ्यास करते-करते होगा। जल्दी करने वाले, उकताने वाले से नहीं होगा। जो बिना अटक के चलता है, आशा से डोलता नहीं है, वह प्राप्त ही कर लेता है, इसमें संशय नहीं।

Slow and steady wins the race. (स्लो एण्ड स्टीडी विंस दी रेस)



श्री सद्गुरवे नमः



धैर्य

ꕥ भजन-अभ्यास करने के लिए बल होना चाहिये। मनुष्य का शरीर-बल, मस्तिष्क-बल भी भजन करने के योग्य होना चाहिये। कितने कहते हैं औंघी (नींद) लगती है। कितने कहते हैं कि पहले जैसा भजन होता था, वैसा अब नहीं होता है। मैं कहता हूँ, करते रहो, जैसा बनता है; धीरे-धीरे बनेगा।

ꕥ एक लघु कथा है। एक राजा के मन में विरक्ति हो गई। वे एक इमली गाछ के नीचे बैठकर तप करने लगे। एक दूसरा आदमी था, जो अपने परिवार से झगड़ा करके घर से निकल भागा और राजा की नकल में एक अरण्ड पेड़ के नीचे बैठकर तप करने लगा। भगवान् की ओर से राजा के लिए उत्तम भोजन और उस अरण्ड गाछ के नीचे बैठनेवाले के लिए मडुए की रोटी भेजी जाती थी। संयोग से एक दिन नारद मुनि उसी होकर जा रहे थे। राजा ने नारद जी से पूछा–"आप कहाँ जा रहे हैं ?" नारद जी ने कहा–"मैं विष्णुलोक जा रहा हूँ।" राजा ने कहा–"महाराज ! जब आप विष्णु भगवान् के यहाँ जा रहे हैं, तो भगवान् से आप पूछेंगे कि मुझे इस इमली गाछ के नीचे कितने दिनों तक तप करने पर उनके दर्शन होंगे ?" नारद जी ने कहा–"अच्छा, ठीक है। मैं पूछ लूँगा।" नारद जी जब आगे बढ़े, तो अरण्ड गाछ के नीचे बैठनेवाले ने भी उनसे कहा कि "महाराज ! केवल राजा के लिए ही नहीं, मेरे लिए भी भगवान् से पूछेंगे कि मुझे इस अरण्ड गाछ के नीचे कितने दिनों तक तप करना होगा ?" नारद जी ने कहा–"बहुत अच्छा! तुम्हारे लिए भी मैं भगवान् से पूछ लूँगा।" नारद जी जब भगवान् विष्णु के पास पहुँचे, तो भगवान् विष्णु से उन्होंने पूछा कि भगवन् ! एक राजा इमली गाछ के नीचे बैठकर तप कर रहा है और एक दूसरा आदमी अरण्ड गाछ के नीचे बैठकर तप कर रहा है। दोनों ने पूछा है कि हमलोगों को भगवान् के दर्शन के लिए कितने दिनों तक तप करना होगा। "भगवान् विष्णु ने कहा–"इमली के वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक राजा को तप करने के बाद मेरे दर्शन होंगे और अरण्ड गाछ के नीचे

जो बैठा है, अरण्ड वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक उसको भी तप करना होगा, तब मेरे दर्शन होंगे।" नारद जी जब भगवान् विष्णु के यहाँ से लौटे, तो पहले अरण्ड वृक्ष वाले से भेंट हुई। नारद जी ने उससे कहा–"इस अरण्ड वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक तुमको यहाँ तप करना होगा। ऐसा तुम्हारे लिए भगवान् विष्णु ने कहा है।" वह आदमी जब अरण्ड पत्तों को देखने लगा, तो बहुत पत्तों को देखकर वह घबड़ा गया और यह कहकर चल दिया कि इतने वर्षों तक कौन तप करे ? इससे तो अच्छा है कि घर का झगड़ा ही सही, घर ही में रहेंगे।" वह अपना घर वापस हो गया। जब नारदजी राजा के पास पहुँचे, तो राजा ने बड़ी आतुरता से पूछा कि "महाराज ! मेरे सम्बन्ध में भगवान् से जानकारी ली थी ?" नारद जी ने कहा–"हाँ ! भगवान् विष्णु ने आपके लिए कहा है कि इस इमली वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक आपको तप करना होगा, तब भगावन् दर्शन देंगे।" राजा यह सुनते ही प्रेम में मग्न हो गया और लगा नाचने। इतने में भगवान् विष्णु वहाँ पहुँच गए। नारद जी ने भगवान् से पूछा कि "आपने भी हद कर दिया। मुझसे तो आपने कहा था कि इमली वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक तप करने के बाद मेरे दर्शन होंगे; लेकिन आप तुरत ही आ गए," भगवान् विष्णु ने कहा कि "देखते हैं राजा को कितना प्रेम है ! इनके प्रेम के वशीभूत होकर ही मैं अभी तुरत यहाँ आया। जिस समय आपको इन्होंने मुझसे पूछने के लिए कहा था, उस समय ऐसा प्रेम इनमें नहीं था।"

हमलोगों को भी खुश होना चाहिए कि जैसे इमली वाले का काम खत्म हुआ, उसी तरह हमलोगों का भी होगा। गुरु महाराज की दया से हमलोग जन्म-मरण से जल्दी छूट जायेंगे।

❁ योग सुनकर लोगों को मुश्किल लगता है कि सबके लायक नहीं है। तो सरल-योग भी है और कठिन-योग भी है। कठिन-योग सबके लायक नहीं है। सरल-योग सबके लायक है जिसको राजयोग कहते हैं, उसको ध्यान-योग कहते हैं। इसको सब कोई कर सकते हैं। स्त्री, पुरुष, लड़का सभी कर सकते हैं। इसमें रोग-सोग कुछ नहीं होता है। उकतावे नहीं, जिस उपाय से गुरु बतावे सो करे, महायोगी हो जायेगा।

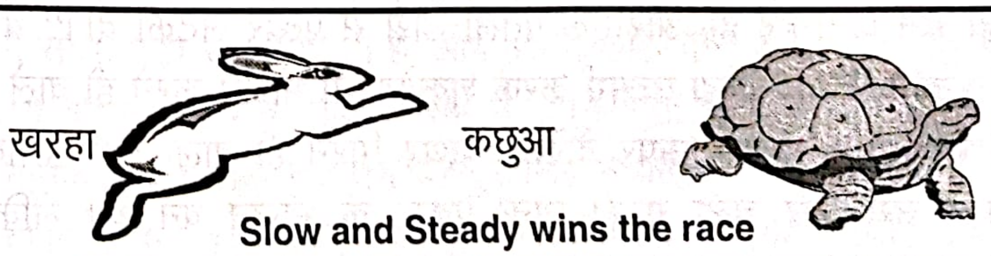
❁ चाहिये कि सिलसिले से सद्गुरु की शिक्षा मिले। धीर-धीरे उस पर चला जाये।

"धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।।"
—सन्त कबीर साहब

धीरे-धीरे कैसे चढ़ना होगा ? गुरु से सीखिये।

❁ साधना जल्दी-जल्दी का काम नहीं है। जो थोड़ा-थोड़ा भी अनवरत रूप से करता जायेगा, वही पहुँचेगा। अंग्रेजी में भी है— **Slow and steady wins the race.** (स्लो एण्ड स्टीडी विंस दि रेस) इसके सम्बन्ध में एक कहानी है—एक खरहा और एक कछुआ एक जगह रहते थे। एक दिन दोनों में होड़ लगी कि अमुक स्थान पर पहले जो पहुँचे, उसी की जीत होगी। दोनों चल पड़े, खरहा तेजी से छलाँग मारते हुए आगे बढ़ गया। संयोग से रास्ते में उसको बहुत अच्छी हरी घास मिल गई। वह उसे खाने लगा। भरपेट खाने पर उसको आलस्य आया। वह मन में सोचने लगा कि कछुआ तो अभी बहुत दूर पीछे है। थोड़ा सो लेता हूँ। उसके यहाँ आने के पहले ही जगकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाऊँगा। वह सो गया। कछुआ अनवरत रूप से चलता गया। वह धीरे-धीरे चलते रहने पर भी खरहे से पहले उक्त स्थान पर पहुँच गया। खरहे की जब नींद टूटी, तो तेजी से छलाँग मारता हुआ निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। देखा कि कछुआ उससे पहले ही वहाँ पहुँच चुका है। साधना में धीरज चाहिये और नित्य नियमित रूप से करना चाहिये।

❁ यह ख्याल नहीं करना चाहिये कि हम अधूरे गये। साधन-विधि को ठीक-ठीक समझो, साधन करते चलो, अन्त में ईश्वर की प्रत्यक्षता होगी। जिन लोगों को हुआ है, ऐसा ही हुआ है। उकताना नहीं चाहिये। जो भक्ति-मार्ग पर चलता है, वह कभी-न-कभी रास्ते का अन्त अवश्य पाता है। उसको कभी-न-कभी पूर्णता अवश्य होगी। यह बात याद रखिये।



Slow and Steady wins the race

श्री सद्‌गुरवे नमः



अनासक्ति और आत्म-संलग्नता

❀ राजा के सुचित्रित-रथ पुराने हो जाते हैं तथा यह शरीर भी पुराना हो जाता है, किन्तु सन्तों का धर्म पुराना नहीं होता, सन्त-लोग सन्तों से ऐसा ही कहते हैं।

लोग कहते हैं–इन उपदेशों से मनुष्य निकम्में हो जाते हैं। मैं पूछता हूँ–"क्या बुद्ध भगवान् निकम्मे थे ?" वे बड़े परिश्रमी थे, साहसी थे। दसवें गुरु–गुरु गोविन्द सिंह कैसे थे, खालसा-इतिहार पढ़कर देखो। संसार की वस्तुएँ नाशवान् हैं, इसलिए इसमें आसक्त न होओ। **"अनासक्त जग में रहो भाई। दमन करो इन्द्रिन दुखदायी।।"**

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा–"योगी होकर कर्म करो। कौशल से कर्म करनेवाले को योगी कहते हैं। ईश्वरार्पण-बुद्धि से कर्म करो। कर्त्तव्य जानकर कर्म करो। आत्मनिष्ठ होकर कर्म करो।"

❀ जो श्रीमद्‌भागवत की कथा सुने हैं, उनको व्यासदेव जी का नाम याद होगा। ये पराशर मुनि के पुत्र थे। व्यासदेव जी के पुत्र थे शुकदेव, जो बचपन से ही बड़े ज्ञानी थे।

व्यासदेव जी को मालूम हुआ कि इनको गृहस्थी की बात मालूम नहीं है। इनको गृहस्थी की बात सिखा दें, इसलिए उन्होंने इनको राजा जनक जी के पास भेजा। शुकदेव मुनि उनके दरवाजे पर जाकर खड़े हो गये। दरबान से कहा–"जाकर राजा से कहिये, मैं व्यासदेवजी का पुत्र शुकदेव हूँ।" राजा जनक ने कहा–"उनको कहो वहाँ ही खड़े रहने के लिए।" सात दिन बीत गये, तब उनको बुलाया गया और रसोइये से कहा–"इनको भोजन कराओ।" ब्राह्मण रसोइये से कहा–"इनको ऐसे स्थान पर बिठाना, जहाँ छत फूटी हुई हो; और एक पतली डोरी से पत्थर लटका दो।" वैसा ही उन्होंने किया। नैवेद्य उत्सर्ग करके शुकदेव जी भोजन करने ही वाले थे कि रसोइये ने कहा–"ऊपर देखिये, पत्थर गिरने ही वाला है।" उनका ख्याल उस ओर चला गया। नाना प्रकार के भोजन बने थे। लेकिन

जल्दी-जल्दी में खाया कि कहीं पत्थर न गिर जाय। फिर उनके दोनों हाथों के कोबे में पानी भरा कटोरा रख दिया और उनके हाथों को बाँध दिया।

राजा ने सिपाही से कहा–"हाथ में पानी भरा कटोरा देकर बाजार में घुमा लाओ। यदि कटोरे से एक बूँद भी पानी गिरे तो इनका सिर काट लेना।" उनको घुमाया गया बाजार में। शुकदेव जी कटोरे को देखते हुए चलते हैं, आहिस्ते-आहिस्ते कि कहीं कटोरे का पानी गिर न जाये। तमाम बाजार घूम आये। बाद में राजा जनक ने उनको अपने नजदीक बिठाया। उनसे पहले भोजन का स्वाद पूछा। शुकदेव मुनि ने कहा–"भोजन का स्वाद क्या मालूम पड़ता, डर के मारे कुछ स्वाद नहीं मालूम पड़ा" फिर पूछा– "बाजार देखा ?" शुकदेव मुनि ने कहा– "बाजार में क्या अच्छा है, कैसी दूकान है; मैंने कुछ भी नहीं देखा।" राजा जनक ने कहा–"यही मेरी शिक्षा है।" शुकदेव मुनि ने कहा–"क्या शिक्षा हुई, मैंने समझा नहीं।" राजा जनक ने कहा–"तमाम में रहो, सब स्वाद का भोजन हो, परन्तु स्वाद कुछ मालूम नहीं पड़े। सब कुछ देखो अच्छा-बुरा, परन्तु मन किसी में लगे नहीं।" शुकदेव मुनि ने पूछा–"ऐसा किस तरह से होगा ?" राजा ने कहा–"ऐसा इस तरह होगा कि तुम जो हो, अपने को पहचानो। अपने को जानते हो कि मैं कौन हूँ ?" शुकदेव मुनि ने कहा–"जानता हूँ कि मैं देह नहीं, आत्मा हूँ।" राजा जनक ने पूछा–"सुनकर जाने हो कि पहचान कर जाने हो ?" शुकदेव जी ने कहा–"सुनकर जाना हूँ।" राजा जनक ने कहा–"पहचानकर जानना बिना गुरु के नहीं होता है।" इसके लिए जो विद्या हमारे यहाँ प्राचीन काल से चली आ रही है, उसी को कहते हैं, योग। पहले तो सुना-सुनाया हुआ ज्ञान हुआ। दुनिया में किस तरह से रहो ? दुनिया के भोगों में भी रहो, लेकिन निर्लिप्त रहो। इसके लिए विद्या है, योग। पहले तो सुना-सुनाया हुआ ज्ञान हुआ।

ऐसा कौन होगा जो अपने पिता को कह दे कि इस समय सिक्खों में सबसे बड़ा रत्न आप ही हैं, आप अपना शीश दान दे दें। यह बात ग्यारह वर्ष की उम्र में गुरु गोविन्द सिंह ने अपने पिता से कही थी। उनके पिता नानक-पंथ के नौवें गुरु तेग बहादुर सिंह ने कहा–"बेटा ! तुम ठीक कहते हो।" उन्होंने क्या किया ? अपना सिर दे दिया, सार नहीं दिया। यदि कोई

सिक्ख हैं, तो समझ लें। उस समय के शासन में जो करालता थी, उसका ठीक-ठीक जबाव देने वाले गुरु गोविन्द सिंह थे। वे ऐसे थे कि उनके पुत्रगण यानी दो पुत्र लड़ाई में काम आ गये अपने को भस्म करके। और गुरु गोविन्द सिंह कहते थे "शावास बेटा ! शावास !" इतना बड़ा हृदय किसका है ? इनकी बहादुरी के अन्दर दया की रश्मियों को मैं बहुत जानता हूँ, कहने का सार यह हुआ कि गुरुगोविन्द सिंह ने अपने पिता का सिर कटवा दिया और पिता ने कटवाना मान लिया।

उनके दोनों पुत्र अग्नि के समान बहुत-से दुष्टों को नष्ट करते हुए काम आये। दो पुत्रों के कट जाने पर गुरुगोविन्द सिंह कहते थे "खूब है, खूब है, धन्य है।" पूर्वकाल में महावीर अर्जुन थे। वे अपने बेटे के मरने पर रोते थे। वे द्वापर में थे। ये कलियुग में हुए। इतने बहादुर कि बेटे की लड़ाई में मृत्यु होने पर भी कहते थे–"तू धन्य है, तू धन्य है !"

एक बार युद्ध हो रहा था दुष्टों के साथ। गुरु गोविन्द सिंह भी घोड़े पर सवार होकर हाथ में तलवार लिए युद्ध करते थे। एक सिक्ख से कह दिया, "जो गिर जाये उसको पानी पिला देना।" दोनों ओर के लोग युद्धमें गिरते थे। दोनों को ये पानी पिलाते थे। जो लड़ने योग्य होते थे, वे लड़ने लगते थे। जो दुष्ट-दुश्मन पानी पीकर ताजा हो जाता था, वह फिर लड़ने लगता था। किसी ने कहा–"ऐसा तू क्यों करता है ? दुश्मन को पानी क्यों पिलाता है ?" उसने कहा–"तुम युद्ध करो। मैं पानी पिलाता हूँ" गुरु गोविन्द सिंह जी से यह बात कही गई। उन्होंने उस सिक्ख से पूछा–"क्या तू दुश्मन को भी पानी पिलाता है ?" उस सिक्ख ने कहा–"जब वह गिर गया तो वह न दोस्त रहा, न दुश्मन।" गुरु गोविन्द सिंह ने उसकी पीठ ठोंक दी और कहा–"वाह भाई ! ठीक करता है, तू यही कर।"

❁ संसार में फँसा रहकर, उसमें डूबा रहकर कभी भी शान्ति और सन्तुष्टि नहीं आयेगी। स्वार्थ के साथ परमार्थ मिलकर रहे, तो इन्द्रिय-सुख में संलग्नता अधिक नहीं रहेगी, हल्की रहेगी। आत्म-संलग्नता बढ़ेगी। इससे अपने का प्रत्यक्ष-ज्ञान होगा। केवल शरीर का ज्ञान नहीं, निजत्व–आत्मस्वरूप में संलग्नता आवेगी। उसमें संलग्नता आने पर ऐहिक-सुख–सांसारिक-विषयों की आसक्ति घट जायेगी। इसलिए कि आत्म-संलग्नता का सुख विषय-सुख

से अधिक है। विषय-सुख कम होते-होते वह ऐसा संसार में और शरीर में रहेगा, जैसे शरीर-संसार में वह है ही नहीं। और तभी मनुष्य-जीवन का फल है। मनुष्य-जीवन का फल यह नहीं कि पशु की तरह रहें।

❀ आत्म-चिन्तन न करे, विषय-भोग में लगा रहे, यह पशु-जीवन है। आत्म-चिन्तन के अन्दर-अन्दर परमात्मा की भक्ति है। जो ईश्वर-भक्ति में आसक्त होता है, वह ईश्वर को पहचानता है। जैसे संसार को पहचानने से संसार में आसक्ति होती है, उसी तरह ईश्वर को पहचानने पर उसमें आसक्ति होती है और परमात्म-सुख को पाता है। वह आत्मरत रहेगा। कर्मफल उसको नहीं लगेगा। यही पूरे मनुष्य का कर्त्तव्य है। हमलोग आत्मरत होकर आत्मचिन्तन करके परमात्मा की प्राप्ति करें और उसके सुख को भोगे, यह मनुष्य-शरीर का क़ाम है। यदि भोगमय-जीवन है, तो पशु-जीवन के समान ही है। आत्मचिन्तन या आत्मरत दो शब्द हैं; लेकिन बात एक ही है।

❀ भजन में उसी का मन लगता है, जिसको संसार में आसक्ति नहीं है वा कम है। संसार की आसक्ति को कम करें, तो जो सुख होता है उसका भी वर्णन नहीं कर सकता, फिर पारलौकिक सुख के लिए क्या कहना ! वह तो मन-वाणी से अगम है, लेकिन है।

❀ **"सहजो जग में यों रहो, ज्यों जिभ्या मुख माहिं।**
घीउ घना भोजन करै, तौ भी चिकनी नाहिं।।"

—सहजो बाई

अनासक्त होकर संसार में रहो। आसक्त होकर रहोगे तो आप ही दुःख पाओगे।

❀ घर बढ़िया-बढ़िया हो, उसमें आपने आराम किया हो, तो उस सोने के महल में भी कोई नहीं रखता, जब इस शरीर से प्राण निकल जाता है। गुरुनानकदेव जी ने कहा है—

"एक घड़ी कोऊ नहिं राखत, घर तें देत निकार।"

इसमें आसक्त होने से ठीक नहीं। कोई भी संसार में सदा नहीं रह सकता। संत चरणदास जी की शिष्या सहजोबाई ने बड़ा अच्छा कहा है—

"चलना है रहना नहीं, चलना विश्वाबीस।
सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुधावै शीश।।"

कोई कितनाहू प्यारा हो, सबको छोड़कर जाना होगा। इसलिए संसार में खीरा बनकर रहो। खीरा ऊपर से एक और भीतर से फटा हुआ होता है। इस तरह संसार में रहने से कल्याण होगा। न तो बाल-बच्चों को छोड़ो, न इनमें फँसो। फँसाव को छोड़कर अपने अन्दर साधन-भजन करो।

❁ **"रहै आजाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या।"**

दुनिया से यारी मत करो तो क्या बैर करो ? नहीं, आसक्ति छोड़कर रहो, अपनी सच्ची कमाई करो और अपना जीवन-यापन करो।

"कबीर चाले हाट को, कहे न कोइ पतियाय।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय।।"

यह कथा प्रसिद्ध है। कबीर साहब इतने संतुष्ट थे। वे थोड़े में गुजर करनेवाले थे और आध्यात्मिकता के शिखर पर चढ़े हुए थे। यह संस्कार, यह संस्कृति अपने देश की है। वे आजाद क्यों थे। इसलिए कि सांसारिक पदार्थों की आसक्ति उन्हें नहीं थी। ऐसा नहीं कि घर में खर्च-वर्च नहीं देते चलाते थे या कि घर से अलग रहते थे।

❁ आजादी—स्वतंत्रता तभी पूरी होती है जब विषय-भोगों से हृदय को छुड़ाकर रखा जाता है। विषय-भोगों में आसक्त रहने से हानि ही होती है। आप सांसारिक कामों को भी करें किन्तु अनासक्त होकर, तो यही हमारे यहाँ की सांस्कृतिक शिक्षा है।

❁ जिसको ज्ञान रहता है, वह सुख के दिन में बिनसेगा नहीं और दु:ख के दिन में बिलखेगा नहीं। क्षत्रपति शिवाजी के समय में एक संत थे समर्थ रामदास जी और दूसरे थे तुकाराम जी। समर्थ रामदास जी लड़कपन में बहुत दौड़ने और फाँदने वाले थे। लोग इनको हनुमान जी का अवतार कहने लगे थे। इनके वैराग्य को देखकर इनके परिवार वालों ने इनकी शादी की बात की। इन्होंने शादी करने से इन्कार कर दिया। इनकी माता जी बोली-मंडप पर जाने के पहले तुम विवाह से इन्कार नहीं कर सकते। समर्थ रामदास जी अपनी माता जी के बड़े भक्त थे। इन्होंने कहा—"माता जी ! ऐसा ही होगा।" विवाह की सारी तैयारियाँ हो गयीं। माताजी की बात

मानकर ये मंडप पर गये और वहाँ से भाग गये, तो भाग ही गये। जो लोग ईश्वर-पक्ष के होते हैं, उनका हृदय बहुत उत्तम होता है। उनके हृदय में विचित्र संतोष होता है। उससे उन्हें तृप्ति बनी रहती है। वे जानते हैं कि सम्पत्ति-विपत्ति ऐसे ही आती-जाती रहती है।

श्री मद्भगवद्गीता

योगस्थ : कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

हे धनञ्जय ! आसक्ति छोड़कर और कर्म की सिद्वि हो या असिद्धि दोनों को समान ही मानकर, 'योगस्थ' होकर के कर्म कर । (कर्म के सिद्ध होने या निष्फल होने में रहनेवाली) समता की (मनो-) वृत्ति को ही (कर्म-) योग कहते हैं ।



चतुर व्यक्ति



संत कबीर साहब

कबीर चाले हाट को कहे ना कोई पतियाय।
पाँच टके का दोपटा सात टके को जाय।।

श्री सद्‌गुरवे नमः



ब्रह्मचर्य-व्रत और इससे लाभ

तप असल में ब्रह्मचर्य-पालन को कहते हैं। जो अच्छी तरह ब्रह्मचर्य-पालन करे तो वह अच्छा तपी है। शरीर को तपावे और ब्रह्मचर्य का ध्यान नहीं रखे, तो वह उत्तम तप नहीं है।

ब्रह्मचर्य का पालन करो। जवानी में ऐसी कमाई कर लो कि बुढ़ापे में उसकी चिन्ता न रहे। जब जवानी का बल चला जाता है तब भजन करने में मन नहीं लगता। बुढापे में भजन नहीं कर सकते। जवानी में अगर परमात्मा की ओर अपने को लगाया जाये तो उसी आदत से वह गुजरता रहेगा। इसलिए जवानी में अच्छी तरह भजन करो तो बुढ़ापे के जीवन में भी अच्छी तरह करते रहोगे।

आर्य-संस्कार में तो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। आचार्य, गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचय-व्रत का पालन करते थे। यहाँ ब्रह्मचर्य-व्रत पर बहुत ख्याल रखना चाहिये। जहाँ ब्रह्मचर्य पर ख्याल नहीं है, वहाँ ओजपूर्ण तेज नहीं हो सकता, विद्या-ग्रहण की शक्ति पूर्णतया विकसित नहीं हो सकती।

वीर्यवान् को भजन करने में बल मिलता है। व्यायाम से शरीर का बल, विद्या से मस्तिष्क का बल बढ़ता है। अगर शरीर कमजोर हो, तो कहाँ तक व्यायाम करेगा! उसी तरह जिसका मस्तिष्क कमजोर है, पौष्टिक तत्त्व शरीर से निकल गया है, वह न तो भजन कर सकता है और न विद्याध्ययन ही। वेदों से ही वीर्यवान् बनने का यह ज्ञान आया है और अभ्यासी ने अभ्यास द्वारा इसको आजमाकर देखा है।

शरीर और मस्तिष्क को बलवान रखने के लिए भोजन और व्यायाम है। भोजन से रक्त, रक्त से वीर्य और वीर्य से ओज बनता है। जिसका वीर्य पतला होता है, उसका ओज ठीक नहीं बन सकता। ओज ठीक नहीं बनने से वह पाठ को ठीक धारण नहीं कर सकता; उसकी स्मरण-शक्ति क्षीण हो जाती है, वह विशेष विद्वान् नहीं हो सकता। इसीलिए वीर्य-रक्षा, नित्य पाठ-अध्ययन और अपनी तन्दुरुस्ती इन तीनों बातों पर ध्यान दो।

जीवन में जवानी आती है। जवानी बहुत मुश्किल का–कठिन समय का है। उस कठिन समय को जो पार करता है, वही जाानता है। चाहे कोई बड़े महात्मा हों, चाहे कोई नहीं महात्मा हों। लेकिन जवानी को सब जानते हैं, लड़कपन को सब जानते हैं। जवानी, जो सब जानते हैं, यह बहुत मुश्किल का समय है। इस बहुत मुश्किल के समय को बहुत हिफाजत से रखो। यह रखना होगा–अपनी इन्द्रियों की धारों को वहाँ एकत्र करो, जहाँ तुमहो। असल में तुम्हारा रहना, सब का रहना दोनों आँखों के बीच–मध्य में है। यहीं एकत्र करो। लेकिन इसका संकेत गुरु से जानो।

ऋग्वेद–संहिता

''आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त
आदित्पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात्।
आदित्सोमो वि पपृचया–
दसुष्वीनादिग्जुजोष वृषभं अजध्यै।।5।।''

भा0–अनन्तर कुछ जन निश्चय से इन्द्र, आत्मा के ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं और अनन्तर परिपाक जिस प्रकार उत्तम अन्न को अधिक गुण सम्पन्न कर देता है, उसी प्रकार ज्ञान और तप की परिपक्वता प्रस्तुत किये आत्मा को अधिक शक्तिशाली बना देता है। और अनन्तर शरीर के ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला वीर्य या वीर्यवान् पुरुष प्राणों द्वारा चलने वाले इन्द्रियगण को विषय सम्पर्क से शिथिल करने में समर्थ होता है। उसके अनन्तर वह अन्तःकरण सुखों की वर्षा करनेवाले धर्ममेघ रुप को उपासना करने और प्राप्त करने के लिए प्रेमपूर्वक चाहने लगता है। राष्ट्रपक्ष में–नियन्ता लोग इन्द्र, राजा के राष्ट्र को सुसंगत सुव्यवस्थित करें। परिपाक उत्तम अन्न को और गुण्कारी करें, खेती पके पर काटी जाये। प्राणी जनों को अन्न औषधि रस विशेष रूप से पुष्ट करें और लोग बलवान् ऐश्वर्य दाता, प्रबन्धक को प्राप्त करने में प्रेम-भाव दर्शावें।


नैष्ठिक ब्रह्मचारी

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।
क्या बिना तप के तेज बढ़ता है।
– गो0 तुलसी दास


नैष्ठिक ब्रह्मचारी

श्री सद्गुरवे नमः

संतोष और इससे संतुष्टि की प्राप्ति

संसार में बड़े-बड़े धनी हो गये हैं। लेकिन अतृप्त ही वे खत्म हो गये। आज भी जहाँ-जहाँ जिनको धन है, वे तृप्त हैं कहा नहीं जा सकता। जितना धन होता है, और भी धन हो और भी धन हो, इसकी इच्छा बनी ही रहती है। धन के लालच पर एक कथा है, उसे सुनिये।

एक राजा था। उनको धन का बहुत लालच था। उसको जब यह मालूम हुआ कि समुद्र में बहुत धन है, इसीलिए वह रत्नाकर कहलाता है । तो उसने समुद्र पर चढ़ाई कर दी। बहुत-से बमगोले बरसाये। समुद्र के अन्दर रहने वाले जीव व्याकुल हो गये। अन्त में समुद्र राजा के सामने मनुष्य-रुप में उपस्थित हुआ। समुद्र ने राजा से पूछा–"तुम क्यों तोप-गोले बरसाकर मेरे अन्दर रहने वाले जीवों को कष्ट दे रहे हो?" राजा ने कहा– "तुम मेरे राज्य में हो, तुमने कभी भी मुझे कर नही दिया है।" समुद्र ने राजा को धन का एक खजाना बता दिया और कहा–"इस खजाना से जितना धन लेना है, ले लो।" राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने धन ढुलवाना शुरू किया। धन ढोते-ढोते कितने बैल मर गये, कितने नौकर बीमार हो गये, कितनी गाड़ियाँ टूट गईं, ठिकाना नहीं, लेकिन खजाना धन से खाली हुआ नहीं। राजा ने पुनः समुद्र पर चढ़ाई की। समुद्र फिर प्रकट् हुए। समुद्र ने राजा से पूछा–"अब क्यों आक्रमण करते हो ?" राजा ने कहा– "धन ढोते-ढोते मेरा खजाना भर गया, अब मुझे धन रखने की जगह नहीं है, कोई ऐसा बर्तन दो जिसमें मैं अपना धन रख सकूँ।" समुद्र ने राजा को मनुष्य की एक खोपड़ी देते हुए कहा–"लो, इसमें धन को रखो।" यह कहकर समुद्र अन्तर्धान हो गया। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस खोपड़ी में कितना धन अँटेगा। लेकिन समुद्र की बात मानकर खोपड़ी में धन भरने लगा। अब न तो खोपड़ी भरती और न खजाना ही खाली होता। राजा खोपड़ी को धन से भरते-भरते परेशान हो गया। राजा ने पुनः समुद्र पर गोले बरसाना शुरु किया। समुद्र फिर प्रकट् हुआ और बोला–"तुम क्यों मेरे ऊपर बारम्बार

गोले बरसा रहे हो ?" राजा ने कहा—"तुमने ऐसी खोपड़ी दी है, वह धन से भरती ही नहीं है और न तुम्हारा बताया खजाना ही खाली होता है।" समुद्र ने कहा—"अरे ! मनुष्य की खोपड़ी कभी भरती है ? तू इसपर राख डाल।" राजा ने थोड़ी-सी मिट्टी उस खोपड़ी पर डाल दी, खोपड़ी भर गयी। यह कहानी कहने का मतलब है कि मनुष्य की खोपड़ी कभी भरती ही नहीं। इसलिए अपनी इच्छा पर मिट्टी डाल यानी सन्तोष कर ले, तभी यह खोपड़ी भर सकती है। मनुष्य को धन कितना हो, इसका ठिकाना नहीं। गो० तुलसीदास जी ने कहा है—

"द्रव्यहीन दुःख लहहिं दुसह अति,
सुख सपनेहुँ नहिं पाये।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों,
धन दुख प्रद स्रुति गाये।।"

धन नहीं रहने पर जलते रहो और धन हो तो भूत की तरह नाचते रहो। तृप्ति आती नहीं, धन से। समझ लेने पर भी आदमी तृप्त नहीं होता—सन्तुष्ट नहीं होता। सन्तुष्ट कैसे हो ? गो० तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है—

"बिनु सन्तोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।
थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा।।"

संतोष के बिना इच्छा की निवृत्ति नहीं होती और सन्तुष्टि ईश्वर की भक्ति से होती है। जैसे बिना धरती के कोई वृक्ष जम नही सकता, उसी तरह परमात्मा के भजन के बिना इच्छा की निवृत्ति नहीं हो सकती। इसीलिए राम-भजन की बड़ी आवश्यकता है—अपने को तृप्त करने के लिए।

❀ संसार में यह चाहिये और वह चाहिये, यह इच्छा बनी रहती है। रावण को सोनाचाँदी सभी थे, खाई के बदले चारों ओर समुद्र था। वह स्वयं पण्डित था, लेकिन उसको संतोष नहीं था। उसकी गिनती श्रेष्ठजनों में नहीं, दुष्टजनों में होती है। इसीलिए कहा है—

"कोई करै महल कोई करै टाटी।
उड़ जाय हंसा पड़ी रहे माटी।।"

अपने रहते हुए भी सम्पत्ति चली जाती है। अपने देश में ही क्या-क्या परिवर्त्तन हुए, लोगों को विदित है। संसार में रहो और संसार के पदार्थों को औषधि के रूप में लो। संसार से छूटने का यत्न करो, आसक्ति छोड़ो।

❀ यह जीव ईश्वर का अंश है। यह माया में फँस गया है, तब यह कभी सुख, कभी दुःख भोगता रहता है। तृप्त कभी नहीं होता है। यदि किसी को कहीं का राजा बना दिया जाये तो उसके अतिरिक्त और चाहेगा, तृप्त नहीं होगा। अपनी आपा को पहचाना जाये, तो आपका यह भाव कि सांसारिक पदार्थ में तृप्त हो जायें, नहीं हो। इसी की पहचान करा देने के लिए विन्दु-

ध्यान और नाद-ध्यान है।

सन्त कबीर साहब ने कहा है–

"कामी तो बहुतै तरै, क्रोधी तरै अनन्त।
लोभी जियरा ना तरै, कहै कबीर बिरतन्त।।"

अपनी पवित्र कमाई से जो मिल जाये, उसमें संतुष्ट रहो।

❀ सन्तगण साधारण सुख-विषय-भोगजनित सुख पहुँचाते हैं, सो नहीं, ये तो अपने ही आते हैं। इस सुख को बिल्कुल त्यागने को भी नही कहते हैं। संसार में रहकर जितना सुख लेना चाहिये, जिसके बिना नहीं बने, उतना लेने को कहा। विशेष लेने से तुम संसार में बाँधे जाओगे, क्योंकि विषय भोग रहता नहीं है और न इससे संतुष्टि होती है। जीव के बहुत जन्म हुए हैं। सब जन्मों को भोगा है। इसमें तृष्णा की वृद्धि होती है, संतुष्टि नहीं। इसलिए संतों ने कहा कि जितना विषय लेना अनिवार्य है, जिसके बिना बने नहीं, उतना विषय लो। विशेष मत लो, उसमें धोखा है।

"अनविचार रमणीय महा संसार भयंकर भारी।"

संसार में बिना विचारे सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं को लो और बिना तृप्ति के संसार से चले जाओ।

एक आदमी को धन का बहुत लालच था। उसको मालूम हुआ कि तुम्हारे पास जितनी जमीन है, उसको बेच लो तो उतने ही रुपये से दूसरी जगह बहुत जमीन मिलेगी। यह जानकर वह अपनी जमीन बेचकर वहाँ

गया। वहाँ के जमीन वाले ने रुपये लेकर उससे कहा—"तुम दिनभर में जितनी जमीन में घूमकर सायंकाल मेरे पास आ सको, उतनी जमीन तुम्हारी हो जायेगी। वह लालच के मारे जमीन की ओर बढ़ा। जैसे-जैसे वह आगे जाता, वैसे-वैसे उसको अच्छी जमीन मालूम पड़ती। वह आगे बढ़ता गया। जब सूर्यास्त होने के लिए थोड़ा समय बचा, तो उसको याद आया कि शाम तक लौटकर जमीन वाले के घरपर पहुँचना है और दिन थोड़ा है। यह सोचकर उधर से लौट पड़ा। धीरे-धीरे चलने से शाम तक पहुँच नहीं सकता। इसलिए उसने दौड़ लगाना शुरु किया। दौड़ते-दौड़ते संध्या होते-होते जमीनवाले के घर पर तो पहुँचा, किन्तु तुरत बेहोश होकर वह गिर पड़ा और मर गया।

यही हालत सब लोगों की है। संसार की वस्तुओं को देखकर बड़ा लालच होता है। लेते-लेते लेने के अंत का ठिकाना नहीं। और लेने की हवस में मर जाना, ऐसा करने में शान्ति नहीं आयेगी। अपने को थोड़े में संतुष्ट करो। **He who grips much holds little.** (ही हू ग्रिप्स मच होल्ड्स लिटिल) बहुत की आकांक्षा में थोड़ा भी नहीं प्राप्त होता।

❀ **"नहिं, दरिद्र सम दुख जग माहीं।"** लोग अर्थ के लालच के कारण ही चोरी, डकैती, वटमारी, बेईमानी, लूट आदि किया करते हैं।

ज्ञान सरोवर में लिखा है कि महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मणों को नित्य सोने की थाली में भोजन कराते थे। एक दिन एक ब्राह्मण एक थाली चुरा ले गये। खोज करने पर पता चला कि अमुक ब्राह्मण ने थाली चुराई है। चोर को दण्ड मिलना चाहिये। किन्तु ब्राह्मणों के अदण्डनीय होने के कारण उन्हें दण्ड दिया जाये तो कैसे ? युधिष्ठिर इस असमंजस में पड़े थे। इस न्याय के लिए भगवान् श्री कृष्ण ने उन्हें राजा बलि के पास जाने की अनुमति दी। भगवान् को साथ लेकर महाराज युधिष्ठिर राजा बलि के पास गये और उस ब्राह्मण के सोने की थाली चुराने की बात कही। राजा बलि बोले कि तुम्हारी प्रजा धन-हीन है इसलिए चोरी करती है, यह तुम्हारा दोष है। तुम अपनी प्रजा को पूरा धन नहीं दे सकते। तुम अपनी प्रजा को पूरा धन दो तो फिर कोई प्रजा चोरी क्यों करेगी ? इस प्रकार आप धन देकर प्रजा को सुखी कर

सकते हैं। राजालोग ऐसा ही करते थे कि उनको पूरा धन देते थे, जिससे वह चोरी, डकैती आदि नहीं करती थी। लोग झूठ बोलकर, धोखा देकर, ठगकर, किसी-न-किसी तरह पैसा खींच लेते हैं। यह सब तो आप लोग जानते ही हैं। मगर गैरवाजिब नहीं लेना चाहिये। यदि कबीर साहब के समान खरा निर्लोभी हो तो ठीक है। उनका एक दोहा सुनिये–

"कबीर चाले हाट को, कहे न कोई पतियाय।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय।।"

कबीर साहब कपड़े बिन-बिनकर बेचा करते थे। एक दिन वे एक चादर लेकर बाजार में बेचने गये और उस चादर का मूल्य उन्होंने पाँच रुपये बतलाये। ग्राहक उनसे तीन-चार रुपये कहते थे। अन्त में वे चादर लिये हुए घर लौट रहे थे। रास्ते में एक चतुर व्यक्ति से भेंट हो गयी। उसने कबीर साहब से पूछा क्यों, चादर वापस ले जा रहे हैं ? "कबीर साहब ने कहा– हाँ यह चादर पाँच रुपये की है किन्तु कोई पाँच रुपये देना नहीं चाहते" चतुरजन ने कहा–"मुझे यह चादर दीजिये। मैं इसे बेचकर पाँच रुपये आप को दे दूँगा और इससे विशेष जो होगा, उसे ले लूँगा।" कबीर साहब ने कहा– "भाई मुझे तो पाँच रुपये ही चाहिये।" उस चादर को लेकर वह चतुर व्यक्ति बाजार गया और उसका मूल्य आठ रुपये सुनाने लगा। किसी ने सात रुपये में उस चादर को खरीद लिया। इस चतुरजन ने पाँच रुपये तो कबीर साहब को दिये और दो रुपये खुद रख लिये। इस तरह यदि कोई कबीर साहब के समान सब्रदार और सन्तोषी है तो उसका भी गुजरबसर हो जाता है और जनता की निगाह में वह प्रतिष्ठा का पात्र भी समझा जाता है। किन्तु ऐसे आदमी कम होते हैं।

लालची की आँख संसार भर की दौलत से उसी तरह नहीं भरती, जिस तरह ओस से कुआँ नहीं भरता। अनैतिकता से धन कमाना ठीक नहीं है। चोर-डकैत तो पहले यहीं पर पीटे जाते हैं और कचहरी में सजा पाते हैं। यहाँ सांसारिक सुखों में ऐसी ही बात होती है। धन-अर्जन, सांसारिक प्रबन्ध और राजनीति के साथ आध्यात्मिकता और आध्यात्मिक ज्ञान वा रूहानियत (चैतन्यता) वा इल्मे रूहानी कर दो।

गौतम-संहिता

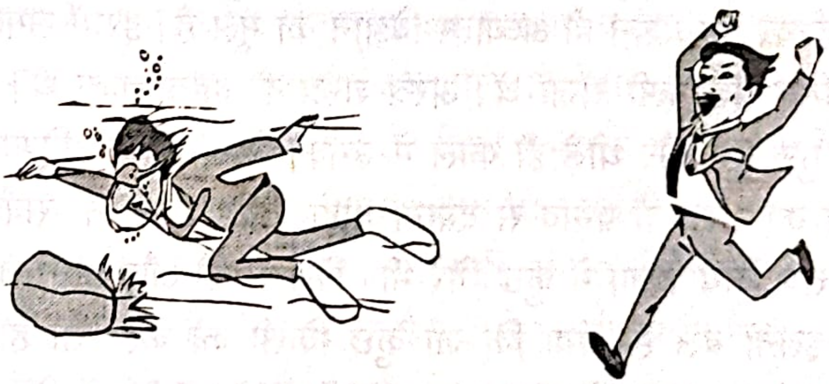
सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्त चेतसाम्।
कुतस्तद्धन लुब्धाना मितश्चेतश्च धावताम्।।
असन्तोषः परं दुःखं सन्तोषः परमं सुखम्।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् सन्तुष्टःसततं भवेत्।।

संतोष-रूपी अमृत के पान से तृप्त, शान्तचित्त पुरुषों को जो सुख है, धन के लोभ से इधर-उधर दौड़ने वालों के नसीब में वह सुख कहाँ है? असन्तोष ही परम-दुःख है और सन्तोष ही परम-सुख है। इसलिए सुख चाहने वाले पुरुष को सदा संतुष्ट रहना चाहिये।

विश्वामित्र-संहिता

चतुः सागर पर्यन्तां यो भुङ्क्ते पृथिवी मिमाम्।
तुल्याश्य कांचनो यश्च सकृतार्थो न पार्थिवः।।

एक मनुष्य जो चारो समुद्रों तक की पृथ्वी के राज्य का उपभोग करता है तथा दूसरा जो सुवर्ण और पत्थर को समान-दृष्टि से देखता है, इन दोनों में दूसरा ही कृतार्थ है, विशाल-भूमण्डल का स्वामी नहीं।



लालची

He who grips much holds little. (ही हू ग्रिप्स मच होल्ड्स लिटिल)

बहुत की आकांक्षा में थोड़ा भी नहीं प्राप्त होता।

श्री सद्‌गुरवे नमः

समत्व की प्राप्ति और उसका साधन

ॐ आज लोग भौतिक विज्ञान की ओर बहुत झुके हैं। इसमें बड़ी इज्जत होती है; बहुत पैसे भी मिलते हैं। अभी सुना कि **'बिनु विज्ञान कि समता आवै।'** समता =एकीभाव। आज जो भौतिक विज्ञान बढ़ा है, उसने क्या किया है? एक भाव को मिलाया नहीं, टुकड़ा किया है। जितना भौतिक विज्ञान बढ़ा है, उतना ही वह नाशकारी बना है। यह है भौतिक विज्ञान, एक क्षण में क्या-से-क्या नाश कर दे। संसार के पदार्थों को विशेष रूप से जानना भौतिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान में समता नहीं आई है और न आ सकती है। भौतिक विज्ञान की बढ़ती हुई है; लेकिन अन्त नहीं हुआ है। सब-के-सब जिस मूल पदार्थ पर अवलम्बित हैं; वे राम हैं, परमात्मा हैं, वे अध्यात्म-विज्ञान हैं। इसके लिए स्कूल, कॉलेज जाने की जरूरत नहीं है। अपने अन्दर अभ्यास करने की जरूरत है। भौतिक विज्ञान में समता आयेगी, इसका विश्वास नहीं किया जा सकता है। आज तक कितनी कोशिश हुई है, इसमें थोड़ी-थोड़ी सफलता मिलती जाती है। भौतिक विज्ञान में मारने और नाश करने की बात तो बहुत आयी है, लेकिन बचाने की नहीं।

ॐ ईश्वर का दर्शन ही अध्यात्म-विज्ञान का मूल है। इसमें समता होती है। विश्वामित्र बड़े बली राजा थे। अस्त्र-शस्त्र के बहुत ज्ञाता थे। पीछे वे श्रीराम के गुरु हुए और थोड़े ही काल में उनको सिखा दिया। विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी को अस्त्र के प्रभाव से दबाना चाहा; लेकिन दबा न सके। अन्त में उन्होंने तप किया। तप में कुछ गिरे भी। फिर संभले और इतने तप किये कि उनमें इतना बल हो गया कि जो कुछ किसी को कहे, सो हो जाये। उनके शाप के डर से सभी लोग थर-थर काँपते थे। वे लोगों से कहते थे कि लोग मुझे ब्राह्मण कहें। लोग कहते थे कि वशिष्ठ जी आपको ब्राह्मण कह दें, तो हमलोग भी कहेंगे। लेकिन वशिष्ठ जी उनको ब्राह्मण नहीं कहते थे। विश्वामित्र जी ने वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों को मरवा दिया; फिर भी वशिष्ठ जी के हृदय में रंच-मात्र भी क्लेश नहीं हुआ। एक बार जब वशिष्ठ

जी भोजन करने लगे, तो साग में नमक नहीं था। उन्होंने अपनी पत्नी अरून्धती से पूछा कि साग में नमक नहीं है, क्यों? अरून्धती ने कहा कि, नमक समाप्त हो चुका है, इसीलिए साग में नमक नहीं दिया गया। वशिष्ठ जी ने कहा कि "निकट ही में विश्वामित्र जी का आश्रम है। उनके यहाँ से नमक क्यों नहीं ले आयी ?" अरुंधती जी ने कहा कि जो मेरे सौ पुत्रों को मार चुके हैं, उनसे मैं नमक मांगती ? वशिष्ठ जी ने कहा–"अरी! उनकी आत्मा और मेरी आत्मा एक है।"

विश्वामित्र ने बहुत द्वेष किया; लेकिन वशिष्ठ जी ने कुछ नहीं किया। यह अध्यात्म की समता है। यह आन्तरिक समता है। वैसे ज्ञान कहने वाले बहुत हैं। अध्यात्म-ज्ञान जानने के लिए योग-शास्त्र है। उनको सीखने के लिए बाहर में कोई घर नहीं है, अपना शरीर है। इसका यत्न सन्त सद्गुरु बताते हैं। करने वाले समता पाते हैं।

❁ समत्व प्राप्त करता है मन की एकाग्रता से। बिना 'शम' के 'सम' नहीं होता। 'सम' का अर्थ है एक तरह रहना-हानि में, लाभ में, सुख में, दुःख में। यह होता है 'शम' अर्थात् मनोनिग्रह से। शम होता है समाधि-साधन से। साधना करो, कभी-न-कभी परमात्मा की कृपा अवश्य होगी। तब 'सम' का रूप देखोगे।

❁ सुरत-शब्द-योग का अभ्यास करके ध्वन्यात्मक रामनाम में चेतन-वृत्ति को जोड़ना है। सारी सृष्टि में ध्वन्यात्मक रामनाम एकरस व्यापक है। जिसमें जैसा गुण है, उसके संग से संग करनेवाले को वैसा ही गुण प्राप्त होता है। ध्वन्यात्मक रामनाम समता-स्वरूप है। जिस अभ्यासी की चेतनवृत्ति इस नाम तक पहुँचेगी, उसे अवश्य ही समता प्राप्त हो जायेगी।

❁ समाधि-साधन तो लोग करते नहीं, समता कैसे आवे ? पूर्व-संस्कार जिसको है, वे करते हैं। फिर भी जहाँ तक बन सके, ध्यान करो। बनते-बनते बनेगा। पैसा से समत्व खरीदा नहीं जा सकता। बिना भजन अभ्यास किये समत्व नहीं मिलेगा, चाहे कुछ करो। लोग चाहते हैं कि हम विचार से सम हो जायेंगे। लेकिन पिछड़-पिछड़ जाते हैं। यह भी उनको मालूम है कि हम पिछड़ गये। क्यों ? ध्यान-साधन नहीं करते। ध्यान-साधन करो, तब जो निर्णय होगा, वह दृढ़ होगा।

इस संसार में आने के लिए दो घनघोर फाटक हैं। एक स्त्री-शरीर, दूसरा पुरुष-शरीर। अण्डज, पिण्डज, ऊष्मज, कुछ होओ; स्त्री या पुरुष रूप में आना होगा। किसी रूप में आओ स्थिर-बुद्धि नहीं—शान्ति नहीं। मनुष्य-शरीर में भी स्त्री-पुरुष का शरीर है। इसको उपदेश है समत्व प्राप्त करने के लिए। समत्व प्राप्त करने के लिए पहले सुनो, फिर मनन करो, फिर समाधि-साधन का अभ्यास करो। विचार से भी मन को रोको और फिर ध्यान के द्वारा भी।

मनोनिरोध करने में पहले संकल्प-विकल्प छूटेगा, ध्यान लगेगा, समाधि होगी, तब स्थिर-बुद्धि होगी—डाँवाडोल नहीं होगा। जितने काम-क्रोधादिक विकार पुरुष को होते हैं, उतने ही स्त्रियों को भी। शान्ति प्राप्त करने का ख्याल दोनों के मन में उठता है। जागतिक-सम्हाल का ख्याल भी दोनों को है। समत्व-साधन केवल विचार से नहीं होगा। साधन बढ़ते-बढ़ते वहाँ तक बढ़ता है, जहाँ जाकर समत्व का ज्ञान हो जाता है, वह है परमात्म-स्वरूप।

श्रीमद्भगवद्गीता

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः।।2/18।।

(जो) शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में सम है।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।12/19।।

निन्दा स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है, वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

श्री सद्गुरवे नमः

यथार्थ ज्ञान-प्राप्ति की विधि और उसका प्रकार

❀ ईश्वर सम्बन्धी बातों को जानना, सत्य-असत्य का निर्णय होना, आत्म-अनात्म का विचार होना जिस ज्ञान में होता है, वह है ज्ञान। मात्र व्यवहारिक ज्ञान सत्य-असत्य ज्ञान के समक्ष अज्ञान में दाखिल है। श्रीमद्भगवद्गीता में एक अध्याय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ वाला ज्ञानयोग है। इसमें है कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं और सबको अज्ञान कहते हैं।

❀ जब सबलोग निद्दाह नींद में सोये रहते हैं, तो कोई ज्ञान नहीं रहता; कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का कुछ निर्णय नहीं हो सकता; कुछ काम करें, यह भी निर्णय नहीं होता। जगने पर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को जानते हैं और करते हैं। इसलिए पहले ज्ञान चाहिये। यह पहला ज्ञान ऐसा होता है कि उसमें कुछ की प्रत्यक्षता होती है और कुछ की नहीं। इन्द्रियगम्य की प्रत्यक्षता होती है, इन्द्रियगम्य से परे की नहीं। सत्संग के द्वारा ईश्वर का ज्ञान, अपने तई का ज्ञान, अपने सुख का ज्ञान, अपने दुःख का ज्ञान आदि होता है। जितने नाशवन्त पदार्थ हैं, वे ईश्वर नहीं हैं। ईश्वर इन्द्रियातीत है; इन्द्रिय-ज्ञान से परे है। अपना भी ज्ञान ऐसा ही है।

❀ प्रसिद्ध है कि सन्तों का भेद और पण्डितों का वेद। कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे, रामकृष्ण परमहंस भी पढ़े-लिखे नहीं थे। किन्तु इतने बड़े ज्ञानी थे कि नरेन्द्र (विवेकानन्द स्वामी) उनसे सीखते थे। उनसे कोई वेद का और कोई कुरान का अर्थ पूछने जाते थे। वे उनका अर्थ उन्हीं से पूछते थे फिर अपनी बात कहते थे कि इस तरह का अर्थ करने से नहीं होगा। और इन्हीं का अर्थ ठीक होता था।

❀ संसार में हम उनको प्रत्यक्ष जानते हैं, जो हमारा उपकार करते हैं। जैसे हमारी माता, हमारे पिता हमको विद्या देते हैं। विद्या दो तरह की है। सर्वश्रेष्ठ विद्या अध्यात्म-विद्या है। दूसरी लौकिक विद्या है, जो अविद्या भी बन जाती है। स्कूल-कॉलेज की विद्या से बड़े-बड़े काम होते हैं। और इसको हम अविद्या भी बना देते हैं। सुकर्म से और नैतिकता से जबतक विद्या को युक्त

रखते हैं, तबतक तो ठीक है। लेकिन उसी विद्या को कभी हम कुकर्म में लगाकर अविद्या बना देते हैं। अध्यात्म-विद्या नीचे ले जाने के लिए नहीं है। यह सर्वोत्कृष्ट विद्या है। यह विद्या सांसारिक ज्ञान और ब्रह्मज्ञान दोनों को देने वाली है।

❁ पहले सुनकर विद्या आती थी। आजकल पुस्तकों की भी सहायता होती है। जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे लिखें-पढ़ें। किसी भी उमर में थोड़ा या बहुत अवश्य पढ़ें। एक मुनि-बालक थे, जो झट-से बड़े विद्वान् हो गये। उसके नाना, दादा, चाचा आदि उनसे पढ़ने लगे। एक दिन उन्होंने वृद्ध-समूह को 'हे वत्सगण' कह दिया। सब कोई मन-ही-मन अकुलाने लगे कि वह बड़ा घमण्डी हो गया है। लोग ब्रह्मा के पास गये और बोले कि-वह मुनि-बालक घमण्डी हो गया है। सबको पुत्र कहकर सम्बोधित करता है। ब्रह्मा जी ने कहा—उम्र में आप लोग बड़े हैं; लेकिन ज्ञान में वे वृद्ध हैं।

❁ ईश्वर ज्ञान स्वरूप हैं। जो ईश्वर को प्राप्तकर लेते हैं, उनको सब ज्ञान आ जाता है। कबीर साहब ऐसे ही थे। खूब पढ़ते-लिखते रहिये, लेकिन ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा। ईश्वर को भजते रहिये, उसमें सब ज्ञान होगा।

❁ विद्या बहुत पढ़िये और सत्संग नहीं हो तो विद्या अविद्या के रूप में हो जाती है। वह उल्टी बातों को सोचता है और उल्टे कामों में तीव्र गति से चलता है। और इस तरह का काम करता है कि यश नहीं हो। ऐश्वर्य का नाश होता है। शीलता नहीं रहती है। उसके अच्छे-अच्छे गुण चले जाते हैं। सत्संग से युक्त विद्या सुविद्या होकर रहती है।

जहाँ ऐसी विद्या है कि अपना स्वार्थ-साधन करो, दूसरों की हानि करो, यह महापाप होता है। इसलिए सत्संग अवश्य करो।

❁ रूखा ज्ञान—केवल ज्ञान जिसमें भक्ति का रस नहीं है तो, वह सूखा ज्ञान कुशलदायक नहीं होता है।

❁ हमलोग पाठशाला में पढ़ने गये थे। गुरु जी ने कहा—यह 'अ' है। हमलोगों ने पढ़ लिया। वहाँ तर्क-वितर्क कुछ नहीं। जब उम्र बढ़ी तो उक्ति भी हुई। हमलोगों को ज्ञान और उक्ति चाहिये। केवल तर्क से बुद्धि चंचल हो जाती है। ईश्वर है, नहीं है, इसमें मन की चंचलता हो जाती है। ईश्वर ऐसे

हैं, वैसे हैं, कह सकते हैं, तो क्या पहचान कर सकते हैं? भाव यह है कि जैसा हम कहते हैं, यदि वैसा हम बन जाये, तो ठीक-ठीक ज्ञान हो जायेगा। हम श्रद्धाशील बनें। श्रद्धाशील को ज्ञान होता है।

''श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।''

–श्रीमद्‌भगवद्‌गीता

अर्थात् जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है। ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्ति-रूप परम-शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

❀ इन्द्रियों में जो ज्ञान है, वह ज्ञान तुम्हारा ही ज्ञान है। तुम अपने क्या हो इसको नहीं सोच समझ सकते हो। इसी वास्ते अपने को तुम समझते हो कि यदि इन्द्रियाँ न हो तो मैं लूज हूँ–मैं ज्ञान रहित हो जाऊँगा। ऐसा कुछ समझते हो तो यह तुम्हारी बड़ी गलती है। इन्द्रियों का खोल जैसे-जैसे तुम्हारे ऊपर से उतरेगा, वैसे-वैसे तुम्हारा ज्ञान विशेष जगता जायेगा। यदि इन्द्रियों के खोल सारे-के-सारे दूर हो जायें, तो तुम ऐसे हो जाओ कि जैसे वस्त्रहीन शरीर–अर्थात् तुम ऐसे हो जाओ कि तुम शरीर विहीन केवल तुम-ही-तुम अर्थात् केवल आत्मा-ही-आत्मा। अगर ऐसा हो जाओ तो तुम सर्व ज्ञानमय होओ। तुम सर्वज्ञ होओ। तुम से छिपा कुछ नहीं है। बिना यन्त्रों के, बिना इन्द्रियों के सब कुछ तुम जानते हो। तुम्हारा ज्ञान अगम है। अगम तक़ पहुँचा हुआ है। अगम की पहचान करने वाला है। तुम्हारे ज्ञान से बढ़ कर ज्ञान नहीं है। अगर तुम अपना ज्ञान पा जाओ तो फिर तुमको कोई और सिखलाने वाले की जरूरत है–यह नहीं मालूम पड़ेगा। तुमको इसकी आवश्यकता नहीं रहेगी कि तुम किसी के पास जाकर पूछो कि यह बात कैसी है–यह बात कैसे होगी।

❀ यह मत सोचो कि मैं हल चलाने वाला हूँ, उतना ज्ञान कहाँ पाऊँगा। अरे! देखो तो कोई कुछ पैसा माँगता है? और यह ज्ञान तुमको बाँटता है। कोई माँगता है कुछ? बहुत जगह सत्संग होता है। सत्संगों में जाओ। यह ज्ञान पाओगे। नहीं पढ़े-लिखे हो तब भी पाओगे। पढ़े-लिखे होकर के भी जो भूलते हो तो भी पाओगे और अपनी भूल को समझ

जाओगे। जो इस ज्ञान को नहीं पाता है, यदि वह ईश्वर की भक्ति में प्रवृत्त होता है, तो उसका प्रवृत्त होना वैसा ही है जैसा कि कोई मार्ग चलने में प्रवृत्त हो जाये, यात्री बन जाये, चलता जाये लेकिन उसको पता नहीं कहाँ पहुँचना है। कहाँ को जाना है। जब यही नहीं पता कि कहाँ को जाना है तो वह किधर जायेगा, न मालूम भ्रमता-भटकता उसकी क्या गति हो जायेगी। इसीलिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान पहले प्राप्तकर लो, फिर भक्ति-मार्ग में प्रवृत्त हो जाओ। और बेसी बात नहीं, इतनी ही बात समझ लो।

❀ एक विद्या है कि पण्डितों-अध्यापकों के पास मिलती है। दूसरी विद्या होती है, जो साधु-संतों के संग में मिलती है। स्कूल-कॉलेज की विद्या में संसार के प्रबन्ध का ख्याल ज्यादे होता है और साधु-सन्तों के पास में जाने से जो विद्या आती है, उसमें संसार का प्रबन्ध तो रहता ही है, लेकिन यह भी रहता है कि शरीर छोड़ने के बाद तुम्हारी क्या हालत होगी, यह भी सोचो।

❀ जानना दो प्रकार का है–एक है परोक्ष और दूसरा है अपरोक्ष। श्रवण-ज्ञान और मनन-ज्ञान। यह अप्रत्यक्ष-ज्ञान है। इसी को शास्त्रीय-भाषा में परोक्ष-ज्ञान कहते हैं। इससे पहचान तो नहीं होती ; लेकिन निर्णय होता है। प्रत्यक्ष-ज्ञान के लिए क्या करो ? इसी के लिए साधु-सन्त, महात्मा कहते हैं कि भक्ति का अवलम्बन करो। दूसरे कहते हैं कि योग का अवलम्बन करो। जहाँ योग है, वहाँ भक्ति है। जहाँ भक्ति है, वहाँ योग है।

❀ आदमी की शिक्षा श्रद्धा से आरम्भ होती है। और बढ़ते-बढ़ते तर्क भी होता है। यह तो ऐहिक-विद्या के अन्दर की बात है।

पारमार्थिक-विद्या केवल किताबी-विद्या है सो नहीं। गुरु द्वारा विद्या-पाठ का दरवाजा खुलता है, तब विद्यार्थी पढ़ता है। गुरु से संकेत लेता है। बिना गुरु के काम नहीं चलता। चाहे सांसारिक-ज्ञान हो, चाहे पारमार्थिक । गुरु में श्रद्धा होनी चाहिये।

❀ लोगों में यह विश्वास है कि बहुत विद्या पढ़ने से लोग भले बनते हैं। परन्तु बहुत विद्या पढ़ने पर भी उनकी विद्या अविद्या बन जाती है काम-क्रोधादि विकार जबतक उनके मन में है, तबतक विद्या अविद्या बनी रहती है। जिस विद्या से दुर्गुणों से बचा जाये, वही विद्या असली विद्या है

विद्या धर्म की रक्षा के वास्ते है। दुनिया में केवल कमाकर खाने के लिए विद्या नहीं है। अपने देश में साधु-सन्त, महात्मा बहुत हुए हैं। आचरण पवित्र होने के कारण ही वे लोग महान् हुए हैं। पढ़े-लिखे लोग भी अच्छे होते हैं। परन्तु आचरण की पवित्रता केवल विद्या पढ़ने से ही नहीं होती है। इस युग का नमूना किसी से छिपा नहीं है। असली विद्या यह है कि साधु-सन्तों के पास जाकर उनके सत्संग से अध्यात्म-विद्या को ग्रहण करना। अध्यात्म-विद्या में संसार के प्रबन्ध के साथ-साथ ईश्वर-भक्ति की मुख्यता रहती है।

❀ अमीर लोग कहते हैं कि हमको जो धन है, उसी से हम अमीर हैं। लेकिन कितना भी धन हो, और-और कहते ही जाते हैं। और-और कहने में कहाँ चैन मिलेगा! इन बातों में संतुष्टि नहीं है। बाहर संसार इससे हीन है, सन्तुष्टि है सन्तोष में। सन्तोष है ज्ञान में। ज्ञान में भी वह ज्ञान, जिसके बाद और ज्ञान नहीं है, जिसको अनुभव-ज्ञान कहते हैं। अनुभव ज्ञान में ज्ञान का अन्त होता है। फिर कुछ जानने को बाकी नहीं रह जाता है। अनुभव-ज्ञान वह ज्ञान है, जो सबसे विशेष-पदार्थ है, उसका प्रत्यक्ष हो जाना।

❀ **"धर्म तें विरति योग तें ज्ञाना।**
ज्ञान मोक्षप्रद बेद बखाना।।"

—श्री रामचरित मानस

धर्म-कर्म परोपकार में है। तन-मन-धन से परोपकार होता है। इस परोपकार से वैराग्य होता है। वैराग्य में आता है, तब योग होता है, तब ज्ञान पूर्ण होता है। केवल लिखन्त-पढ़न्त ज्ञान में पूर्ण-ज्ञान नहीं होता है। कहो कि ज्ञान रूखा होता है, तो सन्तमत में ज्ञान भी है और भक्ति भी है।

❀ कबीर साहब की निस्बत विद्वान् लोग कहते हैं कि वे बहुश्रुत थे। इससे वे ज्ञान-ध्यान की बहुत बात जानते थे। किन्तु कबीर साहब स्वयं कहते हैं कि–

"मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक।।"

इसमें संशय नहीं कि कबीर साहब बहुश्रुत थे; किन्तु उन्होंने साधन भी किया था और तब वे ज्ञानी हुए थे।

❀ ईश्वर-स्वरूप का निर्णय विशेष पढ़े-लिखे लोग विवेचना-पूर्ण ढंग

से जानते हैं। लोग कहते हैं कि यह बात सबकी समझ में नहीं आयेगी, इसलिए उनको कहने से क्या लाभ ? किन्तु जो नहीं समझेंगे, उनको यदि यह विषय कभी समझाया ही नहीं जाये, तो वे कब समझेंगे ? इसलिए साधु-संतों ने इसको समझा और कहा कि इसको बारम्बार समझाओ।

केवल विद्यालयों में ही जाकर ज्ञान नहीं होता है, सुनकर भी ज्ञान होता है। पहले कोई पुस्तक नहीं थी। संसार में सबसे पुराना-ग्रन्थ लोग वेद को कहते हैं, लेकिन जब वेद ग्रन्थ-रूप में नहीं था, तब उसका ज्ञान ऋषियों के मस्तिष्क में था। जब अक्षर नहीं बना था; उस समय जितनी विद्याएँ थीं, लोगों को सुना-सुनाकर सिखलायी जाती थी। लोगों की स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। लोग सुन-सुनकर समझ लेते थे, सीख लेते थे। ज्ञान और विद्या पहले, पुस्तक पीछे हुई। आज भी जो पुस्तक लिखी जाती है, वह ज्ञान पहले मस्तिष्क में रहता है फिर पुस्तक में लिखते हैं। लोगों की स्मरण-शक्ति जब कम हो गयी, तब लोगों ने उस ज्ञान को रखने के लिए अक्षर बनाया और पुस्तक का रूप दिया। आज भी कितने ज्ञान हैं, जो पुस्तक में नहीं हैं।

❀ राहुल सांकृत्यायन से भेंट हुई मुरादाबाद से आते समय। उन्होंने तालपत्र पर लिखे हुए अक्षर दिखलाये। पहले भोजपत्र पर, ताम्रपत्र पर लिखते थे, फिर कागज बना और उस पर लोग लिखते हैं। पहले मस्तिष्क ही पुस्तक था। वह शक्ति आज भी है। आज भी कुछ स्मरण-शक्ति है। महर्षि दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्द जी जन्मान्ध थे; वे बड़े विद्वान् थे। जिस गुरु के शिष्य स्वामी दयानन्द थे, वे गुरु कैसे थे, सो जानिये। विद्या कैसे आती है इस पर कहा।

❀ ऊँचे विद्यालयों में लड़के पढ़ते हैं, अध्यापक कहते हैं, लड़के सुनते हैं, याद रखते हैं और लिख भी लेते हैं। साधुलोग जो सत्संग करते हैं, इसको याद रखो अथवा लिख लो। यदि लिखना नहीं जानते हो, तो सुनते-सुनते बहुत सीख जाओगे। हमारे चाचा के पिता एक सुग्गा पालते थे। वह सुग्गा सिखाने पर बहुत बातें सीख गया था। संयोग से एक दिन रात में चोर आया। सुग्गा ने हल्ला किया, "बाबा हो चोर।" लोग जग गये, चोर भाग गया। पक्षी को मनुष्य का संग करते-करते ज्ञान हो गया कि चोर आया है। उसको यह बात सिखलायी नहीं गयी थी। पक्षी जब सीख लेता है, तो

मनुष्य बार-बार सुन लेने पर क्यों नहीं सीख लेगा ?

❀ नम्रता से विद्या आती है और विद्या से नम्रता आती है। पहले नम्रता से विद्या सीखते हैं और विद्या सीखकर विशेष नम्र हो जाते हैं। इसलिए कहा गया है कि **'विद्या ददाति विनयम्।'** व्याकरण के एक पंडित आये थे। वे बड़े नम्र थे। इतने नम्र थे कि उससे विशेष नम्र होना असंभव। वे चूड़ा और गुड़ खाते थे। मैंने कहा कि उन्होंने 'विद्या ददाति विनयम्' को पूर्णरूपेण चरितार्थ कर लिया है।

❀ आध्यात्मविद्या के लिए बड़ी उम्र के लोग भी बच्चे रहते हैं। हमारे गुरु महाराज (बाबा देवी साहब) ने बहुत भजन किया था। वे बहुत वृद्ध थे। अन्त समय में उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा कि "मैं अभी सीखता हूँ"। पूरी विद्या केवल पढ़ने व लिखने में नहीं है, तर्क में नहीं है, भजन अभ्यास करने से वह पूरी होती है।

❀ एक तो सांसारिक ज्ञान है। दूसरा ईश्वरीय ज्ञान है। इन दोनों की आवश्यकता है। सांसारिक ज्ञान के बिना संसार में कुशल से रहते बढ़ती नहीं होती; और ईश्वरीय ज्ञान नहीं होने के कारण सांसारिक ज्ञान पवित्र नहीं होता और संसार में ठीक-ठीक प्रतिष्ठा का पात्र नहीं होता। ईश्वरीय ज्ञान का महत्त्व यह भी है कि वह ईश्वर का दर्शन पावे और ईश्वर के दर्शन से मोक्ष-मुक्ति का लाभ करे।

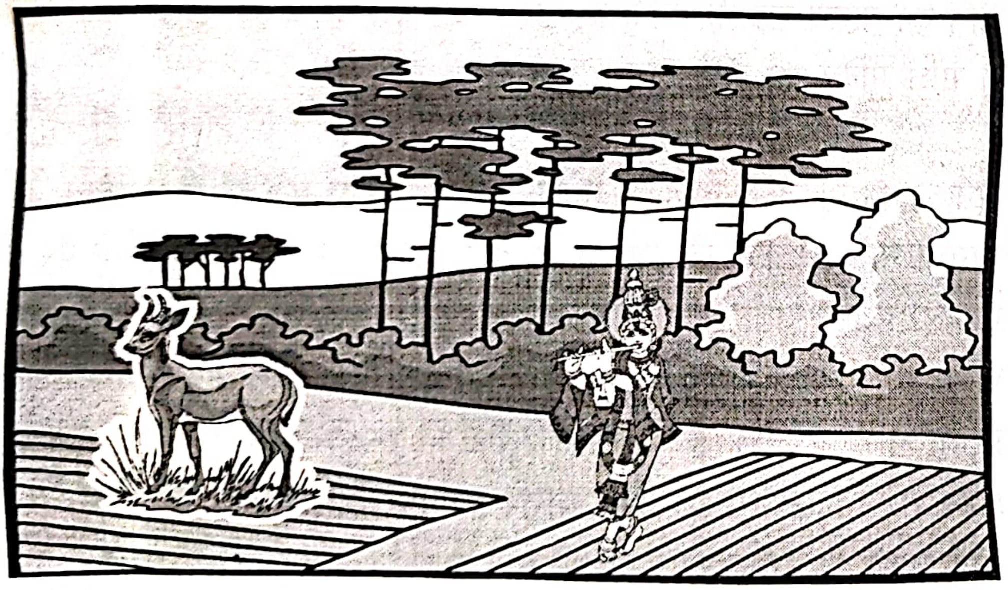
❀ श्रवण-ज्ञान कैसा होना चाहिये ? जैसे मृगा बाँसुरी की ध्वनि सुनकर इतना तल्लीन होता है कि व्याधा उसको पकड़ते हैं, लेकिन वह भागता नहीं है। केले के वृक्षों को काटकर खड़ा कर देते हैं। मृगा के पैर में एक ही हड्डी होती है, वह बैठ नहीं सकता है खड़ा ही रहता है, खड़े-खड़े सोता है। व्याधा बाँसुरी बजाता है। मृगा उस मधुर ध्वनि को सुनकर उसमें इतना लीन हो जाता है कि अपने शरीर की सुरक्षा को भूल करके केले के थम्भ से सटकर उस पर अपने शरीर का सारा बोझ दे देता है। वह थम्भ गिर जाता है; उसके साथ वह भी गिर जाता है, व्याधा उसको पकड़ लेता है। मृगा ही की तरह ज्ञान की बातों को सुनने में तल्लीनता होनी चाहिये। अर्थात् सब ओर से मन को समेटकर सुनने में लगाना चाहिए। इसके बाद मनन-ज्ञान है। जो सुनो, उसको विचारो। विचार में खूब डूबो। जहाँ तक

बुद्धि-शक्ति हो, खूब विचारे और विचार में इस तरह एकाग्र होकर विचारो कि पपीहा जैसे स्वाति-बूँद के लिए रटता है। पहले श्रवण-ज्ञान में मन लगाओ। ब्रह्म क्या तत्त्व है ? ब्रह्म-सम्बन्धी ज्ञान बहुत ऊँचा है। इसके पूर्व मैं क्या हूँ, इसका ज्ञान होना चाहिए; क्योंकि सभी कहते हैं कि मैं हूँ। वह अपने तई क्या है, इसको सोचो।

❀ ग्रन्थों का पाठ, व्याख्यान संसार में होता, यह तो ठीक ही है। लेकिन साधन नहीं किया जाये तो वैसा ही ठीक होगा जैसा कि फारसी में कहा गया है–

"इल्म चन्दा बेसतरखानी
चूं अमलदर तू निस्त नादानी।
न मोहक्किक बबज न दानिसमन्द
चार पाये बर ऊ किताबे चन्द।।"

अर्थात् बहुत-से इल्मों को पढ़ लिया, पर साधन नहीं किया तो वह वैसे ही है, जैसे किसी चौपाये-घोड़े वा गदहे पर कुछ किताबें लदी हों।



जबही जिज्ञासा होइ चित एक ठौर आनि,
मृग ज्यूँ सुनत नाद श्रवण सो कहिये।

श्री सद्गुरवे नमः

अनुभवज्ञान और उसमें ईश्वर का साक्षात्कार

❀ मैं 1904 ई0 से इस खोज में लग गया। आज तक इस खोज में हूँ। इसकी गंभीरता में जाता हूँ, तो जैसे-जैसे जाता हूँ, बड़ा आनन्द पाता हूँ। अभी और भी पाने को है। मुझे जो आनन्द मिला है, वह आनन्द सबको मिले। इस संसार में सबसे ऊँची बात है–**"आत्मवत् सर्वभूतेषु।"**

❀ यह साधन में अनुभूति की बात है। जिसको विश्वास नहीं है, तो करके देखो। गुरु के वचन में विश्वास तो था ही, है ही।

अन्तर की ज्योति गुरु की गवाही हो गई। करने वाला ठीक-ठीक करे। करने की युक्ति ठीक-ठीक हो, तो अवश्य होगा। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाकर देखो, पानी होता है कि नहीं ? उसी तरह इस साधन को करके देखो, होता है कि नहीं। आगे बहुत है! बहुत है !!!

❀ मैं यह नहीं कहता हूँ कि मैं पूर्ण हूँ। लेकिन पहला कदम मुझे प्रत्यक्ष हुआ है, उसको जानता हूँ। उससे मुझे जो आनन्द हुआ है, वह दूसरों को भी मिलेगा। मैं कुछ नहीं कहता कि इतने समय में पाओगे। जितना करोगे, पाओगे। बाहर में जो प्रकाश देखो, उसी को मन में बनाकर देखो, सो प्रकाश नहीं है। देखे हुए सभी को भूल जाओ, तब देखो कितनी शान्ति आती है। लेकिन यहाँ पूर्ण शान्ति नहीं है। पूर्ण शान्ति अभी बहुत दूर है।

❀ लोगों ने खोज की, जो कुछ संसार में चमत्कार है, खोज का ही चमत्कार है। देखो, सबसे बड़ा चमत्कार क्या है–जिसके समान कुछ नहीं हो, **मैं एक आस्तिक आदमी हूँ। ईश्वर को मानने वाला हूँ। बाबू! मुझे तो ईश्वर के सिवा और कुछ चमत्कार मालूम नहीं पड़ता। सूर्य से भी ज्यादे चकमक है और चन्द्र से भी ज्यादे ठण्डा है, लेकिन खोज से।**

❀ मन-बुद्धि के परे जाने के लिए बाहर में कोई रास्ता नहीं बता सकता। मन-बुद्धि भीतर में है, इसलिए हमने भीतर के पन्थ की खोज की, भीतर की राह की खोज की। खोजते-खोजते आखिर हम सफल हुए। कहाँ जाकर सफल हुए ? जहाँ जाकर ईश्वर का साक्षात्कार हुआ।

❀ 'अनुभव' का अर्थ प्रत्यक्ष होता है। भजन करते हुए अन्त में पूर्ण समाधि हो जाती है, वह अनुभव ज्ञान है। अनुभव ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो साधन है। वह है निदिध्यासन ज्ञान। ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ हम सुनते हैं वह श्रवण-ज्ञान है और फिर उस पर विचारते हैं वह मनन-ज्ञान है। ये चार प्रकार के ज्ञान हैं। इस तरह ज्ञान को समझ लेने पर सन्तों की वाणी को वचन-प्रमाण से मानते हैं; विचार-प्रमाण से मानते हैं; किन्तु जिनको अनुभव हो गया है, वे सन्त हैं और जो अभी साधन कर रहे हैं; प्राप्त नहीं हुआ है, वे साधु हैं। साधक को साधन के अन्त में अनुभव ज्ञान होगा।

❀ संतों का अध्यात्म ज्ञान तर्क की कसौटी पर कसने से भी टलने वाला नहीं है। मैं कहता हूँ कि साधना करने पर संतों को जो प्रत्यक्ष अनुभव ज्ञान हुआ वही बात उन्होंने कही, इसका मुझे विश्वास है। मैं विचार देता हूँ कि सभी अध्यात्म-ग्रंथों को पढ़ो। लेकिन पढ़ते-पढ़ते ही जीवन खतम मत करो। बचपन में हजार, लाख, करोड़, अरब,नील की गणना करते थे लेकिन उक्त गणनानुकूल एकत्रित धन प्राप्त किया नहीं। नमक, रोटी, दाल, भात, बोलो तो पेट क्या भरेगा ? कबीर साहब ने कहा कि--

"बाँझ झुलावे पालना तार्में कौन सबाद।"

करो कुछ नहीं और बक-बक करके बोलो बहुत, तो इससे क्या लाभ?

❀ जानना केवल बौद्धिक ज्ञान से ही नहीं होता है। बौद्धिक ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। पूर्ण ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान में होता है। परोक्षज्ञान में होता है कि वस्तु ऐसी वा वैसी है। अपरोक्ष का अर्थ प्रत्यक्ष और परोक्ष का अर्थ अप्रत्यक्ष होता है। शरीर छोड़ने से पहले ब्रह्मज्ञान होना चाहिये। ब्रह्म ज्ञान विचार में अपूर्ण होता है। जिसने भजन करके प्रत्यक्ष जाना, उसीका ज्ञान पूर्ण हुआ।

❀ आत्मा और अनात्मा का विचार ही वेदान्त ज्ञान है। इससे आगे ज्ञान नहीं जाता । जहाँ वेदान्त ज्ञान है, वहाँ कहा गया है कि ज्ञान को दो भागों में बाँटो–परोक्ष और अपरोक्ष। परोक्ष ज्ञान में गलती भी हो सकती है। अपरोक्ष ज्ञान में गलती नहीं हो सकती। परोक्ष ज्ञान के अन्दर ही श्रवण, मनन ज्ञान है और जब तक साधन करते हैं, तबतक का निदिध्यासन ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। यहाँ ज्ञान की पूर्णता नहीं है। पढ़कर-सुनकर जो ज्ञान होता है, वह अधूरा ज्ञान है। जबतक निदिध्यासन में हो, तबतक भी पूरा नहीं

हुआ। निदिध्यासन का अन्त होने पर अनुभव ज्ञान होता है और तब पूर्ण ज्ञान होता है।

श्रवण ज्ञान अग्नि है। मनन ज्ञान बिजली है। निदिध्यासन ज्ञान वड़वानल के समान है और अनुभव ज्ञान प्रलय काल की अग्नि है। सारे द्वैत-प्रपंच को जलाकर भस्म कर देती है।

❀ केवल ज्ञान से प्रत्यक्षता नहीं होती। प्रत्यक्षता के लिए ध्यान चाहिये। एक आदमी है, जो भूगोल पढ़कर भूमंडल की बात जानता है और दूसरा आदमी है, जिसने भूमंडल पर घूमकर जाना है। दोनों की जानकारी में बहुत अंतर है। कबीर साहब ऐसे ही महापुरुष थे। वे कहते हैं–

"मैं कहता आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।।"

बहुत किताबों को पढ़कर संशय में रह सकता है। जिसने प्रत्यक्ष देखा है, उसको संशय नहीं होता है।

❀ संसार का अंत नहीं होगा। सार-शब्द मिलेगा, ईश्वर मिलेंगे। चाहे द्वैती हो वा अद्वैती हो। मैंने जितना किया है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव ठीक-ठीक हुआ है। जोर देकर कहता हूँ।

भगवान् श्रीराम और हनुमान संवाद

"बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम्।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योतिरान्तरम्।।"

बहुत-से शास्त्रों की कथाओं को मथने से क्या फल ? हे वायुसुत! अत्यन्त यत्नवान् होकर केवल अन्तर की ज्योति की खोज करो।

"दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः।
य आस्ते कपिशार्दूल ब्रह्म स ब्रह्मवित्स्वयम्।।"

हे कपिशार्दूल ! दृश्य और अदृश्य को त्याग कर (पुरुष) कैवल्य-स्वरूप हो जाता है। वह केवल ब्रह्मज्ञानी ही नहीं, बल्कि स्वयं ब्रह्म ही है।।64।।

"अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राण्यनेकशः।
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा।।"

वह जिसने चारो वेद और सब शास्त्रों को पढ़ा हो, पर ब्रह्म-तत्त्व न जाना हो, पाक (पके हुए भोजन) के स्वाद को न जाननेवाले कलछुल के तुल्य है।

श्री सद्गुरवे नमः

प्रचारक वा सुधारक और उसका कर्त्तव्य

❀ प्रचारक को चाहिये कि वे ज्यादे संतों की वाणी को जानें और समझावें। प्रचारक को संतवाणी का आदर और ख्याल बहुत ज्यादे होना चाहिये। मन में जो आया सो कहा, ऐसा जो करते हैं वे गलती करते हैं। ऐसे लोग जो संतों की भेद-वाणी को नहीं जानते, साधन-भजन भी ऊँचा नहीं तो चाहे वे विचार धारा में कितना भी ऊँचा बढ़ गये हैं, पर वे इस विषय को नहीं जानते हैं। यह योग्यता होनी चाहिये। समाधि-साधन, संतवाणी के पाठ का स्मरण और संतों की वाणियों के द्वारा अपने प्रवचन का पुष्टिकरण होना चाहिये। केवल कबीर साहब अथवा केवल सूरदास जी अथवा केवल तुलसीदास जी की ही वाणी हो, ऐसा नहीं। इसलिए मैंने सोचा कि जीवन भर तो सत्संग किया, ऐसी रचना करो या संग्रह करो, जिसमें बहुत-से संतों की वाणियाँ हों। इसलिए 'सत्संग-योग' पुस्तक है।

❀ प्रवचन कर्त्ताओं के प्रवचन की परख सत्संगी लोग करते हैं। अतएव प्रवचन कर्त्ता अपने प्रवचन में संतवाणी को मिलाकर उनके अनुकूल प्रवचन करें। भोला भगत बनने से काम चलने को नहीं। जो संतमत का प्रचार करते हैं, उनके लिए तो और अत्यन्त आवश्यक है। अपने से संतवाणी का मिलान कर उसका संग्रह करना आसान नहीं। जिनको मेरा किया हुआ संतवाणी का संग्रह पसन्द नहीं है, वे दूसरा संग्रह करें। प्रचारकों को चाहिये कि संतों की वाणी का आधार रखें। पहले से स्वतंत्र विचारी कौन? ऐसे बहुत गिरे हैं। योग्यता नहीं और स्वतंत्र विचारी बनें। और नहीं तो सत्संग-योग को अच्छी तरह पढ़िये। फाजिल समय हो तो अन्य बातों को समझिये।

❀ जो जानते हैं बहुत कम और अपने को बहुत अधिक जानकार समझते हैं, यह उचित नहीं। फिर भी केवल जानने से ही काम नहीं चलेगा। उनके अनुकूल आचरण नहीं है तो प्रचार गलत है। यही कह दिया। कुछ लोगों ने पद रचना की है, किन्तु उसमें विशेषता नहीं है, जो संतवाणी के अनुकूल नहीं है। रचना संतवाणी के आधार पर होना चाहिये और पिंगलशास्त्र के अनुकूल भी हो तो अच्छा है।

❀ स्वतंत्र विचार वाले बन्धन में रहते हैं। अगर वह स्वतंत्र विचारी है, जो मन में आता है, करता है, वह बंधा है। उसके विचार के अनुकूल चलिये तो आप भी अधिक-अधिक बंध जायेंगे। जो संतों के विचार के अनुकूल रहकर अर्थात् उनके विचारों के बन्धनों में रहकर अपनी बुद्धि को विशेष सात्त्विक बना लिए हों, वे निर्बन्ध हैं।

❀ लोगों को चाहिये कि सार ग्रहण करें। कहने वाले को चाहिए कि बहुत बात बढ़ाकर नहीं बोलें। उससे उनका विषय गौण हो जाता है, तो सुनने वाले के लिये ठीक नहीं होता।

किसी पद्य वा गद्य को समझाने के लिए पहले सरलार्थ करना चाहिये। फिर जरूरत जानकर उसका भाव समझाना चाहिये। और उसको भी ऐसी भाषा में समझाइये कि सभी लोग जान सकें।

❀ अर्थ नहीं जानो तो उसको समझ लो। अगर तुमको घमण्ड है कि हम सबकुछ जानते हैं तो तुम्हारे लिए बहुत हानिकारक है।

❀ प्रचार करने में परिश्रम लगता है। कितने तो मोटी बातों का ही प्रचार करते हैं और उसी पर जोर डालते हैं कि इसी से सभी हो जायेगा, लेकिन समझा नहीं सकते।

❀ हमलोग इस ज्ञान का प्रचार करते हैं। इसीलिए **"सब संतन्ह की बड़ि बलिहारी"** बराबर गाते हैं। हमारे प्रचार में जो सत्य-सत्य ज्ञान है, हमलोग कहते हैं। हममें से मैं या मेरे और कोई हो—

"कहता पै करता नहीं, मुँह का बड़ा लबार।
आखिर धक्का खायेगा, साहिब के दरबार।।"

आखिर यही हो जायेगा।

❀ अखिल भारतीय साधु समाज के संगठन का पहला काम साधु समाज के सम्हाल के लिए अपेक्षित है। हम साधुलोग अपना सम्हाल करके जनता के सम्हाल के लिए भी प्रयास करें, यह उचित और आवश्यक है। परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि यह समाज उन्नति करता हुआ आगे बढ़े। यह समाज पहले अपना सम्हाल करे। जो महात्मा सुधरे हुए हैं, उनको कुछ कहना नहीं है। जो सुधरे हुए नहीं हैं, उनको अपना सुधार करना चाहिये। यदि गलती हो जाये तो सम्हलना चाहिये। साधु को वह काम नहीं करना

चाहिये जो साधु के करने के योग्य नहीं है। साधु को चाहिये कि पहले अपने को सम्हाल लें, फिर दूसरों को सिखावें। अपने को नहीं सुधारकर दूसरे को क्या सम्हालेंगे ?

❀ मैं सेवा करने से रोकता नहीं। किन्तु ईश्वर-भजन करो और जनता की सेवा भी करो। महात्मा गाँधी जी ने बहुत भजन किया था, तब तो मरते समय मुँह से 'हे राम !' निकला। नहीं तो 'बाप रे बाप' क्यों नहीं कहा ? ईश्वर-भजन नहीं करके और कामों को करना, मैं वैसा ही समझता हूँ, जैसा कि गो० तुलसीदास जी ने कहा–

"सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ।।"

ईश्वर-भजन छोड़कर जनता की सेवा अपवित्र सेवा है। अपने मन की हालत देखकर जानोगे कि तुममें कितनी पवित्रता या अपवित्रता है। सेवा पहले घर से होती है। बच्चे दाने-दाने के लिए तरसते हैं और अपने चले हैं जनता की सेवा करने। अपने घर की सेवा पहले करो, फिर जनता की भी सेवा करो। जो बहुत बड़े महात्मा हैं, जो ध्यान में मग्न रहते हैं, उनके लिए कुछ कहा नहीं जा सकता है। उनकी एक ही दृष्टि से जनता का क्या हो जाये, कहा नहीं जा सकता। वे जनता के लिए क्या-क्या सोचते हैं, करते हैं, वे ही जानते हैं।

❀ नशीली चीजों को छोड़ो। मैं साधु हूँ, मुझको गृहस्थ क्यों नहीं खिलावेगा, यह दाबी नहीं रखो। घर-घर का मेहमान नहीं बनो, अपनी कमाई करो, और खाओ। गृहस्थी में रहो या विरक्ति में रहो, काम रोजगार करो और परमात्म-भजन करो।

"तुलसी कर पर कर धरो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन भलो।।"

–गो० तुलसीदास जी।

संत कबीर साहब कहते हैं–

"मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवै लाज।।"

कोई कहे कि मैं माँगता नहीं हूँ, तो तुम कैसे नहीं माँगते हो ? तुम किसी के यहाँ नहीं जाओ। जो कोई थोड़ा-थोड़ा कई घरों से माँग लेता है,

वह विशेष भार नहीं देता है और जो एक ही आदमी के यहाँ जाकर खाता है, वह विशेष भार देता है। ईश्वर-भजन करो, अपना आचरण ठीक बनाओ, अपनी कमाई करके खाओ और जनता की सेवा भी करो।

गुरु महाराज के प्रतिज्ञा-पत्र पर हमने हस्ताक्षर किये हैं कि—संतमत की उन्नति में तन, मन, धन से हमेशा मददगार रहेंगे। इसको मत भूलिये। संतमत की उन्नति इसलिए कि इससे अध्यात्मज्ञान का प्रचार होता है। इस ज्ञान को फैलाना चाहिये। इसमें स्वार्थ-परमार्थ दोनों हैं। इससे जनता को बड़ा लाभ होता है।

❀ पंच महापाप हैं, जो लोगों को नीचे गिराते हैं। इन सबका सरदार झूठ है। असत्य के झोरे (झोले) में सभी पाप अँट जाते हैं। जो असत्य से बचता है, सत्य ग्रहण करता है। उसके सभी पाप छूट जाते हैं। जो सत्य ग्रहण नहीं करता, वह कितना बड़ा वक्ता होने पर भी पाप करेगा।

❀ कहा जाय कि कोई मौलवी है, कुरान को कण्ठस्थ कर लिया है, लेकिन मानी-मतलब कुछ नहीं है। वह तो वही है कि "चारपाये वरऊ किताबे चन्द" यानी वह पशु है, उस पर कुछ किताबें लदी हैं; और कुछ नहीं। उसी तरह वेद के पाठक जो वेद पढ़ते हैं वा वेद के थोड़े ही हिस्से का अर्थ पढ़ते हैं और लोगों को सुनाते हैं; वे स्वयं कितना ही लेक्चर दें, उस सार को भूलते जाते हैं, तो वे भी वैसे ही हैं। थोड़ा कहिए और ज्यादा समझाइए तो अच्छा है। थोड़ी ही बात समझ में आवे तो अच्छा है। बहुत पढ़कर सुनाइए और याद नहीं रहे तो किस काम का ?

❀ कुछ लोगों को लेक्चर देने की आदत-सी पड़ गई हैं। जहाँ जो विषय नहीं कहना चाहिये, वहाँ भी वे अपनी बातें ठूँसकर लाते हैं। यहाँ पर सत्संग का आयोजन किया गया है, लेकिन सत्संग की बातें नहीं करके वे यहाँ भी राजनैतिक बातें कर रहें हैं। मेरे वचन का दुःख नहीं मानें। मैं पूछता हूँ—अभी जो सज्जन प्रवचन कर रहे थे वे सन्त कबीर साहब, गुरु नानक साहब, पलटू साहब आदि सन्तों के कितने वचनों को कह सकते हैं ? हृदय में विचार कर देखें।

❀ हमलोग जो सन्तमत के अनुयायी होकर प्रचार करते हैं, उनके मन में यदि हो कि हम अच्छा प्रचार करते हैं तो इस अहं को भूल जायें, नहीं

तो इस अहं से गिर जायेंगे।

जुगनुओं से अत्यल्प चमक होती है, उससे मार्ग नहीं सूझता। उसी तरह पाखण्डियों के उपदेश से कुछ ज्ञान-सा प्रतीत होता है, पर सन्मार्ग नहीं दरसता।

❁ "संसार महँ पुरुष त्रिविध, पाटल रसाल पनस समा।।
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक, फलइ केवल लागही।
एक कहहिं कहहि करहि अपर एक, करहिं कहत न बागही।।"

संसार में गुलाब, आम और कटहल के समान तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। एक फूल देने वाले, एक फूल और फल देने वाले और एक में केवल फल ही लगते हैं (फूल नहीं)। उसी तरह एक केवल कहते हैं (पर करते नहीं), एक कहते और उसे करते भी हैं, अन्य तीसरे (प्रकार के पुरुष) करते हैं, पर वचनों से कहते नहीं।

कहना पर उसे नहीं करना अधमता है।

"कहता सो करता नहीं, मुख का बड़ा लबार।
आखिर धक्का खायेगा, साहब के दरबार।।"



सुधारक



प्रचारक



समाज

श्री सद्‌गुरवे नमः

भारत-भूमि की महिमा और स्वदेश-प्रेम

❁ भारत-भूमि जैसा अन्य देश नहीं है। नेपाल भारत की उत्तरी सीमा है। पहले गुजरात से बंगाल की खाड़ी तथा नेपाल से कन्या कुमारी तक भारत की सीमा थी। यहाँ पर हमारी ऊपज है। ईश्वर ने हमपर बड़ी कृपा की है। इस देश में हमारा जन्म नहीं होता तो जो चरित्र और ज्ञान यहाँ बनता है, वह न अमेरिका में बनता है, न इंगलैंड में, न अन्य किसी देश में।

बड़ा भाग्य है कि इस देश में जन्म हुआ। एकान्त खोजने के लिए लोग कैलाश में जाते हैं। बड़ा-पुण्य है भारत-भूमि में जन्म हुआ है।

❁ ईश्वर की बड़ी कृपा है कि भारत में हमलोगों का जन्म हुआ। नहीं तो जहाँ पर हमलोग लाज करते हैं, दूसरे देश के लोग वहाँ लाज नहीं करते।

❁ हम लोगों का देश जो प्राचीन काल से भारत कहके या आर्यावर्त्त कह के विख्यात है, वही देश फिर हिन्दुस्तान कहा जाने लग गया। यह कलयुगी बात है। कलयुग का भी बहुत समय गुजर गया तब की बात है। आपलोग जब कभी–कभी कर्मकाण्ड विषयक यज्ञ करने को होते हैं और करने लगते हैं तो आपके पुरोहित अवश्य ही उसमें आपके देश के नाम को याद करवा देते हैं–आर्यावर्त्त, भरतखण्ड, जम्बूद्वीप-ये सब नाम याद करवाते हैं; परन्तु 'हिन्दुस्ताने' नहीं याद करवाते हैं।

❁ हमारा देश अनादि-काल से–जबसे यह देश है, पहला दिन कब हुआ इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसीलिए अनादि-काल से कह दिया। अनादि-काल से यह आस्तिक देश कहा जा रहा है। इस आस्तिक-देश में ईश्वर का ज्ञान-यथार्थ-ज्ञान होना चाहिये। न कि ऐसा ज्ञान कि जो ज्ञान कमजोर हो। इन्द्रियगम्य-रुप को ईश्वर मानना कमजोर ज्ञान है।

❁ मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ जब आपलोग मुझे बुलाकर सत्संग कराते हैं। आपकी पुकार मुझे बहुत पसन्द है। जैसे कोई घर बनाते हैं, उसकी नींव नीचे से मजबूत करते हैं। मैं चाहता हूँ कि देश की नींव मजबूत हो। कोई भी जो नीचश्रेणी के माने जायें और वहाँ धर्म-ज्ञानोपदेश के लिए मुझे बुलाया

जाता है, तो मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। मुझे तो नींव मजबूत करना है और समूचे भारत की नींव मजबूत करना है, फिर संसार के लिए देखा जाएगा।

❁ मैं अपने प्रान्त के अतिरिक्त दूसरे प्रान्तों में भी घूमता हूँ; किन्तु ऐसा कोई गाँव नहीं, जहाँ के लोग 'रामनाम', 'सतनाम', 'वाहगुरु' आदि न बोलते हों। इसका मतलब है कि हमारे देश के लोग आस्तिक हैं।

❁ हमारे देश के अध्यात्म-ज्ञान को विदेश में प्रचार करने के लिए दो तो प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं–एक स्वामी विवेकानन्द दूसरे स्वामी रामतीर्थ। स्वामी रामतीर्थ कुछ दिन गृहस्थाश्रम में भी रहे। फिर उनको ऐसे गुरु मिल गये, जिन्होंने उनसे कहा कि विद्या तो आपकी बड़ी है, इसमें आध्यात्मिकता मिला दीजिये तो सबकुछ मिल जायेगा। स्वामी रामतीर्थ पहले गए जापान, फिर गए अमेरिका 'यूनाईटेड स्टे्टस' में। वहाँ विद्या भी बहुत है और धन भी बहुत है। उत्तरी-अमेरिका-सबसे उत्तरी-भाग को कनाडा कहते हैं। वहाँ मित्रराज्य होगा, इसीलिए उसको युनाईटेड स्टे्टस कहते हैं। वहाँ धन बहुत है लेकिन शान्ति नहीं है।

❁ मैं चाहता हूँ, अपना देश यानी भारत धर्म में मजबूत हो। मुझे विश्वास है कि सत्संग के प्रचार से देश के लोग धर्म में मजबूत होंगे। इसीलिए सब लोगों के लिए तथा आपलोगों के लिए सत्संग अत्यन्त अपेक्षित है। इस सत्संग का लक्ष्य है कि सारी जनता को भली बना दो। जनता भली बनेगी तब, जब लोगों का आचरण अच्छा हो।

❁ गुरुनानक देव जी को बाल-बच्चे भी थे और ज्ञान-ध्यान भी। कबीर साहब ने राजनीति नहीं ली, केवल ज्ञान देते हैं और गुरुनानक के दल में राजनीति भी ली गयी। राजनैतिक-विषय लेते-लेते ऐसा हुआ कि दसवें गुरु ने तलवार हाथ में ले ली। किसी ने कहा कि तलवार ली, यह सन्त का काम तो नहीं ? दूसरे ने कहा-अरे ! औरंगजेब का समय रहता तो सन्त का काम देखा जाता। औरंगजेब का तो यही कहना था, "इस्लाम लो, चाहे तलवार लो।" अपना हाड़ कौन दे सकता है ? अपना हाड़ दे दिया देवताओं को दधीचि मुनि ने। अपने शरीर पर नमक छिड़काव कर गाय से चटवाकर हाड़ दान दे दिया। इतना कष्ट कौन सह सकता ? बहुत प्राचीन काल से अपने देश-भारत में इस तरह के लोग हुए हैं। गुरु गोविन्द सिंह ने तलवार ली,

लेकिन वे दयालु थे। राणा प्रताप के ऐसा दुःख कौन सह सकता है ? उन पर अकबर की दाल नहीं गली।

❀ महर्षि जी (महर्षि महेश योगी) तो विदेश जाते हैं, हम तो समझते हैं—यहाँ के लोगों को बहुत उपदेश देना है। मैं तो कहूँगा—जो जंगली है, पहाड़ी है, इनको उपदेश देकर तब विदेश में उपदेश करें। ऐसे-ऐसे अपवित्र लोग हैं, देखकर घिना जायेंगे। नेपाल के नीचे और गंगा के दक्षिण के जो पहाड़ी लोग हैं, अपने देश की सरकार चाहती है कि ये लोग शिक्षित हो जायें। मेरी ओर से निवेदन है कि आप राजगीर की ओर देखें। जिनको अधिक शिक्षा चाहिये, उनको अधिक शिक्षा दें। हमारी सरकार ने चेष्टा की है, लेकिन वह यथेष्ट नहीं है। हमारी सरकार बदल गयी, और भी बदलेगी। मुझसे कहा जाये कि उपदेश देने का काम तुम करो, तो मुझसे जहाँ तक हो सकता है, बाकी नहीं रखता हूँ। अब मेरी उम्र देखो। एक-ही-एक होकर काम नहीं कर सकता। मेरे पैर जब सबल थे, कमर में जब ताकत थी, तो मैंने पैदल चल-चल कर सत्संग-प्रचार का काम किया। परन्तु अब हमसे नहीं हो सकता है। यह भार मैं महर्षि जी (महर्षि महेश योगी जी) को सौंपता हूँ। चूँकि ये भी हमारे ही देश के हैं, यूरोप के नहीं हैं, ये विदेश के नहीं हैं।

❀ हमलोगों का देश बहुत पुराने जमाने से राजाओं के शासन में था। आजतक उसमें पहले जितने राजालोग हुए, उन राजाओं में विदेशी राजाओं ने भी शासन किया। लेकिन हमारे पूर्वजों ने उनके शासन को मानते हुए भजन-ध्यान और सत्संग को नहीं छोड़ा। हमलोगों को भी भजन-ध्यान और सत्संग करते रहना चाहिये।

❀ हमलोगों में बहुतों के जन्म ऐसे समय में हुए, जब यहाँ अंग्रेजों का राज्य था। ईश्वर को जबतक मंजूर था, तबतक उनका राज्य रहा। महात्मा गाँधी जी हुए, उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ आन्दोलन किया और कांग्रेस महासभा का राज्य हुआ। इसमें भी वह शासन आया जो जनतंत्र-शासन कहलाता है। मुझे इस शासन में कोई कठिनाई नहीं होती है।

❀ अपने देश में स्वराज्य-प्राप्त करने के लिए कितना बलिदान हुआ, स्वराज्य मिला। लेकिन चोरी, डकैती, बेईमानी, लूट आदि दुर्गुण कमे नहीं, बढ़ ही गये हैं। संतलोग कहते हैं कि पंच पापों से बचो, तो चोर, डकैती

आदि बुरे-कर्म नहीं होंगे। सभी शान्तिपूर्वक रहेंगे। सबलोगों को संतों के बताये मार्ग पर चलना चाहिये।

❀ जो पंच पाप नहीं करता, संसार उसको जानता है, वह प्रसिद्ध हो जाता है। उसके साथी बढ़ जाते हैं। उसका समाज बढ़ जायेगा। ऐसा समाज बढ़ने से सामाजिक-नीति अच्छी होगी। फिर राजनीति अच्छी हो जायेगी। अभी स्वराज्य है, लेकिन सुराज नहीं है। जिस किसी भी देश में सोना बहुत है, लेकिन वहाँ सुराज नहीं है। वहाँ घीनकर्म–पापकर्म बहुत होते हैं। जो देश अध्यात्म में अधिक बढ़ेगा, वहाँ पापों से अधिक छूटेगा। वहाँ शान्ति आयेगी। मैं शासक को कुछ नहीं कहता, जनता से कहता हूँ–तुमलोग पवित्र बनो। सभी बढ़िया होगा। पवित्र होकर स्कूल में जाओगे, स्कूल में पढ़ाओगे, बच्चे अच्छे होंगे। देश अच्छा होगा। इसलिए ईश्वर की भक्ति करो। अपना भला होगा। देश का भला होगा। नहीं तो–"आगे समुझ पड़ेगा भाई................।"

❀ हमलोग आर्य हैं। आर्य का अर्थ–बुद्धिमान, विद्वान, सभ्य आदि है। गीता में महाभारत में, बौद्ध ग्रन्थों में हमारे लिए 'आर्य' शब्द छोड़कर दूसरा नहीं आया है। हाल में तुलसीदास जी हुए, इनकी रचना में 'आर्य' के सिवा दूसरा शब्द नहीं है। 'आर्य' कहते हैं–बुद्धिमान् को। हमको बुद्धिमान् बनना चाहिये। 'बुद्धि' वह हो, जिसमें 'आत्मज्ञान' हो।

❀ अपना देश तो आध्यात्मिकता के गुण का घर ही है। जो ज्ञान अपने देश में ईश्वर-सम्बन्धी, जीवात्मा के सम्बन्ध में और दोनों में क्या सरोकार है, कैसे दोनों मिलकर एक ही हो जाते हैं, वह दूसरे देश के ज्ञान में होना सम्भव नहीं मालूम पड़ता है। यहाँ इस संसार में किसी नदी-छोटी नदी या बड़ी नदी श्री गंगाजी की तरह की नदी पर पुल बाँधने में बहुत खर्च होता है। लेकिन यहाँ ऐसे भी पराक्रमी हुए जिन्होंने चार सौ कोस तक समुद्र पर पुल बनाया, परन्तु नीचे में एक भी पाया नहीं, ऐसे श्रीराम भगवान् थे और अपने एक कृपा-कटाक्ष से समुद्र के अन्दर द्वारिकापुरी बना दे, ऐसे भगवान् श्री कृष्ण थे। ऐसे बड़े लोग भी सत्संग को बड़ा कहते थे, गुरु की सेवा करते थे और प्रजापालन, देशहित-कर्म करते हुए भी यहाँ तक कि सर्वशक्तिमान होते हुए भी पूजा-ध्यान अवश्य करते थे। ये महापुरुष भी गुरु

की सेवा अवश्य करते थे। हमलोग उसी देश के आदमी हैं।

❀ आज भारत स्वतन्त्र है। किसी दूसरे का भार नहीं है। लेकिन जो चलाने वाले है, उनसे पूछिये कि कितना भार है। वे चुपचाप बैठे रहें, कोई काम नहीं रहे, तो नियम बिगड़ जायेगा। देश दूसरे के हाथ चला जायेगा। इसलिए पहले जो राजालोग होते थे, उनके ऊपर बहुत भार रहता था। न राष्ट्रपति होने से सुख होता है न मंत्री होने से सुख होता है। उनको भी सुख मिल सकता है, यदि अन्तस्साधन करें।

❀ देश में जो एक के पास थोड़ा है और दूसरे के पास अधिक है तो अधिक वाले से माँग करते हैं एक नेता-हमारे भारत के। लेकिन केवल इससे कहाँ तक शान्ति आ सकती है। यद्यपि लोग जानते हैं कि आज कैसा समय आया है। विशेष जमीन किसी को नहीं रहेगी। लोगों ने जमीन दान दी है ऐसी जमीन, जिस जमीन को पाने वाला न जानें उसे कब उपजा सकेगा-या तो बालू-बूर्ज है या जलमय है या पत्थरमय है। अवश्य ही, दान में कुछ अच्छी जमीनें भी दी गईं। कहीं-कहीं दान देने वालों और दान दिलाने वालों के बीच संघर्ष भी हुआ। लेकिन जहाँ पर "सब उदार सब पर उपकारी" हों वहाँ अनउदारता, कृपणता, कलह और संघर्ष कैसा ? आज स्वराज्य है, उसमें सुराज लाइये। केवल भौतिकवाद में "सब उदार सब पर उपकारी" वाला हृदय नहीं हो सकेगा। उसमें तो एक दूसरे को अस्र दिखाकर, डराकर धन-हरण कर लेगा। आध्यात्मिकता में परहित रत होने का गुण है– आधिभौतिकता में नहीं। अपना भला तभी होगा जब ईश्वर भक्ति करो। आध्यात्मज्ञान इतना ही नहीं कि पढ़ लिया, लिख लिया, सुन लिया, आध्यात्मज्ञान प्राप्तकर लिया और कहने लगे–अहं ब्रह्मास्मि। यह कहने की बात नहीं है, कर्म में लाने की बात है।

❀ भारत में अशोक के समान बड़ा राज्य किसी का नहीं हुआ। अंग्रेज का भी यहाँ उतना बड़ा राज्य नहीं हुआ। अशोक बिना खून-खराबी के शासन करते थे, मांस, मछली नहीं खाते थे, हमलोगों के भारत का मस्तिष्क कैसा है ? देखिये। अशोक ने कलिंग की लड़ाई में बहुत-से लोगों को मारा था। उनकी स्त्रियाँ लड़ने के लिए आईं। अशोक ने अपनी तलवार रख दी और कहा "देवियो ! तुम जो चाहो, करो।" किन्तु अंग्रेज ने एक झाँसी की

रानी को मारने के लिए कितनी फौजें भेजीं। क्या-क्या उपाय किया और अन्त में मार ही दिया। गुरु गोविन्द सिंह के पास सिक्ख शत्रुओं की कई स्त्रियों को कैद करके ले आये। इस पर गुरु गोविन्द सिंह बहुत बिगड़े और उन सब स्त्रियों को उनके घर वापस करवा दिया और उन्होंने कहा–यदि शत्रु पाप करें तो हम भी वही करें ?

❁ साम्प्रदायिक अनमेल भी देश को बहुत नुकसान पहुँचाता है। यह धार्मिक सम्प्रदाय का अनमेल कैसे टूटे ? इस तरह की सब सन्तों का वचन लिया जाये और उसके सार को मिलाया जाये, कि वह मिलता है वा नहीं ? मैंने कोशिश की और देखा कि संतों के सदाचरण का एक उपदेश है। ईश्वर-प्राप्ति का एक रास्ता है। वेद, उपनिषद्, संतों की वाणियाँ; सब में एक भाव है। मैंने 'सत्संग-योग' नाम की पुस्तक में इन वचनों को संग्रह करके दिखा दिया है। पहले भाग में वेद, उपनिषदादि संस्कृत ग्रन्थों के वचन हैं, दूसरे भाग में पचास संतों की वाणियाँ हैं, तीसरे भाग में विद्वानों और साधकों के वचन हैं और चौथे भाग में मैंने वह लिखा है कि संतों के ज्ञान को जो मैंने समझा, गुरु ने जो उपदेश दिया तथा उसके अनुकूल साधन करके जो कुछ अनुभव हुआ, इन सब बातों को दिया है।

कोई किसी की पूजा का खण्डन न करे कि कोई पश्चिम मुँह नहीं करे वा कोई पूर्व मुख बैठकर नहीं करे। दूसरे सम्प्रदाय के जो लोग हैं, उनमें भी सूक्ष्म क्रिया एक है–सूक्ष्म साधन एक है। अन्दर-अन्दर चलो, इसमें सबका मत एक है। इस प्रकार साम्प्रदायिकता का भेद-भाव मिटने से बड़ी शान्ति रहेगी। कोशी के इस पार आप रहें और उस पार में आपके मित्र हों वा जिनको आप नहीं जाने वे भी रहते हैं, तो क्या वह दूसरा देश हो गया ? एक ही जिला है, उसी तरह बहुत पानी के बाद यानी समुद्र के पार में यदि कोई बसते हैं, तो वे दूसरे कैसे हैं ? हम सभी एक हैं। एशिया महादेश और यूरोप महादेश; इस देश का विभाजन किसने किया ? पानी ने। पानी जड़ और हम चेतन। पानी मजबूत हो गया और हम कमजोर हो गये ? धार्मिक, साम्प्रदायिक भेद-भाव मिट जाये और भी जो भेद-भाव है, सभी मिट जाये तो तोप, गोला, काहे को बने ? इसको मारो, उसको मारो यह बात क्यों होगी ? ऐसा भी तो बम बनाओ कि सब कोई मिलकर रहो। यह बम तब बन

सकता है कि धार्मिक विचार एक हो जाये। एक मेल से रहने के लिए पहले हमलोग जिस गाँव में रहते हैं, जिस घर में रहते हैं, जिस प्रान्त में रहते हैं, जिस देश में रहते हैं, मेल से रहें। इस एक मेल से रखने वाला धर्म है।

❁ अपने देश की क्या हालत हो गई है ? आपस की सुमति टूटी, दूसरे देश के लोग यहाँ आकर शासन करने लगे। जो इतिहास पढ़े हैं, उनको याद आता होगा–यहाँ के जो बड़े राजा थे पृथ्वीराज, वे दिल्ली में रहते थे। पृथ्वीराज का घर वहाँ नहीं था, वे नाना के यहाँ रहते थे। उनके नाना को पुत्र नहीं था, इसीलिए इनको राजा बनाया गया था। कन्नौज में राजा जयचन्द रहते थे, वे भी दिल्ली के उन्हीं राजा के नाती थे। पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों मौसेरे भाईयों में विवाद हुआ। जयचन्द जाकर दूसरे राजा को, जो देश के बाहर था–खबर दिया। वह पहले से ही दिल्ली दखल करना चाहता था, पर पृथ्वीराज से हार-हारकर अपना देश जाता था। दिल्ली दरवार और कन्नौज दरवार में फूट होने के कारण दूसरे देश का राज्य हो गया। इस्लाम धर्म वालों का सात सौ वर्ष तक राज्य-शासन चला। इसके बाद अंग्रजों का शासन हुआ। इन बातों को समझने वाले हमारे देश में हुए। पचास वर्षों तक कोशिश हुई। कांग्रेस यानी बड़ी सभा का शासन होगा, ऐसा हुआ। अंग्रेज बड़े शक्तिशाली थे। उनका देश बहुत छोटा, लेकिन एक मेल के लोग–एक ख्याल के वे लोग थे। वहाँ आज भी राजा है, लेकिन राजा से विशेष अधिकार सभा को है। अंग्रेजों को यहाँ से जाने को कहा गया। होते-होते उनकी शक्ति कम हो गई और वे यहाँ से चले गये।

❁ एक मेल से स्वराज्य मिला है, लेकिन सुराज नहीं। सुराज कौन लावेगा, आज के शासक ? कभी नहीं। ये लोग परिश्रम करते हैं, लेकिन सुराज ला नहीं पाते हैं। जैसे एकमत पहले हो गये थे–विदेशी राज्य को भगाया, वैसे फिर एकमत हो तो सुराज आ जाये।

❁ परमात्मा की बड़ी कृपा है कि हमलोगों का जन्म भारत-भूमि पर हुआ है। यह बड़ा ही आस्तिक देश है। उत्तर हिमालय से दक्षिण कुमारी अन्तरीप तक; जगन्नाथपुरी और द्वारिका-पूरब से पश्चिम तक यथा सभी प्रदेशों में इस आस्तिक भाव की मान्यता है। जब से बच्चे का जन्म होता है,

तब से अथवा जब बच्चे अपने मुँह से कुछ बोलने लगते हैं, तोते की तरह बच्चे को माता-पिता तथा अभिभावक ईश्वरवाची नाम सिखाते हैं।

❀ आज देश का नाम भारत है, हम अपने को वैदिक आर्य कहें वा भारतीय कहें, सरकार कुछ नहीं कहेगी। हिन्दू की भाषा हिन्दी है। भाषा का 'हिन्दी' नाम मुझे अच्छा नहीं लगता। 'भारती' इसका नाम दें, तो अच्छा-ही-अच्छा। हिन्दू-धर्मावलम्बी कहकर अपने को जनावें, इसमें हमको बहुत दुःख है।

❀ अवश्य ही हमारा देश भौतिकता में पिछड़ा हुआ है। दूसरे देश की तरह इसमें प्रगति नहीं है। यह भी कभी वैसा हो जाये, सम्भव है। लेकिन सभी देशों से बढ़कर अध्यात्म-ज्ञान यहाँ बहुत विशेष है। दूर-दूर देश के लोग यहाँ आते हैं; अध्यात्म-ज्ञान खोजने यहाँ आते हैं। भारत के अन्दर कलकत्ते में विवेकानन्द स्वामी हुए। वे शिकागो गये थे धर्म की बड़ी सभा में। इनको भी उस सभा में मौका दिया गया था अध्यात्म-ज्ञान कहने के लिए। इनके वचन से सभी बड़े प्रभावित हुए और वहाँ के लोगों को मानना पड़ा कि "भारत का ज्ञान बहुत विशेष है। वहाँ-भारत में दूसरे धर्म का प्रचार नहीं हो सकता।"

हमारे देश में जो सन्त-महात्मा हुए, वे राजाओं को भी सलाह देते थे। वह कौन बल था ? अध्यात्म का बल था। तप का बल था। योग का बल था।

❀ हमलोगों को स्वराज मिला है, उसमें सुराज हो जाये। रामराज वहाँ है, जहाँ राम-ही-राम है; बिल्कुल आराम-ही-आराम है। पृथ्वी पर राम-राज्य होना असंभव है। भजन कीजिये और अपने अन्दर में प्रवेश कीजिये, वहीं असली राम-राज्य मिलेगा। आत्मा शरीर और इन्द्रियों से मिली-जुली है और प्रकृति मण्डल के आवरण में है। इनसे छुड़ाइये, तब परमात्म-दर्शन होगा।

❀ स्वराज्य पाने के लिए हमलोग बहुत लालायित थे। उसके लिए लगभग 50 वर्षों तक दिमागी लड़ाई हुई। स्वराज्य मिला, लेकिन सुराज नहीं हो पाया है। इसलिए कि लूट-खसोट, बदमाशी दिन-दिन अधिक ही होते जा रहे हैं। ऐसा क्यों ? इसलिए नहीं कि शासन सूत्रधारी इसका

प्रबन्ध नहीं करते, परन्तु इसलिए कि जनता नहीं सम्हलती है। लोग घर में ही अच्छे बनते हैं। घर से लोग विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। जनता ही शासन सूत्रधारी को चुनती है। जनता को कौन ठीक करे ? जनता ठीक होगी–साधु-संतों के सदुपदेशों को सुनकर उसपर चलकर। हमारे गुरु महाराज कहते थे–सबसे पहले रखो, आध्यात्मिकता तब सदाचारिता, उसके बाद सामाजिक नीति और तब राजनीति। आध्यात्मिकता की ओर से सम्हालो, राजनीति आप ही सुधरेगी। सभी अपने-अपने को अच्छे बनावें। लोग आध्यात्मिकता की ओर ध्यान दें। जब पंचशील का पालन होगा, तभी देश में कल्याण होगा। आपस में यदि सत्य व्यवहार हो तो मुकदमा क्यों हो ? अपने को आध्यात्मिकता की ओर ले जाइये।

❀ पहले अपना देश छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। लोग अलग-अलग प्रदेश बनाकर रहते थे। दुनिया के बहुत भागों (देशों) को लोग नहीं जानते थे। एक देश से दूसरे देश जाने का पर्याप्त साधन नहीं था। अपने देश में तो ऐसा कायदा बन गया था कि दूसरे देश की कोई यात्रा नहीं कर सकते थे। समुद्र-यात्रा करने से लोग डरते थे। समुद्र-यात्रा करने वाले से यहाँ के लोग द्वेष करते थे। इसके चलते अपने देश की बहुत हानि हुई।

इस हानि को दूर करें। एक देश को दूसरे देश से सम्बन्ध रखने में हानि हुई। बहुत लाभ होता है। दूर-दूर देशों से सम्बन्ध रख सकें, यह उत्तम बात है।

❀ यदि हमारे यहाँ सभी कोई पंच पापों को छोड़ दें तो स्वराज्य में सुराज्य आ जायेगा। कानून के डंडे से इन दुष्टकर्मों को नहीं छुड़ा सकते। यदि सभी के मन में आ जाये कि दुष्टकर्मों को छोड़ दें तो आपस में मेल रहेगा, कोई तोड़ नहीं सकता। स्वराज्य में सुराज्य होगा।

❀ अपने देश में जैसा सुख चाहिये, वैसा नहीं है। मतलब कि उपद्रवहीन स्थान में रहना सुखकर है। जहाँ चोरी होती है, डकैती होती है, एक दूसरे को कौशल से झूठ बोल-बोलकर पछाड़ते हैं, यद्यपि सरकार की ओर से सजा भी होती है, फिर भी उपद्रव नहीं जाता है। यदि आपस में मेल से रहे तो सारे उपद्रव दूर हो जायेंगे। स्वराज्य में सुन्दर राज्य होना चाहिये। देश को उपद्रवहीन राज्य बनाओ। आपस में मेल से रहने का

आधार है–'ईश्वर की भक्ति।'

❁ मत्स्य-मांस नहीं खाओ। नशाओं को मत लो। हिंसा नहीं करो। व्यभिचार नहीं करो और चोरी नहीं करो। जो कोई यह परहेज करेगा, उन सबको लाभ होगा। उसके साथी को लाभ होगा। कोई दुष्टकर्म करेगा नहीं। चोरी नहीं करेगा। डकैती नहीं करेगा, व्याभिचार नहीं करेगा, हिंसा नहीं करेगा। तो कितनी शान्ति रहेगी ! दुष्टकर्मियों को दुष्टकर्मों से रोकने के लिए कितने ऑफिसर हैं ? इसके लिए कितना खर्च है ? सब खर्च बच जायेंगे। इसको देश की दूसरी सेवा, दूसरे काम में लगाये जायेंगे। किसी सरकार के अन्दर रहने वाले दुष्टकर्मों से छूटकर रहेंगे, तो शासन में सरकार को सहूलियत होगी। खर्च बहुत कम जायेगा। लोग मेरे लिए कहते हैं कि ये केवल मुक्ति-मोक्ष-अध्यात्म-ज्ञान देते हैं। देश के लिए कुछ नहीं करते हैं। अरे ! मैं तो देश की जड़ को मजबूत करता हूँ। जो कोई ईश्वर-भजन करते हैं, उनके लिए संसार-परमार्थ दोनों सरल होते हैं। महाराज अशोक के राज्य में बड़ी शान्ति थी। चोरी, डकैती, खून का मुकदमा कभी-कभी आता था। साल में एक वा दो ऐसे मुकदमें आये, तो बड़ा जुल्म हो गया, ऐसा समझा जाता था। महाराज अशोक के यहाँ एक ऐसी सभा थी, जो लोगों को उपदेश देती थी। और उपदेशक को सरकारी सहायता बहुत मिलती थी।

❁ भारत के पूर्व और पश्चिम का हिस्सा ऐसा है कि यहाँ दो बड़े जबर्दस्त संत हुए हैं। पूर्व में कबीर साहब और पश्चिम में गुरु नानक साहब। जिनके नाम पर आज जहाँ-जहाँ जाइये, वहाँ-वहाँ लोग मिलेंगे। इनका उपदेश बड़ा मीठा है, सार गर्भित है। कोई राजनैतिक में हाथ देकर उपदेश देकर संसार को बता दिया–"उपदेश भी करो और अपनी जीविका द्वारा अपना पालन भी करो। और जब तलवार लेनी पड़े, तो तलवार भी लो।"

क्योंकि एक देश पर जब दूसरे देश का आक्रमण होता है, तो तलवार नहीं लिया जाये, केवल बाबा जी बनकर बैठने से काम नहीं चलेगा। उसके सरिस हथियार लेना पड़ेगा। राजनीति ठीक नहीं रहेगी तो मनुष्य-मनुष्य को खा जायेगा। धन-दौलत सब खा जायेगा।

❁ मुसलमानी समय में फारसी बहुत प्रचलित थी। उसका समय न रहा। क्रिस्तानी समय आया तो अंग्रेजी का बड़ा प्रचार हुआ। अंग्रेज आया

तो जितना बन पाया, इस देश से सब उठाकर ले गया, उसको दया क्या है? महात्मा गाँधी जी ने और उनके साथी, जैसे पंडित जवाहरलाल नेहरू, डा0 राजेन्द्र प्रसाद जी, श्रीमती सरोजनी नायडू आदि ने मिलकर देश को स्वतंत्र किया। अब अपना देश स्वतंत्र है। यह देश अब सब तरह से तैयार है। इस देश में अणु-शक्ति आदि सब हैं। अपने देश में छः ऋतुएँ और बारह मास हैं। किन्तु सभी देश में ये छः ऋतुएँ नहीं हैं।

❀ सबलोगों को चाहिये कि विद्या अवश्य पढ़े। नागरी लिपि और भारती भाषा अवश्य पढ़िये। संसार में घूमने के लिए अंग्रेजी भी पढ़िये। वैसे अपने देश में सभी चीजें हैं। अपना देश इतना प्यारा होना चाहिये, जितना प्यारा अपना स्थूल शरीर नहीं है। कितने मनुष्य-शरीर, कितने पशु-शरीर, कितने वृक्ष आदि चले जाते रहे, फिर देश में होते भी रहे। इसी तरह संसार-चक्र चलता रहता है।

❀ आज अपने देश में कै गठरी सुख है ? लोग झूठ बोलते हैं, व्यभिचार करते हैं, चोरी करते हैं, नशा का सेवन करते हैं, हिंसा करते हैं और आपस में मेल नहीं रखते हैं। सरकार की ओर से जो काम करने दिया जाता है, उसमें भी ऐसी अनैतिकता से काम करते हैं कि मात्र अपने स्वार्थ को देखते हैं, इसके सिवा कुछ नहीं। कानून के डंडे से इसकी सम्भाल नहीं होगी। कोई चोर भी है और हाकिम के पास अपील हुई। लेकिन गवाही ठीक-ठीक नहीं हुई तो चोर भी छूट जाता है।

सदाचार का पालन कैसे होगा ? यदि साधु लोग इसके लिए परिश्रम करें तब होगा। जो साधु देश का अन्न खाता है और यह काम नहीं करता है, तो वह नैतिकता से नहीं खाता है। चाहे अपने ही उपजाकर खाओ, वह भी देश का ही अन्न खाते हैं। जब से कानून है, तबसे हैरानी है। कभी भी अनैतिकता, असज्जनता छुड़ा न सका। किन्तु साधु-संत के उपदेश में जो आते हैं, उनके संग से ये छूट जाते हैं। वह साधु अपने कर्त्तव्य से गिरा हुआ है, जो यह काम नहीं करता है। वह सरकार भी ठीक नहीं, जो इसकी सहायता नहीं करे।

❀ आज जो आपके देश में बहुत आवश्यक काम है, वह है—जैसा कि अभी ग्रामोफोन के रेकार्ड में सुना। "देश कुर्बानी माँगता है, अपने को

न्योछावर करने कहता है।" यह देश दूसरे पर चढ़ाई नहीं करता। हाँ, जो इस देश पर चढ़ाई करता है, उसको इस देश के लोग मार भगाते हैं। जो डरपोक है, वह लड़ नहीं सकता।

इस देश के पंजाब प्रान्त में बन्दावीर ने अपना पुरुषार्थ दिखलाया था। वह गुरु गोविन्द सिंह का शिष्य था। जब वह मुगल बादशाह से पकड़ा गया था तो लोहे के चूँटे को आग में तबाकर उसका मांस नोचा जाता था, फिर भी वह प्रसन्न था। बादशाह फर्रूख सियार ने पूछा–"तुम अभी भी प्रसन्न मालूम पड़ते हो, ऐसा क्यों ?" उन्होंने कहा–"हमारे यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता है, तुम शरीर को नोंचते हो, मुझे नहीं नोच सकते।" अध्यात्म-ज्ञान के बिना आदमी घबराता है, साहसी नहीं होता है। इसलिए अध्यात्म-ज्ञान होना आवश्यक है।

❀ सन् 1962 ई0 में जब भारत की सीमा पर चीनियों ने आक्रमण किया था, तो परमपूज्य गुरुदेव (महर्षि मेँही ँ परमहंस जी महाराज) ने कहा था–"आज या कल कभी-न-कभी इस शरीर का नाश हो जाना ध्रुव-निश्चित है। किन्तु लोक–कल्याणकारी कार्य में इस शरीर का बलि हो जाना अति श्रेयस्कर है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, हाथ-पैर काँपते हैं। फिर भी देश-रक्षा के निमित्त सरकार मुझे युद्ध में जाने के लिए कहें, तो मैं सहर्ष जाने के लिए तैयार हूँ। देश-रक्षार्थ युद्ध के लिए अपने देश के किसी भी व्यक्ति को मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। देशवासियों को तन, मन और धन से सदा सरकार की सहायता के लिए तत्पर, सावधान और क्रियाशील रहना चाहिये, जिससे देश का यह संकट टल जाये।"

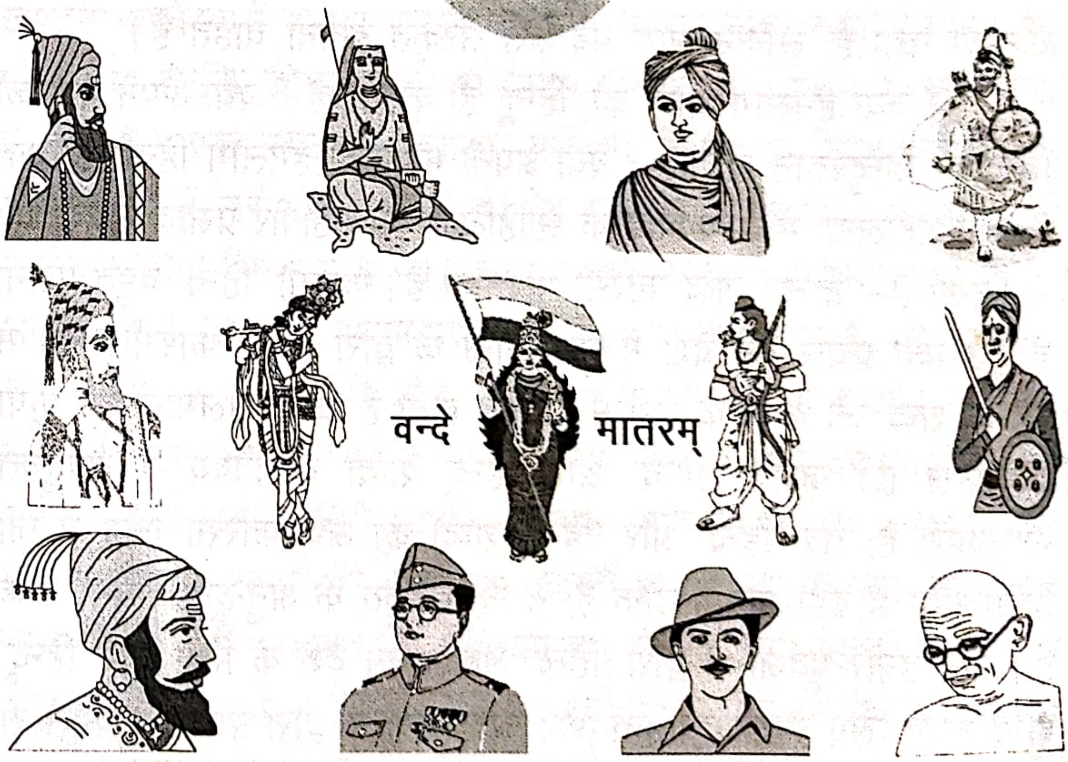
❀ देशवासियों को विदित है कि सम्प्रति देश पर एक महान् संकट आ पड़ा है और युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं और बरस रहे हैं। साम्राज्य-लोलुप चीन ने पंचशील पर पद-प्रहार कर भारत की उत्तरी सीमा पर महाभयंकर संघर्ष प्रारम्भ कर दिया है और शान्ति के अग्रदूत भारत की शान्ति को भंग कर दिया है।

कुछ महीने पूर्व देशवासियों ने अष्टग्रह के योग से उत्पन्न दुष्परिणामों से त्रस्त होकर कीर्त्तन, यज्ञ, पूजा, सत्संग आदि ईश्वर-भक्ति सम्बन्धी और दूसरे-दूसरे शुभ कर्मानुष्ठान किये थे कि उस दुष्परिणाम से बचा जा सके।

यह युद्ध-संकट-काल उस काल से भी अधिक घोर और दुष्परिणामी है।

अतः देश के सभी धर्मप्रेमियों तथा देशभक्तों से विनम्र निवेदन है कि जबतक देश पर से युद्ध के बादल नहीं टल जाते, तब तक प्रतिदिन परमात्मा से प्रार्थना करें कि भारत का यह संकट शीघ्रातिशीघ्र टल जाये और विश्व-बन्धुत्त्व का साम्राज्य स्थापित हो।





श्री सद्गुरवे नमः



हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान

❀ भारती भाषा को ही आप 'हिन्दी' कहते हैं। हमारे लिए हिन्दी शब्द अच्छा नहीं। मैं अपनी सरकार से निवेदन करता हूँ कि वे राष्ट्रभाषा का 'हिन्दी' नाम उड़ा दे। यह शब्द, उच्चता को बहुत गिरा देने वाला है। हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्ता'' ये शब्द अच्छे नहीं। भाषा का नाम 'हिन्दी।' 'हिन्दुस्तान' को हटाकर भारत किया गया, यह बहुत अच्छी बात। लेकिन 'हिन्दी' कैसे रख लिया गया, ताज्जुब है। हमारी भाषा का यह शब्द नहीं है। इसका अर्थ है–चोर, लुटेरा, लामजहब आदि। यह शब्द यदि संस्कृत होता और प्राचीन काल से अपने देश में आदरणीय रहता तो पुरोहितगण यजमानों को जम्बूद्वीपे-आर्यावर्ते-भरतखण्डे के पढ़ाने की जगह ''हिन्दुस्ताने'' पढ़ाते। गीता वा बौद्धग्रन्थों में कही भी 'हिन्दू' कहकर आर्य या भारतवासी को नहीं जनाया गया है, लेकिन लोग अब उसे संस्कृत बनाना चाहते हैं।

❀ क्या हमलोग अपने को 'हिन्दू' ही कहते रहें ? क्या अपने देश को हिन्द वा हिन्दुस्तान ही कहें ? क्या अपनी भाषा को हमलोग हिन्दी ही कहें ? 'साहित्यालाप' में उच्चकोटि के साहित्यिक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है–''हिन्द'' शब्द फारसी भाषा का है। फारसी 'हिन्द' बहुत पुराना है। उसका प्रचार इस देश में मुसलमानों के द्वारा हुआ। फारसी भाषा में 'हिन्द' शब्द जो काले के अर्थ में व्यवहृत होता है, वह मुसलमानों की कृपा का फल है। जबकि 'हिन्द' और 'हिन्दू' शब्दों के विषय में उपर्युक्त जानकारी है; तब 'हिन्द' और 'हिन्दू' शब्दों का अर्थ फारसी कोष में जो दिया गया है वही मानना ठीक है, न कि संस्कृत के अनुकूल मानना ठीक है। यदि हमारे पूर्वजों के द्वारा 'हिन्द' शब्द अपने देश के लिए और 'हिन्दू' शब्द अपने लिए रक्खे गये होते और मुसलमानों के द्वारा प्रचार के पहले से ही ऐसा हुआ होता तो 'हिन्द शब्द फारसी भाषा का है' कहने का कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता है। जिन लोगों ने हमारे देश के नामकरण के लिए फारसी का शब्द 'हिन्द' रखा और हमको 'हिन्दू' कहा, उन्होंने ही इन शब्दों

का प्रचार हमारे देश में किया तो उनका ही अर्थ न्यायतः संसार को उचित जँचेगा, न कि संस्कृत वाला अर्थ।

❀ लोग यह भी कहा करते हैं कि अफगानिस्तान, कन्दहार, ईरान, और अरब इत्यादि के रहने वाले 'स' का उच्चारण नहीं कर सकते। उन्होंने 'सिन्धु' नदी को 'हिन्द' कहा और उसी से 'हिन्दू' और 'हिन्दुस्तान' बने हैं। फारसी लिपि में चार 'स' हैं—से, सीन, शीन और साद। ये लोग 'सुभान अल्लाह' 'शख्स' 'साहब' 'गुलशन' और 'शाह' आदि बोल सकते हैं, पर 'सिन्ध' वे नहीं बोल सकते, यह कैसे विश्वास किया जाये? 'सिन्ध' को 'हिन्द' कहने से समस्त भारतवर्ष का नाम 'हिन्द' हो गया, पर सिन्ध प्रान्त का नाम सिन्ध ही रह गया। हमारे 'सप्ताह' को उन्होंने हप्ता कहा है। वे 'स' के बदले 'ह' कहा करते हैं। उसके पुष्टिकरण के लिए कुछलोग उपर्युक्त प्रमाण भी देते हैं, पर यह प्रमाण भी मुझे सन्तुष्ट नहीं करता।

❀ 'साहित्यालाप' में संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'हिन्द' और 'हिन्दू' शब्दों को संस्कृत शब्द सिद्ध किया गया है और अर्थ "हिंसा करने वाले को खण्डन करने वाले अथवा सन्ताप पहुँचाने वाला" कहा गया है। यह भी कहा गया है कि 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है। एक स्थल में उसका अर्थ भी लिखा है—"हीन लोगों पर दोषारोपन करें, उसे 'हिन्दू' कहते हैं। भेद इतना ही है कि यहाँ 'हिंसक' अर्थ न लेकर 'हीन' लिखा गया है। प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थ के अनुसार जब 'हीन' अर्थ किया है ; तब उस स्थान पर जो हिंसक अर्थ कहा गया है, तो बतलाना चाहिये था कि दोनों में से कौन-सा अर्थ शुद्ध और पूर्ण है ? और उद्धरणों के सहित उन प्राचीन ग्रन्थों के नामों को भी लिखकर बता देना चाहिए था। यह भी बता देना चाहिये था कि संस्कृत भाषा-विज्ञान के अनुकूल उन प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों की प्राचीनता कितनी है ? परन्तु ये सब कुछ नहीं बतलाये गये हैं। अतएव मैं 'साहित्यालाप' से भी हिन्द, हिन्दू, हिन्दुस्तान और हिन्दी के अर्थों के विषय में सन्तुष्ट नहीं हूँ। क्योंकि हमलोग मुसलमानों के राजत्वकाल से अपने को 'हिन्दू' कहते और कहलाते चले आ रहे हैं, इसीलिए हिन्दू, हिन्द, हिन्दुस्तान और हिन्दी शब्दों को महत्त्व देकर अपना लें यह मुझे उचित नहीं जँचता। मुझे तो काला, गुलाम और चोर आदि अर्थ

वाले शब्द से अपने को अलग रखना ही अच्छा मालूम पड़ता है। 'गुलाम' गुलाम का देश और 'गुलाम की भाषा' अर्थ वाले शब्दों से संसार की दृष्टि में अपने को हेयतर दर्शाना हमारे लिए अत्यन्त अयोग्य है।

❁ महाभारत-युद्धकाल में और उसके बाद 'महाभारत' पुस्तक बनने के समय तक तथा बौद्ध और जैनकाल तक भी हमारे पूर्वज अपने को 'हिन्दू' अपने देश को 'हिन्दुस्तान' और अपनी भाषा को 'हिन्दी' संभवतः नहीं कहते थे। कर्मकाण्ड में कुछ संकल्प कराते समय हमको हमारे पुरोहित 'आर्यावर्ते, भरत खण्डे' आदि पढ़ाते हैं, न कि हिन्दे वा हिन्दुस्ताने। इससे अच्छी तरह विदित होता है कि मुसलमानों के द्वारा 'हिन्द' वा 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दू' शब्दों के प्रचार के पहले हमारे पूर्वज अपने देश को 'हिन्द' वा 'हिन्दुस्तान' और अपने को 'हिन्दू' नहीं कहा करते थे। इस तरह जानकर अपनी भाषा को हम 'हिन्दी' कहें यह उचित नहीं जँचता। ऐसा कौन है जो अपने देश तथा अपनी भाषा के लिए घृणित और घोर अपमानजनक शब्दों को सहन करे और रक्खे रहे ?

❁ हमको हेय और नीच दृष्टि से देखने वाले लोगों द्वारा दिये गये जिन शब्दों से अपना घोर अपमान किया गया जानने में आता है, उन शब्दों का अर्थ आदरसूचक मानकर अपने लिए रहने देना मुझे उचित नहीं जँचता। साहित्यालाप में फारसी 'हिन्दी' बहुत पुराना है, लिखा गया है और फिर दूसरी जगह उस शब्द को संस्कृत का शब्द सिद्ध किया गया है। 'हिन्द' शब्द को फारसी कहना और फिर उसको संस्कृत बना लेना मुझे अयुक्त प्रतीत होता है। तब यह भी विश्वास होने लगता है कि 'हिन्दू' शब्द को भी इसी तरह संस्कृत बनाया गया है और बनाया जाता है।

❁ यदि हमारे पूर्वज अपने को 'हिन्दू' कहे होते और उनके लिए यह शब्द उसी काल में अधिक प्रचलित हुआ होता तो फारस वाले 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति 'हिन्दू' शब्द से किये होते। परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता है। साहित्यालाप को संस्कृत 'हिन्द' से 'हिन्द' शब्द की उत्पति सम्भव मालूम होता है। जबकि 'हिन्द' को संस्कृत भाषा का शब्द सिद्ध किया गया। है, तब फिर उसकी उत्पत्ति 'हिन्द' से फारस वाले किये हों और वह शब्द फारसी बन गया, इस प्रकार का कथन मुझे सन्तुष्ट नहीं करता। यदि हमारे पूर्वज

को 'हिन्दू' कहे होते तो अपने देश को भी 'हिन्दुस्थान' अवश्य कहते हिन्दुस्तान नहीं। देश के लिए जिन वीरों ने विदेशी शासन की दृढ़ और भारी जंजीर को तोड़ डाला है, उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं कि वे हिन्द, हिन्दुस्तान, हिन्दू और हिन्दी शब्दों को हटाकर अपने देश, अपने और अपनी भाषा के लिए दूसरे शोभनीय शब्दों का व्यवहार करें। जब तक मैं अपने विद्वानों और शासन-सूत्र-संचालकों द्वारा दूसरे शोभनीय शब्दों को स्थिर किया हुआ नहीं पाऊँगा, तब तक मैं अपने देश को 'भारत' अपने को 'भारतीय' और अपनी भाषा को 'भारती' कहा करूँगा।

❀ अगर नानक और कबीर संसार में नहीं आते और उधर दक्षिण में रामदास और एक कीर्त्तन करने वाले थे—तुकाराम जी, ये लोग नहीं होते, तो देश-भाषा में लोग कुछ नहीं जान सकते। अंग्रेजी बोलो, फारसी बोलो, चाहे कोई भाषा बोलो, लेकिन समझोगे अपनी भाषा में। समझा सकोगे अपनी भाषा में। अभी महाराज (बद्रिकाश्रम के शंकराचार्य जी) भी कहते थे अपनी भाषा में ही। संस्कृत भी ये बहुत जानते हैं। अपनी भाषा को भी जानो। जो अपनी भाषा में कमजोर रहेंगे, वे फिर समझेंगे किसमें ? आजकल की जो भाषा है, उसमें जानो। हो सकता है कि कोई ऐसा समय होगा, जिस समय में सब कोई अपने देश में संस्कृत ही बोलते होंगे। यह हो सकता है, लेकिन आज तो यह नहीं देखते। आज तो कोई संस्कृत पढ़ते हैं, तब जानते हैं। श्रीराम के दो बालक थे—लव और कुश। वाल्मीकि जी ने उनको सिखलाया था, तब वाल्मीकि रामायण का गान वे करते थे। आज जिस भाषा को जानते हो, उस भाषा में समझ लो अच्छी तरह से।


गुरुनानक देव जी




संत कबीर साह

श्री सद्‌गुरवे नमः

गौमाता की महिमा और इनसे लाभ

❀ खेती करने के लिए, हल चलाने के लिए बैल की आवश्यकता है। इसके लिए गौमाता की सेवा करो। अपने शरीर को पुष्ट बनाने के लिए गौ-दुग्ध चाहिये। गौ-बैल तथा गाय को बेचना। जो उसे बेचते हैं, गोया उसे मारनेवाले के लिए देते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये जैसे माता-पिता बूढ़े हैं, उनकी सेवा अवश्य करो। ऐसा नहीं कि उसका वध कर दो। उसी तरह बूढ़े गाय-बैल की सेवा करो। गौ की सेवा से सुख मिलेगा। जीवन भर सुखी रहने के लिए गौपालन करो।

❀ वेद में गौपालन की भी आज्ञा है और गौ-हिंसा मना है। गौ की तारीफ बहुत है। गौ का प्रत्यक्ष फल है। लोग माता का दूध केवल कुछ महीने तक पीते हैं, लेकिन गाय का दूध तो जीवन भर पीते हैं। इसीलिए गौ-पालन कीजिये, हिंसा नहीं कीजिये।

❀ गौवंश की वृद्धि चाहिये। बिना गौवंश से बैल-बछड़े नहीं। दूध और घृत भी नहीं। खेती के लिए बैल गौवंश से पाते हैं। खेत को उर्वरा बनाने के लिए खाद गौवंश से होता है। इसलिए वेद में आया कि गौवध नहीं करो–पालन करो। हमारे यहाँ बहुत गलत बात है–वृद्ध गाय-बैल को बेचते हैं। घर में बाप-माँ वृद्ध हो जाते हैं, तो उनकी सेवा करते हैं, मार नहीं देते हैं। इसी तरह बूढ़े बैल, बूढ़ी गाय की सेवा करो। प्राचीन काल में जो बूढ़े पिता, बूढ़ी माता की सेवा नहीं करे, तो उसको दंड होता था।

❀ देश में खेती के बिना सब रोजगार समाप्त हो जायेगा। खेती से अन्न उपजता है। अन्न को शास्त्रों में ब्रह्म कहा है। खेती के लिए गौपालन करो। गौपालन से खाद मिलेगा। गाय का गोबर, गोंत उत्तम खाद है। माता का दूध थोड़े दिन पीते हैं। गाय का दूध जीवन भर पीते हैं। गाय के बछड़े को हल में जोतते हैं। इसलिए गौपालन भी करो। देश में गौपालन का ख्याल बहुत कम हो गया है। इसलिए खेती में तरक्की नहीं हो रही है। खेती खूब करो। खेती के लिए गौमाता की सेवा अवश्य करो।

❀ अगर कोई बहिला गाय को बेचता है, यह देश–हित का काम नहीं करते हैं। कम-से-कम वह गाय गोबर-गोंत तो देती है। उससे खाद तो बनेगा ही। बूढ़े गाय-बैल को मत बेचो। उसको बेचोगे तो निन्दा करेंगे। कभी–न–कभी शरीर भी छूट जायेगा। मनुष्य के शरीर के हाड़-चाम किसी काम में नहीं आते, लेकिन गाय-बैल के हाड़-चाम से बहुत काम करते हैं। गाय मरते-मरते भी नफा देकर जाती है। इसलिए गाय का पालन अवश्य करो।

❀ बचपन से ही दूध की आवश्यकता होती है और जीवन के अन्त तक दूध की आवश्यकता रहती है। गौ के दूध की बराबरी में और कोई दूध नहीं। माता का दूध थोड़े ही काल तक और गौ का दूध जीवन भर। इसलिए 'गौ माता' कहते हैं। लोगो! गौ-हिंसा मत करो। लोगों से लड़ो-झगड़ो नहीं, अपने यहाँ गौ का पालन अच्छी तरह करो।

❀ गौ माता को पालें। गौ बूढ़ी हो जाये, बैल बूढ़ा हो जाये, उसका पालन करें-सेवा करें। कभी–न–कभी उनका जीवन समाप्त होगा-मर जायेंगे, बेचो मत। यदि कोई उस तरह के बैल-गाय को बेचता है, तो उसको लेकर हिंसक हिंसा करते हैं। इस हिंसा-कार्य में मदद मत करो।

हमारे कितने महात्मा लोग इसके लिए उपवास किये और चाह रहे हैं कि ऐसा कानून हो कि गौ-हिंसा नहीं हो। हमारे देश का राज्य सब धर्मों का राज्य है, बहुत धर्म के लोग इस देश में बसते हैं। गाय-बैल बेचना ही हो तो उनके हाथ बेचिये जो कोई उनको हल में जोतें और उन गायों से दूध प्राप्त करें। और ऐसे को बेचिये कि जो हल में चलने-काबिल हो–दूध देने काबिल हो। बहिला गाय को मत बेचिये। उसके गोबर-गोंत से आपके खेत की खाद होगी। गौ से दूध भी मिलेगा, गोबर और गोंत तो आपको मिलेगा ही, जो खाद होगी। वेद में आया है कि इनकी हिंसा नहीं करो। गौ-हिंसा सुनकर हमलोगों का खून खौल जाता है, बूढ़े बैल, बूढ़ी गाय को बेचकर गौ-हिंसा में मदद नहीं कीजिये। सारे संसार से गौ-हिंसा दूर हो जाये, असम्भव है। लेकिन यही एक देश है कि जहाँ के लोगों का गौ की हिंसा सुनकर रक्त खौल जाता है, लड़ाई-झगड़ा होता है। यहाँ ईसाई, इस्लाम पारसी-सभी ध र्म के लोग हैं, केवल वैदिक धर्म के ही लोग नहीं हैं; इसीलिए हमारे ऊपर

के लोगों को यह विधान बनाने में देर हो रही है कि "गौ-हिंसा" बन्द हो। यद्यपि वे लोग भी गौ-हिंसा करना-कराना नहीं चाहते। सबके सब गौ-हिंसा नहीं करने के पक्ष में आ जायें। यदि समझ लें तो ठीक है—लड़ना-झगड़ना मेरे विचार में नहीं है। जो महात्मा लोग हठकर रहे हैं वे भी कुछ सोच-समझकर ही कर रहे हैं। गौ-पालन अवश्य करो। वह कभी भी मारने योग्य नहीं है।

ऋग्वेद-संहिता

हिङ कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मन साभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय।।27।।

जिस प्रकार अपने-अपने बछड़े की प्यारी गौ अपने वत्स के प्रति प्रेमहिंकार शब्द पूर्वक उसको चूमती हुई चित्त से स्नेहपूर्वक गृह के बछड़े के समीप आ जाती है और वह मनुष्यों के अन्न, दुग्ध, घृत आदि सब ऐश्वर्यों और बाल-वृद्धादि सबको पालनेवाली होती है। वह कभी वध न करनेयोग्य एवं सदा पालनेयोग्य होकर स्त्री-पुरुषों के लिए दूध प्रदान करती है और वह बड़े भारी सौभाग्य की वृद्धि के लिए वृद्धि को प्राप्त हो। उसी प्रकार समस्त लोकों में बसनेवाले जीवों को पालन करनेवाली और ज्ञानपूर्वक बसे हुए इस लोकरूप वत्स को प्रेम चाहती हुई, प्रभु की परमेश्वरी शक्ति वेद-द्वारा ज्ञानोपदेश करती हुई, साक्षात् दिखाई देती है। वह अविनाशिनी होने से 'अघ्न्या' है। वह इन्द्र, वायु और आत्मा और मन दोनों को पुष्टिप्रद सामर्थ्य प्रदान करती है। उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए सबसे बढ़कर है और वह हमें बढ़ावे।

भगवान श्री कृष्ण की सेव्या



गौ माता





श्री सद्गुरवे नमः



विज्ञान और वैज्ञानिक



❀ आज लोग भौतिक विज्ञान की ओर बहुत झुके हैं। इसमें बहुत इज्जत होती है ; बहुत पैसे भी मिलते हैं। अभी सुना कि 'बिनु विज्ञान कि समता आवै।' समता=एकीभाव। आज तो भौतिक विज्ञान बढ़ा है, उसने क्या किया है? एक भाव को मिलाया नहीं, टुकड़ा किया है। जितना भौतिक विज्ञान बढ़ा है, उतना ही वह नाशकारी बना है। यह है भौतिक विज्ञान, एक क्षण में क्या-से-क्या नाश कर दे। संसार के पदार्थों को विशेष रूप से जानना भौतिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान में समता नहीं आई है और न आ सकती है। भौतिक विज्ञान की बढ़ती हुई है; लेकिन अन्त नहीं हुआ है सब-के सब जिस मूल पदार्थ पर अवलम्बित हैं; वे राम हैं, परमात्मा हैं, वे अध्यात्म-विज्ञान हैं। इसके लिए स्कूल, कॉलेज जाने की जरूरत नहीं है। अपने अन्दर अभ्यास करने की जरूरत है। भौतिक विज्ञान में समता आयेगी, इसका विश्वास नहीं किया जा सकता है। आज तक जितनी कोशिश हुई है, इसमें थोड़ी-थोड़ी सफलता मिलती जाती है। भौतिक विज्ञान में मारने और नाश करने की बात तो बहुत आयी है, लेकिन बचाने की नहीं।

❀ वही सत्-चित् आनन्द का पुंज, अजन्मा, विज्ञान-स्वरूप, बल का स्थान राम है, जिस राम का जन्म नहीं हुआ, जो विज्ञान-स्वरूप है। यहाँ के वैज्ञानिक लोगों ने बड़ी-बड़ी चीजों का निर्माण कर संसार को दिखलाया है। परमात्मा भी बड़ा वैज्ञानिक है। वह विश्व की रचना करता है, उसके उपादान को भी उत्पन्न करता है। भौतिक वैज्ञानिक बिना उपादान के कुछ नहीं बना सकता। ईश्वर उपादान को भी उत्पन्न करता। बाबा नानक ने कहा है–

''तदि अपना आपु आप ही उपाया।
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया।।''

ईश्वर में भी उतनी ही शक्ति मानें कि बिना उपादान के वह कुछ बना नहीं सकता, तो वह मनुष्य-वैज्ञानिक से विशेष नहीं हो सकता। ईश्वर प्रकृति को भी बनाता है, वह किसी अंश में कमजोर नहीं है।

विज्ञान का अर्थ है–विशेष ज्ञान। लेकिन आजकल यह प्रचलित है कि कुछ सामान लेकर जो यंत्र बनाते हैं, वह विज्ञान है। वैज्ञानिक ऐसे-ऐसे बम-तोप आदि बनाते हैं कि तीन, चार वा पाँच बमों से ही संसार को खत्म कर दे। लेकिन ऐसा एक भी यंत्र नहीं बन सका है कि मृतक को जीवित किया जा सके। कहानी है कि भगवान् श्रीराम के दल के जो लोग मारे गये, उन लोगों को अमृतवर्षा करके श्री राम ने जिला दिया। यह भी विज्ञान है। ईश्वर महावैज्ञानिक हैं। भौतिक वैज्ञानिक संसार के तत्त्वों को लिये बिना कुछ बना नहीं सकते। लेकिन ईश्वर ऐसा वैज्ञानिक है कि बिना उपादान के ही सृष्टि करता है।

ईश्वर विज्ञान-स्वरूप हैं। मनुष्य केवल भौतिक विज्ञान में लगे हैं, जो इसके सामने अत्यन्त अल्प है। भौतिक वैज्ञानिक उस में भी पूर्ण नहीं हुए हैं। भौतिक विज्ञान का जो कुछ विस्तार है, वह बहुत अल्प है। एक जमाना ऐसा था कि लोग वाण चलाकर उसको वापस भी कर लेते थे। अश्वत्थामा ने बहुत उपद्रव किया, तो पाण्डव लोग उसके पीछे पड़े। अश्वत्थामा ने अपनी जान बचाने के लिए एक अस्त्र छोड़ा। उस अस्त्र के जवाब में अर्जुन ने भी अस्त्र छोड़ा। दोनों अस्त्र आपस में लड़ने लगे, जिससे अग्नि की वर्षा होने लगी। मुनि लोग आये और दोनों को अपना-अपना अस्त्र लौटाने कहा। अर्जुन ने अपना अस्त्र लौटा लिया, लेकिन अश्वत्थामा लौटाने की विद्या नहीं जानते थे। आज एक बम छोड़ दिया जाये, तो उसको लौटाने और उसके संहारकारी परिणाम से लोगों को बचाया जाना असम्भव हो जायेगा। लेकिन उस समय सम्भव था और अर्जुन ने करके दिखा दिया। श्रीकृष्ण और मुनियों की शक्ति से अश्वत्थामा के उस वाण की शक्ति कम कर दी गई और उसकी महिमा रखने के लिए पाण्डवों का पोता परीक्षित जो गर्भ में था, मारा गया। पीछे जन्म लेने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको जिलाया। आज का विज्ञान अभी बहुत बच्चा है। न मालूम क्या होगा ? परमात्मा बहुत बड़ा वैज्ञानिक हैं। उसने सारी सृष्टि को साजा है।

विज्ञान को दो भाग कर सकते हैं–भौतिक और आध्यात्मिक। अभी तो भौतिक विज्ञान का ही अन्त नहीं हुआ है, अध्यात्म विज्ञान तो बहुत दूर है। आज के भौतिक वैज्ञानिक अध्यात्म-विज्ञान के लिए कहते हैं कि उससे

ऐसा नहीं हो सकता जैसा कि भौतिक विज्ञान से। लेकिन परमात्मा विज्ञान-स्वरूप होते हुए सभी शक्ति के भण्डार हैं। वे व्यापक हैं और व्याप्य भी हैं। जिसमें घुसा जाये, वह व्याप्य और जो घुसे, वह व्यापक है। परमात्मा में सब कुछ समाया हुआ है तथा परमात्मा सबमें समाये हुए हैं। वे अनन्त हैं, पूर्ण हैं, बल के घर हैं।

❀ इस देश में ज्ञान और विज्ञान-दोनों प्रचलित हैं। ज्ञान अर्थात् जानना और विज्ञान अर्थात् विशेष जानना। क्या जानो ? क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान जानो। क्षेत्र से क्षेत्रज्ञ को फुटाकर जानना ज्ञान है और अभ्यास करके पहचान कर जानना विज्ञान है। मैं शरीर नहीं, इन्द्रिय नहीं, अंतःकरण नहीं—ऐसा विचारना परोक्ष ज्ञान है। साधन द्वारा उसको प्राप्त करना अपरोक्ष ज्ञान है। यह अध्यात्म-विज्ञान है, आधिभौतिक विज्ञान नहीं। अध्यात्म-विज्ञान का अन्त ईश्वर साक्षात् में है। भौतिक विज्ञान का अन्त अभी तक नहीं हुआ है। आज जो भौतिक विज्ञान की उन्नति सुनते हैं, यह इतना ही है, ऐसा नहीं। अपने देश में भौतिक विज्ञान की उन्नति पहले नहीं थी, ऐसी बात नहीं। हम दोनों विज्ञानों को अपनावें। यदि दोनों नहीं अपनावें तो अध्यात्म-विज्ञान को अवश्य अपनावें, नहीं तो मनुष्यता नहीं रहेगी, दिव्य जीवन नहीं होगा। अध्यात्म-विज्ञान में रहने से ही दिव्य जीवन होता है।

❀ आजकल विज्ञान का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है; किन्तु उनसे पूछो, तो वे कहते हैं—अभी तो समुद्र के किनारे का एक बालू-कण ही दीख पड़ा है। बुद्धि अभी कितनी विकसित होगी, ठिकाना नहीं। किन्तु बुद्धि अपरिमित नहीं हो सकती। परिमित बुद्धि में अपरिमित को अँटा नहीं सकते। आज की बुद्धि जितनी दूर तक गई, उतनी ही रहेगी या उससे भी अधिक बढ़ेगी ? यदि कोई योगेश्वर है, तो बता दे कि बुद्धि कितनी बढ़ेगी ? आजकल हमारे देश में अणुबम की खोज हो रही है। दूसरे देश के लोग इसको जानते हैं। यदि तुम जानते हो, तो बता दो, तो समझूँ कि इतना ज्ञान तुमको है। किन्तु इतना भी ज्ञान नहीं है। दूसरे देश के लोगों को बम बनाते देखकर गौरव करते हो कि अणुबम हमने बनाया। तारे, चाँद, सूर्य सभी हमने बनाये ? दूसरे देश के लोगों से हम डरते हैं कि कहीं बम गिरा दे, तो हमारा सर्वनाश हो जायेगा; और हम गौरव करते हैं कि ये सब हमने बनाये।

श्री सद्‌गुरवे नमः



नश्वरता



जो बना सो कभी-न-कभी बिगड़ेगा यह असम्भव बात नहीं। ऐसी चीज को देखते हैं जो थोड़े समय में बदल-बदल जाती है। कोई ऐसी चीज भी है जो जल्दी नहीं बिगड़ती तो इसके लिए भी आप विचारते हैं कि यह कभी-न-कभी बदल जायेगा। स्थूलाकाश का विकाश सूक्ष्माकाश से हुआ है। यह स्थूलाकाश बदल कर सूक्ष्माकाश में रहेगा और यह भी नहीं रहेगा।

विनाश दो प्रकार के हैं। एक केवल बदल जाये परन्तु अत्यन्ताभाव नहीं हो। जैसे आपका शरीर बदलता है। बचपन से अभी तक है, बदला है किन्तु अत्यन्ताभाव इसका नहीं हुआ है। शरीर के मरने और जलाये जाने पर भी इसका अत्यन्ताभाव नहीं होता ; किसी-न-किसी रूप में इसके भौतिक तत्त्व रहते ही हैं। इसलिए उसका रहना हुआ। बदलते रहने के कारण असत् कहा गया। जैसे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी ने कहा है कि–"कोई झूठ बोलता है, दूसरा कहता है कि वह झूठा है; इसका अर्थ यह नहीं कि वह आदमी है ही नहीं। है, किन्तु वह अपना वचन बदलता रहता है इसलिए वह झूठा है"। समर्थ रामदास के दासबोध नाम्नी पुस्तक में है कि सौ वर्ष केवल धूप-ही-धूप होगा। यह भूमण्डल जलकर चूना हो जायेग। सौ वर्ष तक मूसलाधार जल की वर्षा होगी। जैसे इन्द्र ने व्रज पर जल-वर्षा की थी, उससे भी विशेष मूसलाधार वर्षा होगी। इस प्रकार वह चूना गलकर पानी हो जायेगा। तब सौ वर्ष तक केवल प्रचण्ड पवन चलेगी, तब सब पानी कण-कण होकर पवन स्थिर अग्नि में लय हो जायेगा। अग्नि हवा में लय हो जायेगी, हवा आकाश में लय हो जायेगी, आकाश अहंकार में, अहंकार महतत्त्व अर्थात् बुद्धि में, बुद्धि प्रकृति में लय हो जायेगी। और प्रकृति ईश्वर में लय हो जायेगी।"

क्या अन्तिम के लय-स्थान के अतिरिक्त और पदार्थों को आप ईश्वर मानते हैं? ये सभी नाशवान पदार्थ हैं। परमात्मा भी यदि नाशवान हो तो उसकी भक्ति करके क्या लाभ ? सभी धर्म के लोग परमात्मा को अनाश मानते हैं। गुरुनानक का वचन है–

"अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल ना करमा।" जो काल की मर्यादा के बाहर है, उसका नाश कैसे हो सकता है ?

❀ बहुत दिनों के बाद ब्रह्मा भी नहीं रहते। ब्रह्मा के दिन में सृष्टि होती है और रात में विनाश। इसी तरह सृष्टि चली आ रही है। कब तक इस तरह बदलती रहेगी, ठिकाना नहीं। कोई कहते हैं कि जिससे यह सृष्टि होती है, वह भी नहीं रहेगी। सृष्टि प्रकृति से होती है। प्रकृति भी कभी-न-कभी लय हो जायेगी। कहते हैं कि जो जिससे उपजा है, वह उसी में समा जायेगा। सृष्टि में कोई भी अविनाशी नहीं है। अगर कोई ऐसा है, तो ईश्वर है। ईश्वर के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं कि जिसमें परिवर्त्तन न हो और वह किसी आधार पर नहीं रहे।

❀ विनाश दो तरह के होते हैं–एक परिवर्तन और दूसरा अत्यन्ताभाव। यह तमोगुण का काम है। जिनको हम नहीं देखते हैं, उनको भी हम मानते हैं। इसके लिए भी यही बात है। वशिष्ठ जी ने श्रीराम जी से कहा कि एक-एक ब्रह्माण्ड में तीन-तीन देव हैं–ब्रह्मा, विष्णु और शिव। उन्होंने एक कथा कही कि मैंने ब्रह्मा जी से पूछा कि एक आप ही ब्रह्मा हैं कि और भी हैं ? ब्रह्मा जी ने कहा–

अनेक हैं। मैंने कहा–"कैसे मानूँ ?" तो ब्रह्माजी ने मुझसे कहा–"मैं रास्ता बता देता हूँ। तुम जाओ।"

वशिष्ठ जी को ब्रह्मा जी ने रास्ता बता दिया। वे उस रास्ते से चले। रास्ते में एक नारी मिली, जो रो रही थी वशिष्ठ जी ने उससे रोने का कारण पूछा, तो उसने बताया कि ब्रह्मा जी ने मुझसे विवाह करने का वचन दिया था; परन्तु अब वे इसके लिए तैयार नहीं हैं। वशिष्ठ जी ने कहा कि मेरे पिता तो झूठ नहीं बोल सकते। नारी बोली–वे दूसरे ब्रह्मा हैं। यह सुनकर वशिष्ठ जी उस ब्रह्मा के पास गये और वचन देकर पुनः विवाह नहीं करने का कारण उनसे पूछा। यह ब्रह्मा बोले "इस ब्रह्माण्ड का अभी प्रलय होने वाला है। इसके साथ मेरा भी प्रलय हो जायेगा। इसीलिए मैंने अस्वीकार किया है। आप शीघ्र यहाँ से भागिये, नहीं तो मेरे साथ आपका भी प्रलय हो जायेगा।" यह सुनकर वशिष्ठ जी शीघ्रता से उस ब्रह्माण्ड की सीमा से बाहर अपने ब्रह्माण्ड में चले आये। यहाँ आते ही उन्होंने देखा कि वह दूसरा ब्रह्माण्ड

शीघ्र ही उस ब्रह्मा सहित प्रलय को प्राप्त हो गया।

❁ वैज्ञानिक कहता है कि सूर्य की ताकत में भी कमी आ गई है। पहले जैसी वर्षा होती थी, अब वैसी वर्षा कहाँ ? सूर्य की शक्ति घटते-घटते घट जायेगी और महाप्रलय हो जायेगा।

❁ भरम-भाँड़े यानी संसार को वेदान्त में भ्रम कहा है। वेदान्त में "ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या" कहा है। वेदान्त का सिद्धांत है आखिर को नाश होगा। नाश कब होगा ठिकाना नहीं; लेकिन बदलते तो देखते हैं। नदी बदलती है, मनुष्य का शरीर बदलता है।

❁ प्रकृति त्रयगुणमयी है। उत्पादक-शक्ति, पोषक-शक्ति और विनाशक-शक्ति ये तीनों प्रकृति में लय होंगे। प्रकृति दो हैं। एक तो जड़ चीजों के सम्बन्ध से जो है, वह अपरा-प्रकृति है। अपरा-प्रकृति परा-प्रकृति में लय हो जायेगी। परा-प्रकृति चली जायेगी ब्रह्म में जहाँ से वह निकली है। उसको ईश्वर कहो, खुदा कहो, गॉड कहो।

❁ हमलोगों का शरीर और यह बाहर का संसार परिवर्तित-रूपान्तरित होते रहते हैं। रूपान्तरित होते-होते पत्थर भी खराब हो जायेगा। पहाड़ और वनस्पति भी खराब हो जायेंगे। हम सबलोगों के शरीर भी एक-न-एक दिन धरती पर गिरेंगे, फिर नहीं उठेंगे, जला दिये जायेंगे।

❁ **"लव निमेष परमानु जुग, बरष कलप सर चंड।**
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड।।"

काल जिसका धनुष और लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प प्रचण्ड वाण है, उन रामजी का भजन हे मन!तू क्यों नहीं करता ?

आँख की पलक गिरने का नाम है लव। 60 लव=एक निमेष; 60 निमेष=1 परमाणु; 60 परमाणु=एक पल; 60 पल=1 घड़ी ; 60 घड़ी=8 पहर वा 1 दिन-रात वा 24 घंटे; 30 दिन-रात=1 महीना ; 12 महीने =1 वर्ष। इसी वर्ष से 17 लाख 28 हजार वर्ष सत्ययुग की आयु, 12 लाख 96 हजार वर्ष त्रेता की, 8 लाख 64 हजार वर्ष द्वापर की और 4 लाख 32 हजार वर्ष कलियुग की आयु है। इन चारो युग के एक-एक बार बीतने का नाम 1 चौकड़ी है। 1 हजार चौकड़ी युग=1 कल्प=ब्रह्मा का 1 दिन-रात। इस दिन से 30 दिनों का 1 एक महीना, ऐसे 12 महीनों का 1 वर्ष, ऐसे 100 वर्ष पर्यन्त

ब्रह्मा जीते हैं। ब्रह्मा की आयु के नाश होने पर महाप्रलय कहा जाता है। एक ब्रह्मा की आयु के समान समय को महाकल्प कहते हैं।

बाबा देवीसाहब की वाणी

सन्तों का आम उपदेश यह है कि अन्दर या बाहर जो कुछ कि निगाह में आता है, जहाँ तक कि रूप है, कुल मायावी और नाशवान् है, और इनके बाद एक ऐसी जगह है कि न तो वह कभी पैदा हुई है और न कभी नाश होती है। यही सत्य है। इसका नाश नहीं होता। इसका न कुछ रंग है और न कुछ रूप है और न कोई खास नाम है; लेकिन यह कुछ है, जो ख्याल और समझ में आता है, इसलिए वह भी नाम के शब्द से बोले जाने का अधिकारी है जीव इसका अंश है, क्योंकि इसका भी नाश नहीं होता।

श्रीमद्भगवद्गीता

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।।
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।।

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं।
सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्माके दिन के प्रवेश काल में अव्यक्त से उत्पन्न होते है। और ब्रह्म की रात्रि के प्रवेश काल में उस अव्यक्त में ही लीन हो जाते है। परन्तु उस अव्यक्त से भी परे दुसरा जो सनातन अव्यक्त भाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतों के नष्ट होने पर (भी) नष्ट नहीं होता।

श्री सद्गुरवे नमः



मृत्यु और उसका रहस्य



❀ मेरी जब नयी उम्र थी और घरबार को छोड़कर साधुरूप धारण कर लिया था, तब आरा जिले में एक जगह गया। वहाँ एक साधु रहते थे। वहाँ कुछ लोगों ने मुझे बुलाया और मुझसे पूछा कि आपने नयी उम्र में क्यों साधुवेश लिया? मैंने कहा–मैं अंग्रेजी में पढ़ता था। उसमें प्यारे चरण मुखर्जी की लिखी हुई एक पुस्तक थी, जिसका नाम था–**First Book of Reading.** आरंम्भिक अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए यह एक किताब थी। उसमें लिखा था–**"All men must die."** (फर्स्ट बुक ऑफ रीडिंग) इसी वाक्य ने अंकुश का काम मेरे लिए किया। जैसे अंकुश की मार से हाथी सचेत हो जाता है, उसी तरह मैं भी सचेत हो गया। संसार का सुख तब तक है, जब तक मृत्यु नहीं हुई है।

❀ मैं बौद्धकालीन एक इतिहास सुनाता हूँ। उस समय भगवान् बुद्ध काशी में विराजते थे। वहाँ की एक महिला का इकलौता पुत्र मर गया था; किन्तु उसको यह विश्वास नहीं होता था। वह लोगों से कहती फिरती कि मेरा पुत्र बीमारी से बेहोश हो गया है, इसको होश में ला दो। लोग समझाते कि यह मर गया है, फिर भी उसे विश्वास नहीं होता था। अन्त में लोगों ने राय दी कि देखो, तुम्हारे पुत्र को कोई भी होश में नहीं ला सकता। हाँ! यहाँ एक बहुत बड़े महात्मा-बुद्ध भगवान् आये हुए हैं, उनके पास जाओ तो वे तुम्हारे पुत्र को होश में ला सकते हैं। वह महिला अपने मृत-पुत्र को लेकर भगवान् बुद्ध के पास गई और बोली–"भगवन् ! मेरा इकलौता पुत्र बीमारी से बेहोश हो गया है। लोगों ने बताया कि आप इसे होश में ला सकते हैं। इसलिए मैं आपके पास आयी हूँ, आप इसे होश में ला दें। भगवान् बुद्ध समझ गये कि यह माया-मोहित, ममता-ग्रस्त महिला यह नहीं समझ रही है कि उसका पुत्र मर गया है। बुद्ध ने कहा–हाँ, यह होश में आ सकता है; लेकिन तुम इस नगर में से किसी के यहाँ से एक मुट्ठी सरसों के दाने ले आओ। "एक मुट्ठी सरसों के दानें"–सुनकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि काशीनगरी में कहीं-न-कहीं सरसों के दानें अवश्य मिलेंगे और मेरा बेटा

चंगा होगा। वह वहाँ से चलना ही चाहती थी कि भगवान् बुद्ध ने कहा–"सुनो, सरसों के दानें अवश्य लाना; किन्तु स्मरण रहे कि ऐसे घर से सरसों के दानें लेना, जिस घर में किसी की मृत्यु नहीं हुई हो।" वह बेचारी महिला सरसों के लिए काशी में घर-घर फिरने लगी। सरसों के दानें तो उसे मिल जाते; किन्तु जब वह पूछती कि "कहीं, तुम्हारे यहाँ किसी की मृत्यु तो कभी नहीं हुई है ?" तो लोग झुँझला उठते और कहते–"पगली! ऐसा भी कहीं होता है कि कभी किसी के घर में कोई मरा नहीं हो ?" इस प्रकार घूमती हुई समूची काशी नगरी छांन डाली, किन्तु कहीं भी उसे ऐसा घर नहीं मिला, जिस घर में कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो। अन्त में उसको विश्वास हो गया कि मेरा पुत्र भी मर गया है। ऐसा कोई घर नहीं, जिस घर में मृत्यु नहीं हुई हो जन्म लेना और मरना; इस संसार का धर्म है।

❁ यह शरीर छोड़कर जाना है। लेकिन पता नहीं, कहाँ जाना है। जाना जरूर है। कहाँ जाना है? पता नहीं। रास्ता मालूम नहीं, स्थान मालूम नहीं, कितनी चिन्ता की बात है ?

❁ सरकारी विद्यालय में जो ज्ञान है, उससे कोई हाकिम, कोई वकालत आदि करते हैं। सन्तमत कहता है–हाकिम भी बनिये, वकालत भी कीजिये; लेकिन ख्याल रखिये कि एक-न-एक दिन कभी-न-कभी मेरा और सब लोगों के शरीर भी छूट जायेंगे। जैसे ही शरीर का सम्बन्ध छूट गया तो संसार में जो कुछ कमाया है, वह सब छूट जायेगा।

❁ **"नानक जीवतिया मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाइऐ।**
बाजे बाझहु सिंज्ञी बाजै तउ निरभउ पदु पाइऐ।।"

आप कहेंगे जीते जी मर जाना तो शाप है, संतलोग भले ही ऐसा कहते हैं, परन्तु हमलोगों के लिए यह उत्तम बात नहीं है। कबीर साहब ने कहा है–

"जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द।।"

छान्दोग्योपनिषद् में है कि ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर मरो तो कोई कष्ट नहीं होता है। मरते समय बहुत कष्ट होता है। किसी मरने वाले के निकट जाकर उन्हें देखिये कि उनका चेहरा कैसा-कैसा होता है। उन्हें कष्ट हो

रहा है, उनके चेहरे से ऐसा विदित होगा। जन्म होता है तो मृत्यु अवश्य होगी।

"अंड कटाह अमित लयकारी।
काल महा दूरति क्रम भारी।।"

शरीर बहुत दिनों तक रहने पर भी कभी अवश्य नाश होगा। ऐसी मौत से मरो कि फिर जन्म न हो। असली मरना यही है। यह शाप नहीं है। यह बहुत कुशल की बात है कि ऐसा मरो कि फिर नहीं मरोगे, पुनः दुख में नहीं आओगे। किन्तु ऐसा मरना अपने जीवन में ही हो जाये।

पंजाब के स्वामी रामतीर्थ ने कुछ दिन विद्याध्ययन किया, उसके साथा ही उन्होंने योगसाधन भी किया। उनके गुरु बड़े अच्छे थे। कुछ दिनों तक वे प्रोफेसर थे, फिर घर छोड़कर संन्यासी हो गये। वे जापान गये। वहाँ उन्होंने व्याख्यान दिया। वे अपने को राम बादशाह कहा करते थे और पास में एक पैसा भी नहीं रखते थे। वे जापान से अमेरिका गये। जापानी ने अमेरिका तक के जहाज का भाड़ा दे दिया था। अमेरिका पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने पूछा कि तुम कितने रुपये साथ लाये हो जो यहाँ उतरोगे। उन्होंने कहा—मेरे पास रुपये नहीं है। अमेरिकन ने कहा—तब तुम यहाँ उतर नहीं सकते। उन्होंने कहा—अवश्य उतरूँगा। अमेरिकन ने पूछा तुम कौन हो ? उन्होंने कहा—मैं राम बादशाह हूँ। पुनः अमेरिकन ने पूछा—कौन राम बादशाह, जिन्होंने भारत से जापान पहुँचकर व्याख्यान दिया है ? उन्होंने कहा—हाँ, वही राम बादशाह। वहाँ के एक और अमेरिकन सज्जन ने कहा कि इन्हें जहाज से उतरने दो। ये जब तक अमेरिका में रहेंगे तब तक मैं इनका सब खर्च अपने ऊपर लेता हूँ। रामबादशाह हँसे और बोल उठे-खाजाना तो बादशाह के खजांची के पास में रहता है, खुद बादशाह के पास नहीं। उन सज्जन की ओर बताकर उन्होंने कहा—देखो ये मेरे खजांची हैं। वहाँ के लोगों ने कहा कि आप विज्ञापन छपवाकर वितरण कराइये कि लोग आकर आपका व्याख्यान सुनें। राम बादशाह ने कहा कि मैं इस तरह विज्ञापन वितरण नहीं करता हूँ। शहर के अच्छे-अच्छे डॉक्टर मेरे पास आवें। सिवाय उनके और दूसरे कोई न आवें। वे ही डॉक्टर मेरे विज्ञापन होंगे। ऐसा ही हुआ। डॉक्टरों से उन्होंने अपने शरीर की जाँच करवाई। डॉक्टरों ने अपनी

जाँच में उनके शरीर को बिल्कुल मृतक पाया। दिल का धड़कन और नाड़ियों के स्पन्दन सभी बन्द थे। फिर वे जिन्दा कैसे हैं, यह देखकर डॉक्टर घबराये। राम बादशाह ने कहा कि शरीर सब दिन मृतक है। मैं ज़िन्दा था, अभी जिन्दा हूँ और जिन्दा रहूँगा। यही भारतीय योग-विद्या है।

जीते जी मर जायें, यह बड़ी खुशी की बात है। शरीर मर है और जीवात्मा अमर है, यह कभी नहीं मरता । जीवन काल में शरीर से संग छूट गया, फिर मरने पर संग नहीं हो सकता ।

अभिमन्यु के मरने पर युधिष्ठिर को नारद जी ने बहुत समझाया और कहा कि भगवान् श्री राम ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त राज्य कर फिर इस असार संसार से चले गये। तुम पुत्र-शोक व्यर्थ करते हो।

जब यह समझ में आता है कि एक दिन हमको भी जाना होगा, तब घर-दरवाजा आदि बेकार मालूम होने लगता है। यदि कोई किसी को कहे कि मरने पर तुम नरक में जाओगे, तो यह सुनकर वह महादुःखी होगा। इसके लिए ऐसा उपाय करो कि शरीर छूटने पर दुःख में न चले जाओ।

❀ सब लोगों को जानना चाहिये कि प्रत्येक शरीर में जीवात्मा रहता है, जैसे घर में लोग रहते हैं। शरीर में लड़कपन, जवानी, बुढ़ापा होता है और एक दिन इससे जीवात्मा निकल जाता है, जैसे घर से कोई निकल जाये।

यह शरीर एक ही नहीं है। इसके अन्दर तीन और जड़ शरीर है। साधारण मृत्यु में एक को छोड़कर और तीन को लेकर जीवात्मा निकल जाता है। उसी को लोग मरना कहते हैं।

शरीर का अंत अवश्य होगा। संत चरणदास जी की शिष्या सहजोबाई कहती है–

"चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वाबीस।
सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुँधावै सीस।।"

जहाँ मीराबाई हुई हैं, वहीं सहजोबाई भी हुई हैं। यहाँ मरना अवश्य है। प्रत्येक आदमी को यह विश्वास है कि यहाँ से चलना है। यह निश्चित नहीं कि कब मौत आ जायेगी। इसीलिये चलने के लिये हमेशा तैयार रहना चाहिये।

❁ **"नहिं बालक नहिं जौवने, नहिं बिरधी कछु बन्ध।**
वह औसर नहिं जानिये, जब आय पड़े जमफन्द।।"

बालकपन क्या, जवानी क्या, बुढ़ापा क्या, किस पन में किस अवसर पर वह समय आ जायेगा, जब शरीर से प्राण निकल जायेगा। जीवन कब समाप्त हो जायेगा, कोई ठिकाना नहीं। यम-फंदा में कब फँसेगा ठिकाना नहीं।

❁ कभी-न-कभी अवश्य मरेगा। चाहे इसको जमीन में गाड़ दो, चाहे आग में जला दो। चाहे जमीन पर छोड़ दो।

एक साधु थे। वे कहते थे कि मेरे मरने पर पवन समाधि कर देना।

"मरना भला विदेश में, जहाँ न अपना कोय।
माटी खाय जनावरा, महा महोच्छव होय।।"

कबीर पंथी लोग खास करके गाड़ देते हैं। सिकली गढ़ में एक समाधि थी। उससे बहुत चीटियाँ निकली। वहाँ एक चून खाँ की भी समाधि है। मुसलमान और ईसाई कब्र देते हैं। लेकिन जला देना अच्छा है। घृत वगैरह देकर जला देते हैं, गंध नहीं रहती है। भगवान् बुद्ध के शरीर छूटने पर बहुत राजा-महाराजा उनके शिष्य थे, बहुत घृत-चन्दन आदि लेकर उनको जलाया गया। बौद्ध लोग जलाये जाते हैं।

❁ आप देखते हैं–दिन होता है, रात होती है। फिर ऐसे ही उलटते-पुलटते रविवार से शनिवार होता है। महीना होता है। फिर साल होता है। एक-एक दिन गुजरते-गुजरते समय बीत जाता है। इसी तरह अपने शरीर में बचपन,जवानी, बुढ़ापा और अंत में मृत्यु। मृत्यु के बाद क्या होगा? कहा गया है कि दुःख-सुख का भोग नरक-स्वर्ग में होगा, फिर इस पृथ्वी पर भी आवेगा।

हमलोगों का यह शरीर कुछ काल तक रहेगा। यह सदा नहीं रहेगा। बहुतों का शरीर छूटा तथा उनकी अंत्येष्टि-क्रिया को बहुतों ने देखा भी। हिरण्यकशिपु ने बहुत तप किया था। उसने वरदान में माँगा था कि मृत्यु आकाश में नहीं हो, धरती पर नहीं हो। दिन में नहीं हो, रात में नहीं हो। किसी अस्त्र-शस्त्र से नहीं हो। मनुष्य और जानवर द्वारा नहीं हो। अपने वरदान में उसने अपने को अमर ही मान लिया। सब तरह से उसने ब्रह्मा जी

को अपने वरदान में बाँध लिया। ब्रह्मा जी ने वैसा ही वरदान दिया। हिरण्यकशिपु भी भक्त था। शिव जी में बहुत प्रेम रखता था। किन्तु विष्णु भगवान् से द्वेष करता था। भगवान् का नाम तक नहीं सुनना चाहता था। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद का जन्म हुआ। प्रह्लाद की माँ कुछ-काल नारद मुनि की हिफाजत में रही थी। नारद मुनि का ज्ञान उसकी माँ सुनती थी । उसमें हरि-भक्ति का गुण आ गया था। वह भगवान् विष्णु का नाम जपता था। हिरण्यकशिपु ने बहुत मना किया । लेकिन प्रहलाद ने नहीं माना। आखिर में तलवार लेकर उसने प्रहलाद से पूछा—"बताओ, तुम्हारा भगवान् कहाँ है ?" प्रहलाद ने कहा—"हममें, तुममें, खड़ग-खम्भ में, सर्वत्र राम-ही-राम है।" हिरण्यकशिपु ने पूछा—"क्या खंभे में भी तुम्हारा भगवान् है ?" प्रहलाद ने कहा—"हाँ"। यह सुनते ही हिरण्यकशिपु ने खंभे पर तलवार चलायी। उस खंभे से नरसिंह भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने हिरण्यकशिपु को अपनी गोद में लेकर मकान की देहरी पर सूर्यास्त के समय उसके पेट को अपने नख से फाड़ दिया। उसकी मृत्यु हो गई। वह अमर नहीं रह सका। तात्पर्य यह कि शरीर का नाश अवश्य होता है। शरीर का नाश होता है, यह तो सभी जानते हैं। लेकिन शरीर छूटने के बाद कहाँ जाना होता है इस बात का यत्न नहीं जानते हैं।

❀ अपने देश में श्राद्ध-क्रिया होती है। श्राद्ध-क्रिया से पता चलता है कि शरीर छोड़कर जीवात्मा कहीं चला गया है। उसी की शुभगति के वास्ते श्राद्ध होता है। इसमें इतना ज्ञान अवश्य है कि शरीर नाशवान् है और जीवात्मा अविनाशी है।

❀ संत कबीर साहब भेद की वाणी कहते हैं, वे कहते हैं कि संसार में आये हो, तुम्हारी मृत्यु होगी। लेकिन तुम जाओगे किधर ? माता के पेट से तुम बाहर संसार में आये हो। वस्तुतः तुम शरीर में आये हो और एक दिन जाओगे अवश्य। लेकिन जाओगे किस ओर ? अनजान रास्ते में जाने में बड़ा कष्ट होता है। इसकी चिन्ता मुझको है कि तुम किस ओर जाओगे ?

❀ सबको प्रत्यक्ष है कि शरीर नाशवान् है। शरीर छूटता है, इसको जला देता है; गाड़ देता है। यह शरीर पानी से बना है, यानी पानी से पिण्ड बना है। फिर बचपन और जवानी आई। वयस बढ़ा। वयस के अनुकूल शरीर

बढ़ता गया। सुन्दरता आती गई। और फिर वह सुन्दरता नहीं रहती। और फिर ऐसा होता है कि जैसे पहले इसका पता नहीं था, वैसे ही पता नहीं रहता है।

❁ आप देखते हैं कि गाँव-गाँव में, घर-घर में मृत्यु होती है। यह अशुभ होने पर भी होती है। यह आप देखते हैं। आप अपने लिए सोचेंगे, तो विश्वास होगा कि आपका शरीर भी छूटेगा। मृत्यु के बाद घर-घर में श्राद्ध-क्रिया होती है। श्राद्ध-क्रिया में विश्वास है कि शरीर छूट गया है, इसको जला देते हैं; लेकिन शरीर में जो था, वह कहीं चला गया। जो चला गया, वह क्या था ? वह वही था, जिसको अपने तईं कहते थे।

❁ कोई मर जाता है, तो उस मृतक को रंथी पर चढ़ाकर ले जाते हैं। कोई रोते-रोते जाते हैं, कोई 'रामनाम सत्त है' कहते जाते हैं। शरीर में से कुछ निकल गया, तब शरीर मर गया। इसके लिए श्रद्धापूर्वक एक काम होता है जिसको श्राद्ध-क्रिया कहते हैं। वह कर्म करते हैं और विश्वास करते हैं कि शरीर में से जो चला गया, उसका कल्याण होगा। हमारे मुसलमान भाई कहते हैं कि शरीर छूट गया और उससे रूह निकल गयी। चालीस दिनों तक कब्र पर जाकर नमाज पढ़ते हैं। ईसाई लोग भी कुछ ऐसा अनुष्ठान करते हैं। शरीर मरा है, किन्तु शरीर में रहने वाला नहीं मरता। जैसे अन्धड़ में घर टूट जाये और घर में रहनेवाला भाग जाये, वह मरता नहीं, उसी प्रकार शरीर मर गया; किन्तु रूह-जीवात्मा मरा नहीं। जिस शरीर में रूह नहीं है, वह कुछ बोलता-चालता नहीं, सोचता-विचारता नहीं। एक चीज में बोलना-चालना, विचारना नहीं होता और दूसरा बोलता-चालता,विचार करता है–इस प्रकार दो पदार्थ हुए। शरीर में ज्ञानमय-पदार्थ के रहने से चलता-फिरता, बोलता है; इससे जीवात्मा निकल जाने पर यह शरीर सड़-गल जाता है, कुछ कर नहीं सकता।

❁ यह शरीर ऊपर से देखने पर खूबसूरत या बदसूरत लगता है। डॉक्टर लोग जितना पढ़ते हैं, उतना ही नहीं है। यह शरीर हाड़, मांस, चाम का ही लोथड़ा नहीं है, खोजने पर इसमें ईश्वर भी मिलते हैं। इसके अन्दर ईश्वर से मिलने का सहारा है। उस सहारे को पकड़ो। सहारा यह है कि बाहर दुनिया में चाँद-सूर्य के बिना ही रोशनी है; उसको जो पकड़ता है, वह

ईश्वर को पाता है। ब्रह्म-ज्योति सहारा है।

❁ स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करना मरना है। कबीर साहब ने कहा है–

"मरिये तो मरि जाइये, छूटि पड़े जंजार।
ऐसी मरनी को मरै, दिन में सौ सौ बार।।"

यहाँ दिन का अर्थ समय से है। समय में ही रहकर लोग जनमते-मरते हैं। लेकिन जबतक जन्म का कारण जो है, उसके पार न हो जाये, तबतक यह छूट नहीं सकता। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण इन सब शरीरों को जो पारकर जायेगा, तब जो उसका मरना होगा तो फिर जनमना-मरना होगा। ऐसा जिस जन्म में होगा, उसके बाद फिर उसका जन्म नहीं होगा। इसलिए बहुत भजन करना है।

❁ संसार परिवर्त्तनशील और नाशवान है। जहाँ लोग बसते थे, वहाँ आज गंगाजल का प्रवाह होता है और जहाँ गंगाजल का प्रवाह था, वहाँ लोग बसते हैं। यहाँ पहले क्षत्रिय का राज्य था। हजार वर्ष तक वह रहा। भगवान् श्रीराम जिस वंश में हुए, वह वंश भी रहने नहीं पाया। मुसलमान लोग आये, उन्होंने राज्य किया। फिर उनलोगों का राज्य चला गया। अंग्रेज आये, उनलोगों का राज्य भी चला गया। अपने शरीर को सोचो। बच्चा, जवान और बूढ़ा होकर फिर लापता हो जाता है।

❁ जीवन का अन्त सब युग में होता है। सत्ययुग में जीवन का अन्त त्रेता में जीवन का अन्त, द्वापर में जीवन का अन्त और कलियुग में जीवन का अन्त। यह तो लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। शरीर छोड़कर जीवात्मा चली जाती है, कहाँ गई, किसी को पता नहीं। लेकिन जीवात्मा जानती है कि मैं यहाँ आई हूँ। जिसको कुछ भी ज्ञान है, वह कहेगा कि शरीर के जीवन का अन्त होता है। जीव तो अजर-अमर अविनाशी है। जीव के जीवन का अन्त नहीं होता है–वह रहता ही है। शरीर छोड़कर जीवात्मा कहीं चली गई, लोग नहीं देखते हैं। लेकिन जो जीवात्मा गई है, उसको मालूम है कि मैं वहाँ से यहाँ आई हूँ। जैसा कर्म किया था, वैसे स्थान में आ गई हूँ। शरीर-जीवन के बाद चेतन-आत्मा का जीवन रहता है। तो क्या केवल जीवात्मा जाती है वा जीवात्मा रहती है ? नहीं ! नहीं !! केवल स्थूल-शरीर छूटता है। इसके अन्दर सूक्ष्म-शरीर है। उसके अन्दर कारण–शरीर है।

उसके भी अन्दर महाकारण-शरीर है। यह चारो जड़-शरीर है। यह स्थूल-शरीर जब सो जाता है, तो इसको कुछ ज्ञान नहीं रहता है। इसमें ज्ञानमयी-पदार्थ चेतन-आत्मा है। अज्ञानमय चार जड़ शरीर है। स्थूल-शरीर छूटता है, बाकी तीन जड़-शरीर रहते हैं। इन तीनों जड़-शरीर के साथ जीवात्मा को कर्मानुसार स्थान मिलता है।

❁ मरने का डर नहीं करना चाहिए। शरीर मरता है, आप नहीं मरेंगे। जिसको मरने की आदत हो गयी है, वह मरने से क्यों डरेगा ? इसीलिए कबीर साहब ने कहा–

"जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द।।"

मरने का डर उसको है, जो बुरे-बुरे कर्मों को करता है; क्योंकि उसकी दुर्गति होती है। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है–

"प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् संत परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।"

–गीता 8/10

प्रयाणकाल में अर्थात् मरने के समय अचल-मन से भक्ति-योग-युक्त होकर अपने प्राण को दोनों भौओं के बीच में रखकर जो शरीर छोड़ता है, वह दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करता है। जिसको जीते जी इसका खूब हिस्सक लगेगा, उसका कल्याण होगा। जीते-जी जो भावना होगी, मरने के समय वही होगी; जैसे जड़ भरत की हुई थी। हिरणी के बच्चे में उनकी आसक्ति थी, तो शरीर छूटने पर उनको हिरण का शरीर मिला।

समाप्त

जय गुरु

महर्षि मेँहीँ सूक्ति-सुधा-सागर के सहयोगदाताओं की नामावली

श्री आनन्द केडिया पत्नी श्रीमती लता केडिया, पटना ।
श्री कृष्णकुमार (एस.डी.ओ.), पटना ।
श्री रणवीर कुमार सिंह (इलेक्ट्रीक इंजीनियर), पटना ।
डा० खेतान (डाक्टर्स कॉलोनी), पटना ।
प्रो.डा० नागेश्वर चौधरी 'नागेश', पटना ।
श्री मुनेश्वर प्रसाद सिंह (पूर्व इंजीनियर), पटना ।
श्री चतुर्भुज सिन्हा (पूर्व इंजीनियर), पटना ।
श्री अजय कुमार नीलू (लाइफ सॉफ्ट), पटना ।
श्री अनिल कुमार (लाइफ सॉफ्ट), पटना ।
श्री श्याम प्रसाद रामुका, नई दिल्ली ।
श्री मनोज कुमार, रामुका, नई दिल्ली ।
श्री सीताराम रामुका, नई दिल्ली ।
श्री चन्द्रशेखर प्रसाद , (एडवोकेट) नई दिल्ली ।
श्री गौतम भगत, नई दिल्ली ।
श्री मुनीर नासा, नई दिल्ली ।
श्री आर.पी.ए. जायसवाल (एडवोकेट), नई दिल्ली ।
श्री डी. पी. यादव, गाजियाबाद (उ०प्र०) ।
श्री सुरेश कुमार, जालंधर (पंजाब) ।
स्व. कन्हाई प्रसाद भगत, पाकुड़ ।
श्री हरिद्वार प्रसाद भगत, पाकुड़ ।
स्व. गजाधर चौधरी, पत्नी श्रीमती सुशीला (माताजी), सुल्तानगंज ।
श्री केशव प्रसाद मोदी, सुल्तानगंज ।
श्री कमलेश्वरी प्रसाद मोदी, पत्नी श्रीमती गीता देवी, सुल्तानगंज ।
श्री आशुतोष कुमार (ड्रग्स इन्सपेक्टर), रांची ।
श्री परमानन्द साह (साइन्स टीचर), पीरपैंती, भागलपुर ।
श्री श्यामसुन्दर डोकानिया, बड़हरवा ।
श्री देवकीनन्दन मंधोलिया, बड़हरवा ।
श्री राजकुमार डोकानिया, बड़हरवा ।
श्री मोहन केडिया, बड़हरवा ।
श्री जीयालाल साह,

तप असल में
ब्रह्मचर्य-पालन को
कहते हैं। जो अच्छी
तरह ब्रह्मचर्य-पालन
करे तो वह अच्छा
तपी है। शरीर को
तपावे और ब्रह्मचर्य
का ध्यान नहीं रखे
तो वह उत्तम तप
नहीं है।

-इसी ग्रंथ से

महर्षि जी की वाणी

अपने देश में झूठ बहुत हो गया है, इसको हटाओ। इसको हटाने कौन कहेगा? धर्म तो थर्रा गया है। वह यदि आदमी होता तो कहता लोगों ने हमारी रीढ़ तोड़ दिया है- अंग को खंड-खंड कर दिया है। इसलिए सब कोई धर्म से बँधो। अपने धर्म को मत छोड़ो। चाहे कितना भी कुबोल सहना पड़े, दुख भोगना पड़े और अपमान हो। इस देश के गुरू गोविंद सिंह जी के छोटे-छोटे दोनों पुत्रों ने इसे करके दिखला दिया।

-इसी ग्रंथ से.

संकलनकर्त्ता
स्वामी श्री सत्यानन्द जी महाराज
महर्षि मेँहीँ आश्रम, (श्री शाही सेवा ट्रस्ट) हरिद्वार

रामचरितमानस

सार सटीक



उमा राम विषयक अस मोहा।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥